उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम

इतिहास

1

केंद्रिक मॉड्यूल

पाठ्यक्रम समन्वयक
विवेक सिंह

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
ए-24-25, शैक्षणिक क्षेत्र, सेक्टर-62, नोएडा-201309 (उ.प्र.)

परामर्श समिति

डॉ. सितांशु शेखर जेना
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान,नोएडा

डॉ. राजेश कुमार
संयुक्त निदेशक, शैक्षिक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

डॉ. अनिता प्रियदर्शिनी
संयुक्त निदेशक, शैक्षिक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

पाठ्यक्रम निर्माण समिति

प्रो. टी.के. वी. सुब्रमण्यम
अध्यक्ष
इतिहास विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. बी.आर. मनी
उप निदेशक
भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग, नई दिल्ली

सुश्री मंजिष्ठा बोस
अवकाश प्राप्त पी.जी.टी. इतिहास
और विभागाध्यक्ष सामाजिक विज्ञान
स्प्रिंगडेल स्कूल, पूसा रोड,नई दिल्ली

प्रो. जे.के. शर्मा
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

डॉ. पी. के. बसंत
सह. प्रोफेसर
इतिहास विभाग,जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

डॉ. गुरप्रीत मैनी
पंजाब एजुकेशन सर्विस,श्नई दिल्ली

सुश्री अनीता देवराज
प्रधानाचार्य
डी.ए.वी पब्लिक स्कूल, बहादुरगढ़, हरियाणा

प्रो. ए.आर. खान
प्रोफेसर, इतिहास
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
मैदान गढ़ी, नई दिल्ली–110068

सुश्री पद्मा श्रीनिवासन
पी.जी.टी (इतिहास)
दिल्ली पब्लिक स्कूल
आर.के. पुरम, नई दिल्ली

डॉ. अनिता प्रियदर्शिनी
संयुक्त निदेशक, शैक्षिक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

विषय संपादक

डॉ. वी.के. जैन
सह प्रोफेसर
मोती लाल नेहरू कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

प्रो. ए.आर. खान
प्रोफेसर, इतिहास
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मैदान गढ़ी,
नई दिल्ली- 110068

भाषा संपादक

डॉ. सत्यवती शर्मा
पूर्व सहायक निदेशक
रक्षा मंत्रालय, दिल्ली

डॉ. बालक ष्ण राय
शैक्षिक अधिकारी (हिन्दी)
रा.मु.वि.शि.संस्थान, नोएडा

डॉ. सुरेन्द्र कुमार
शिक्षा निदेशालय
दिल्ली

श्री गौरव भल्ला
स्वतंत्र संपादक
दिल्ली

संपादकीय सहयोग

श्री. एन.पी. सिंह
वरिष्ठ कार्यकारी अधिकारी
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

अनुवादक

डॉ. सत्यवती शर्मा
पूर्व सहायक निदेशक
रक्षा मंत्रालय, दिल्ली

डॉ. कुसम बांठिया
स्वतंत्र अनुवादक
भोपाल, मध्य प्रदेश

श्री राम देव
पी.जी.टी. इतिहास
एस.बी.डी. झंडेवालान, दिल्ली–55

सुश्री सोनाली मिश्रा
स्वतंत्र अनुवादक
साहिबाबाद, उत्तर प्रदेश

पाठ लेखक

डॉ. पी.के. बसंत (पाठ 1)
सह प्रोफेसर
जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

डॉ. रंजन आनंद (पाठ 4)
सहायक प्रोफेसर
जाकिर हुसैन पी.जी. (सांध्य.) कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सुश्री नयना दासगुप्ता (पाठ 9)
सहायक प्रोफेसर
लेडी श्री राम कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

डॉ. रंजिता दत्ता (पाठ 11)
सहायक प्रोफेसर
जामिया मिलिया इस्लामिया, नई दिल्ली

श्री महेश गोपालन (पाठ 14)
सहायक प्रोफेसर
सेंट सटीफेंस कॉलेज, दिल्ली

डॉ. विजयलक्ष्मी सिंह (पाठ 1)
सह प्रोफेसर
श्री अरिबंद कॉलेज (सांध्य), दिल्ली

श्री संजय शर्मा (पाठ 6)
सहायक प्रोफेसर
बी.आर. अम्बेडकर कॉलेज
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

सुश्री सीमा रातुरी (पाठ 9)
स्वतंत्र लेखक, नई दिल्ली

श्री आनंद कुमार (पाठ 12)
सहायक प्रोफेसर
मोती लाल नेहरू कॉलेज, दिल्ली

श्री संतोष कुमार राय (पाठ 15)
सहायक प्रोफेसर, एस.जी.टी.बी. खालसा कॉलेज,
दिल्ली

श्री विकास वर्मा (पाठ 2,3)
सहायक प्रोफेसर
रामजस कॉलेज, दिल्ली

डॉ. अंजलि मलिक (पाठ 1)
सहायक प्रोफेसर
कालिन्दी कॉलेज, दिल्ली

डॉ. विपुल सिंह (पाठ 10)
सह प्रोफेसर
मोतीलाल नेहरू कॉलेज, दिल्ली

श्री संजय कुमार (पाठ 13)
सहायक प्रोफेसर,श्याम लाल कॉलेज,
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

रेखाचित्र

श्री महेश शर्मा
रेखाकार,
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान,नोएडा

श्री प्रवीण मिश्रा
मानचित्रकार, भूगोल विभाग
मिरांडा हाउस, दिल्ली

श्री सुंदर सिंह रावत
कार्यालय सहायक
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान,नोएडा

भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग का विशेष आभार, जिन्होंने इस पुस्तक में छपने के लिए चित्र प्रदान किए।

निदेशक की कलम से

प्रिय शिक्षार्थियों

आपकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान का शैक्षिक विभाग आपके लिए नित नए कार्यक्रमों के द्वार खोलता है। हमने विस्त त अध्ययन करने के बाद पाया कि आपका यह पाठ्यक्रम अधिक व्यावहरिक, सहज और आज के समाज से जुड़ा हुआ है। अब हमारा काम था कि आपके लिए इसे और अधिक सार्थक व उपयोगी बनाया जाए। हमने देश के प्रसिद्ध शिक्षा-शास्त्रियों और विषय विशेषज्ञों को आमंत्रित करके उनके दिशा-निर्देशन में इतिहास के पाठ्यक्रम को राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 के आधार पर पुनः अवलोकन कर आपके लिए नए रूप में प्रस्तुत किया है।

साथ ही, हमने कुछ ऐसी सामग्री हटा दी है, जो आज के समाज में अप्रासंगिक हो गई है तथा नवीन सामग्री को जोड़ दिया है ताकि आपके लिए यह अधिक प्रभावी, आकर्षक और उपयोगी हो। मुझे आशा है कि आपको यह नवीन पाठ्यसामग्री अधिक रोचक और उत्साहवर्द्धक लगेगी। सामग्री में सुधार के लिए आपके सुझावों का सहर्ष स्वागत है।

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान देश में माध्यमिक शिक्षा को सार्वभौमिक बनाने के लिए वचनबद्ध है। माध यमिक शिक्षा एक ऐसी सामान्य शिक्षा है, जिसका मुख्य ध्येय अपनी मात भूमि को ऐसे सपूत देना है, जो अच्छे नागरिक हों व जिनकी समाज, राज्य व राष्ट्र के प्रति सकारात्मक सोच हो। साथ ही उनके अंदर ज्ञान के लिए ऐसी जिज्ञासा व पिपासा पैदा हो कि वे सजग, सार्वभौमिक, वैश्विक नागरिक बनें। दूसरी तरफ उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम अधिकतर विश्व ज्ञान की ओर इंगित करता है तथा महाविद्यालय में प्रवेश पाने का आधार बनता है।

इतिहास बीते समय की घटनाओं से संबंधित होता है, परन्तु इसका प्रमुख ध्येय सामयिक परिस्थिति को सही ढंग से समझना होता है। यह आज के समाज की विडंबनाओं की व्याख्या करता है तथा उनके कारणों की जाँच-पड़ताल करता है। आज के विश्व को अच्छी तरह समझ पाने के लिए हमें उसके अतीत की खोज व छानबीन करनी होती है ताकि हम जान सकें कि आज के हालात को अतीत ने किस प्रकार आकार दिया। भावी नागरिकों, प्रशासनिक अधिकारियों, विदेशी सलाहकारों तथा हमारी धरोहर के संरक्षकों को शिक्षित करने हेतु इनकी जरूरत हर समय बनी रहती है।

मैं आपका स्वागत करता हूं कि आपने इतिहास विषय को चुना है मैं आपके अच्छे भविष्य की कामना करता हूँ।

डॉ. राजेश कुमार

संयुक्त निदेशक (शैक्षिक)

अपने पाठ कैसे पढ़ें

बधाई! आपने खुद पढ़ने की चुनौती स्वीकार की। राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान ने आपको ध्यान में रखते हुए विद्वानों की एक समिति की सहायता से इतिहास में अध्ययन सामग्री तैयार की है और हम हर कदम पर आपके साथ है। स्वतंत्र अध्ययन को सहयोग करने वाली एक पद्धति का अनुसरण किया गया है। अगर आप दिए गए निर्देशों का पालन करेंगे, तो इस अध्ययन सामग्री का सर्वोत्तम उपयोग कर सकते हैं। अध्ययन सामग्री में प्रयुक्त चिह्न ऐसा करने में आपकी मदद करेंगे।

शीर्षक: *शीर्षक आपको इसकी विषय सामग्री के संबंध में स्पष्ट संकेत देगा।*

भूमिका: *यह आपको पाठ की सामग्री से परिचित कराने के साथ ही पिछली जानकारी से भी जोड़ेगी।*



उद्देश्य: *ये आपके अध्ययन के परिणाम हैं, जिनकी आशा आपसे इस पाठ को पढ़ने के पश्चात् की जाती है। आपसे उम्मीद की जाती है कि आप इन्हें पढ़ें और ज्ञान की परख करें।*

मूल पाठ/विषय सामग्री: *संपूर्ण विषय सामग्री को कई भागों एवं उपभागों में विभाजित किया गया है। ये भाग आपको विषय सामग्री के एक घटक से दूसरे में ले जाते हैं और उपभाग विषय सामग्री के घटक के विचार को समझने में सहायता करते हैं।*

टिप्पणी: *आपके लिए महत्त्वपूर्ण बिंदुओं को लिखने या टिप्पणियां लिखने के लिए प्रत्येक प ष्ठ में किनारे की ओर खाली स्थान दिया गया है। इसका भरपूर उपयोग करें।*



पाठगत प्रश्न: *प्रत्येक भाग के पश्चात् स्वतः जाँच के लिए कुछ वस्तुनिष्ठ प्रश्न दिए गए हैं। इनके उत्तर भी पाठ के अंत में दिए गए हैं। ये आपकी प्रगति की जाँच करने में आपकी सहायता करेंगे। इन्हें हल कीजिए। इसे सफलतापूर्वक पूरा करने पर आपको यह निश्चय करने में मदद मिलेगी कि आप आगे बढ़ें या पुनः पीछे लौटकर इकाई का फिर से अध्ययन करें।*



आपने क्या सीखा: *यह पाठ के प्रमुख बिन्दुओं का सारांश है। यह पाठ के सार कथन और दोहराने में मदद करेगा। आप इनमें कुछ बिंदु जोड़ भी सकते हैं।*



पाठांत प्रश्न: *ये लघु और दीर्घ उत्तरों वाले प्रश्न हैं, जो आपको संपूर्ण पाठ को ठीक से समझने के लिए अभ्यास का अवसर प्रदान करते हैं।*



पाठगत प्रश्नों के उत्तर: *ये आपको यह पता करने में सहायता करेंगे कि आपने कितने पाठगत प्रश्नों के सही उत्तर दिए हैं।*

पाठांत प्रश्नों के संकेत: *ये आपको सही उत्तर खोजने में सहायता करेंगे।*

पाठ्य सामग्रीः एक नज़र में

पुस्तक - 1

मॉड्यूल 1

प्राचीन भारत

1. भारत के इतिहास को समझना
2. भारत का भौगोलिक परिवेश और प्रागैतिहासिक सभ्यताएँ
3. हड़प्पा सभ्यता
4. वैदिक काल
5. जनपद से साम्राज्य की ओर
6. मौर्योत्तर काल
7. गुप्तवंश तथा उनके उत्तराधिकारी
8. 750-1200 ई. के मध्य भरतीय परिद श्य

मॉड्यूल 2

मध्यकालीन भारत

9. दिल्ली सल्तनत की स्थापना और विस्तार
10. मुगल शासन की स्थापना
11. भारत में प्रादेशिक राज्यों का उदय
12. प्रशासनिक प्रणाली और संस्थाएं
13. अर्थव्यवस्था
14. मध्यकालीन भारत में सांस्क तिक विकास
15. 18वीं शताब्दी में भारत की स्थिति

पुस्तक - 2

मॉड्यूल 3

आधुनिक भारत

16. भारत में ब्रिटिश शासन का संस्थापन 1857 तक
17. ब्रिटिश उपनिवेशवाद का आर्थिक प्रभाव
18. आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन
19. कंपनी शासन का जन विरोध

मॉड्यूल 4

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन तथा तत्कालीन भारत

20. राष्ट्रवाद
21. राष्ट्रीय आंदोलन तथा भारतीय प्रजातंत्र

मॉड्यूल 5

20वीं शताब्दी का विश्व

22. 19वीं शताब्दी का महत्त्व
23. प्रथम विश्व युद्ध तथा रूसी क्रांति
24. दोनों विश्व युद्धों के अंतराल का समय व द्वितीय विश्व युद्ध
25. शीत युद्ध व उसके प्रभाव
26. राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन
27. 20वीं शताब्दी में सामाजिक रूपांतरण
28. 20वीं शताब्दी में परिवर्तन

पुस्तक - 3

मॉड्यूल 6ए

भारत में राज्यों का विकास

29. राज्य के निर्माण की ओर
30. प्रारंभिक राज्य
31. मध्यकालीन राज्य
32. औपनिवेशिक राज्य

मॉड्यूल 6बी

भारत में सांस्क तिक विकास

29. समसामयिक सांस्क तिक स्थिति
30. सांस्क तिक उत्पादन
31. सांस्क तिक संचार

आपसे दो बातें

प्रिय शिक्षार्थी,

आज के समाज में हम आतंकवादी, नक्सलवादी हिंसा, दंगे, साम्प्रदायिक कलह, जातीय तनाव के दौर से गुजर रहे हैं। ये सामाजिक समस्याएँ हमारे वर्तमान समाज की हैं तथा आप इन्हें सही प ष्ठभूमि में समझने का प्रयास करते होंगे। यदि हम आज की सामाजिक समस्याओं के मूल कारणों को सही तरीके से समझना चाहें तो इतिहास का विधिवत अध्ययन आपको सही दिशा दे सकता है।

इतिहास की विषय-वस्तु बहुत विस्त त है । यह मानव सभ्यता की कहानी के इर्द-गिर्द घूमती है। इसके एक छोर पर तो आदि मानव है जो भोजन संग्रह कर्ता है तथा दूसरी छोर पर आज का आधुनिक मानव है जिसने विज्ञान व तकनीक में अद्‌भुत प्रगति की है। यह भी सत्य है कि आज घातक हथियार, जनसंख्या विस्फोट, प्रदूषण, आर्थिक असमानता इत्यादि से मानव का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया है।

इतिहास बीते समय की घटनाओं को खुदाई, छानबीन, शिलालेखों, दस्तावेजों इत्यादि के अध्ययन से समझने का प्रयास करता है तथा उनका विश्लेषण करने की कोशिश करते हुए, आज के हालात के कारणों को ढूँढने का प्रयत्न करता है। आज की जिंदगी अत्यधिक जटिल हो गई है और इसी तरह इतिहास भी। आज का इतिहास केवल राजाओं और सम्राटों के जीवन से ही संबंधित नहीं रहा परन्तु इसकी विषयवस्तु बहुत विस्त त हो गई है जो एक मानव सभ्यता के राजनीतिक पक्ष से प्रारम्भ होते हुए उसके सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्क तिक पहलुओं को छूती है।

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान में उच्चतर माध्यमिक स्तर के इतिहास पाठ्यक्रम को इस तरह बनाया गया है कि यह इतिहास के विभिन्न कालक्रमों को सम्मिलित करते। पूरे पाठ्यक्रम को तीन पुस्तकों में विभक्त किया गया है। पहली पुस्तक प्राचीन तथा मध्यकालीन इतिहास से सम्बन्धित है। यह प्राचीन व मध्यकालीन समाज को समझने का प्रयास करती है। दूसरी पुस्तक आधुनिक काल और समसामायिक इतिहास पर विचार करती है। तीसरी पुस्तक में वैकल्पिक मॉड्यूल हैं। आपको इन दो मॉड्यूलों में से किसी एक को चुनना है-

(अ) भारत में राज्यों का विकास, तथा

(ब) भारत में सांस्क तिक विकास

इस पुस्तक में, अर्थात् पुस्तक एक में दो मॉड्यूल सम्मिलित किए गए हैं । पहले मॉड्यूल में प्राचीन भारत का राजनीतिक, सामाजिक तथा आर्थिक इतिहास शामिल किया गया हैं जो प्रागैतिहासिक काल से लेकर 12 वीं शताब्दी तक सीमित है। यह हड़प्पा युग से वैदिक युग तक का वर्णन करता है जो मौर्य तथा गुप्त काल में समाप्त होता है। उत्तर व दक्षिण भारत के 8 वीं तथा 12 वीं शताब्दी के इतिहास को भी इसमें रखा गया है। दूसरे मॉड्यूल में 13 वीं शताब्दी से लेकर 18 वीं शताब्दी के मध्यकालीन भारत के इतिहास पर विचार किया गया है। इसमें दिल्ली सल्तनत से लेकर मुगल साम्राज्य तक प्रकाश डाला गया है।

मुझे आशा है आपको यह पुस्तक रोचक लगेगी। यदि आपको इसमें कोई दिक्कत आती है तो बिना झिझक आप हमें लिख सकते हैं।

शुभकामनाओं के साथ,

विवेक सिंह

(पाठ्यक्रम समन्वयक)

विषय-सूची

मॉडयूल 1	**प्राचीन भारत**	
पाठ 1	भारत के इतिहास को समझना	**1**
पाठ 2	भारत का भौगोलिक परिवेश और प्रागैतिहासिक सभ्यताएँ	**13**
पाठ 3	हड़प्पा सभ्यता	**36**
पाठ 4	वैदिक काल	**59**
पाठ 5	जनपद से साम्राज्य की ओर	**78**
पाठ 6	मौर्योत्तर काल	**100**
पाठ 7	गुप्तवंश तथा उनके उत्तराधिकारी	**121**
पाठ 8	**750-1200 ई. के मध्य भारतीय परिद श्य**	**144**
मॉडयूल 2	**मध्यकालीन भारत**	
पाठ 9	दिल्ली सल्तनत की स्थापना और विस्तार	**157**
पाठ 10	मुगल शासन की स्थापना	**186**
पाठ 11	भारत में प्रादेशिक राज्यों का उदय	**209**
पाठ 12	प्रशासनिक प्रणाली तथा संस्थाएँ	**229**
पाठ 13	अर्थव्यवस्था	**252**
पाठ 14	मध्यकालीन भारत में सांस्क तिक विकास	**274**
पाठ 15	18वीं शताब्दी में भारत की स्थिति	**303**

- पाठ्यक्रम
- प्रतिक्रिया पत्र

मॉड्यूल 1

प्राचीन भारत

पाठ 1	भारत के इतिहास की समझ
पाठ 2	भारत का भौगोलिक परिवेश और प्रागैतिहासिक सभ्यताएँ
पाठ 3	हड़प्पा सभ्यता
पाठ 4	वैदिक काल
पाठ 5	जनपद से साम्राज्य की ओर
पाठ 6	मौर्योत्तर काल
पाठ 7	गुप्तवंश तथा उनके उत्तराधिकारी
पाठ 8	750-1200 ई. के मध्य भारतीय परिदृश्य

मॉड्यूल 2

मध्यकालीन भारत

पाठ 9 दिल्ली सल्तनत की स्थापना और विस्तार

पाठ 10 मुगल शासन की स्थापना

पाठ 11 भारत में प्रादेशिक राज्यों का उदय

पाठ 12 प्रशासनिक प्रणाली तथा संस्थाएँ

पाठ 13 अर्थव्यवस्था

पाठ 14 मध्यकालीन भारत में सांस्कृतिक विकास

पाठ 15 18वीं शताब्दी में भारत की स्थिति



1

भारत के इतिहास को समझना

बीती हुई घटनाओं के अध्ययन को इतिहास कहते हैं। इससे हमें उन प्रक्रियाओं को समझने में मदद मिलती है जिन्होंने मानव को अपने वातावरण पर विजय प्राप्त करने की तथा आज की सभ्यता का विकास करने की क्षमता दी। कुछ लोग समझते हैं कि इतिहास में केवल युद्धों और राजाओं के ब्यौरे ही होते हैं। ऐसा नहीं है। इसमें उपलब्ध स्रोतों के आधार पर एक लंबी अवधि के समाज, अर्थव्यवस्था और सांस्क तिक प्रव त्तियो का विश्लेषण किया जाता है। इतिहासकार इस समय के दौरान आई विभिन्न स्थितियों का मूल्यांकन करता है और प्रश्न उठाता है कि कुछ घटनाएँ क्यों घटीं और यह भी देखता है कि समस्त समाज पर उनका प्रभाव क्या रहा? जब भी कोई नया प्रमाण सामने आता है या पहले से मौजूद प्रमाणों की विद्वानों द्वारा नई व्याख्या की जाती है तो इससे अतीत के बारे में हमारी जानकारी और सम द्ध होती है। इतिहासकार तथ्य और कल्पना के बीच अंतर करता है लेकिन किसी समाज में मौखिक परंपरा पर आधारित मिथकों में बीती घटनाओं की स्म तियाँ भी छिपी हो सकती हैं। इतिहासकार का काम है, विभिन्न ऐतिहासिक प्रमाणों की सत्यता की जाँच के द्वारा तथ्य की पहचान करना। इस पाठ में आप सीखेंगे कि किस तरह अनेक प्रकार के ऐतिहासिक साक्ष्यों और उनकी व्याख्या के माध्यम से भारत के प्राचीन इतिहास का ब्यौरा तैयार किया गया।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- ऽ भारत के प्राचीन इतिहास की ऐतिहासिक संरचना समझा सकेगें;
- प्राचीन इतिहासकारों द्वारा प्रयोग में लाई गई विभिन्न प्रकार की स्रोत सामग्री के बारे में बता सकेंगे और
- इतिहास लेखन की बदलती परंपराओं को पहचान सकेंगे।

1.1 प्राचीन भारतीय इतिहास के पुनर्निमाण के स्रोत

प्राचीन भारतीय इतिहास की पुनः संरचना के लिए प्रयुक्त स्रोत सामग्री की आवश्यकता होती है। लेकिन स्वयं स्रोत अतीत को हमारे सामने नहीं लाते। उन्हें व्याख्या की ज़रूरत



आपकी टिप्पणियाँ

होती है और इतिहासकार उन स्रोतों को वाणी देते हैं। वास्तव में इतिहासकार से अपेक्षा की जाती है कि सार्थक रूप से समझाने के लिए वह स्रोत को ढूँढे, पाठों को पढ़े, सुरागों का पीछा करें, उपयुक्त प्रश्न उठाए और प्रमाणों की सत्यता की जाँच करे। उदाहरण के लिए सन 1826 में चार्ल्स मेसन ने पश्चिमी पंजाब के हड़प्पा गाँव में (जो अब पाकिस्तान में है) किसी पुरानी बस्ती की ऊँची–ऊँची दीवारें और मीनारें देखीं और इसके पाँच दशक बाद सर अलेक्जेंडर कनिंघम ने उसी स्थान से कुछ सील मुहरें एकत्रित कीं। लेकिन इसके भी पचास वर्ष बाद जाकर पुरातत्त्ववेत्ता जॉन मार्शल ने वहाँ सिंध क्षेत्र की प्राचीनतम सभ्यता की पहचान की। इतिहासकार तरह–तरह के साक्ष्यों की पुष्टि कैसे करते हैं, उसका एक और उदाहरण हम दे रहे हैं। राजा हर्षवर्धन (ईसा की सातवीं शताब्दी) से जुड़े किसी भी स्रोत में हमें चालुक्य पुलकेशिन द्वितीय के हाथों उनकी पराजय का उल्लेख नहीं मिलता है, लेकिन राजा पुलकेशिन द्वितीय के एक शिलालेख में उनके द्वारा हराने का दावा किया गया है। इस स्थिति में यह स्पष्ट हो जाता है कि हर्ष की जीवनी हर्षचरित्र के लेखक बाणभट्ट ने जानबूझकर अपने आश्रयदाता की पराजय का उल्लेख नहीं किया है।

इतिहासश्का शाब्दिक अर्थ है, 'ऐसा हुआ'। अंग्रेजी में इसका अनुवाद History (हिस्ट्री) किया जाता है। एक समय था जब लिखित अभिलेखों को ही इतिहास का प्रामाणिक स्रोत माना जाता था। लिखित सामग्री की सत्यता जाँची जा सकती है, उसे उद्ध त किया जा सकता है और अन्य स्रोतों से उसकी पुष्टि भी की जा सकती है। मिथक, लोकगीत आदि मौखिक साक्ष्यों को सही स्रोत माना ही नहीं जाता था। प्रारंभिक इतिहासकार मिथकों, कथाओं और मौखिक परंपराओं का सहारा नाममात्र को ही लेते थे क्योंकि न तो उनके सही होने का कोई प्रमाण होता था, और न उनकी सच्चाई की जाँच हो सकती थी। लेकिन आज अनेक नए तरीकों से गैर पारंपरिक स्रोतों का उपयोग हो रहा है। परंपराओं और सांस्क तिक प्रव त्तियों का अध्ययन अन्य ऐतिहासिक तथ्यों की रोशनी में होना चाहिए।

उदाहरण के लिए, महाभारत दो भाइयों की संतानों के बीच हुए संघर्ष की गाथा है। हम निश्चित रूप से नहीं कह सकते कि इस महाकाव्य में वर्णित युद्ध सचमुच हुआ था या नहीं। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि यह युद्ध वास्तव में हुआ था, जबकि कुछ अन्य इतिहासकार दूसरे स्रोतों से पुष्टि हुए बिना इस बात को मानने को तैयार नहीं हैं। मूल कथा शायद सूतों द्वारा रची गई हो जो आम तौर पर क्षत्रिय योद्धाओं के साथ युद्ध क्षेत्र में जाते थे और उनकी विजयों तथा अन्य उपलब्धियों की प्रशंसा में काव्य रच–रचकर सुनाते थे। ये रचनाएँ मौखिक रूप में ही प्रसारित होती थीं और मानव स्म ति का एक हिस्सा बनकर सुरक्षित बची रहीं।

साहित्यिक स्रोत

1.2 धार्मिक साहित्य

भारत की अधिकतम प्राचीन रचनाएँ धर्म से संबद्ध रही हैं। इन्हें वेद कहा जाता है। इनका रचनाकाल 1500 ई.पू. से 500 ई.पू.श्के लगभग माना जाता है। वेदों की संख्या चार है। ऋग्वेद में मुख्य रूप से प्रार्थनाएँ ही हैं। अन्य तीन वेदों– साम, यजुर और अथर्व में प्रार्थनाएँ, अनुष्ठान, मंत्र और पुराण कथाएँ हैं। उपनिषदों में आत्मा और परमात्मा संबंधी दार्शनिक विवेचन है। इन्हें वेदांत भी कहा जाता है।



रामायणश और महाभारत, इन दो महाकाव्यों का संकलन अनुमानतः ईस्वी सन 400 तक जाकर पूरा हुआ होगा। इनमें से 'महाभारत' के रचनाकार व्यास मुनि माने जाते हैं। इसमें मूलतः 8800श्श्लोक थे और इसका नाम 'जय–गीत' अर्थात विजय गान था। आगे चलकर इसका विस्तार 24,000ृश्लोकों में हो गया और इसे 'भारत' कहा जाने लगा क्योंकि इसमें प्राचीनतम वैदिक वंशो में से एक – भरतवंश के उत्तराधिकारियों की गाथाएँ हैं। इसके एक और विस्त त संस्करण 'महाभारत' में 1,00,000 श्लोक हैं। इसी प्रकार मूलतः वाल्मीकि द्वारा रचित 'रामायण' में 6000 श्लोक थे, मगर आगे चलकर इसका विस्तार 12000 और फिर 24000 श्लोकों में हो गया।

उत्तर–वैदिक (वेदों के बाद वाले) काल (600 ई.पू. के बाद) में हमें अनुष्ठान संबंधी ढेर सारा धार्मिक साहित्य मिलता है जिसे सूत्र कहते हैं। राजाओं द्वारा बड़े–बड़े बलि यज्ञ आदि के विधान 'श्रौतसूत्र' में मिलते हैं जबकि जन्म, नामकरण, यज्ञोपवीत, विवाह, अंत्येष्टि आदि संस्कारों से जुड़े घरेलू अनुष्ठानों का विधान 'ग ह्यसूत्र' में मिलता है। इस साहित्य का संकलन लगभग 600 से 300 ई.पू. के बीच हुआ।

जैनों और बौद्धों के धार्मिक ग्रंथ इन धर्मों से जुड़े ऐतिहासिक व्यक्तित्वों और घटनाओं का विवरण देते हैं। आंरभिक बौद्ध रचनाएँ पालि में लिखी गई थीं। इन्हें 'त्रिपिटक' (तीन पिटारे) कहा जाता है –'सुत्तपिटक' 'विनयपिटक' और 'अभिधम्म पिटक'। धर्म से इतर बौद्ध साहित्य में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान 'जातकों' का है। इनमें गौतम बुद्ध के पूर्व जन्मों की कहानियाँ हैं। माना जाता है कि गौतम के रूप मे जन्म लेने के पहले बुद्ध के 550 जन्म और हुए थे। हर जन्म की कहानी एक जातक कहलाती है। ये कहानियाँ ईसा पूर्व पाँचवीं से दूसरी शताब्दी के बीच के काल की सामाजिक और आर्थिक स्थितियों पर बहुत महत्त्वपूर्ण प्रकाश डालती हैं। जैन पाठों की रचना प्राक त भाषा में हुई और आगे चलकर इनका संकलन ईसा की छठी शताब्दी में गुजरात के वल्लभी नामक स्थान पर हुआ। इन्हें 'अंग' कहा जाता है और इनमें जैनों की दार्शनिक अवधारणाएँ मिलती हैं।

1.3 धार्मिकेतर साहित्य

इस कोटि के साहित्य का विषय धर्म नहीं होता। इस वर्ग में धर्मशास्त्र या वे संहिताएँ आती हैं जो विभिन्न सामाजिक समुदायों के कर्त्तव्यों का विधान करती हैं। वे चोरी, हत्या, व्यभिचार आदि के अपराधियों के लिए दंड निर्धारित करती हैं। इनमें सबसे पहला ग्रंथ है 'मनु स्म ति'। यह वह पहला ग्रंथ था जिसका अनुवाद करके अंग्रेजों ने उसे भारतीय विधि संहिता (कोड) का आधार बनाया। कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' में मौर्य काल की भारतीय अर्थव्यवस्था और राजनीति के अध्ययन के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण सामग्री मिलती है। इतिहास की पुनः संरचना के लिए कभी–कभी व्याकरण ग्रंथ भी बड़े काम के साबित होते हैं। व्याकरण पर सबसे पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण ग्रंथ पाणिनि रचित 'अष्टाध्यायी' है जिसका रचना काल विद्वानों ने 700 ई.पू. के लगभग माना है।

कालिदास गुप्तकाल में हुए और उन्होने कविताओं और नाटकों की रचना की। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध है 'अभिज्ञानश्शाकुन्तलम्', 'ऋतुसंहार' और 'मेघदूतम्'। महान रचनाएँ होने के साथ ही ये हमें गुप्तकाल के सामाजिक और सांस्क तिक जीवन की झलकियाँ भी दिखलाती हैं। कश्मीर का इतिहास जानने के लिए हमारे पास 'राज तरंगिणी' नामक एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं जिसकी रचना कल्हण (12वीं सदी ईस्वी) ने की

थी। इतिहास लेखन में सहायता के लिए धर्मेतर ग्रंथों में जीवनियाँ या चरित बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी रचना दरबारी कवि अपने आश्रयदाता शासकों के गुणगान के लिए करते थे। वे चूँकि अपने आश्रयदाताओं की उपलब्धियों का बहुत अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया करते थे, इसलिए उनका अध्ययन ज़रा सावधानी से करना चाहिए। इस तरह की एक महत्त्वपूर्ण क ति है 'हर्षचरित्र' जिसकी रचना बाणभट्ट्ने हर्षवर्धन की प्रशंसा में की थी।

दक्षिण भारत का सबसे प्रारंभिक साहित्य संगम साहित्य कहलाता है। इसकी रचना तमिल में हुई थी और यह धर्मेतर साहित्य की श्रेणी में आता है। इसके रचयिता वे कवि थे जो ईसा की पहली चार शताब्दियों के दौरान राजाओं और सामंतों के द्वारा प्रायोजित सम्मेलनों (संगम) में एकत्रित होते थे। इस साहित्य में विभिन्न नायकों की प्रशस्ति में रचित छोटी और लंबी कविताएँ मिलती हैं।शायद इन्हें राजदरबारों में सुनाने के लिए रचा जाता था। इस साहित्य के अंतर्गत 'शिल्पदिकारम्' और 'मणिमेकली' जैसे महाकाव्य भी आते हैं। 300 ई.पू. से लेकर ईस्वी सन् 300 की अवधि में दक्षिण भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था और राजनीति के अध्ययन के लिए संगम साहित्य ही हमारा प्रमुख स्रोत है। इस साहित्य में मिले वर्णनों की पुष्टि पुरातात्त्विक खोजों से और विदेशी यात्रियों के व त्तांतों से होती है।

पाठगत प्रश्न 1.1

1. चारों वेदों के नाम बताइए।

2. संस्क त व्याकरण का सर्वप्रथम ग्रंथ कौन सा है?

3. जातक से क्या तात्पर्य है?

4. दक्षिण भारत के संगम साहित्य की भाषा क्या है?

5. 'उपनिषद्' से आप क्या समझते हैं?

1.4 गैर साहित्यिक स्रोत

अभिलेख

पत्थर, धातु, पकी हुई मिट्टी आदि जैसी सख़्त सतह पर खुरचकर उकेरी हुई लिखावट को अभिलेख कहते हैं। इनका अध्ययन पुरालेख विद्या के अंतर्गत होता है। ऐसे बिलकुल प्रारंभिक लेख शिलाओं या पत्थरों पर खुदे हुए मिलते हैं। आम तौर पर इनमें इन्हें खुदवाने वालों की उपलब्धियों, क्रिया–कलापों और विचारों का विवरण मिलता है। इसलिए हमें ऐसे शिलालेख मिलते हैं जिनमें राजाओं की यशोगाथा होती है या लोगों द्वारा धार्मिक



उद्देश्य से किए गए दान–पुण्य का उल्लेख होता है। कवियों ने राजाओं तथा आश्रयदाताओं की प्रशंसा में ऐसे जिन अभिलेखों की रचना की थी, उन्हे प्रशस्तियाँ कहते हैं। कुछ उत्कीर्ण लेखों में तारीखें दी हुई हैं। अन्य के समय का अनुमान पुरालिपिशास्त्र या लेखनशैली के आधार पर काफ़ी सटीकता से लगाया जाता है। बिल्कुल प्रारंभिक शिलालेख प्राक त में मिलते हैं जो आम लोगों की भाषा थी। आगे चलकर इनमें तमिल और संस्क त का प्रयोग भी होने लगा।

शिलालेख लिखवाने वालों में सबसे पहला नाम मौर्य सम्राट अशोक का है। उनके अधिकतर शिलालेख ब्राह्मी लिपि में लिखी प्राक त भाषा में हैं, हालाँकि उत्तर–पश्चिम में मिले कुछ शिलालेखों की लिपि खरोष्ठी है। अफ़गानिस्तान में मिले शिलालेख अरामाइक और ग्रीक लिपि में हैं ताकि स्थानीय लोग उनमें लिखी हुई बातें समझ सकें। ब्राह्मी लिपि को पढ़ने में सबसे पहले जेम्स प्रिंसेप को 1837 मे सफलता मिली। प्रिंसेप ब्रिटिश शासन मे सिविल सर्वेंट थे। ब्राह्मी हिंदी (देवनागरी) की ही भाँति बाएँ से दाएँ लिखी जाती थी जबकि खरोष्ठी दाएँ से बाएँ लिखी जाती थी। अशोक के शिलालेखों से हमें उनकी धर्म तथा प्रशासन संबंधी नीतियों को समझने में बहुत सहायता मिलती है। ईसा पूर्व पहली सदी से राजा धर्मार्थ भूमि का दान करने लगे थे। सबसे पहले दक्कन के सातवाहन राजाओं ने ऐसा दान शुरू किया। उत्कीर्ण लेखों में ऐसे दाताओं और दान प्राप्त करने वालों का विवरण खुदा हुआ मिलता है। ऐसे लेखों से हमें उस युग की धार्मिक तथा आर्थिक गतिविधियों के बारे में जानकारी मिलती है। इनमें से कुछ लेख पत्थरों पर पाए गए हैं पर अधिकतर लेख ताँबे के पत्तरों पर मिलते है। ताँबे के पत्तरों पर खुदे अभिलेख शायद भूमि पानेवालों के हित में भूमि के स्वामित्व के प्रमाण के रूप मे तैयार किए जाते थे।

मगर इस प्रकार के लेखों को प्रमाण के तौर पर पूरी तरह स्वीकारने में कुछ बाधाएँ है। उदाहरण के लिए, कहीं अक्षर काफ़ी हल्के खुदे हैं, इसलिए उन्हें पूरी तरह पढ़ना–समझना संभव नहीं होता। इसके अलावा कहीं–कहीं लिखावट घिस गई है और कुछ अक्षर गायब हो गए हैं। यह भी हो सकता है कि कुछशब्दों के अर्थ हमारे सामने स्पष्ट न हो सकें क्योंकि वे किसी विशेष स्थान या समय से जुड़े हों।

पाठगत प्रश्न 1.2

1. उत्कीर्ण लेखों का अध्ययन क्या कहलाता है?

   _____

2. प्रशस्ति किसे कहते हैं?

   _____

3. पुरालिपिशास्त्र (Palaeology) की परिभाषा दीजिए?

   _____

4. अशोक के अधिकतर शिलालेख किस लिपि में लिखे गए हैं?

   _____



आपकी टिप्पणियाँ

1.5 सिक्के

सिक्कों का अध्ययन मुद्रा शास्त्र कहलाता है। इसके अंतर्गत सिक्कों पर उकेरी हुई लिपि और आक तियों जैसे द श्य तत्व ही नहीं धातुओं के विश्लेषण जैसे तत्त्व भी आ जाते हैं। प्राचीन सिक्के अधिकतर ताँबा, चाँदी, सोना तथा सीसा जैसी धातुओं में ढाले जाते थे। भारत में सबसे पहले पाए जानेवाले सिक्कों में कुछ प्रतीक बने होते थे और इन्हें आहत (पंच मार्क्ड) सिक्के कहा जाता था। ये (ई.पू. छठी शताब्दी के बाद से) चाँदी और ताँबे मे ढले होते थे। पहले–पहल जिन सिक्कों में शासकों के नाम और आक तियाँ दिखाई देती हैं उन्हें भारतीय–यूनानियों ने जारी किया था जिनका (ई.पू. दूसरी शताब्दी के लगभग) इस उपमहाद्वीप के उत्तर–पश्चिमी भाग पर नियंत्रण स्थापित हो चुका था। सर्वप्रथम स्वर्ण मुद्राएँ ईसा की पहली सदी के लगभग कुषाणों ने जारी की थीं। कुछ बहुत ही दर्शनीय स्वर्ण मुद्राएँ गुप्त वंश के शासकों ने जारी की थीं। इनमें प्रारंभिक मुद्राएँ इनके सोने की शुद्धता के लिए जानी जाती हैं।

सिक्के चूँकि विनिमय (लेन–देन) के माध्यम के रूप मे काम में लिए जाते थे इसलिए उनसे आर्थिक इतिहास के बारे में उपयोगी जानकारी मिलती है। कुछ सिक्के शासकों की अनुमति से व्यापारियों और दस्तकारों के संघों द्वारा भी जारी किए जाते थे। इससे दस्तकारी और वाणिज्य के प्रभाव का पता चलता हैं। सिक्कों पर राजाओं और देवताओं की आक तियाँ भी दिखाई देती है और धार्मिक प्रतीक भी। इन सबसे उस समय की कला और धर्म पर प्रकाश पड़ता है।

पाठगत प्रश्न 1.3

1. सिक्कों के अध्ययन को क्या कहा जाता है?

2. आहत (पंच मार्क्ड) सिक्कों में किन धातुओं का प्रयोग होता था?

3. भारत में पहले–पहल किस राजवंश ने सोने के सिक्कों को जारी किया था?

1.6 पुरातत्व

अतीत के भौतिक अवशेषों का अध्ययन पुरातत्त्व की सहायता से होता है जो हमें पुराने टीलों की तहों की एक के बाद एक व्यवस्थित रूप से खुदाई करना और इसके द्वारा मिले अवशेषों के आधार पर बीते युग के मनुष्यों के भौतिक जीवन के बारे में अनुमान लगाना सिखाता है। इतिहास–पूर्व काल, अर्थात् लेखन का आविष्कार होने के पहले के युग के अध्ययन के लिए पुरातत्त्व बहुत महत्त्वपूर्ण है। इतिहास मूलतः लिखित सामग्री पर आधारित होता है। हालाँकि भारत में 2500 ई.पू. में भी सिंधु घाटी संस्क ति के काल में लेखन का प्रचलन हो चुका था, पर उस लिपि को अब तक पढ़ा नहीं जा सका है। इस प्रकार हालाँकि हड़प्पावासी लिखना जानते थे, पर इतिहासकार उस लेखन को पढ़ नहीं



पाए हैं। उनकी संस्क ति को प्रारंभिक ऐतिहासिक दौर में रखा गया है। जिस सबसे पहली लिपि को पढ़ा जा चुका है, वह है ब्राह्मी, जो ई.पू. तीसरी सदी की लिपि है और अशोक के शिलालेखों में प्रयुक्त हुई है।

खुदाई के द्वारा भारत में सात लाख वर्ष पहले रहने वाले मानवों के द्वारा प्रयुक्त औज़ार तक मिले हैं। हड़प्पा के स्थानों की खुदाई से वहाँ की बस्तियों की योजना तथा लोगों के निवास स्थानों के स्वरूप का पता चलता है। साथ ही यह भी पता चलता है कि वे मिट्टी के किस प्रकार के बर्तनों, कैसे औज़ारों और उपकरणों और किस प्रकार के खाद्यानों का इस्तेमाल करते थे। दक्षिण भारत में कुछ व्यक्तियों को उनके मिटट्ी के बर्तनों, औज़ारों, हथियारों, और अन्य निजी वस्तुओं के साथ बड़े–बड़े भारी पत्थरों के नीचे दफ़नाया जाता था। इन कब्रों को महापाषाण (मेगालिथ) कहा जाता है। इनकी खुदाई से हमें तीसरी सदी ई.पू. के पहले दक्षिण भारत में रहने वाले लोगों के जीवन के बारे में पता चलता है।

खुदाई में मिले अवशेषों की प्राचीनता या उम्र का निर्धारण कई पद्धतियों से होता है। इनमें सबसे महत्त्वपूर्ण है रेडियो कार्बन या कार्बन–14 (सी–14) काल –निर्धारण पद्धति। कार्बन–14 एक विकिरणशील कार्बन है जो सभी प्रकार के जीवनधारियों में होता है। जीवनधारियों की म त्यु के बाद सभी विकिरणशील पदार्थों की तरह यह भी एक निश्चित समान गति से नष्ट होता है। किसी भी प्राचीन पदार्थ (लकड़ी या हड्डी) की उम्र का अंदाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि उसके सी–14 तत्त्वों का किस सीमा तक ह्रास हुआ है।

मौसम और वनस्पतियों के इतिहास का पता पौधों के अवशिष्ट अंशों और मुख्यतः पराग के विश्लेषण से लगता है। इस आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि कश्मीर और राजस्थान में 7000–6000 ई.पू. के लगभग भी खेती होती थी। धातु की बनी वस्तुओं की प्रक ति तथा उनके अवयवों का भी वैज्ञानिक विश्लेषण हो सकता है और इससे उन खदानों का भी पता चल सकता है जिनसे ये धातुएँ निकाली गई थीं। इस प्रकार धातु प्रौद्योगिकी (टेक्नॉलॉजी) के विकास के चरणों को भी पहचाना जा सकता है। भूवैज्ञानिक अध्ययन से प्रागैतिहासिक मानव के निवास स्थल की मिटट्ी, चट्टानों आदि के इतिहास का अनुमान हो जाता है। जब तक एक ओर मनुष्य और दूसरी ओर मिट्टी, पौधों और पशुओं के निरंतर पारस्परिक संपर्क को न समझा जाए तब तक मानव इतिहास को भी नहीं समझा जा सकता। पुरातात्त्विक अवशेषों के साथ ही भूवैज्ञानिक और प्राणिशास्त्रीय अध्ययनों का योग मानव इतिहास की पुनः रचना और विकास के लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करता है।

पाठगत प्रश्न 1.4

1. पुरातत्त्वश्शास्त्र की परिभाषा दीजिए।

2. सी–14 काल–निर्धारण की उपयोगिता समझाइए।

1.7 विदेशी यात्रियों के व त्तांत

स्थानीय साहित्य से प्राप्त जानकारी को विदेशियों द्वारा दिए गए ब्यौरों से और बढ़ाया जा सकता है। भारत में समय–समय पर ग्रीस, रोम और चीन से आगंतुक आते रहे – कोई राजदूत बनकर, कोई यात्री के रूप में तो कोई धर्म के अध्ययन के लिए। उन्होंने जो कुछ देखा, वे उसका व त्तांत छोड़ गए हैं। चंद्रगुप्त मौर्य के दरबार में मेगास्थनीज़ नामक ग्रीक राजदूत आया था जिसने 'इंडिका' नामक ग्रंथ लिखा। इसका मूल पाठ आज नहीं मिलता लेकिन इसके कुछ अंश परवर्ती ग्रीक लेखकों की रचनाओं में उद्धरणों के रूप में सुरक्षित रह गए हैं। इन्हें एकत्रित करके पढ़ा जाए तो हमें मौर्य काल की प्रशासन व्यवस्था ही नहीं, बल्कि सामाजिक वर्गों तथा आर्थिक गतिविधियों की भी बहुमूल्य जानकारी मिलती है।

पहली और दूसरी शताब्दी ईस्वी के ग्रीक और रोमन व त्तांतों में कई भारतीय बंदरगाहों का और उन वस्तुओं का उल्लेख हुआ है जिनका व्यापार भारत तथा रोमन साम्राज्य के बीच होता था। इस संदर्भ में ग्रीक में लिखे ग्रंथ 'एरिथ्रियन सी' और टॉलेमी के 'ज्यॉग्रफी' बहुमूल्य सामग्री उपलब्ध कराते हैं।

चीनी यात्रियों में फ़ाहियान और ह्वेनत्सांग का नाम लिया जा सकता है। दोनों बौद्ध थे और इस देश में बौद्ध तीर्थों के दर्शन तथा बौद्ध धर्म का अध्ययन करने आए थे। ईसा की पाँचवी शताब्दी में भारत में आए फ़ाहियान ने गुप्तकालीन भारत की स्थितियों का वर्णन किया है जबकि ह्वेनत्सांग ने सातवीं सदी में राजा हर्षवर्धन के काल का वैसा ही ब्यौरा दिया है। ह्वेनत्सांग ने उस समय नालंदा विश्वविद्यालय (बिहार) के उत्कर्ष का भी बड़े विस्तार से वर्णन किया है।

पाठगत प्रश्न 1.5

1. 'इंडिका' किसने लिखी?

   _____

2. भारत आने वाले चीनी यात्रियों के नाम बताइए।

   _____

3. नालंदा विश्वविद्यालय के उत्कर्ष का उल्लेख किस चीनी यात्री ने किया?

   _____

1.8 इतिहास की बदलती अवधारणाएँ

एक धारणा विशेषकर पश्चिमी विद्वानों द्वारा फैलाई गई कि प्राचीन काल के भारतीयों में इतिहास लेखन का कोई बोध नहीं था। मगर यह सही नहीं है। वास्तव में भारतीयों का इतिहास लेखन बोध पश्चिमी लोगों से भिन्न था। पश्चिम में घटनाओं को कालक्रम के अनुसार लिखा जाता था जबकि प्राचीन भारत की पद्धति इससे भिन्न थी। इसका उदाहरण हम पुराणों में देख सकते हैं जिनमें चार विभिन्न युगों – सतयुग, त्रेता, द्वापर



और कलियुग का उल्लेख है और हर युग के शासकों और राजवंशों की विस्त त सूची भी हमें मिलती है। इसके अतिरिक्त उत्कीर्ण लेखों की भी बड़ी संख्या मिली है जिनमें विभिन्न राजवंशों के राजाओं की वंशावलियों का और साथ ही उनकी उपलब्धियों का उल्लेख है। इससे पता चलता है कि भारतीयों को घटनाओं के समय (काल) और स्थान का बुनियादी बोध था।

प्राचीन भारत के इतिहास में आधुनिक खोज 1765 में आरंभ हुई जब बंगाल और बिहार ईस्ट इंडिया कंपनी के नियंत्रण में आ गए। हिंदू विधि व्यवस्था लागू करने के लिए भारतीय विधि के प्राचीन ग्रंथ 'मनुस्म ति' का 1776 में अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। अंग्रेजों ने प्राचीन (भारतीय) नियमों और आचारों को जानने–समझने के जो आरंभिक प्रयत्न किए थे, उन्हें सन् 1784 में एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल की स्थापना के साथ पूर्णता प्राप्त हुई तथा ऐसी अन्य कई सोसाइटियों के तत्त्वावधान में हिंदू धार्मिक तथा शास्त्रीय लेखन का अंग्रेजी में अनुवाद हुआ। इस के अध्ययन को सबसे अधिक बल जर्मनी में जन्मे विद्वान मैक्समूलर के प्रयत्नों से मिला। अंग्रेजों ने भी जल्द ही समझ लिया कि भारतीयों पर अच्छी तरह से शासन करने के लिए उनके धर्मग्रंथों और समाज–व्यवस्थाओं का ज्ञान आवश्यक है। ईसाई मिशनरियों ने भी भारतीयों का धर्मांतरण करने और ब्रिटिश शासन को सुद ढ़ करने के लिए भारतीय कानूनों और रीति–रिवाजों की अधिक जानकारी हासिल करने की ज़रूरत को महसूस किया था। भारतीय लेखन का अनुवाद करते हुए पश्चिमी विद्वानों ने जताया कि भारतीय परिवर्तन के प्रति अनिच्छुक होते हैं और अत्याचारी शासन के अभ्यस्त हो चुके हैं।

सन 1904 में विन्सेंट ए. स्मिथ ने 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडिया' लिखी। यह प्राचीन भारत का पहला व्यवस्थित इतिहास था। लेखक ने इसमें इतिहास को ब्रिटिश द ष्टिकोण से देखा है और भारत में ब्रिटिश शासन को आवश्यक ठहराने की चेष्टा की है। अंग्रेजों के तानाशाही शासन को बनाए रखने के लिए इसने अच्छी प्रचार साम्रगी का काम किया।

भारतीय विद्वान, विशेषकर वे जो पश्चिमी शिक्षा प्राप्त कर चुके थे, इस बात से बड़े परेशान थे कि अंग्रेज़ लोग भारतीय इतिहास को अपने नज़रिये से अपने हित के अनुसार तोड़–मरोड़कर पेश कर रहे थे। राष्ट्रीय भावना से प्रेरित होकर उनमें से कुछ ने इतिहास को फिर से लिखने का दायित्व उठाया ताकि भारतीय संस्कति के वास्तविक गौरव को दुनिया के सामने लाया जा सके । इस प्रकार के दो महत्वपूर्ण राष्ट्रीय इतिहासकार थे, आर. जी. भंडारकर (1837 - 1925) और वी. के. राजवाडे (1869 - 1926) जिन्होंने अनेक स्रोतों से सामग्री एकत्रित करके सामाजिक और राजनीतिक इतिहास की पुनः रचना की। ऐसा करते हुए उन्होंने बाल–विवाह और जाति–प्रथा जैसी कुछ सामाजिक बुराइयों पर प्रहार भी किए और विधवाओं के पुनर्विवाह की हिमायत भी की। पी. वी. काणे (1880-1972) का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। उन्होने 'हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र'शीर्षक एक विराट ग्रंथ की रचना की जिसमें प्राचीन भारतीय समाज के प्रमुख तत्वों पर प्रकाश डाला गया था।

इन भारतीय विद्वानों ने राजनीति संबंधी प्राचीन भारतीय ग्रंथों का गहराई से अध्ययन किया ताकि प्राचीन भारतीयों की प्रशासन संबंधी बुद्धि को प्रमाणित किया जा सके। डी. आर. भंडारकर (1875 -1950) पुरालेख विद्या के विद्वान थे। वे प्राचीन भारतीय सामाजिक संस्थाओं पर लिखे हुए ग्रंथ प्रकाशित किया करते थे। एच.सी. रायचौधुरी

(1892 - 1957) ने प्राचीन भारत के इतिहास का पुनः लेखन किया और इस क्रम में कई बिंदुओं पर वी. ए. स्मिथ की आलोचना की। आर. सी. मजूमदार (1888-1980) के लेखन में यह बात और भी मज़बूती से उभरती है। उन्होंने कई खंडों में 'हिस्ट्री एंड कल्चर ऑफ इंडियन पीपुल' का संपादन किया। 1960 तक राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित भारतीय विद्वान अपने–अपने क्षेत्रों के और भारत के इतिहास के गौरव को बढ़ा–चढ़ाकर दिखाते रहे। अंग्रेजों ने प्राचीन भारतीय शासकों के अत्याचारी और निरंकुश होने का जो मिथक गढ़ा था, उसे तोड़ने का श्रेय के.पी. जायसवाल (1881 -1937) को जाता है। उन्होंने प्राचीन भारत में गणतंत्र और स्वशासन के अस्तित्व के बारे में लिखा ।

स्वतंत्रता के बाद इतिहास लेखन में एक नई प्रव त्ति छाने लगी। अब राजनीतिक इतिहास से हटकर समाज और अर्थव्यवस्था के इतिहास पर अधिक बल दिया जाने लगा। इस प्रकार की पहली रचनाओं में से एक थी ए.एल. बाशम (1914-1986) लिखित 'द वॉण्डर दैट वॉज़ इंडिया'। डी.डी. कोसांबी (1907-1966) के ग्रंथ 'एन इंट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ इंडियन हिस्ट्री' में यह परिवर्तन और भी स्पष्ट हुआ है। उनका लेखन प्राचीन भारतीय इतिहास के सामाजिक–आर्थिक पक्ष को लेकर चला है। उनके पश्चात बहुत सारे इतिहासकारों ने इस प्रव त्ति का अनुसरण किया और अपने लेखन को सामाजिक, आर्थिक और सांस्क तिक इतिहास पर केंद्रित किया। उनका प्रमुख बल उत्पादन के साधनों और विभिन्न समूहों के व्यक्तियों के बीच के सामाजिक तथा आर्थिक संबंधों पर रहा।

पाठगत प्रश्न 1.6

1. स्वतंत्रता के बाद इतिहास लेखन में उभरी प्रव त्ति पर प्रकाश डालें ?

1.9 भारतीय इतिहास की विषयवस्तु

अतीत के संपूर्ण ज्ञान के लिए विद्यार्थियों को समाज के विभिन्न पक्षों के प्रति जागरूक करना आवश्यक है। इन पक्षों को 'विषयवस्तु' कहा जाता है। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, सांस्क तिक आदि विभिन्न क्षेत्रों में जो कुछ भी घटनाएँ हुईं उनके बारे में हमें जानकारी मिलती है। इन तमाम क्षेत्रों में हुई घटनाएँ परस्पर इतनी अधिक सम्बंधि ात होती हैं कि इनके बीच की सीमाएँ अक्सर टूट जाती हैं। उदाहरण के लिए, जब प्रारंभिक वैदिक युग का गोपालक समाज उत्तर वैदिक काल में बस्तियों में बसे क षक समाज में बदला तो परिणामस्वरूप राजनीतिक पद्धति में भी परिवर्तन आया। गोपालक समाज में राजा गोपति कहलाता था। क षि आधारित अर्थव्यवस्था के विकास के साथ वह भूपति कहलाने लगा। साथ ही अब युद्ध दूसरों की गायें छीनने के लिए नहीं बल्कि अधिक भूमि हासिल करने के लिए होने लगे। राजा क्रमशः अधिक शक्तिशाली होने लगे और राजा का पद वंश–परंपरा से मिलने लगा। तो हम देखते है कि विभिन्न क्षेत्रों के परिवर्तन एक–दूसरे से जुड़ जाते हैं। प्रायः उनका प्रभाव बड़ी–बड़ी घटनाओं पर पड़ता है। इस पाठ्य सामग्री में आपको कला, स्थापत्य, जाति व्यवस्था, विज्ञान और अर्थव्यवस्था,



प्रौद्योगिकी आदि के क्षेत्रों में हुए विकास की ही नहीं, विभिन्न धार्मिक पंथों और आचार–अनुष्ठानों की भी जानकारी मिलेगी।

पाठांत प्रश्न

1. प्राचीन भारत के धार्मिकेतर साहित्य पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए ?
2. इतिहास की पुनः रचना के स्रोत के रूप मे सिक्कों के विषय पर पाँच वाक्य लिखिए ?
3. अतीत को समझने में पुरातत्त्व हमारी किस प्रकार सहायता करता है ?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1.1

1. ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद
2. अष्टाध्यायी
3. जातक गौतम बुद्ध के पूर्व जन्मों की कथाओं का संग्रह है।
4. तमिल
5. उपनिषद् वेदों का अंतिम भाग है। उनमें आत्मा और परमात्मा के दर्शन की चर्चा की गई है।

1.2

1. पुरालेख विद्या
2. कवियों द्वारा राजाओं तथा अन्य आश्रयदाताओं की प्रशंसा में रचे गए अभिलेख
3. ब्राह्मी

1.3

1. मुद्राशास्त्र
2. चाँदी और ताँबा
3. कुषाण

1.4

1. अतीत को समझने के लिए उत्खनन (खुदाई) का विज्ञान
2. यह पुरातात्विक खुदाई में निकली हड्डियों और लकड़ी के काल (समय) का पता लगाने में सहायक होता है।



आपकी टिप्पणियाँ

1.5

1. मेगास्थनीज
2. फ़ाहियान, ह्वेनत्सांग
3. ह्वेनत्सांग

1.6

1. अनुभाग 1.9 के छठे अनुच्छेद को देखें

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें 1.3
2. देखें 1.5
3. देखें 1.6



2

भारत का भौगोलिक परिवेश और प्रागैतिहासिक सभ्यताएँ

किसी भी देश अथवा क्षेत्र के भूगोल की जानकारी के बिना हम वहाँ के इतिहास को नहीं समझ सकते। वहाँ के लोगों का इतिहास उस स्थान के भूगोल और वातावरण से प्रभावित होता है जिसमें वे निवास करते हैं। किसी भी स्थान के प्राक तिक भूगोल और परिवेशगत परिस्थितियों में वहाँ की जलवायु, मिटट्ी की किस्म, जल–संसाधन और अन्य स्थानीय विशेषताएँ सम्मिलित होती हैं। यही विशेषताएँ किसी क्षेत्र के परिवेश का स्वरूप, वहाँ के जनसमुदाय, खाद्य पदार्थ, मानव व्यवहार और खानपान का ढाँचा निर्धारित करती हैं। भारतीय उपमहाद्वीप के क्षेत्र विभिन्न भौगोलिक विशेषताओं से भरपूर हैं जिन्होंने यहाँ के इतिहास को अत्यधिक प्रभावित किया है।

भौगोलिक द ष्टि से विचार करें तो प्राचीन काल में भारतीय उप–महाद्वीप में वर्तमान भारत, बांगलादेश, नेपाल, भूटान और पाकिस्तान शामिल थे। भौगोलिक विविधताओं के आधार पर भारतीय उपमहाद्वीप को मुख्यतया निम्नलिखित क्षेत्रो में विभाजित किया जा सकता है:

(1) हिमालय क्षेत्र

(2) उत्तर भारत का नदी–तटीय मैदानी क्षेत्र

(3) प्रायद्वीपीय भारत

उद्देश्य

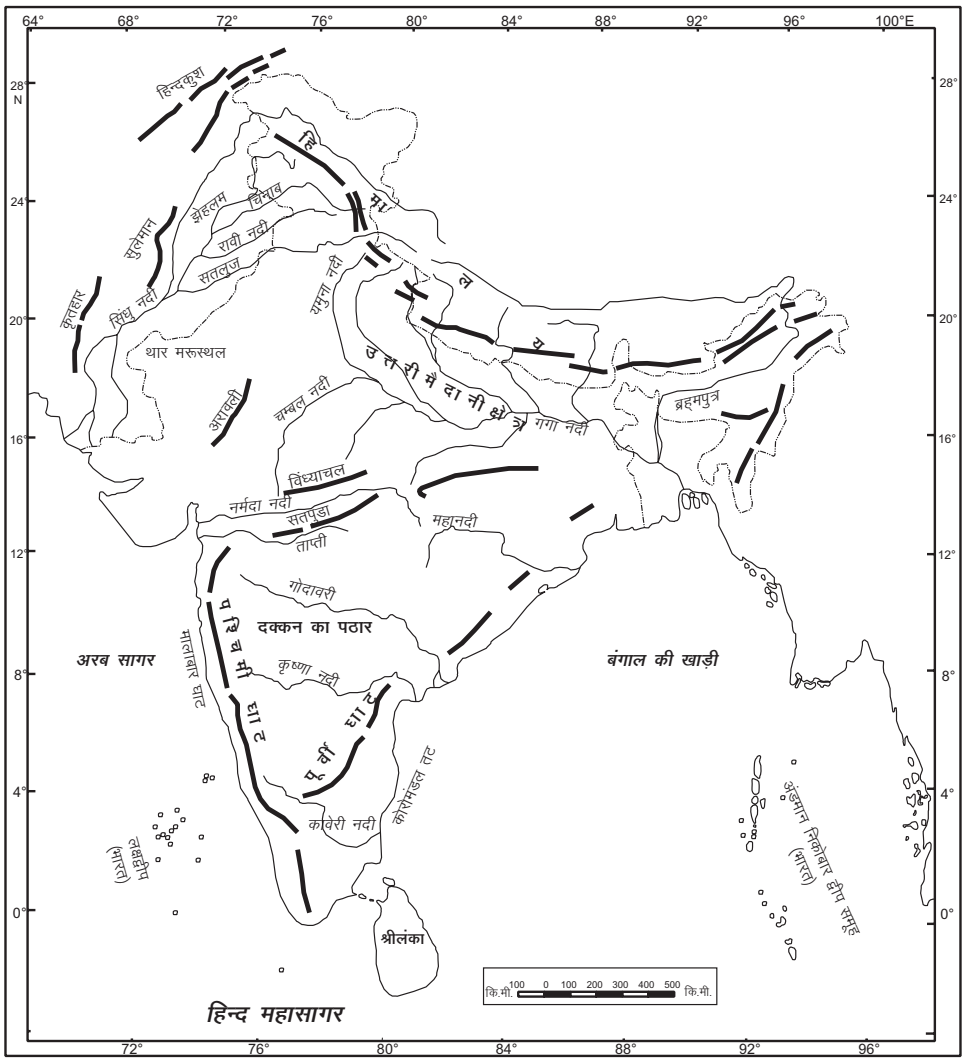
इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप:

- भारतीय उपमहाद्वीप के भौतिक विभाजन की व्याख्या कर सकेंगे;
- प्रत्येक क्षेत्र की भिन्न विशेषताओं की पहचान कर सकेंगे;
- कुछ भौगोलिक क्षेत्र अन्य क्षेत्रों से अधिक महत्त्वपूर्ण क्यों है, इसकी जानकारी प्राप्त दे सकेंगे;
- पर्यावरण का स्वरूप को समझा सकेंगे;
- विभिन्न क्षेत्रों की भौगाोलिक विशेषताओं और ऐतिहासिक विकास में परस्पर संबंध स्थापित कर सकेंगे;

- प्रागैतिहास, प्रागैतिहासिक सभ्यताएँ और लघु पाषाण (माइक्रोलियस) शब्दों को परिभाषित कर सकेंगे;
- पुरा पाषाण युग (पैलियालिथिक) में उपयोग किए गए औजारों के आधार पर आरम्भिक, मध्यम और उत्तर पुरा पाषाण युग में अन्तर कर सकेंगे;
- जलवायु और प्रयुक्त औजारों के आधार पर मध्य पाषाण–युग को संक्रमण काल के चरण के रूप में स्थापित कर सकेंगे;
- नव–पाषाण युग और इसकी प्रमुख विशेषताओं को परिभाषित कर सकेंगे; और
- प्रागैतिहासिक कलाओं का परिचय दे सकेंगे।

2.1 हिमालय क्षेत्र

हिमालय पर्वतीय क्षेत्र विश्व की विशालतम और उच्चतम पर्वतीय श्रंखलाएँ है। यह औसतन 2,400 कि.मी. लंबी है (देखे मानचित्र 2.1) इन श्रंखलाओं ने न सिर्फ



मानचित्र 2.1 विशाल उत्तरी पर्वत श्रं खलाए



हमलावारों को आने से रोका बल्कि उत्तर की ओर से आने वाली मानसूनी शीत लहर से भी हमारी सुरक्षा की। यह समुद्र से उठने वाली मानसूनी हवाओं को रोककर उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में वर्षा का कारण बनती है। तथापि कुछ ऐसे पर्वतीय दर्रे है, जिनसे गुजर कर हमलावर, व्यापारी और धर्मप्रचारक यहाँ पहुँचे यद्यपि यह जटिल क्षेत्र है। इन्होंने प्राचीन काल में मध्य एशिया, चीन और तिब्बत जैसे देशों से सांस्क तिक संबंध विकसित करने में सहायता की।

उत्तर–पश्चिमी दिशा में विभाजित, हिमालय श्रंखलाओं में भारतीय मैदानी क्षेत्रों को अफ़गानिस्तान के जरिए ईरान और मध्य एशिया को जोड़ने वाले मुख्य मार्ग शामिल हैं। इनमें गोमल, बोलन और ख़ैबर–पास शामिल हैं। ग्रीक, शक, कुषाण, हूण और अन्य विदेशी जनजातियाँ ने इन्हीं मार्गों के जरिये भारत में प्रवेश किया। इसी प्रकार बौद्ध धर्म और अन्य भारतीय विशिष्टताएँ इन्हीं पर्वतीय मार्गो के जरिये अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक पहुँची।

2.2 उत्तर भारत का नदी तटीय मैदानी क्षेत्र

हिमालय क्षेत्र ने भारत को सिंधु, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदियों से प्रभावित तीन नदी तंत्र उपलब्ध कराए हैं। इन नदियों ने अपने–अपने क्षेत्रों को उपजाऊ बनाने के साथ–साथ यहाँ के स्थायी निवासियों और हमलावरों को भी आकर्षित किया।

सिंधु नदी के मैदानी क्षेत्र में पंजाब और सिंध सम्मिलित हैं। सिंधु नदी की सहयोगी नदियों की सिंचाई ने इस भू–क्षेत्र को एक विस्त त उपजाऊ मैदान बना दिया है जिसके कारण यह क्षेत्र इस उप–महाद्वीप का खाद्य–केन्द्र बन गया है। इस कथन का यह कारण है, क्योंकि यह क्षेत्र गेहूँ की खेती के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण है। पंजाब की सामरिक स्थिति और सम द्धि ने प्राचीन काल से ही विदेशी हमलावरों को आकर्षित किया है। सिंध क्षेत्र में निचली सिंधु घाटी और डेल्टा शामिल हैं। सिंधु नदी के मैदान में ही इस उपमहाद्वीप में पहली बार हड़प्पा संस्क ति की शहरी सभ्यता के विकास की झाँकी देखने को मिली। (देखें पाठ 3)

गंगा की घाटी में सिंधु क्षेत्र की तुलना में अधिक वर्षा होती है और यह क्षेत्र अधिक नमी वाला है। गंगा के मैदानी क्षेत्रों को तीन उप–क्षेत्रों में बाँटा गया है। वे हैं– ऊपरी, मध्य और निम्न। गंगा नदी के ऊपरी क्षेत्र में उत्तर प्रदेश के पश्चिमी और दक्षिणी क्षेत्र शामिल हैं। प्राचीन काल से ही इस क्षेत्र में सांस्क तिक विकास दिखाई देता है। उत्तर वैदिक युग में यह आर्यों का निवास स्थान बना जब यहाँ रहकर उन्होंने खेती–बाड़ी की। मध्य गंगा का मैदानी क्षेत्र अधिक उपजाऊ है, उसमें पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार शामिल हैं। यह वह क्षेत्र है जहाँ छठी सदी ईसा पूर्व कौशल, काशी और मगध जैसे महाजनपद (प्रदेशीय प्रांत) क्षेत्र स्थापित हए। भारत के दो प्रमुख धर्मों, जैन और बौद्ध धर्म का जन्म भी इन्हीं क्षेत्रों में ही हुआ।

गंगा के निचले मैदानी क्षेत्रों में बंगाल क्षेत्र शामिल है। इसका उत्तरी क्षेत्र ब्रह्मपुत्र द्वारा सिंचित क्षेत्र है। भारी वर्षा से यहाँ घने जंगल और दलदली भूमि विकसित हो गई, जिसके परिणामस्वरूप शुरू–शुरू में यहाँ आवास विकसित करने में कठिनाइयाँ पैदा

हुई, लेकिन इसके तटीय क्षेत्र इस उप–महाद्वीप के अन्य क्षेत्रों और दक्षिण–पूर्वी एशियाई देशों के बीच भी, परस्पर संचार के महत्त्वपूर्ण मार्ग साबित हए। ताम्रलीप्ति अथवा तामलुक इस क्षेत्र का एक प्रमुख बन्दरगाह था जिसने व्यापारिक गतिविधियों में बहुत ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

पूर्वी भारत को महानदी और इसकी अन्य धाराओं द्वारा विकसित तटीय मैदानों के रूप में पहचाना जाता है। इस क्षेत्र के उपजाऊ तटीय क्षेत्र ने क षि, समाज और संस्क ति के विकास में बहुत योगदान दिया। नंद और मौर्य राजवंशों के काल में (चौथी सदी ईसा–पूर्व) यह गंगा सभ्यता के संपर्क में आया। 1000 ई. (ईसा पश्चात) के आसपास उड़ीसा की अपनी भाषायी और सांस्क तिक पहचान विकसित होनी शुरू हुई।

पश्चिमी भारतीय क्षेत्र में राजस्थान और गुजरात के आधुनिक प्रदेश सम्मिलित हैं। यह अपनी काली मिटट्ी की वजह से विशिष्ट पहचान रखता है जो कपास की खेती के लिए बहुत ही उपयोगी है। अर्ध–शुष्क क्षेत्रों से घिरा राजस्थान का थार मरुस्थल गंगा के मैदानी क्षेत्रों की तरह उपजाऊ नहीं था। इसलिए इस क्षेत्र को क षि के लिए अधिक उपयोगी नहीं समझा गया। तथापि, बाद में 8वीं सदी में, रहट यांत्रिकी की सिंचाई के विकास के बाद यहाँ अनेक प्रकार की आबादी का निवास शुरू हुआ। राजस्थान अनेक राजपूत वंशों का भी मूल निवास स्थल रहा है। गुजरात में साबरमती, माही, नर्मदा और ताप्ति नदियों के उपजाऊ मैदानों के कारण यहाँ बहुत ही सम द्धि आई। गुजरात के अत्यधिक लम्बे तटीय क्षेत्र ने भी अपने बन्दरगाहों के ज़रिये अन्य देशों से संबंध विकसित करने में भारी सहयोग दिया। इस क्षेत्र के बहुत ही महत्त्वपूर्ण समुद्रतटीय बन्दरगाह रहे हैं ¬गुकच्छ या भड़ूच (भरोच)।

2.3 प्रायद्वीपीय भारत

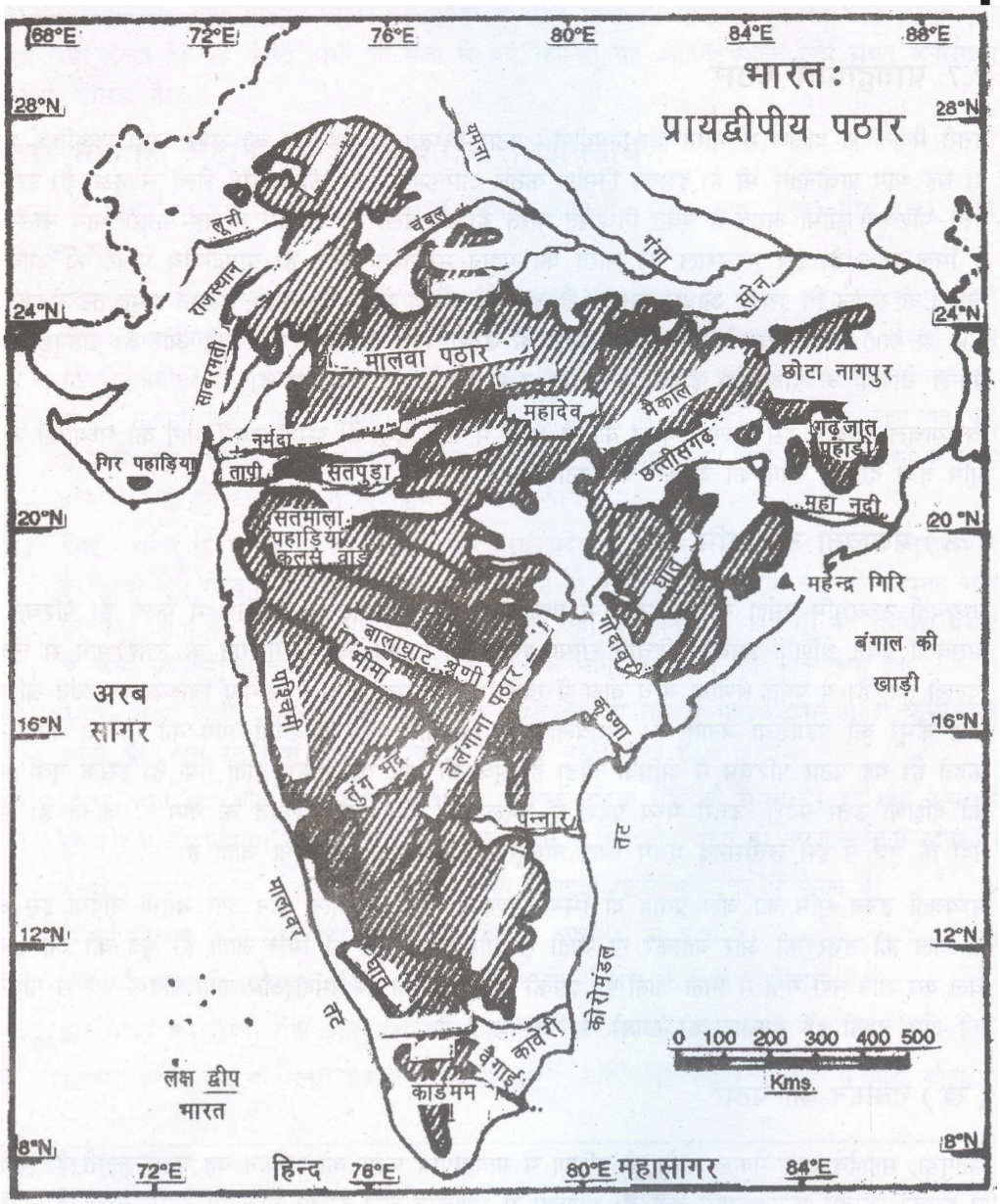
प्रायद्वीपीय भारत में दक्षिण का पठार और दक्षिण भारत के समुद्रतटीय मैदानी क्षेत्र शामिल हैं (मानचित्र 2.2)। यह पठार विंध्य पर्वत श ंखला के दक्षिण में स्थित है। इसे तीन मुख्य क्षेत्रों में विभाजित किया गया है। जिनमें अधिकतर महाराष्ट्र, आन्ध्र प्रदेश और कर्नाटक के आधुनिक प्रदेश हैं। तांबे और पत्थर के औजारों का उपयोग करने वाले लोगों के ताम्र–पाषाण–युगीन स्थल ज्यादातर यहीं पर पाए गए हैं। कर्नाटक में दक्षिण पश्चिमी दक्कन क्षेत्र शामिल है। यह जल और अन्य संसाधनों की उपलब्धता के लिए अधिक सुविधाजनक रहा है। चावल की खेती के कारण रायचूर दोआब क्षेत्र को, दक्षिण भारत का चावल–केन्द्र कहा जाता है। यह क्षेत्र विभिन्न बादशाहों में परस्पर युद्व का कारण रहा है। प्रागैतिहासिक काल से ही इन क्षेत्रों में लोगों का निवास रहा है।

पठार क्षेत्र में भी पश्चिमी और पूर्वी घाटों पर पहाड़ी भू–प्रदेश है। ये पहाड़ियां पश्चिमी तट पर पश्चिमी घाट के नज़दीक से बिल्कुल सीधी ऊँचाई की तरफ बढ़ते हुए, पूर्व दिशा में पठार की तरफ ढलान में चली जाती हैं। जुन्नार, कन्हेरी और कार्ले पर इनमें अनेक मार्ग (दर्रों) श्रेणियाँ स्थित हैं। यह मार्ग इस बन्दरगाह को पश्चिमी समुद्र तट को जोड़ने वाले व्यापारिक मार्गों के रूप में उपयुक्त रहे हैं। पश्चिमी घाटों के दक्षिणी किनारे



पालघाट दर्रा है जो कि पश्चिम समुद्री तट को कावेरी घाटी से जोड़ता है और जिसने प्राचीन काल से लेकर आज तक भारत–रोम (इंडो–रोम) व्यापार में अत्यधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। पूर्वी घाट धीरे–धीरे पठार और समुद्रतटीय मैदानी क्षेत्र में ढलते चले जाते हैं।

समुद्री तट मैदानी क्षेत्र में पूर्व में तमिलनाडु और पश्चिम में केरल प्रदेश आते हैं। तमिलनाडु में नदियाँ मौसमी होती हैं जिसके परिणामस्वरूप प्राचीन काल से ही इस क्षेत्र के लोग तालाबों द्वारा सिंचाई पर अधिक निर्भर रहे हैं। फिर भी, कावेरी डेल्टा क्षेत्र मानव के आकर्षण का प्रमुख केन्द्र रहा है। इसने चावल की खेती के लिए अवसर प्रदान किए और यहीं पर



मानचित्र 2.2 प्रायद्वीपीय भारत



आपकी टिप्पणियाँ

ही प्रागैतिहासिक काल की संगम सभ्यता का विकास दिखाई दिया। तमिल क्षेत्र में इन्होंने अपनी एक भिन्न भाषायी सांस्क तिक पहचान विकसित की।



पाठगत प्रश्न 2.1

1. भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर–पश्चिमी भाग में स्थित मुख्य पहाड़ी रास्तों के नाम लिखें?

2. उत्तर वैदिक काल में गंगा नदी के ऊपरी मैदानी क्षेत्र में कौन निवास करते थे?

3. मध्य गंगा मैदानी क्षेत्रों में किन दो धर्मों का जन्म हुआ?

4. किस प्रदेश में प्रागैतिहासिक काल से तालाबों द्वारा सिंचाई लोकप्रिय थी?

5. कावेरी डेल्टा किस फसल के लिए प्रसिद्ध है?

6. किन्हीं दो ऐसी जनजातियों का नाम लिखें जिन्होंने प्राचीन काल में उत्तर–पश्चिमी पहाड़ी मार्गों से भारत में प्रवेश किया?

7. किस क्षेत्र को इस महाद्वीप का खाद्य केन्द्र कहा जाता है?

2.4 पर्यावरण का प्रभाव

किसी भी क्षेत्र में लोगों के आवास की स्थिति इस बात पर निर्भर होती है कि उस स्थान के परिवेश (पर्यावरण) की स्थिति कैसी है। पर्यावरण हमारे आसपास की परिवेशीय स्थितियाँ या वातावरण होता है जिसमें विभिन्न प्रकार की जातियाँ (मानव, पशु और पेड़–पौधे) जीवित रहते और काम करते हैं। पर्यावरण में मुख्य रूप से किसी स्थान का वातावरण, भू–भाग, पेड़–पौधे और पशु (वनस्पति और प्राणिजगत आदि) शामिल होते हैं। आइए अब हम देखते हैं कि प्राचीन काल से लेकर आज तक पर्यावरण ने लोगों के जीवन और इतिहास को किस प्रकार प्रभावित किया है। लोगों के स्थायी आवास के लिए अर्ध–शुष्क क्षेत्र अधिक उपयोगी होते हैं। उदाहरण के लिए सिंध क्षेत्र ,जहाँ पर प्राचीन काल में इसी प्रकार का वातावरण रहा है, में सम द्ध हड़प्पा सभ्यता विकसित हुई, इसने शहरी आवास विकसित कराने में भी सहयोग दिया। इसी प्रकार बिहार में पाटलीपुत्र का विकास और मगध के महत्व को भी वहाँ की भौतिक विशेषताओं और पर्यावरण के मद्देनजर इनके परस्पर संबंधों के अनुरूप परिभाषित किया जा सकता है। पाटलीपुत्र गंगा, सोन और गंडक नदियों से घिरा था जिन्होंने इस स्थान को नैसर्गिक सुरक्षा प्रदान करने के



साथ–साथ आंतरिक संचार की सुविधा भी उपलब्ध करवाई। इसके अतिरिक्त उपजाऊ सिंध–गंगा के मैदानी क्षेत्रों ने यहाँ घनी आबादी के निवास बनाए रखने में सहायता की।

पर्यावरणीय परिस्थितियाँ किसी क्षेत्र के संभावित संसाधनों को भी निर्धारित करती हैं। वनांचल क्षेत्र लकड़ी का बड़ा स्रोत हो सकते हैं तो समुद्र तटीय क्षेत्र समुद्री उत्पादों के स्रोत हो सकते हैं। चटट्ानों से भरपूर पहाड़ी क्षेत्र, जिनमें खनिज अयस्क (कच्ची धातुएँ) भी शामिल हैं, धातु विज्ञान के विकास में सहायक हो सकता है, जैसे मगध लोहे की कच्ची खानों के नजदीक और छोटा नागपुर पठार के क्षेत्र में पत्थर के स्रोत (उद्गम स्थलों) और लकड़ी के क्षेत्र के नज़दीक स्थित था। इस वजह से मगध की स्थिति मजबूत हुई।

जीवन के रहन–सहन और आहार–व्यवहार भी पर्यावरणीय परिस्थितियों से प्रभावित होते हैं। नदियों के मैदानी क्षेत्रों में कछार वाली मिट्टी बाढ़ से प्रभावित होती है। मिट्टी की उपजाऊ शक्ति अधिक पैदावार में सहायक होती है। मिट्टी की किस्म किसी स्थान की फसल पद्धति को भी निर्धारित करती है। जैस, काली मिट्टी कपास की खेती करने के लिए बहुत अच्छी होती है। बढ़ते उत्पादन के फलस्वरूप वस्तुओं के परस्पर लेन–देन की गतिविधियों को बढ़ावा मिलता है जिससे बड़े पैमाने पर व्यापार विकसित होता है।

जलमार्ग की सुविधा से सम्पन्न नदियों वाले क्षेत्रों में विकसित व्यापार और संचार नेटवर्क देखने में आए हैं। जातक और अन्य उपलब्ध हमारी प्राचीन साहित्यिक पुस्तकों में प्राचीन भारत में अनेक जलमार्गों के होने के उल्लेख मिलते हैं। इसी प्रकार समुद्र तटीय जलमार्ग विभिन्न सुदूर देशों से व्यापार की प्रगति को बढ़ावा देते हैं। पहाड़ी मार्ग इस संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। उदाहरण के रूप में पालघाट दर्रा ने पूर्व और पश्चिमी समुद्री तट को आपस में जोड़ा और प्राचीन काल में भारत–रोम व्यापार करने में सहायता की।

इस प्रकार हम यह देखते हैं कि किसी क्षेत्र की भौतिक विशेषताएँ और पर्यावरण उस क्षेत्र की ऐतिहासिक प्रक्रिया का खुलासा करने में सहायक होते हैं। संसाधनों से सम द्ध क्षेत्र महत्त्वपूर्ण थे जबकि जहाँ इन संसाधनों की कमी रही, वहाँ कम विकास हुआ। यह समीक्षा बहुत महत्त्वपूर्ण है कि आवास पद्धति और जीविका का तरीका स्थानीय संसाधनों के उपयोग पर निर्भर होता है, जिसके परिणाम पर उस क्षेत्र का तकनीकी विकास निर्भर होता है।

पाठगत प्रश्न 2.2

1. पाटलिपुत्र (आधुनिक पटना) को प्राक तिक सुरक्षा प्रदान करने वाली नदियों के नाम लिखें?

   _____

2. मगध को लौह अयस्क और लकड़ी की आपूर्ति किस क्षेत्र से होती थी?

   _____



आपकी टिप्पणियाँ

3. कपास की खेती के लिए किस प्रकार की मिट्टी उत्तम है 'काली, लाल या रेतीली'?

4. कौन से प्रसिद्ध पहाड़ी मार्ग ने भारत के पूर्व और पश्चिमी समुद्र तट को परस्पर जोड़ा?

2.5 प्रागैतिहासिक सभ्यताएँ

प्रागैतिहासिक काल हमारे इतिहास की वह अवधि है जिसका कोई लिखित वर्णन उपलब्ध नहीं है। इसलिए उन सभ्यताओं के संबंध में हमारा ज्ञान केवल पुरातात्विक खुदाई में मिली सामग्री पर आधारित है। इस समय में रहने वाले प्राचीन मानव पत्थर के औजार बनाकर और पत्थर से बनाई गई चीजें उपयोग में लाते थे जो उन स्थलों के आसपास पाई गई है। यह औजार उन्हें शिकार करने और अपनी भूख शांत करने के लिए खाद्य सामग्री इकट्ठी करने में मदद करते थे। चूँकि इस समय में लोगों द्वारा सबसे पहले उपयोग किए गए औजार पत्थरों से बनाए गए थे, इसलिए मानव विकास के इस चरण को पाषाण युग के नाम से जाना जाता है।

इस अध्याय में हम प्रागैतिहासिक काल के व्यक्ति के शिकारी और भोजन संग्रह करने वाले व्यक्ति से भोजन उत्पादक में परिवर्तित होने के विकास क्रम के अवशेष खोजेंगे। यह परिवर्तन अचानक नहीं हुआ बल्कि इसमें हजारों साल का समय लगा।

2.6 पुरा पाषाण-युग (पैलियोलिथिक) सभ्यता

पैलियोलिथिक शब्द ग्रीक शब्द ''पैलियो'', से लिया गया है जिसका अर्थ है पुराना और ''लिथिक'' जिसका अर्थ है पत्थर से लिया गया है। इसलिए पैलियोलिथिक–युग का अर्थ है पुरा पाषाण–युग। पुरातत्वविदों ने इस सभ्यता का कालखंड दो मिलियन वर्ष पूर्व अत्यन्त नूतन युग (प्लिस्टोसीन एज) को बताया है। प्लिस्टोसीन काल इस युग का वह भौगोलिक काल है जब धरती की सतह बर्फ से ढँकी थी और मौसम इतना ठंडा था कि मनुष्य अथवा वनस्पति किसी का भी जीवित रहना संभव नहीं था। लेकिन उष्णकटिबंधीय क्षेत्र में, जहाँ बर्फ पिघल गई थी, मानव की प्रागैतिहासिक जातियाँ जीवित रह सकती थीं।

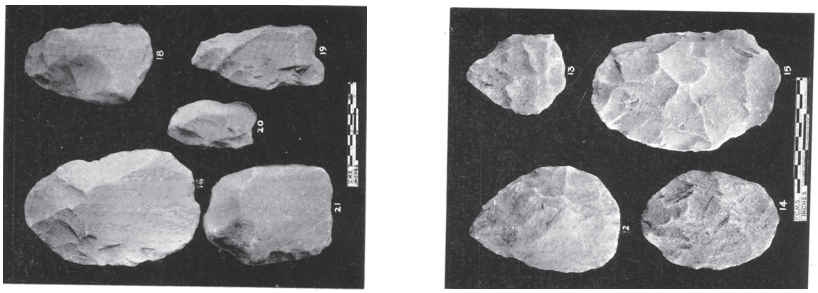
लोग पहाड़ी चट्टानों के आसपास रहते थे और अपनी सुरक्षा के लिए सिर्फ़ पत्थर से बने औजारों का उपयोग करते थे । फिर भी औजार बनाने के लिए प्रयुक्त की जाने वाली कच्ची सामग्री का चुनाव एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न होता था और इस सामग्री की उपलब्धता पर निर्भर होता था, जैसे महाराष्ट्र क्षेत्र में उपलब्ध बेसाल्ट और कर्नाटक क्षेत्र में पाया जाने वाला चूना–पत्थर । औजारों की किस्म और उन्हें गढ़ने की तकनीक की प्रगति की प्रक ति के आधार पर पैलियोलिथिक सभ्यताओं (पाषण युगीन सभ्यताओं) को तीन चरणों में विभाजित किया गया है। ये हैं :– (1) आरंभिक अथवा पुरा पाषाण युग (अर्ली पैलियोलिथिक), (2) मध्य पाषाण युग (मिडल पैलियोलिथिक), और (3) उन्नत या उच्च पाषाण युग।



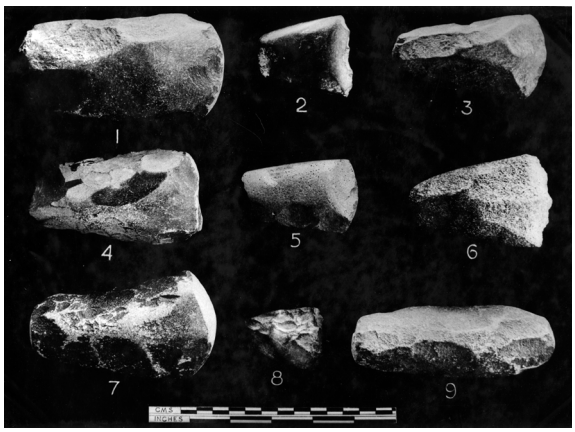
(क) पुरा पाषाण युग (पैलियोलिथिक) के औजार

पुरा पाषाण युग चरण में मुख्य औज़ार थे हाथ की कुल्हाड़ी, गंडासा और काटने के औजार। ये औज़ार बहुत बेढंगे और भारी थे और पत्थरों से बनाए गए थे. धीरे–धीरे नुकीले और हल्के औज़ार बनाए जाने लगे।

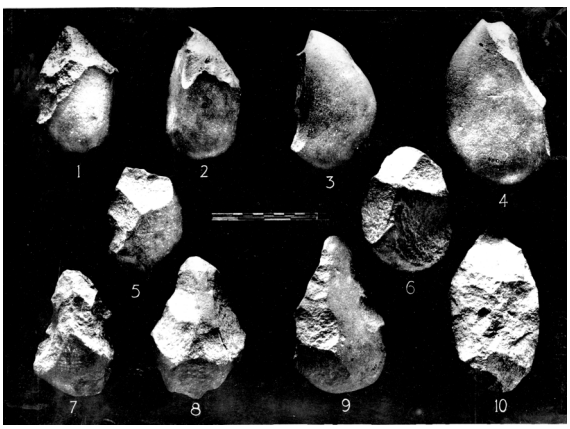
मध्य पाषाण युग के मुख्य औजार थे खप्पचियों की तरह के चपटे औजार (चित्र 2.2)। उत्तर पाषण युग में मूलतः तक्षणी (बूरीन) और कुरेदने वाले (स्क्रैपर्स) औजार होते थे (चित्र 2.3)।



चित्र 2.1 पुरा पाषाण युग के काटने वाले औजार और हाथ की कुल्हाड़ी



चित्र 2.2 मध्य पाषाण युग के काटने वाले औजार और हाथ की कुल्हाड़ी



चित्र 2.3 उत्तर पाषाण युग के काटने वाले औजार और हत्थे वाली कुल्हाड़ी



आपकी टिप्पणियाँ

आइए अब हम संक्षेप में ऊपर उल्लिखित कुछ औजारों की मुख्य विशेषताओं और उपयोगों पर विचार करते हैं। हत्थे वाली कुल्हाड़ी में हत्था चौड़ा है और काम करने वाला हिस्सा पतला। पेड़ काटने और जड़ों को खोदने के लिए इनका उपयोग होता था।

आरी का सिरा दो भागों में बँटा होता था और इनका उपयोग पेड़ों के तनों को चीरने के लिए होता था। गंडासा एक मुख्य औजार था जिसका काम करने का एक ही सिरा होता था और इसे काटने के काम के लिए उपयोग में लाया जाता था। बूरिन (तक्ष) पतली खपच्चियों या ब्लेडों की तरह होते थे । इनका उपयोग नरम पत्थरों, हड्डियों या चट्टानों पर खुदाई के काम के लिए किया जाता था। छीलने वाले औजार (स्क्रैपर्स) भी पतली खपचियों के बने होते थे। पेड़ों की छालें और पशुओं की चमड़ी प्राप्त करने के लिए तथा छीलने के काम के लिए इनका उपयोग किया जाता था।

(ख) पाषाण युगीन स्थानों का भौगोलिक विभाजन

पाषाण युगीन स्थलों के भौगोलिक विभाजन से यह संकेत मिलता है कि यह सभ्यता भारतीय उप–महाद्वीप की सम्पूर्ण लम्बाई और चौड़ाई के विस्तार में फैली हुई थी। उत्तर में कश्मीर घाटी और रावलपिंडी (अब पाकिस्तान में) की सोहन घाटी में से प्राचीन पत्थरों के औजार प्राप्त हुए हैं, राजस्थान में लूणी नदी के किनारे के स्थानों पर पत्थर के प्राचीन औजार प्राप्त हुए हैं। पश्चिमी भारत में भी साबरमती, माही और इनकी सहयोगी नदियों के स्थलों पर पत्थरों के प्राचीन औजार मिले हैं। महाराष्ट्र में इनके प्रमुख स्थान रहे हैं, गोदावरी की सहयोगी नदी नेवासा के पास और ताप्ती नदी तंत्र में पटन का पास, मध्य प्रदेश में भीमबेट्का (भोपाल के पास) और होशंगाबाद जिले में आदमगढ़ स्थित चटट्ानी आड़ में पुरा पाषाण–युग और मध्य प्राचीन युग से संबद्ध औजार प्राप्त हुए हैं।

उत्तर प्रदेश में, बेलन घाटी (मोटे तौर पर इलाहाबाद और वाराणसी के मध्य फैला क्षेत्र) इसका बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थल रही है। यहाँ मिले औजारों से प्राचीन पाषाण–युग से लेकर निरंतर आज तक मानवीय व्यवसाय के दर्शन होते हैं।

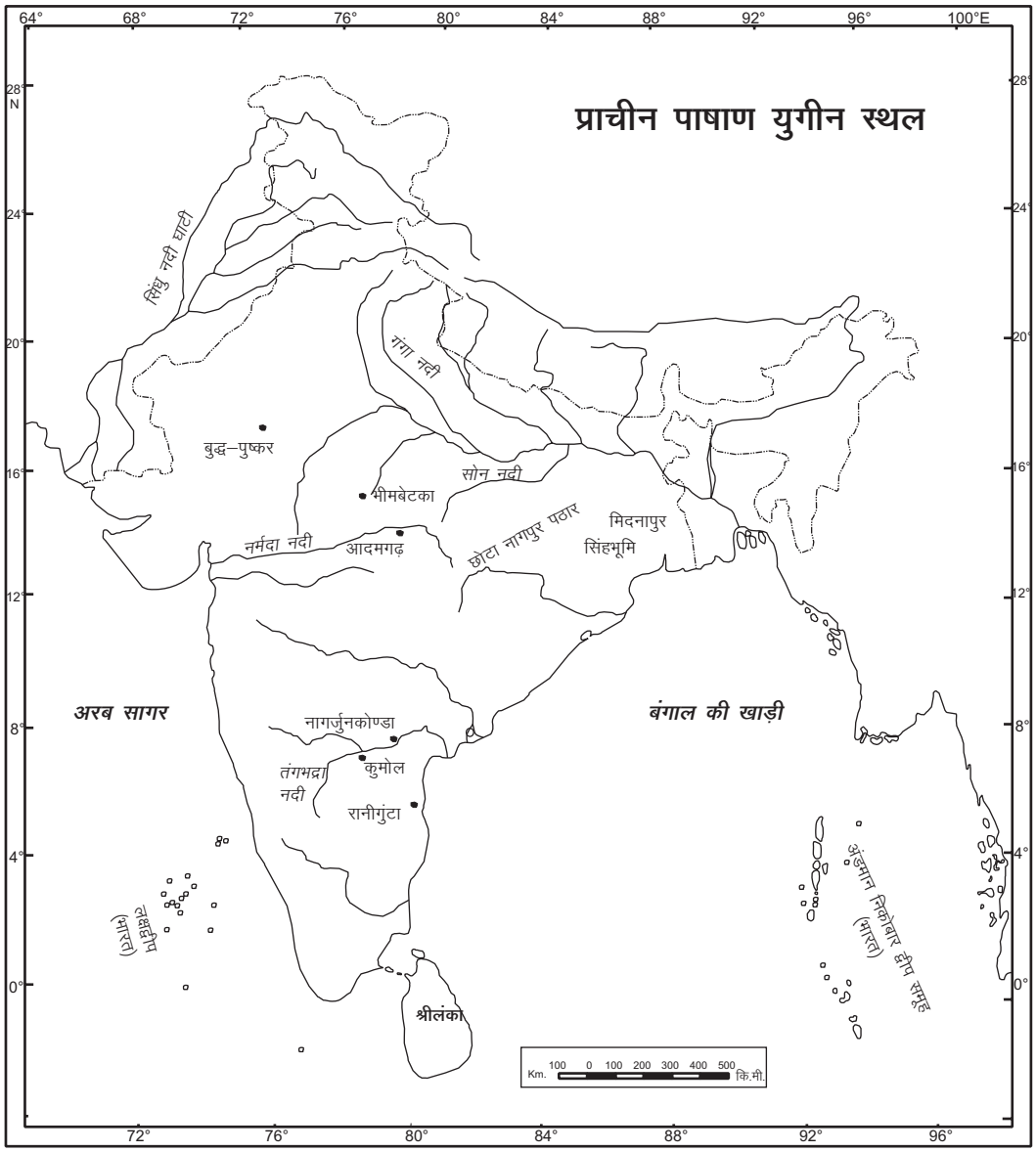
यदि पूर्व की ओर बढ़ें तो असम और मेघालय (गारो की पहाड़ियाँ) सहित वहाँ के आसपास के क्षेत्र से इतिहास–पूर्व काल की कलाक तियाँ पाई गई हैं। बंगाल, उड़ीसा और बिहार के अनेक स्थानों पर भी प्राचीन पाषाण युग के औजार प्राप्त हुए हैं। प्रायद्वीपीय भारत में आंध्र प्रदेश और कर्नाटक में प्राचीन पाषाण युग से संबद्ध औजार मिलने के समाचार मिले हैं। तमिलनाडु में इनका मुख्य स्थल रहा है अटिट्रमपक्कम जो चिंगलपुर क्षेत्र में स्थित है। प्राचीन पाषाण युग की जीविका का मुख्य आधार पशुओं का शिकार और फलों और उसकी जड़ों से खाद्य सामग्री संग हित करना रहा है। अन्य शब्दों में, उस युग के लोग मूलतः शिकारी और संग्रहकर्ता थे जिनका कोई स्थायी निवास नहीं होता था।

ऊपर की चर्चा के आधार पर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इतिहास–पूर्व काल के प्राचीन पाषाण युग की सभ्यताएँ लगभग संपूर्ण भारतीय उप–महाद्वीप में फैली हुई थीं।

औजारों के अध्ययन से संकेत मिलता है कि औजार बनाने की तकनीक में सतत विकास हुआ है जिसने बेहतर संसाधनों की उपलब्धता का मार्ग प्रशस्त किया है।

(ग) जीविकोपार्जन की पद्धति

प्राचीन पाषाण युग के लोगों में जीविकोपार्जन के लिए शिकार और खाद्य सामग्री संग हीत करने का चलन था। उन्होंने शिकार करने, कुतरने/काटने, खोदने और अन्य उद्देश्य के लिए पत्थरों के साधारण औजार बनाए। उन्होंने खानाबदोशों जैसा जीवन बिताया और जहाँ पर भी पानी की आसानी से उपलब्धता के साथ–साथ पेड़–पौधे और पशुओं जैसे संसाधन की बहुलता मिली, उन्हीं स्थानों पर स्थानांतरित होते रहे।



मानचित्र 2.3 प्राचीन पाषाण युगीन स्थल



आपकी टिप्पणियाँ

पाठगत प्रश्न 2.3

1. प्राचीन पाषाण युग में मानव के कौन से दो मुख्य व्यवसाय थे?

2. वे कौन से उद्देश्य थे, जिन्हें पूरा करने के लिए उन्होंने औजार बनाए?

3. पुरा पाषाण युग के मुख्य औजारों के नाम लिखें?
   (क)_____ (ख) _____ (ग) _____

2.7 मध्य पाषाण युगीन सभ्यताएँ (मैसोलिथिक संस्क ति)

मैसोलिथिक शब्द दो शब्दों के संयोजन से बना है, 'मैसो और लिथिक'। ग्रीक भाषा में 'मैसो' का अर्थ है मध्यम और 'लिथिक' का अर्थ है पत्थर, अर्थात इतिहास–पूर्व काल के मैसोलिथिक युग को मध्य पाषाण युग के रूप में पहचाना जाता है। यह समय प्राचीन पाषाण युग और नव पाषाण युग के मध्य का संक्रमणकालिक चरण रहा है। पुरातात्विक खोजों के आधार पर भारतीय महाद्वीप में मध्य पाषाण युग का प्रारम्भ 10,000 ईसा पूर्व के आसपास माना जाता है।

इस अवधि के दौरान तापमान में व द्धि दिखाई दी जिसके परिणामस्वरूप वातावरण में गरमी आई। इन परिवर्तनों की वजह से प्राचीन युग की और बर्फ पिघलती गई जिससे वनस्पति और प्राणी जगत में बहुत से परिवर्तन दिखाई दिए। यद्यपि मनुष्य अभी भी शिकारी और भोजन संग्रहकर्त्ता के स्तर पर ही था परन्तु अब उसने मछली पालन और जानवरों को पालना भी शुरू कर दिया था । भीमबेट्का (भोपाल के पास) में चटट्ानों पर इस काल में की गई चित्रकारी से यह संकेत मिलता है कि लोगों मे कलात्मक रुचि विकसित हो गई थी।

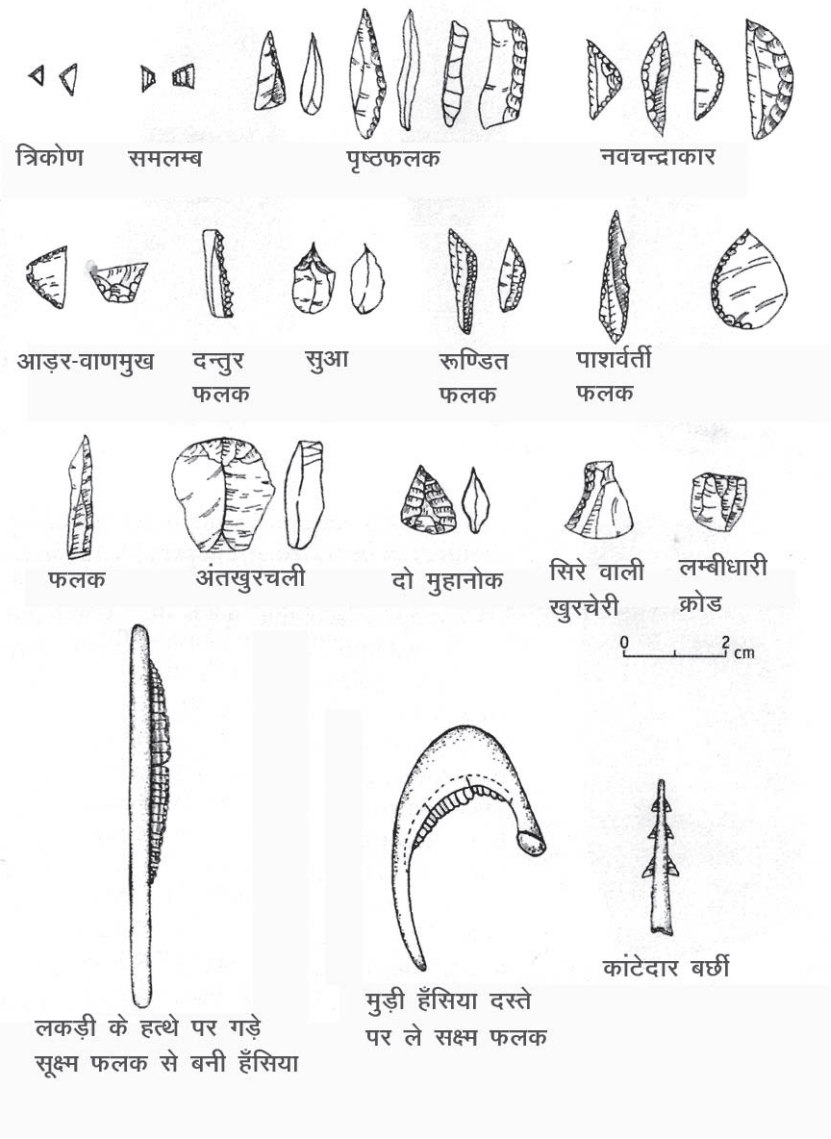
(क) मध्य पाषाण युग के औज़ार

मध्य पाषाण युग में प्रयुक्त किए जाने वाले पत्थर के सूक्ष्म औजार आकार में बहुत छोटे थे और इनकी लंबाई 1 से 8 सें.मी. के बीच अलग–अलग होती थी और इन्हें मोटे तौर पर छीले गए पतली खपचियों जैसे टुकड़ों से बनाए जाता था। इनमें से कुछ औजारों का आकार ज्यामितीय रूप में होता था, जैसे–त्रिकोण, अर्ध–चन्द्राकार और समलंबाकार। इनके औजारों को तीर या भाला बनाने के लिए बांधा या उनमें बैठाया जा सकता था।

(ख) मध्य पाषाण युगीन स्थलों का भौगोलिक विभाजन

मध्य पाषाण युगीन स्थलों के विभाजन से संकेत मिलता है कि मध्य पाषाण युगीन सभ्यताओं का आवास उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम संपूर्ण भारत में मिलता है। इस सभ्यता के प्रमुख स्थल हैं। गुजरात में लंघनाज (जिला मेहसागणा) मध्य प्रदेश में भीमबेट्का (भोपाल के पास), उत्तर प्रदेश में चोपाणी मांडो (इलाहाबाद के पास बेलन

घाटी); पश्चिम बंगाल में बीरभानपुर (जिला बर्दवान), कर्नाटक में संगनाकल्लु (जिला बेल्लारी), और दक्षिणी तमिलनाडु में तूतीकोरिन ।



चित्र 2.4 मध्य पाषाण युग के औजार

(ग) जीवन यापन की पद्धति

मध्य पाषाण युग के लोग अभी भी अपना जीविकोपार्जन शिकार और संग्रहण से करते थे, परन्तु अब शिकार के तरीके मे कुछ बदलाव आ गया था, जैसे अब प्राचीन पाषाण युग के बडे जानवरों के स्थान पर छोटे–छोटे पशुओं का भी शिकार होने लगा था, जिन पर धनुषबाण और तीरों से आक्रमण किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त मछलीपालन और पक्षियों के शिकार को भी महत्त्व दिया जाने लगा था। मवेशियों, भेड़ों, बकरी, भैंस, सूअर, चूहे, जंगली सांड, दरियाई घोड़े, कुत्ते, लोमड़ी, छिपकली, मेंढक और मछली आदि प्राणियों के अवशेष मध्य कालीन पाषाण युगीन स्थान से प्राप्त हुए हैं।

पाठगत प्रश्न 2.4

1. मध्य पाषाण युग के औजारों को किस नाम से पुकारा जाता है?

2. मध्य पाषाण युग में निर्मित कुछ औजारों के नाम लिखें?

3. मध्य पाषाण युग के किन्ही दो स्थानों का नाम लिखें?

2.8 नव पाषाण युग की सभ्यताएँ और खाद्य उत्पादों का आगमन

इतिहास–पूर्व अंतिम चरण को नव पाषाण युग का नाम दिया गया है। नियोलिथिक शब्द को ग्रीक शब्द 'नियो' जिसका अर्थ है नया, और 'लिथिक' जिसका अर्थ है, पत्थर से लिया गया है. अतः नियोलिथिक युग' का अर्थ है मानव सभ्यता का 'नव पाषाण युग'। भारतीय उप–महाद्वीप में इसका काल क्रम 8000 बी.सी. (ईसा पूर्व) माना जाता है। 'नियोलिथिक' शब्द का निर्माण जॉन लुब्बॉक द्वारा किया गया था। युग की प्रमुख विशेषता थी, नए किस्म के घिसाई और पॉलिश किए गए पत्थर के औजार। इस काल को पौधों की खेती और घरेलू पशुपालन की शुरुआत के रूप में भी पहचाना जाता है। इसकी वजह से जीवन में स्थायी आवास की शुरुआत हुई और गांवो में आबादी का विकास हुआ। नव पाषाण युग में निम्नलिखिति विशेषताएँ थीं:

(1) क षि संबंधी गतिविधियों का आरम्भ

(2) घरों में पशुपालन

(3) तीखे नुकीले पत्थर के औजारों की घिसाई और उन पर पॉलिश की शुरुआत

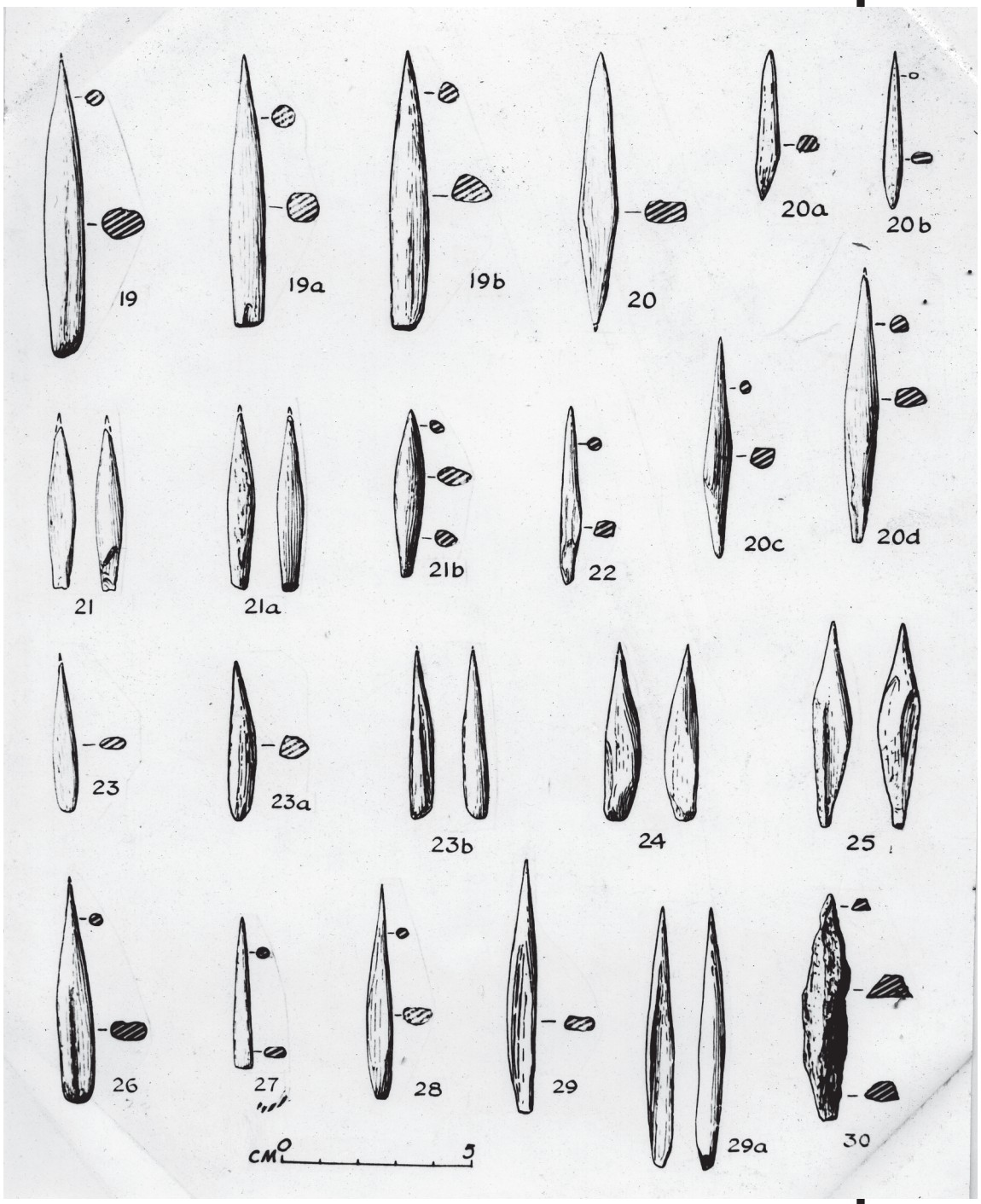
(4) पॉटरी (मिटट्ी के बर्तनों) का उपयोग

(क) नव-पाषाणिक क्रांति

व्यक्ति के जीवन में आए महत्त्वपूर्ण सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों के आधार पर कभी–कभी इस कालावधि को नव पाषाणिक क्रांति का नाम दिया जाता है। पैने और पॉलिश किए गए पत्थर के नए औजारों ने मिटट्ी की जुताई को आसान बना दिया था। इसके साथ–साथ पशुओं को घरों में रख कर पालने का चलन भी शुरू हो चुका था। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप खेतीबाड़ी करने वाली स्थायी जातियों की स्थापना हुई। नव पाषाण युग के चरण में पुनर्विकास ने मानव जीवन को अत्यधिक प्रभावित किया जिसके फलस्वरूप अनेक विद्वानों ने इन परिवर्तनों के महत्व को दर्शाने करने के लिए 'नव पाषाण कालीन क्रान्ति' (नियोलिथिक रिवॉल्यूशन) का नाम दिया। परन्तु अधिकतर विद्वानों का यह विश्वास है कि यद्यपि यह परिवर्तनश्अत्यंत महत्त्वपूर्ण है, तथापि इन परिवर्तनों को प्राचीन पाषाण युग और मध्य पाषाण युग के दौरान हुई पिछली प्रगति के संदर्भ में देख जाना चाहिए। अतः इसे 'सतत विकास' माना जाए न कि क्रान्ति।

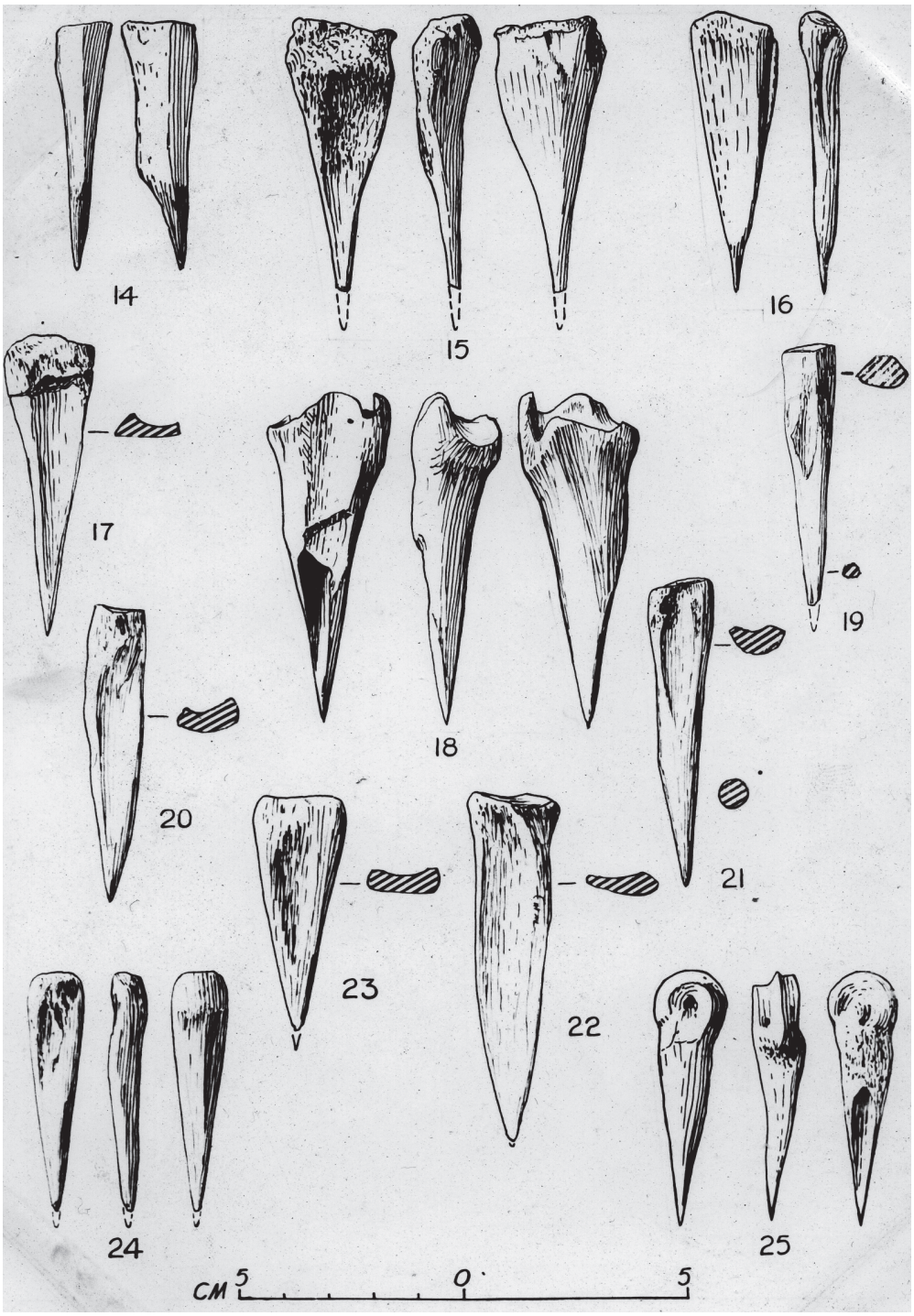
(ख) नव पाषाण युग के औजार

नव पाषाण युग के औजारों में चिकनी सतह वाले घिसाई के औजार और भली–भांति गोलाई किए हुए नपे तुले आकार के औजार शामिल हैं। घिसाई ने औज़ारें को पैना और पॉलिश किया गया आकार दिया और पॉलिश ने इन औजारों को पहले की अवधि के औज़ारों से अधिक प्रभावी बना दिया। (चित्र 2.5)



चित्र 2.5 नव पाषाण युग के औज़ार

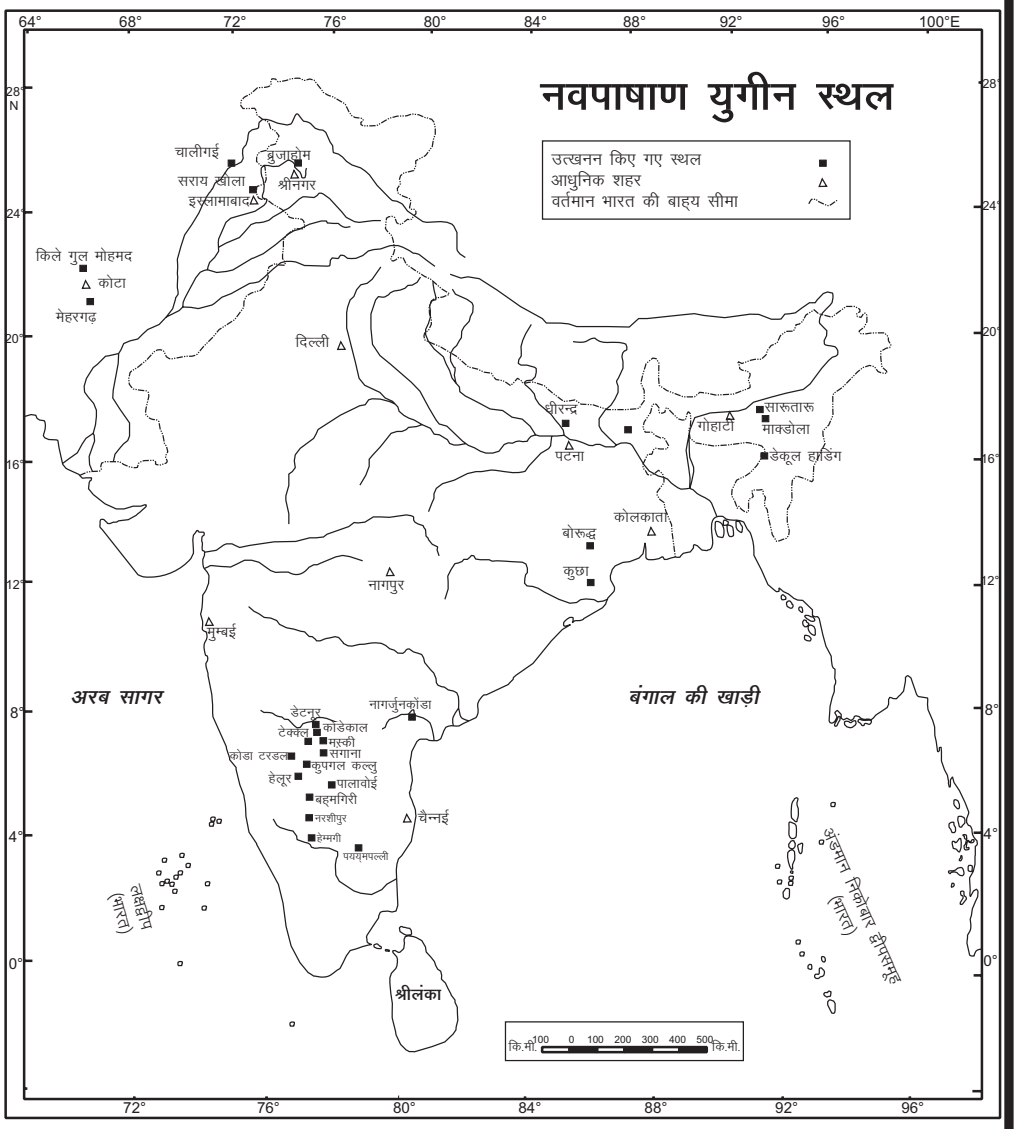
नव पाषाण युग के घिसाई किए गए औज़ारों में विभिन्न प्रकार की कुल्हाड़ियाँ शामिल है। जिन्हें 'सेल्ट' (आदिम कुल्हाड़ी) कहा जाता है। पत्थर के औजारों के अतिरिक्त इस युग के स्थानों पर विविध प्रकार की हड्डियों से बनी वस्तुएँ, जैसे सुइयाँ, स्क्रैपर, भूमि में छिद्र करने वाले औजार (बोरट) तीरों के अग्रभाग, पेंडेन्ट, चूड़ियाँ और कान के बुंदे आदि भी पाए गए हैं। (चित्र 2.6)



चित्र 2.6 बुर्जाहोम सें मिले नव पाषाण युग के छिद्रक औज़ार

(ग) नव पाषाण युगीन स्थलों का भौगोलिक विभाजन

भारतीय उपमहाद्वीप के लगभग संपूर्ण भू–भाग में नव पाषाण युगीन स्थलों का विस्तार मिलता है। उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र में बलूचिस्तान के कच्छी मैदानी क्षेत्र में मेहरगढ़ ऐसा ही एक उत्क ष्ट स्थल है। मेहरगढ़ में की गई खुदाई से नव पाषाण युग के लोगों द्वारा घरों के निर्माण के साक्ष्य सामने आए हैं। ये घर धूप में सुखाई गई ईंटों से बने थे। इन घरों में छोटे कमरों के विभाजन किए गए थे। गेहूँ, जौ और कपास की खेती किए जाने के प्रमाण इन स्थलों पर पाए गए। कश्मीर घाटी के प्रमुख स्थानों मे बुर्ज़होम और गुफ़्क्राल शामिल हैं। नव पाषाण युग की सभ्यता की महत्त्वपूर्ण विशेषताओं में से एक विशेषता इन जगहों पर रहने के लिए पाए गए गोलाकार या आयताकार गड्ढे। विंध्य पठार के किनारे के साथ–साथ उत्तर प्रदेश में इलाहाबाद के पास स्थित बेलन घाटी में भी अनेक स्थान हैं, जैसे–कोल्हडीहवा और महागारा।



मानचित्र 2.4 नवपाषाण युगीन स्थल

नव पाषाण युग के औजार (पत्थर और हडड़ी दोनों से बने), मिटट्ी के बर्तन, अन्य कलाक तियाँ, फूल–पौधों और प्राणियों के अवशेष इन स्थानों पर मिले हैं। बिहार और मध्य–गंगा घाटी क्षेत्र में चिरंड बहुत ही लोकप्रिय स्थल है। असाम, मेघालय और नागालैंड की पहाड़ियों पर भी अनेक स्थल मौजूद हैं। घिसाई की गई छोटी कुल्हाड़ियों के साथ–साथ मिटट्ी के बर्तन आदि इस क्षेत्र से मिले है। दक्षिण भारत में भीम, क ष्णा, तुंगभद्रा और कावेरी नदियों के किनारे–किनारे अनेक स्थलों/आबादी की खोज की गई है। कुछ प्रमुख स्थल हैं–संगनकल्लु, ब्रहमगिरि, मस्की, पिक्लीहाल, हल्लूर, कर्नाटक में उत्नुर, नागार्जुनकोंडा, आंध्र प्रदेश में बुडिहाल और तमिलनाडु में पल्ली। इन स्थानों पर खेती और पशुपालन के भी प्रमाण मिले हैं। रागी दक्षिण भारत के गांवों में उगाई गई सबसे प्राचीन फसल थी।

(घ) <u>जीविकोपार्जन की पद्धति</u>

नव पाषाण चरण में खेती–बाड़ी का आगमन बहुत ही महत्वपूर्ण परिवर्तन था। भौगोलिक परिस्थितियों के आधार पर इस काल के लोगों ने विविध प्रकार की फसलें उगाईं जैसे गेहूँ, जौ, दालें आदि। खेती–बाड़ी के काम ने पशुपालन को गति दी। शिकार अभी भी लोगों का मुख्य व्यवसाय था। लोगों द्वारा घरों में पाले गए पालतू जानवरों में भेड़, बकरी, गाय–भैंस आदि शामिल थे, तो शिकार किए गए जंगली जानवरों में थे सूअर, नीलगाय और चिंकारा आदि। नव पाषाण युग के लोगों द्वारा बनाए गए विविध प्रकार के पत्थर के औजारों के संबंध में पहले ही चर्चा की जा चुकी है। नियोलिथिक काल के लोगों ने मिट्टी के बर्तन भी पहले हाथ से बनाए और बाद में चाक पहिये पर बनने लगे और इन्हें बड़ी–बड़ी भटिट्यों में पकाया भी गया। अनाज भंडारण के लिए यह मुख्य साधन थे। संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि नियोलिथिक सभ्यताओं को विशेष रूप से शिकारी से संग्रहकर्त्ता और संग्रहकर्त्ता से पेड़–पौधों की खेती–बाड़ी करने और पशुपालन करने वाले लोगों में परिवर्तित होने वाले जनसमूह के रूप में पहचाना जाता है। पॉलिश किए गए नए औजारों ने मानवों के लिए खेती–बाड़ी, शिकार करने और अन्य गतिविधियों से संबद्ध कामों को आसान कर दिया था। इसके परिणामस्वस्प खाद्य संसाधनों की बहुतायत में उपलब्धता से जनसंख्या में भी बढ़ोतरी दर्ज की गई और बढ़ती आबादी के कारण गांवो की स्थायी आबादियों में भी व द्धि हुई। नव पाषाण युग की सभ्यताओं ने ऐसी परिस्थितियां पैदा कीं, जिनसे बाद के समय में शहरों और कस्बों के विकास में सहायता मिली।

पाठगत प्रश्न 2.5

1. नव पाषाण शब्द की रचना किसने की?

   _____

2. नव पाषाण सभ्यताओं की प्रमुख विशेषताएँ लिखें:

   (क) _____



(ख) _____

(ग) _____

(घ) _____

3. उत्तर पश्चिमी क्षेत्र के किसी नव पाषाण युगीन स्थल का नाम लिखें?

_____

2.9 प्रागैतिहासिक कला

चटट्ानों पर चित्रकारी मध्य पाषाण (मैसोलिथिक) युग के लोगों की बहुत ही महत्त्वपूर्ण और भिन्न विशेषता थी यद्यपि इसकी शुरुआत के संकेत उत्तर पुरापाषाण काल मे भी पाए गए हैं। यह चित्रकारी चटट्ानों में बनाए गए बसेरों की दीवारों पर बनाई गई थी और इनमें से अधिकतर चित्रकारी मध्य प्रदेश में भीमबेट्का में पाई गई हैं। इनसे मध्य पाषाण लोगों के सामाजिक और आर्थिक जीवन की झांकी मिलती है। चित्रकारी में पाए गए चित्रों का मुख्य विषय है–शिकार, मछली पकड़ना और भोजन एकत्र करना। जंगली सूअर, भैंस, बकरी, और नीलगाय आदि के चित्र आमतौर पर मिलते हैं (चित्र 2.7)। चटट्ानों पर की गई चित्रकारियों में बच्चे का जन्म, बच्चों का पालन–पोषण और दफ़नाये जाने की रीतियाँ पूरी किए जाने संबंधी चित्र भी दर्शाये गए हैं। एक समूह में रहकर शिकार करने के द श्यों से संकेत मिलता है कि मध्य पाषाण लोग समूह बनाकर रहते थे। अतः हम यह कह सकते हैं कि मध्य पाषाण कालिक समाज पुरापाषाण युग के लोगों सें अधिक स्थिर था यद्यपि शिकार–संग्रहण अभी भी इनका मुख्य पेशा था।



चित्र 2.7 प्रागैतिहासिक कला

पाठगत प्रश्न 2.6

1. चटट्ानों पर चित्रकारी अथवा भित्ति चित्र किस काल की भिन्न विशिष्ट कला थी?

2. मध्य प्रदेश के उन स्थानों के नाम लिखें जहाँ अधिकतम संख्या में चटट्ानों पर बनाई गई चित्रकारी पाई गई है?

3. प्रागैतिहासिक भित्ति–चित्र कला में किन विषयों पर मुख्य तौर पर प्रकाश डाला गया है, उनका उल्लेख करें?

आपने क्या सीखा

भारत के इतिहास पर इसकी भौगोलिक विशेषताओं और पर्यावरण की परिस्थितियों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। विभिन्न क्षेत्रों को उनकी भिन्न स्थलीय व रूपरेखीय विशेषताओं से पहचाना जाता है जो उन क्षेत्रों में हुए ऐतिहासिक परिवर्तनों को निर्धारित करती हैं। हिमालय ने हमें हमलावरों और कठोर शीत पवनों से सुरक्षा प्रदान की है। पहाड़ी दर्रों ने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्क तिक क्रियाकलापों के लिए मार्ग उपलब्ध कराए। उत्तर भारत की नदी के उपजाऊ मैदानी क्षेत्रों ने भरपूर क षि उत्पादों की पैदावार में सहायता की जिसके परिणामस्वरूप छठी सदी ईसा पूर्व में शक्तिशाली प्रदेशों के बनने में सहायता प्रदान की। पठार क्षेत्र समुद्रतटीय मैदानी क्षेत्र और प्राय– द्वीपीय भारत के पहाड़ी क्षेत्रों ने क षि से संबद्ध आबादियों की स्थापना और प्राचीन काल से ही विदेशों से संपर्क साधने के लिए प्रेरित किया। विभिन्न परिवेशीय परिस्थितियों और विविध संसाधनों की उपलब्धता के परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न सामाजिक–आर्थिक और सांस्क तिक संरचनाओं की स्थापना हुई।

प्रागैतिहासक काल से लेकर आज तक मानव सांस्क तिक विकास के अनेक चरणों से गुजरा है। पुरातत्विक स्रोतों ने इस महाद्वीप के विभिन्न भागों में अनेक स्थानों पर मानव के अस्तित्व और उनकी जीविकोपार्जन पद्धतियों का परचम दर्शाया है। पुरा पाषाण और मध्य पाषाण काल में वह शिकारी–संग्रहकर्ता था। नवपाषाण काल आते–आते उसने फसलों की खेती–बाड़ी करना और पशुपालन का काम सीखा। इन समय में वह मिट्टी के बर्तन बनाना भी सीख चुका था। इन विकासों के परिणामस्वरूप गांवों में आबादियों की स्थापनाएँ भी विकसित होने लगी थीं। विभिन्न समय में उपयोग किए जाने वाले पत्थर के औजारों में भी परिवर्तन आ गया था। पुरा पाषाण युग के कुंद औजारों ने नव–पाषाण युग तक आते–आते पैने और पॉलिश किए गए औजारों का रूप ले लिया था। मध्य पाषाण युग (मैसोलिथिक) युग को लघु–पाषाण नाम के अति सूक्ष्म पत्थर के औजारों के लिए विशेष रूप से पहचाना जाता है। अन्य शब्दों मे कहें तो पुरा पाषाण युग का शिकारी–संग्रहकर्त्ता मानव नव–पाषाण काल तक आते–आते क्रमिक खाद्य उत्पादक के रूप में विकसित हो गया था।



पाठांत प्रश्न

1. भारत के मानचित्र पर निम्नलिखित को चिह्नित करें?
   (1) हिमालयी श्रंखला
   (2) पूर्वी और पश्चिमी घाट
   (3) नदियाँ गंगा, नर्मदा, और कावेरी
   (4) अरिकमेडु (पांडिचेरी), तामलुक (ताम्रलिप्ति) और भड़ूच (भरोच)
   (5) पाटलीपुत्र (पटना) और पालघाट
   (6) आदमगड़, भीमबेट्का और कोलडिहवा
2. हिमालय क्षेत्र और प्रायद्वीपीय भारत के संदर्भ में भारत की भौगोलिक विशेषताओं के भारत के इतिहास पर पड़े प्रभाव का आकलन करें।
3. किसी क्षेत्र की परिवेशीय परिस्थितियाँ वहाँ के संभावित संसाधनों का निर्धारण कैसे करती हैं? उदाहरण देकर समझाएँ?
4. पुरा पाषाण युग के दौरान उपयोग किए जाने वाले औजारों की प्रमुख विशेषताएँ और उपयोग लिखें?
5. मध्य पाषाण काल में हुए जलवायु के परिवर्तनों ने शिकार की पद्धतियों में कैसे परिवर्तन संभव किया?
6. नव पाषाण युग के भौगोलिक विभाजन का उल्लेख करें?
7. नव पाषाण काल के लोगों के जीवन की एक झांकी प्रस्तुत करें?
8. कुछ विद्वान इस काल खण्ड के लिए 'नव पाषाणिक क्रांति' शब्द का उपयोग क्यों करते हैं?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

2.1

1. गोमल पास (दर्रा), बोलन पास (दर्रा), और खैबर पास (दर्रा)
2. आर्य लोग
3. (1) जैन धर्म (2) बौद्ध धर्म
4. तमिलनाडु
5. चावल
6. कुषाण और हूण
7. सिंधु नदी के मैदानों में पंजाब और सिंध

2.2

1. गंगा, सोन और गंडक
2. छोटा नागपुर
3. काली
4. पालघाट दर्रा (मार्ग)

2.3

1. शिकार, संग्रहण
2. शिकार, कटाई, खुदाई और अन्य प्रयोजन
3. (क) हत्था कुल्हाड़ी (ख) विदारक (क्लीवर) (ग) कर्न्तक (चॉपर, गंडासा)

2.4

1. सूक्ष्म–पाषाण (पत्थर के सूक्ष्म औजार)
2. त्रिकोण, अर्धचंद्रकार और टिपेज़िज (समलंब)
3. भीमबेट्का और चौपाणी मांडो

2.5

1. जॉन लुब्बॉक
2. (क) क षि संबंधी गतिविधियो का प्रारंभ

   (ख) पशुओं का घरों में पालन

   (ग) पत्थर के औजारों की घिसाई और पॉलिशिंग

   (घ) मिटट्ी के बर्तनों का उपयोग
3. मेहरगढ़

2.6

1. मध्य पाषाण युग
2. भीमबेट्का
3. शिकार, मछली पकड़ना, भोजन एकत्र करना, बच्चे का जन्म, बच्चे का पालन–पोषण और दफ़नाने की रीति।

<u>पाठांत प्रश्नों के संकेत</u>

1. मानचित्र 2.1 और 2.2 देखें
2. अनुच्छेद 2.1 और 2.3 देखें
3. अनुच्छेद 2.4 देखें



4. अनुच्छेद 2.6 (क) देखें
5. अनुच्छेद 2.7 (ग) देखें
6. अनुच्छेद 2.8 (ग) देखें
7. अनुच्छेद 2.8 (घ) देखें
8. अनुच्छेद 2.8 (क) देखें

शब्दावली

आर्य	–	घुमन्तू मानवजाति जो मध्य एशिया से आई।
बट्ट एंड	–	किसी औजार का चौड़ा सिरा जो आमतौर पर हत्थे के काम आता है।
सेल्ट	–	एक प्रकार की पत्थर की कुल्हाड़ी जिसे नियोलिथिक काल में बनाए गया ।
जीव–जन्तु	–	किसी भी क्षेत्र का प्राणी–जीवन
पेड़–पौधे	–	किसी भी क्षेत्र का वानस्पतिक जीवन
जातक	–	बौद्ध काल की पुस्तकें जिनमे बुद्ध के जीवन से संबंधित कथाएँ हैं।
मध्य पाषाण	–	मध्य पाषाण युग में लोगों द्वारा उपयोग में लाये जाने वाले बहुत ही सूक्ष्म और पैने औज़ार
दर्रा	–	पहाड़ों के मध्य बने खाली स्थान/मार्ग जो पहाड़ के दूसरी तरफ पहुचँने की सुविधा प्रदान करते हैं।
प्रागैतिहासिक	–	हमारे इतिहास का वह कालखण्ड जिसका कोई लिखित आलेख नहीं है।



3

हड़प्पा सभ्यता

पिछले पाठ में आपने सीखा कि प्रागैतिहासिक काल में लोग पत्थर से बने औज़ारों और शस्त्रों का उपयोग करते थे। इसके बाद लोगों ने धातुओं का उपयोग प्रारंभ कर दिया था। तांबा ऐसी पहली धातु थी, जिसका उपयोग व्यक्ति ने औजार बनाने के लिए किया। धीरे–धीरे भारतीय उप–महाद्वीप में अनेक ऐसी सभ्यताओं का विकास हुआ, जो पत्थर और तांबे के औजारों के उपयोग पर आधारित थीं। वे इस प्रयोजन के लिए कांसे का उपयोग भी करती थीं, जो तांबे और रांगे (टिन) का मिश्रण था। इतिहास के इस चरण को ताम्र–पाषाण (चाल्कोलिथिक) युग के नाम से जाना जाता है। (चाल्को यानी तांबा और लिथिक यानी पत्थर) भारत में ताम्र–पाषाण काल का सर्वाधिक उदीयमान अध्याय है, हड़प्पा की सभ्यता, जिसे सिंधु घाटी की सभ्यता भी कहते हैं।

हड़प्पा की सभ्यता की खोज 1920-22 में की गई थी, जब इसके दो बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थलों पर खुदाई की गई थी। ये स्थान थे, रावी नदी के किनारे बसा हड़प्पा और सिंधु नदी के किनारे बसा मोहनजोदड़ो। पहले स्थान की खुदाई की गई थी डी.आर. साहनी द्वारा और दूसरे की आर.डी. बनर्जी द्वारा। पुरातात्विक खोजों के आधार पर हड़प्पा की सभ्यता को 2600 ईसा पूर्व–1900 ईसा पूर्व के कालखंड के बीच माना गया है और ये विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। कई बार इसे 'सिंधु घाटी सभ्यता' भी कहा जाता है, क्योंकि प्रारंभ में इसकी जितनी भी बस्तिंः की खोज हुई, वे सभी सिंधु नदी या इसकी सहयोगी नदियों के पास या इसके आसपास के मैदानों में स्थित थीं। परन्तु आजकल इसे हड़प्पा सभ्यता कहा जाता है, क्योंकि हड़प्पा ही वह पहला स्थान था, जिससे इस सभ्यता का अस्तित्व प्रकाश में आया। इसके अतिरिक्त, हाल ही के पुरातात्विक अन्वेषणों से ये संकेत मिलता है कि इस सभ्यता का विस्तार सिंधु नदी के पूरे के सुदूर विस्तार तक फैला हुआ था। इसीलिए, यैा बेहतर है कि इस सभ्यता को हम हड़प्पा सभ्यता के नाम से ही पुकारें। ये भारत की प्रथम नागरिक सभ्यता है और विश्व की अन्य प्राचीन सभ्यताओं, जैसे मैसोपोटामिया और मिस्र की समकालीन है। हड़प्पाकालीन लोगों के जीवन और सभ्यता के संबंध में हमारी जानकारी सिर्फ पुरातात्विक खुदाइयों पर ही आधारित है, क्योंकि उस काल की लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है।

हड़प्पा सभ्यता का उद्‌भव अचानक नहीं हुआ। इसका विकास धीरे–धीरे नवपाषाण युग की ग्रामीण सभ्यता से हुआ। ऐसा विश्वास किया जाता है कि सिंधु नदी के उपजाऊ मैदानी क्षेत्र से अधिकतम उपज लेने के लिए बेहतर तकनीकों के उपयोग के परिणामस्वरुप



आपकी टिप्पणियाँ

क षि उत्पादन में व द्धि हुई होगी। इसके फलस्वरुप इतनी बढ़ती फसल पैदा हुई होगी, जिससे गैर–क षि आबादी के लोगों और प्रशासकीय वर्ग इत्यादि के लिए, खाद्यों और उनके जीवन–यापन के लिए उत्पादन उपलब्ध हुआ होगा। इससे दूर–दराज के प्रदेशों के साथ विनिमय और व्यापारिक संबंध बढ़ाने में भी सहायता मिली होगी। इससे हड़प्पा के लोगों में सम द्धि आई होगी और वे शहर बसाने के योग्य बने होंगे।

2000 ईसा पूर्व के आसपास इस उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में अनेक प्रादेशिक सभ्यताओं का विकास हुआ और ये भी पत्थर और तांबे के औजारों के उपयोग पर ही आधारित थीं। ये ताम्र पाषाण सभ्यताएं, जो हड़प्पा सभ्यता के क्षेत्र से बाहर थीं, अधिक सम द्ध और फली–फूलीं नहीं थी। बुनियादी तौर पर ये सभ्यताएं ग्रामीण प्रक ति की थीं। कालक्रमानुसार इन सभ्यताओं के उद्भव और विकास का काल 2000 ई.पू.–700 ई.पू. के आसपास माना गया है। ये सभ्यताएं पश्चिमी और मध्य भारत में मिलीं और इन्हें गैर–हड़प्पा ताम्र पाषाण (चाल्कोलिथिक) सभ्यता के रुप में उल्लिखित किया गया है।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- हड़प्पा सभ्यता के उद्भव और विस्तार के बारे मे विस्त त विवरण दे सकेंगे;
- हड़प्पाकालीन नगर–योजना का वर्णन कर सकेंगे;
- हड़प्पा काल के सामाजिक और आर्थिक जीवन को समझा सकेंगे;
- हड़प्पा के लोगों के धार्मिक विश्वासों पर विचार–विमर्श कर सकेंगे;
- ये सभ्यता लुप्त कैसे और क्यों हुई, इसकी विस्त त व्याख्या कर सकेंगे;
- हड़प्पा के क्षेत्र के बाहर, ताम्र पाषाण समुदायों की पहचान कर सकेंगे, और
- इन ताम्र पाषाण समुदायों की आर्थिक स्थिति और रहन–सहन की पद्धति का वर्णन कर सकेंगे।

3.1 उद्भव और विस्तार

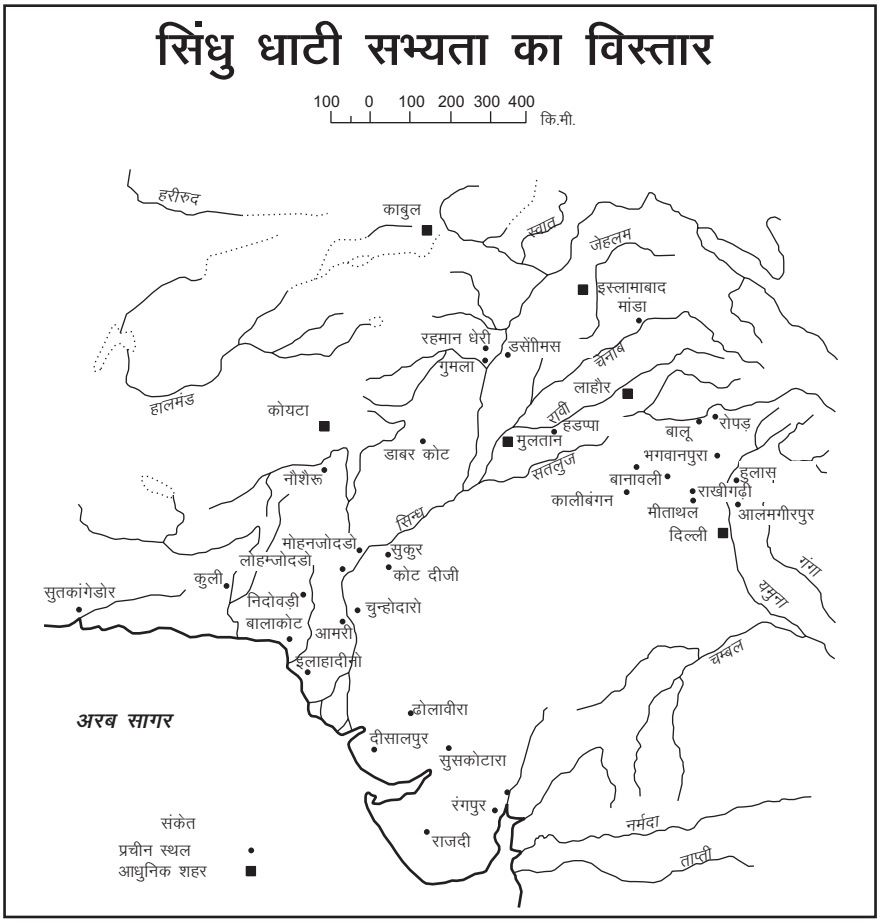
पुरातात्विक अवशेषों से पता चलता है कि हड़प्पा सभ्यता से पहले लोग छोटे–छोटे गांवों में रहते थे। समय बीतने के साथ–साथ छोटे कस्बे बने और इन कस्बों से हड़प्पा काल के दौरान पूर्ण विकसित शहरों का विकास हुआ। वास्तव में हड़प्पा काल की संपूर्ण अवधि को तीन चरणों में बांटा गया है (1) प्रारंभिक हड़प्पा काल (3500 ई.पू. से 2600 ई.पू.)। इस काल की विशेषता का उल्लेख मिलता है, इसके मिट्टी से बने ढांचों, प्रारंभिक व्यापार, कला और शिल्पों इत्यादि में, (2) परिपक्व हड़प्पा काल (2600 ई.पू.–1900 ई.पू.) यह वह चरण है, जब हमें भट्ठे में पकी ईंटों से बने ढांचों वाले भली–भांति विकसित शहर, स्वदेशी और विदेशी व्यापार और विविध प्रकार के शिल्प देखने को मिले और (3) उत्तर हड़प्पा काल (1900 ई.पू.–1400 ई.पू.)– यह पतन का काल था, जिसके दौरान

शहर उजड़ने लगे थे और व्यापार समाप्त हो गया था, जिससे धीरे–धीरे शहरीकरण की मुख्य विशिष्टताएं लुप्त होती गईं।

आइए सर्वप्रथम हम, हड़प्पा सभ्यता के भौगोलिक विस्तार का जायजा लेते हैं।

पुरातात्विक खुदाइयों से पता चला है कि यह सभ्यता विस्त त क्षेत्र में फैली हुई थी, जिसमें न सिर्फ भारत के आधुनिक राज्य, जैसे–राजस्थान, पंजाब, हरियाणा, गुजरात, महाराष्ट्र, पश्चिमी उत्तर प्रदेश सम्मिलित थे, बल्कि पाकिस्तान और अफगानिस्तान के कुछ भाग भी शामिल थे। इस सभ्यता के कुछ मुख्य स्थान हैं – जम्मू और कश्मीर में मांडा; अफगानिस्तान में शॉरतुलई; पश्चिमी पंजाब (पाकिस्तान) में हड़प्पा; सिंध में मोहनजोदड़ो और चन्हुदड़ो; राजस्थान में कालीबंगन; गुजरात में लोथल और धौलावीरा; हरियाणा में बनवाली और राखीगढ़ी; महाराष्ट्र में दाइमाबाद, जबकि मकरान तट (पाकिस्तान–ईरान की सीमा के पास) पर स्थित सुतकागेन्दारे हड़प्पा सभ्यता सुदूर पश्चिमी छोर और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में आलमग़ीर इसकी सुदूर पूर्वी सीमा है।

आबादियों के स्थान के संकेत मिलते हैं कि हड़प्पा कालीबंगन (घग्गर–हाकरा नदी के किनारे पर, जिसे आम तौर पर लुप्त नदी सरस्वती के साथ जोड़ा जाता है), मोहनजोदड़ो



मानचित्र 3.1 सिंधु घाटी सभ्यता का विस्तार

की धुरी, इस सभ्यता का प्रमुख स्थल था और अधिकांश आबादी इसी क्षेत्र में स्थित थी। मिट्टी की किस्म, वातावरण और रहन–सहन की पद्धति के परिप्रेक्ष्य में इस क्षेत्र की कुछ सामान्य विशेषताएं थीं। यहां की भूमि समतल थी और सिंचाई और जल आपूर्ति के लिए मानसून और हिमालयी नदियों पर निर्भर थी। यहां की विशिष्ट भौगोलिक विशेषताएं और क षि पशुपालन संबंधी अर्थव्यवस्था इस क्षेत्र के प्रमुख लक्षण थे।

हड़प्पा की शहरी आबादी के अतिरिक्त अनेक ऐसे स्थल थे, जहां पर पाषाण युग के शिकारी–संग्रहकर्ता या घुमन्तु चरवाहों वाले प्रागैतिहासिक काल के समुदायों के लोग भी साथ–साथ रहते थे। कुछ स्थल बंदरगाहों या व्यापारिक स्थलों के रुप में काम में लाए जाते थे। ध्यान देने योग्य बात है कि शहरीकरण को निर्धारित करने के प्रमुख कारक व्यापार, कर प्रणाली और लिपि इत्यादि होते हैं। शहरी सभ्यता कहलाए जाने के लिए हड़प्पा सभ्यता इन सभी मानकों पर खरी उतरती है।

पाठगत प्रश्न 3.1

1. सिंधु घाटी सभ्यता को हड़प्पा सभ्यता क्यों कहते हैं?

2. हड़प्पा सभ्यता के विभिन्न चरण कौन–कौन से थे?

3. हरियाणा और गुजरात के किन्हीं दो–दो प्रमुख हड़प्पाकालीन स्थलों के नाम लिखें?

4. मोहनजोदडो की खोज किसने की?

5. हड़प्पा किस नदी के किनारे पर स्थित है?

6. किसी नगरीय सभ्यता की प्रमुख विशेषताएँ क्या होती हैं?

3.2 नगर योजना

हड़प्पा सभ्यता की सबसे दिलचस्प विशिष्टता है, यहाँ की नगर योजना। इसमें अत्यधिक समरुपता देखने में आई है, यद्यपि कहीं–कहीं पर प्रादेशिक रुप से विविधताएं भी देखने में आती हैं। नगरों, गलियों, मकानों के ढांचों, ईंटों के आकार और नालियों इत्यादि की योजना में एकरुपता दिखाई देती है। लगभग सभी मुख्य स्थलों (हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, कालीबंगन और अन्य), को दो भागों में विभाजित किया गया है–पश्चिम की ओर एक ऊंचे चबूतरे पर बना किला और आबादी के पूर्वी भाग में बना निचला नगर। किले में बड़े–बड़े ढांचे बने हुए हैं जो शायद शासकीय या धार्मिक अनुष्ठानों के केन्द्रों के रुप में कार्य करते होंगे। रिहायशी भवन निचले नगर में बने हुए हैं। सड़कों का ढांचा

इस प्रकार बना था कि ये एक–दूसरे मार्ग को समकोण पर काटते हुए निकलते थे। इनसे शहर अनेक रिहायशी खंडों में बंट जाता है। मुख्य मार्ग को छोटी गलियों के साथ जोड़ा गया है। घरों के द्वार मुख्य मार्गों पर न होकर इन संकरी गलियों में खुलते थे। अधिकांश मकान भट्ठी में पकी ईंटों से बने थे। बड़े घरों में कई कमरे होते थे, जिसमें एक चौकोर आंगन भी होता था। इन घरों में अपने निजी कुएं, रसोई घर और स्नानागार के चबूतरे होते थे। घरों के आकार में अंतर से ये संकेत मिलता है कि धनी लोग बड़े घरों में रहते थे और एक कमरे के घरों या बैरकों में संभवतः समाज के निर्धन वर्ग के लोग रहते होंगे। हड़प्पा काल के लोगों की जल निकासी व्यवस्था बहुत व्यवस्थित और विकसित थी। हर घर में, नालियां थीं, जो गली की नाली से जाकर मिलती थीं। ये नालियां ईंटों से बने नरमोखों (मैनहोल्स) पर पत्थर की सिल्लियों से ढँकी होती थीं (जिन्हें सफाई के लिए हटाया जा सकता था) जिन्हें नियमित अंतराल पर गलियों के किनारे बनाया जाता था। इससे पता चलता है कि उन लोगों को सफाई विज्ञान की अच्छी जानकारी थी।

3.3 हड़प्पा के नगरों के कुछ मुख्य ढांचों के अवशेष

मोहनजोदड़ो का 'विशाल स्नानागार' एक बहुत ही प्रमुख स्थल है (चित्र 3.1)।इसके चारों ओर बरामदे बने हैं और उत्तरी और दक्षिणी, दोनों छोरों पर सीढ़ियां बनी हैं। स्नानागार के फर्श पर बिटूमन कोयले का पलस्तर किया गया था ताकि पानी का रिसाव न हो। साथ के एक कमरे से पानी की आपूर्ति होती थी और पानी की निकासी के लिए नाली थी।

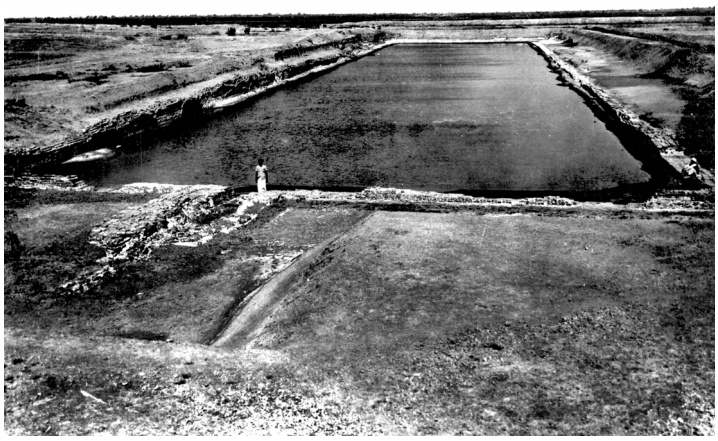
स्नानागार के चारों ओर किनारे पर कुछ कमरे बने थे, जो शायद कपड़े बदलने के काम में आते होंगे। विद्वानों का मत है कि 'विशाल स्नानागार' धार्मिक क्रियाओं के लिए स्नान के लिए उपयोग में लाया जाता था। 'विशाल स्नानागार' के पश्चिम की ओर अन्न भंडारण के लिए एक धान्य कोठार स्थित थी। इसमें अन्न के भंडारण के लिए ईंटों से बने कई चौकोर खंड बने थे। हड़प्पा में भी एक कोठार मिला है। इसमें ईंटों से बने गोल चबूतरों



चित्र 3.1 मोहनजोदड़ो का विशाल स्नानागार

की पंक्तिः हैं, जो शायद अन्न की कुटाई के लिए उपयोग में लाए जाते होंगे। इसकी जानकारी यह से प्राप्त गेहूं और जौ के भूसों के छिलकों से मिली है।

लोथल में ईंटों से बना एक ढांचा मिला है, जिसे गोदीबाड़ा माना जाता है, जहां जहाजों के लंगर डाले जाते होंगे और ये माल के उतारने–चढ़ाने के काम में आता होगा (चित्र 3.2)। इससे ये संकेत मिलता है कि लोथल हड़प्पा के लोगों के लिए एक प्रमुख बंदरगाह और व्यापारिक केंद्र था।



चित्र 3.2 लोथल का गोदी बाड़ा

पाठगत प्रश्न 3.2

1. हड़प्पा के नगरों में किले का निर्माण सामान्यतः किस दिशा में होता था?

2. घरों को बनाने के लिए किस प्रकार की ईंटों का उपयोग होता था?

3. 'विशाल स्नानागार' की खोज कहां पर हुई?

4. लोथल में पाए गए प्रमुख भवन के ढांचे का नाम बताएं?

3.4 आर्थिक क्रिया-कलाप

1. क षि

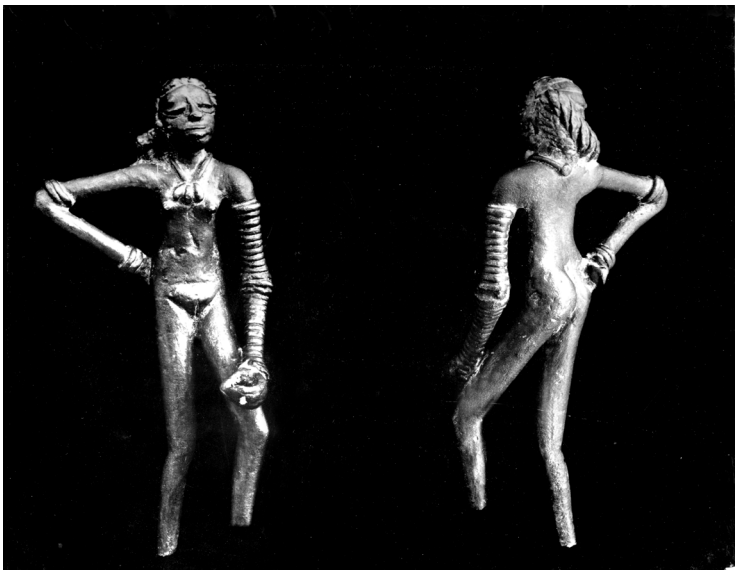
हड़प्पा सभ्यता की सम द्धि इसकी फली–फूली विकसित आर्थिक गतिविधियों पर आधारित थी, जैसे क षि, कला, शिल्प और व्यापार। सिंधु नदी की उपजाऊ कछार भूमि ने यहां की अत्यधिक क षि उपज में अपना भारी योगदान किया। इससे, हड़प्पा के लोगों को

आन्तरिक और बाह्य दोनों स्तरों पर और उद्योगों को विकसित करने में भी सहायता मिली। क षि के साथ–साथ पशु–पालन हड़प्पा की अर्थव्यवस्था का आधार था। हड़प्पा, मोहनजोदड़ो और लोथल जैसे स्थानों पर मिले कोठार, अन्न भंडारण के काम में लिए जाते थे। क षि के कामों में प्रयुक्त औजारों के संबंध में हमारे पास कोई स्पष्ट साक्ष्य नहीं हैं। फिर भी कालीबांगन के एक खेत में हल चलाने या जुताई के कुछ चिह्न देखने में आए हैं। इससे संकेत मिलता है कि हल से खेती होती थी।

हरियाणा के हिसार जिले में बनवाली से मिट्टी से बने हल के मिलने की सूचना मिली है। कुओं से पानी निकालकर छोटे पैमाने पर और नदियों के पानी का नहरों के जरिये रुख मोड़कर खेतों की सिंचाई की जाती थी। मुख्य खाद्य फसलों में गेहूं, जौ, तिल, सरसों, मटर और राई इत्यादि शामिल थी। लोथल और रंगपुर में मिट्टी के बर्तनों में चावल की भूसी के बचे हुए कणों से वहां चावल की बड़ी खेती के साक्ष्य भी मिले हैं। कपास यहां की एक अन्य प्रमुख फसल थी। मोहनजोदड़ो में बुने हुए कपड़े का एक टुकड़ा प्राप्त हुआ है। अनाजों के अतिरिक्त मछली और पशुओं का मांस भी हड़प्पा के लोगों के आहार का हिस्सा था।

(2) उद्योग और शिल्प

हड़प्पा के लोग लोहे के अतिरिक्त लगभग सभी प्रकार की धातुओं से परिचित थे। वे सोने और चांदी की वस्तुएँ बनाते थे। सोने की वस्तुओं में मोती, बाजूबंद, सुइयां और अन्य गहने शामिल थे। परन्तु सोने से ज्यादा चांदी का उपयोग अधिक प्रचलन में था। बहुत बड़ी संख्या में चांदी के गहने, तश्तरियां इत्यादि प्राप्त हुई हैं। तांबे के औजार और अस्त्र–शस्त्र भी बड़ी संख्या में प्राप्त हुए हैं। सामान्य औजारों में कुल्हाड़ी, आरी, छैनी, चाकू, भाले की नोकें और तीरों के शीर्ष इत्यादि शामिल हैं। ध्यान देने की बात है कि हड़प्पा के लोगों द्वारा बनाए गए शस्त्र ज्यादातर सुरक्षात्मक प्रक ति के थे, क्योंकि



चित्र 3.3 मोहनजोदड़ो में मिली नर्तकी का मूर्ति चित्र

तलवार जैसे शस्त्रों के मिलने के कोई प्रमाण नहीं मिले हैं। पत्थर के औजारों का भी आम तौर पर उपयोग होता था। तांबा, राजस्थान में खेतड़ी नामक स्थान से आता था। सोना हिमालयी नदियों की तराई और दक्षिण भारत से आता था, और चांदी मैसोपोटामिया से। हमें कांसे के उपयोग के प्रमाण भी मिले हैं परन्तु बहुत ही सीमित स्तर पर। इस संबंध में सबसे प्रसिद्ध नमूना है मोहनजोदड़ो से मिली कांसे से बनी 'न तंगना का एक मूर्ति चित्र। ये नग्न नारी की एक मूर्ति है, जिसका एक हाथ नितम्ब पर है दूसरा न त्य की मुद्रा में हवा में झूल रहा है। इसने बहुत सारी चूड़ियाँ पहन रखी हैं।

मनके बनाने की कला भी प्रमुख शिल्पकारी थी। बहुमूल्य पत्थरों और रत्नों से मोती बनाए जाते थे जैसे गोमेद (अगेट) और कॉर्नेलियन। मोती बनाने के लिए स्टिएटाइट का उपयोग होता था। चन्हुदड़ों और लोथल में मोती बनाने वालों की दुकानों के साक्ष्य मिले हैं। सोने और चांदी के मनके भी प्राप्त हुए हैं। हाथी दांत की नक्काशी और मोतिंः, बाजूबंद और अन्य सजावटी सामनों पर मीनाकारी का काम भी चलन में था। अतः हम कह सकते हैं कि हड़प्पा के लोगों को अनेक कलाओं और शिल्पकारी के कामों में दक्षता प्राप्त थी।

हड़प्पा काल की कलाक तिंः में एक प्रसिद्ध कलात्मक मूर्ति है मोहनजोदड़ो में मिली दाढ़ी वाले पुरुष की पत्थर से बनी एक मूर्ति (चित्र 3.4)। इसकी आंखें अधमुंदी हैं जैसे कि ये ध्यान मगन मुद्रा में है।

इसके बाएँ कंधे पर कशीदाकारी किया गया दुशाला है। कुछ विद्वानों के मत में ये किसी प्रचारक का धड़ हो सकता है।

हड़प्पा के अनेक स्थलों से पुरुषों और महिलाओं की बहुत बड़ी संख्या में मिट्टी की मूर्तियां प्राप्त हुई हैं (चित्र 3.5) । महिलाओं की मूर्तियों की संख्या पुरुषों की मूर्तियों से अधिक है और ऐसा माना जाता है कि ये मातहृदेवी की पूजा के संबंध में प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इसके अतिरिक्त पक्षियों, बंदरों, कुत्तों, भेड़ों, पालतू पशुओं, कूबड़ सहित और कूबड़–रहित बैलों के, अनेक प्रकार के मूर्तियों के नमूने प्राप्त हुए हैं। फिर भी, इस संबंध में सबसे उल्लेखनीय नमूने हैं–पकी मिट्टी की बनी गाड़ियां।

मिट्टी के बर्तन बनाना भी हड़प्पा काल के लोगों का एक प्रमुख उद्योग था। ये मुख्य रुप से चाक–पहिये पर बनाए जाते थे और इन पर लाल रंग करने के बाद काले रंग से सजावट की जाती थी। ये विभिन्न आकारों और शक्लों में पाए गए हैं। चित्रकारी के नमूनों में अलग–अलग मोटाई की आड़ी लकीरें, पत्तों के नमूने, पाम और पीपल के पेड़, पक्षी, मछलियां और पशु इत्यादि के चित्र भी मिट्टी के बर्तनों पर बनाए गए हैं। हड़प्पा के लोग विभिन्न प्रकार की मुहरें बनाते थे। विभिन्न स्थानों से लगभग दो हजार से भी ज्यादा मुहरें प्राप्त हुई हैं। ये मुहरें आम तौर पर चौकोर शक्ल में थीं और सेलखड़ी से बनी थीं। ध्यान देने की बात है कि इन मुहरों पर अनेक पशुओं के चित्र थे परन्तु किसी भी मुहर पर घोड़े का चित्र नहीं था। इससे हमारे विद्वान ये तर्क करते रहे हैं कि हड़प्पा के लोग घोड़े से परिचित नहीं थे। यद्यपि ऐसे विद्वान भी हैं जो इस मत से सहमत नहीं हैं। विभिन्न प्रकार के पशुओं के अतिरिक्त, हड़प्पा की मुहरों पर हड़प्पाकाल की लिपि के कुछ चिह्न भी बने हैं परन्तु अभी तक इस लिपि को पढ़ा नहीं जा सका है। सबसे प्रसिद्ध मुहर वह है, जिस पर सींगों वाले एक पुरुष–देव का चित्र बनाया





चित्र 3.4 दाढी वाले पुरूष की पत्थर की मूर्ति



चित्र 3.5 मानव और पशु की, मिट्टी की मूर्तियां

गया है। इसके तीन सिर हैं और ये पद्मासन की मुद्रा में बैठा है और ये चारों तरफ से हाथी, बाघ, गैंडा और एक भैंस जैसे जानवरों से घिरा है। अनेक विद्वान इसे भगवान पशुपति (पशुओं के देवता) का प्राचीन रुप मानते हैं परन्तु कुछ विद्वानों का इस विचार से मतभेद है।



चित्र 3.6 कालीबंगन में मिली पकी मिट्टी की गाड़ी





चित्र 3.7 पशुपति की मुहर

(3) व्यापार

हड़प्पा के लोगों की नगरीय अर्थव्यवस्था की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता थी, उनका आंतरिक (देश के अंदर) और बाह्य (विदेशों में) दोनों तरह का व्यापारिक तंत्र जाल (नेटवर्क)। नगर की आबादी अपने खाद्यों और अन्य जरुरी चीजों के लिए अपने आसपास के गावों पर निर्भर थी। इसलिए गांवों–शहरों (ग्रामीण–नगरों) के परस्पर संबंध विकसित हुए। इसी प्रकार शहरों के शिल्पकारों को अपनी चीजें बेचने के लिए बाजारों की जरुरत थी। इससे शहरों के बीच परस्पर संपर्क स्थापित हुए। व्यापारियों ने विदेशी भूभागों, विशेष रुप से मैसोपोटामिया के साथ व्यापारिक संबंध स्थापित किए, जहां इन चीजों की अधिक मांग की। ध्यान देने की बात है कि शिल्पकारों को अपनी चीजें बनाने के लिए अनेक प्रकार की धातुओं और बहुमूल्य रत्नों की जरुरत पड़ती थी परन्तु स्थानीय रुप से उपलब्ध न होने के कारण इन चीजों को बाहर से मंगवाना पड़ता था। अपने उद्‌गम स्थल से दूर इस कच्चे माल की दूसरे स्थानों पर उपस्थिति से स्वाभाविक रुप में ये संकेत मिलता है कि ये वस्तुएं निश्चित तौर पर उन स्थानों पर वस्तुओं के विनियम की प्रक्रिया के माध्यम से ही वहां पहुंची होंगी। इस प्रकार राजस्थान में तांबे की बहुतायत होने के कारण हड़प्पा के लोग यहां खेतड़ी स्थित तांबे की खानों से मुख्यतः तांबा प्राप्त करते थे। कर्नाटक में कोलार स्थित सोने की खानों और हिमालयी नदियों के तराई के क्षेत्रों से संभवतः सोने की पूर्ति होती थी। चांदी का स्रोत शायद राजस्थान की ज्वार स्थित खानें रही होंगी। ऐसा विश्वास किया जाता है कि चांदी संभवतः हड़प्पा की वस्तुओं के विनियम के बदले में

मैसोपोटामिया से भी प्राप्त की जाती थी। मोती बनाने के लिए प्रयुक्त किए जाने वाले बहुमूल्य रत्न नील वैदूर्य मणि का स्रोत अफगानिस्तान के उत्तर–पूर्व मे बदकशान खानों में स्थित था। फीरोज़ा और हरिताश्म शायद मध्य एशिया से लाए जाते थे। गोमेद, स्फटिक और कार्नेलियन की आपूर्ति पश्चिमी भारत से होती थी। सीप–शंख इत्यादि गुजरात और इसके आसपास के तटीय क्षेत्रों से आते होंगे। अच्छे किस्म की इमारती लकड़ी और अन्य वनोत्पाद शायद जम्मू जैसे उत्तरी क्षेत्रों से आते होंगे। हड़प्पा के लोग मैसोपोटामिया के साथ विदेश–व्यापार भी करते थे। ये व्यापार मुख्य रुप से फारस की खाड़ी में स्थित ओमान और बहरीन के जरिये होता था। हड़पा के क्षेत्रों में मिले मोतिं:, मुहरों, पांसे की गोटियों जैसी कलाक तिं: इत्यादि की मौजूदगी से इसकी पुष्टि होती है। यद्यपि उन क्षेत्रों की कलाक तिं: हड़प्पा के स्थलों में बहुत ही कम स्थानों पर मिली हैं, परन्तु पश्चिमी एशिया या पारसी मूल की एक मुहर लोथल में प्राप्त हुई है, जिससे इस संबंध की पुष्टि होती है। सूसा, उर और मैसोपोटामिया के नगरों से लगभग दो दर्जन हड़प्पा की मुहरें मिली हैं। मुहरों के अतिरिक्त हड़पा मूल की जो अन्य कलाक तिं: वहां मिली हैं, उनमें मिट्टी के बर्तन, उत्कीर्ण कार्य किए गए कार्नेलियन के मोती और पांसे शामिल हैं।

मैसोपोटामिया से मिले शिलालेखों से हमें हड़प्पा के साथ मैसोपोटामिया के संपर्क के संबंध में हमें बहुमूल्य सूचना मिलती है। इन शिलालेखों से दिलमुन, मगन और मेलुलूह के साथ व्यापार के संकेत मिलते हैं। विद्वानों ने मेलुलूह के हड़प्पा के क्षेत्र के साथ, मगन के मकरान तट के साथ और दिलमुन के बहरीन के साथ संपर्कों की पहचान की है। इनसे संकेत मिलते हैं कि मैसोपोटामिया मेलुलूह से तांबा, कार्जेलियन, हाथी दांत, सीपियां, वैदूर्य मणि, मोती और आबनूस आयात करता था। मैसोपोटामिया से हड़प्पा को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में शामिल थे तैयार कपड़े, ऊन, इत्र, चमड़े की वस्तुएं और चांदी। चांदी के अतिरिक्त ये सभी वस्तुएं नाशवान हैं। यें मुख्य कारण रहा होगा, जिसकी वजह से हड़प्पा के स्थलों पर हमें इन वस्तुओं के अवशेष नहीं मिलते।

पाठागत प्रश्न 3.3

1. खेती–बाड़ी के अतिरिक्त हड़प्पा के लोगों में कौन–सी आर्थिक गतिविधियों का प्रचलन था?

   _____

2. हड़प्पा के लोगों द्वारा उपयोग में लाई जाने वाली दो मुख्य खाद्य फसलों के नाम लिखें।

   _____

3. हड़प्पा काल के उन दो स्थानों के नाम लिखें, जहां से हमें उस दौरान खाद्य फसल के रुप में चावल के होने के प्रमाण मिले हैं?

   _____



4. कांसे की नर्तकी की मूर्ति किस स्थान से मिली थी?

_____

5. हड़प्पा काल के दौरान प्रचलित किन्हीं दो शिल्पों के नाम लिखें?

_____

6. हड़प्पा के लोगों के लिए तांबा प्राप्त करने का प्रमुख स्रोत कौन–सा स्थान था?

_____

3.5 सामाजिक विशिष्टताएं

ऐसा लगता है कि हड़प्पा के लोगों का समाज मात सत्तात्मक प्रक ति का था। इस मत का आधार है मात देवी की लोकप्रियता जैसा कि पंजाब और सिंध प्रदेशों में बड़ी संख्या में मिली पक्की मिट्टी की बनी नारी मूर्तियां से भी संकेत मिलता है। क्योंकि हड़प्पा की लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है, इसलिए हमें इस संबंध में मिली सीमित सूचनाओं पर ही संतुष्ट रहना होगा।

हड़प्पा के समाज में विविध व्यवसायों से जुड़े लोग शामिल थे। इनमें पुजारी, योद्धा, किसान, व्यापारी और कारीगर (राजगीर, बुनकर, सुनार, कुम्हार इत्यादि) शामिल थे। हड़प्पा और लोथल जैसे स्थानों पर मिले मकानों के ढांचों से पता चलता है कि विभिन्न वर्गों के लोगों द्वारा आवास के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार के भवनों का उपयोग किया जाता था। हड़प्पा के कोठार के पास बने कारीगरों के घरों से इस वर्ग के कारीगरों की उपस्थिति के संबंध में पुष्टि होती है। इसी प्रकार, लोथल में तांबे का काम करने वाले कारीगरों और मोती बनाने वाले कामगारों की कार्यशालाओं और उनके लिए आवासीय घरों के मिलने के भी प्रमाण मिले हैं। वास्तव में, हम ये कह सकते हैं कि जो लोग बड़े घरों में रहते थे, वे धनी वर्ग से थे और जो कारीगरों के क्वार्टरों जैसी कोठरियों (बैरकों) में रहते थे, वे मजदूर वर्ग से संबंधित थे।

उनकी वेशभूषा के ढंग के संबंध में हमारी सीमित जानकारी उस काल के दौरान मिली पक्की मिट्टी और पत्थर की बनी महिलाओं की मूर्तियों पर आधारित है। पुरुषों को अधिकतर जिस पहनावे में दर्शाया गया है, उसमें नीचे के आधे भाग में चारों ओर एक धोती–सी बंधी है, जिसका एक सिरा बाएं कंधे और दाएं बाजू के नीचे हैं। एक अन्य पोशाक है चोगे (ढीला कपड़ा) की तरह का परिधान, जिससे शरीर के निचले भाग को ढँका गया है। वे लोग सूती और ऊनी कपड़े उपयोग में लाते थे। मोहनजोदड़ो में बुनाई किया गया एक कपड़ा मिला है। अनेक स्थानों पर मिली तकलियों और सुइयों से ये साक्ष्य मिलता है कि उस समय कताई और बुनाई का प्रचलन था।

हड़प्पा के लोगों को सजने–संवरने का शौक था। विभिन्न स्थलों पर मिली पुरुषों और महिलाओं की मूर्तियों से बाल संवारने के प्रमाण मिलते हैं। पुरुष और महिलाएं अपने बाल अलग–अलग तरीके से संवारते थे। लोग आभूषण पहनने के भी शौकीन थे। इनमें मुख्य तौर पर स्त्री और पुरुष दोनों द्वारा उपयोग किए जाने वाले नेकलेस, बाजूबंद, कानों के

बूंदे, मोती–मनकें, चूड़ियां इत्यादि शामिल थीं। ऐसा लगता है कि धनी लोग सोने, चांदी और बहुमूल्य रत्नों से बने गहने पहनते थे, जबकि निर्धन लोगों को पकी मिट्टी के गहनों से ही संतुष्ट होना पड़ता था।

पाठगत प्रश्न 3.4

1. हड़प्पा के समाज को _____ समाज समझा जाता था?
2. कारीगरों के मकान किस स्थान पर पाए गए थे?

   _____

3. हड़प्पा के लोग किस सामग्री से बने कपड़े पहनते थे?

   _____

3.6 धार्मिक विश्वास और रीतियां

हड़प्पा के लोगों के धार्मिक विश्वासों और रीति–रिवाजों के संबंध में हमारी जानकारी, अधिकतर हमें उपलब्ध म णमूर्तियों पर आधारित है। हड़प्पा के लोगों के धर्म को आम तौर पर जीवोपासक यानी पेड़ों व पत्थरों के उपासक के रुप में जाना गया है (चित्र 3.8)। हड़प्पा के विभिन्न स्थलों पर मिली पकी मिट्टी की असंख्य म णमूर्तियों को मात ृदेवी की उपासना के साथ जोड़कर देखा जाता है (चित्र 3.9)। इनमें से अधिकांश मूर्तियों में महिलाओं ने चौड़ी–सी करधनी, बाघ की खाल का कपड़ा और गले में हार पहन रखा है। वे पंखे के आकार का शिरोवस्त्र पहने हुए हैं। कुछ मूर्तियों में महिला को गोद में एक शिशु लिए दिखाया गया है तो एक मूर्ति में एक महिला के गर्भ से एक पौधा उगता हुआ दर्शाया गया है। दूसरी मूर्ति शायद भू–देवी की प्रतीक है। बहुत से विद्वान मानते हैं कि हड़प्पा वासी लिंग (पुरुष यौनांग) और योनि (महिला यौनांग) के उपासक थे, परन्तु कुछ इस मत से असहमत हैं।

हड़प्पावासियों का पुरुष देवता में आस्था का साक्ष्य मिलता है। एक मुहर पर बनी एक आक ति से, जिसमें एक पुरुष के सिर पर भैंसे के सींग वाला मुकुट है, जो यौगिक मुद्रा में बैठा है और इसके आसपास कई पशु हैं। अनेक विद्वान इसे भगवान पशुपति (पशुओं के देवता) या 'आदि शिव' के रुप में देखते हैं। यद्यपि कुछ विद्वानों का इससे मतभेद है। एक अन्य मुहर में एक सींगों वाले देवता की आक ति है, जिसके बाल हवा में उड़ते हुए हैं और वह नग्न है और पीपल के पेड़ की शाखाओं के बीच खड़ा है, एक उपासक घुटनों के बल उसके समक्ष बैठा है। इससे पेड़ों की उपासना का पता चलता है। हड़प्पावासियों में पशुओं की उपासना के प्रचलन का भी प्रमाण मिलता है।

ई.पू. के मध्य देखने में आया। आबादी के क्षेत्र भी सिकुड़ने लगे थे। उदाहरणत:, उत्तर काल की अवधि के दौरान हड़प्पा, जो मूल रुप से 85 हैक्टेयर के क्षेत्र में फैला था। इस काल में सिर्फ तीन हैक्टेयर की आबादी में सिकुड़ कर रह गया था। ऐसा लगता है कि यहां की आबादी किन्हीं दूसरे क्षेत्रों में स्थानांतरित हो गई थी। इसका संकेत मिलता है



कालीबंगन और लोथल जैसे कुछ स्थानों से अग्नि की उपासना के भी कुछ साक्ष्य मिले हैं। कालीबंगन में ईंटों से बने अनेक चबूतरों की पंक्तियों और उन पर बने गड्ढ़ों में राख और पशुओं की हड्डियां भी मिली हैं। अनेक विद्वान इन्हें हवन कुंड मानते हैं। इससे यह भी प्रदर्शित होता है कि विभिन्न क्षेत्रों के हड़प्पावासियों में भिन्न–भिन्न धार्मिक रीति–रिवाज प्रचलित थे, क्योंकि हड़प्पा



चित्र 3.8 मोहनजोदड़ों से मिला प्रतीकात्मक पीपल–व क्ष



चित्र 3.9 मोहनजोदड़ों की मात देवी

या मोहनजोदड़ो में किसी भी हवन कुंड के होने के प्रमाण नहीं मिले हैं। दफन के रीति–रिवाज और इनसे संबंधित धार्मिक कर्मकांड, किसी भी सभ्यता के धर्म का बहुत ही महत्त्वपूर्ण पहलू होते हैं। तथापि इस संदर्भ में हड़प्पा–कालीन स्थलों पर मिले मिश्र पिरामिडों जैसी इमारतों या मैसोपोटामिया स्थित दर में बनी शाही कब्रगाहों की तरह की कोई भी इमारत नहीं मिली है।

शवों को प्रायः उत्तर–दक्षिण दिशा में लिटाया जाता था, जिसमें सिर उत्तर की ओर और पांव दक्षिण की ओर होते थे। म तकों को, अलग–अलग संख्या में, उनके साथ मिट्टी के बर्तन रखकर दफनाया जाता था। कुछ कब्रों में शवों के साथ चूड़ियां, मोती, तांबे के दर्पण



चित्र 3.10 मोहनजोदड़ों में मिली कूबड़ वाले बैल की मुहर

इत्यादि जैसी वस्तुएं रखकर दफनाया जाता था। इससे यह भी संकेत मिलता है कि हड़प्पावासी पुनर्जन्म में विश्वास रखते थे। लोथल में तीन ऐसी कब्रें मिली हैं, जिनमें महिला और पुरुष को इकट्ठे दफनाया गया है। कालीबंगन में प्रतीकात्मक रूप से दफनाने का एक साक्ष्य मिला है। यानी एक कब्र मिली है, जिसमें बर्तन रखे हैं, परन्तु कोई हड्डियां या कंकाल नहीं है। रीति–रिवाजों में पाई गई इन विविधताओं से पता चलता है कि हड़प्पा सभ्यता में संभवतः भिन्न–भिन्न प्रकार के धार्मिक विश्वास प्रचलन में थे।

पाठगत प्रश्न 3.5

1. प्रसिद्ध 'पशुपति' मुद्रा किस स्थान से मिली है?

2. हड़प्पाकालीन मुद्राओं पर प्रायः कौन–से व क्ष की आक ति पाई गई है?

3. क्या अग्नि की उपासना का कोई साक्ष्य मिला है? यदि हाँ, तो यह कहाँ पर मिला है?

4. संयुक्त कब्रें किस स्थान पर मिली हैं?

3.7 लिपि

हड़प्पावासी शिक्षित थे। हड़प्पा की मुद्राओं पर अनेक प्रकार के चिह्न या आक तियां बनी हैं। हाल ही में किए गए अध्ययनों से यह संकेत मिले हैं कि हड़प्पा की लिपि में लगभग 400 चिह्न हैं और इसे दाईं से बाईं ओर को लिखा जाता है। परन्तु अभी तक इस लिपि को पढ़ा नहीं जा सका है। ऐसा समझा जाता है कि ये अपने भावों को सीधे व्यक्त करने के लिए किसी भावचित्र यानी चित्राक ति, चिह्न या अक्षर का प्रयोग करते थे। हमें उनकी भाषा की कोई जानकारी नहीं है, परन्तु कुछ विद्वानों को विश्वास है कि वे 'ब्राहुई' भाषा बोलते थे, जिस बोली को पाकिस्तान के बलूची लोग आज भी बोलते हैं। तथापि अभी इस बारे में साफ़ तौर से कुछ नहीं कहा जा सकता।

3.8 हड़प्पा सभ्यता का पतन

हड़प्पा की सभ्यता 1900 ई.पू. तक फलती–फूलती रही। इस सभ्यता के बाद की अवधि को नगरी सभ्यता के बाद के चरण (उत्तरवर्ती हड़प्पावासी काल) के रूप में जाना जाता है। इस काल की विशेषता को इस प्रकार रेखांकित किया गया कि इसमें नगर–योजन, लेखन कला, माप–तोलों में एकरूपता, मिट्टी के बर्तनों में समानता इत्यादि जैसे मुख्य लक्षण धीरे–धीरे लुप्त होने लगे थे। यह अधोपतन 1900 ई.पू. –1400



ई.पू. के मध्य देखने में आया। आबादी क्षेत्र भी सिकुड़ने लगे थे। उदाहरणतः, उत्तर काल की अवधि के दौरान हड़प्पा, जो मूल रूप से **85** हैक्टेयर के क्षेत्र में फैला था। इस काल में सिर्फ तीन हैक्टेयर की आबादी में सिकुड़ कर रह गया था। ऐसा लगता है कि यहां की आबादी किन्हीं दूसरे क्षेत्रों में स्थानांतरित हो गई थी। इसका संकेत मिलता है उत्तर हड़प्पा काल में गुजरात, पूर्वी पंजाब, हरियाणा और अपर–दोआब क्षेत्रों के बाहरी क्षेत्रों में पाई गई नई बस्तिें की अनेक स्थापनाएं।

आपको हैरानी होगी कि हड़प्पा सभ्यता का अंत कैसे हुआ। इस संबंध में विद्वानों के अनेक मत हैं।

1. कुछ विद्वानों का सुझाव है कि बाढ़ और भूकंप जैसी प्राक तिक आपदाओं ने इस सभ्यता को खत्म किया होगा। ऐसा विश्वास किया जाता है कि भूकंप के परिणामस्वरुप सिंधु नदी के निचले मैदानी, बाढ़ वाले क्षेत्रों का स्तर ऊंचा उठ गया होगा। इससे समुद्र की तरफ जाने को नदी के तल मार्ग में रुकावट आ गई होगी, जिससे मोहनजोदड़ो नगर डूब गया होगा। परन्तु इससे केवल मोहनजोदड़ो के खत्म होने का उल्लेख मिलता है न कि पूरी सभ्यता का।

2. कुछ विद्वानों के मतानुसार घग्गर–हाकरा नदी के मार्ग में परिवर्तन आने के कारण शुष्क बंजर धरती बढ़ती गई होगी, जिसकी वजह से पतन हुआ। इस सिद्धांत के अनुसार 2000 ई.पू. के आसपास बंजरता की परिस्थितिः बढ़ती गईं, इससे क षि उत्पादन पर प्रभाव पड़ा होगा, जिससे इसका लोप हुआ।

3. पतन के कारणों में, आर्यों के आक्रमण के सिद्धांत का भी उल्लेख किया गया है, लेकिन आंकड़ों के आलोचनात्मक व गंभीर विश्लेषण के आधार पर अब इस मत को पूरी तरह नकार दिया गया है।

इस प्रकार कोई भी एक अकेला ऐसा कारण नहीं है, जिससे संपूर्ण सभ्यता के विनाश का पता लग सके। ज्यादा से ज्यादा इनसे सिर्फ कुछ शिष्ट स्थलों या क्षेत्रों के नष्ट होने के संबंध में ही पता चल सकता है। अतः प्रत्येक सिद्धांत की आलोचना हुई। फिर भी, पुरातात्विक साक्ष्यों से संकेत मिलता है कि हड़प्पा सभ्यता का पतन अचानक नहीं हुआ, बल्कि धीरे–धीरे हुआ और अंत में ये सभ्यता अन्य सभ्यताओं में घुलती–मिलती चली गई।

पाठगत प्रश्न 3.6

1. हड़प्पा की लिपि में लगभग कितनी संख्या में चिह्न हैं?

   _____

2. कौन–सी प्राक तिक आपदाओं को हड़प्पा सभ्यता के पतन के लिए जिम्मेदार माना जाता है?

   _____



आपकी टिप्पणियाँ

3. हड़प्पा की लिपि कैसे लिखी जाती थी? (दाएं से बाएं या बाएं से दाएं)

3.9 भारत के गैर-हड़प्पाई ताम्र-पाषाण समुदाय

प्रमुख ताम्रपाषाण (चाल्कोलिथिक) सभ्यताएं और उनके महत्त्वपूर्ण मुख्य स्थल और गैर–हड़प्पा ताम्रपाषाण सभ्यताओं का विस्तार पश्चिमी भारत और दक्कन में मिलता है। इनमें शामिल हैं राजस्थान के दक्षिण–पूर्व में स्थित बानस सभ्यता (2600 ई.पू.–1900 ई.पू.), उदयपुर के निकट अहर और गिलुंड जैसे मुख्य स्थलों सहित, मालवा सभ्यता (1700 ई.पू.–1400 ई.पू.) पश्चिमी मध्य प्रदेश में नवदातोली जैसे मुख्य स्थल सहित जोर्वे सभ्यता (1400 ई.पू.–700 ई.पू.), महाराष्ट्र में पुणे के पास स्थित मुख्य स्थलों इनामगांव और चन्दौली सहित पूर्वी उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल में भी ताम्रपाषाण सभ्यताओं (चाल्कोलिथिक कल्चर्स) के प्रमाण मिले हैं। ध्यान देने योग्य बात है कि यद्यपि गैर हड़प्पा (चाल्कोलिथिक सभ्यताएं) विभिन्न प्रदेशों में फलती–फूलती रहीं परन्तु उनमें कुछ पहलुओं में बुनियादी समानताएं थीं, जैसे उनके मिट टी के घर, खेती और शिकार संबंधी गतिविधियां, चाक–पहिये पर बनाए गए मिट्टी के बर्तन इत्यादि। इन ताम्रपाषाण सभ्यताओं के मिट्टी के बर्तनों में शामिल थे गेरुए (ओकरे) रंग के बर्तन (ओसीपी), काले और लाल रंग के बर्तन (बी आर डब्ल्यू) और इसके साथ ही विभिन्न प्रकार की कटोरियां, बेसिन (चिल्मचियां), टोंटीदार जार जिनकी गर्दन संकरी थी और स्टैंड पर रखी तश्तरियां इत्यादि भी मिली हैं।

3.10 औजार, आवश्यक उपकरण और अन्य वस्तुएं

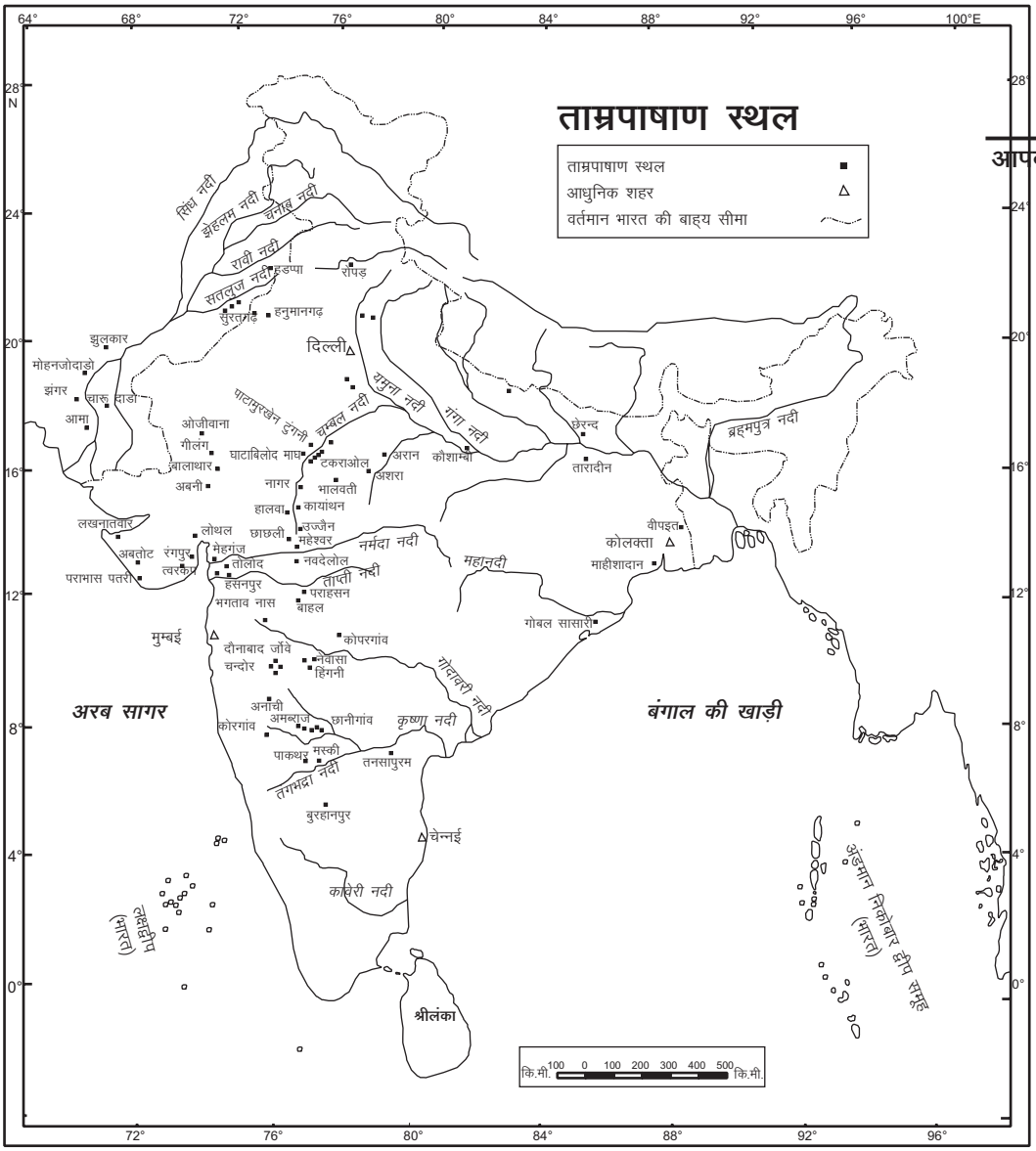
ताम्रपाषाण सभ्यताओं की विशेषता है उनके द्वारा उपयोग किए जाने वाले तांबे और पत्थर से बने औजार। पत्थर के औजार बनाने के लिए वे लोग, मकीक (कैलसेडनी) चकमक पत्थर (चर्ट) इत्यादि का उपयोग करते थे। उपयोग किए जाने वाले मुख्य औजार थे गंडासा (फरसा), चाकू, हंसिया, त्रिकोण और सबंल इत्यादि। खेती में पत्ती की तरह के खुरपी (ब्लेड) जैसे औजार प्रयुक्त होते थे। तांबे से बनी चीजों में चपटी कुल्हाड़ियां, तीरों की नोकें, भालों, नेज़ों के सिरे, छेनियां, मछली के कांटे, तलवारें, फरसे, चूड़ियां, अंगूठियां, मनके इत्यादि उपयोग में लाए जाते थे। कार्नेलियन, सूर्यकांत मणि (जैस्पर) स्फटिक, गोमेद, सीपियों इत्यादि से बने मनके खुदाइयों के दौरान बहुत से स्थलों पर मिलते हैं। इस संदर्भ में दइिमाबाद संग्रहालय से प्राप्त हुई वस्तुएं बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। इन खोजों में हैं कांसे से बना गैंडा, हाथी, दो पहियों वाली गाड़ी जिस पर एक सवार भी है और एक भैंस। ये बहुत बड़े आकार में हैं और इनका वजन साठ किलोग्राम से भी अधिक है। कायथा (चम्बल घाटी) से भी, पैनी तराशी गई धारों वाली तांबे से बनी वस्तुएं प्राप्त हुई हैं। इनसे उस कालावधि के शिल्पकारों की कुशलता के संबंध में पता चलता है।

3.11 जीवन यापन से संबंधित अर्थव्यवस्था

इन बस्तिेः के लोग क षि और पशुपालन पर जीवन यापन करते थे। तथापि उन लोगों में शिकार और मछली पकड़ने का भी प्रचलन था। इस अवधि की मुख्य फसलों में चावल, जौ, दालें, गेहूं, ज्वार, सफेद चने, मटर, हरे चने इत्यादि शामिल थे। ध्यान देने की बात



आपकी टिप्पणियाँ



मानचित्र 3.2 ताम्रपाषाण स्थल

है कि इस सभ्यता के प्रमुख भागों का उन्हीं क्षेत्रों में समूह रुप से विकास हुआ, जहां मुख्यतः काली मिट्टी बहुतायत में थी जो कपास उगाने के लिए उपयोगी हैं। इन स्थलों से मिले पशुओं के कंकालों से संकेत मिलते हैं कि इन सभ्यताओं में घरेलू पशुपालन और जंगली पशु भी मौजूद थे। घरों में पाले जाने वाले पशुओं में गाय, भैंस, भेड़ें, बकरी, कुत्ते, सूअर और घोड़े इत्यादि शामिल थे। वन्य प्राणियों में काले हिरण, ऐटिलोप, नीलगाय, बारहसिंगा, साम्भर–चीता, जंगली भैंसा और एक सींग वाली भैंस शामिल थे। मछली, जल में रहने वाली बतखें, मेंढक और चूहों की हड्डियां भी मिली हैं।

3.12 घर और निवास

ताम्रपाषाण सभ्यताओं की विशेषता है, उनकी ग्रामीण बस्तिः। लोग आयताकार और गोलाकार घरों में रहते थे जिनकी दीवारें कच्ची मिट्टी की और छतें घास–फूस की होती थीं। अधिकतर घर एक ही कमरे के घर थे, परन्तु कुछ घरों में दो या तीन कमरे थे। घरों के फर्श आग से पकी ईंटों या मिट्टी तथा नदियों की बजरी से मिश्रित करके बनाए जाते थे। जोर्वे सभ्यता (महाराष्ट्र) से संबद्ध 200 से भी अधिक स्थलों की खोज की गई है। इनामगांव की बस्तिः (जोर्वे सभ्यता) से संकेत मिलते हैं कि इन बस्तिः को बसाने में योजनाबद्ध रुपरेखा अपनाई गई थी।

पाठगत प्रश्न 3.7

1. मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र, प्रत्येक में से एक–एक ताम्रपाषाण स्थल का नाम लिखें?

   _____

2. ताम्रपाषाण युग में औजारों के निर्माण के लिए किस सामग्री का उपयोग होता था?

   _____

3. ताम्रपाषाण युग के लोग मकान बनाने के लिए किस सामग्री का उपयोग करते थे?

   _____

4. ताम्रपाषाण सभ्यताएं _____ प्रक ति की थीं? (ग्रामीण/नगरी)

   _____

5. किन्हीं दो गैर–हड़प्पा कालीन ताम्रपाषाण सभ्यताओं के नाम लिखें?

   _____

आपने क्या सीखा

हड़प्पा सभ्यता भारतीय उपमहाद्वीप की पहली नगरीय सभ्यता थी। पुरातात्विक अन्वेषणों से पता चलता है कि इस सभ्यता का क्रमिक विकास प्रारंभिक ग्रामीण समुदायों से हुआ। हड़प्पा मोहनजोदड़ो, चन्हुदड़ो, कालीबंगन, लोथल, बनावली, राखीगढ़ी और धौलावीरा हड़प्पा सभ्यता के कुछ प्रमुख स्थल थे। कुछ हड़प्पाकालीन केंद्रों पर भली–भांति विनियोजित नगर देखने में आए हैं। इन नगरों को इनकी विशेषताओं के अनुसार मुख्यतः दो भागों में विभाजित किया गया था। एक ऊंचे चबूतरे पर बना किला और दूसरा निचला नगर। घर बनाने के लिए भट्ठी में पकाई गई ईंटों का उपयोग होता था। नगरों में बहुत अच्छी जल–निकासी व्यवस्था थी। हड़प्पा के नगरों में पाए गए कुछ प्रमुख भवन



थे–मोहनजोदड़ो का विशाल स्नानागार, हड़प्पा का धान्य कोठार और लोथल का गोदीबाड़ा। खेतीबाड़ी के साथ–साथ हड़प्पा के लोग पशु–चराने (चरवाहे) का काम भी करते थे। यद्यपि ऐसे कुशल कारीगर भी थे, जो तांबे और अन्य धातुओं का काम करते थे, परन्तु सामान्यतः पत्थर के औजार ही उपयोग में लाए जाते थे। वे मोती–मनके, पकी मिट्टी की म ण मूर्तियां, मिट्टी के बर्तन और विविध प्रकार की मुद्राएं बनाते थे। हड़प्पावासी आंतरिक और बाह्य दोनों स्तर पर व्यापार करते थे। फारस की खाड़ी में ओमान और बहरीन के जरिये उनके मैसोपेटामिया के साथ व्यापारिक संबंध थे। व्यापारी, विभिन्न उपभोक्ता वस्तुओं के आयात और निर्यात का व्यापार करते थे। हड़प्पा की सभ्यता को मात सत्तात्मक प्रक ति का माना जाता है। वहां के लोग विभिन्न व्यवसाय करते थे, जैसे पुजारी, चिकित्सक, योद्धा, सूती और ऊनी कपड़े पहनते थे, परन्तु वे स्वयं को विविध प्रकार के आभूषणों से सजाने–संवारने के शौकीन थे। हड़प्पावासी मात देवी, पशुपति (आदि शिव), व क्षों और पशुओं की उपासना करते थे। शवों को दफनाने के संबंध में भी उनमें अनेक प्रकार को रीति–रिवाज और धार्मिक कार्यकलाप प्रचलित थे। हड़प्पावासी शिक्षित थे और उनकी लिपि में भावचित्र शामिल हैं। लेकिन उनकी लिपि को अभी तक पढ़ा नहीं जा सका है। एक बार इस लिपि को पढ़ना संभव हुआ तो हम इस हड़प्पा सभ्यता के संबंध में और अधिक जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। विद्वानों के मतानुसार प्राक तिक आपदाएं, बढ़ती शुष्कता (बंजरता) और आर्यों के आक्रमण संभवतः इस सभ्यता के पतन के विविध कारण हो सकते हैं। पुरातात्विक साक्ष्यों से संकेत मिलते हैं कि इस सभ्यता का पतन अचानक नहीं हुआ, बल्कि धीरे–धीरे लोप हुआ।

पुरातात्विक स्रोतों से लक्षित होता है कि गैर–हड़प्पा ताम्रपाषाण सभ्यताओं की पहचान विविध प्रादेशिक भिन्नताओं से होती थी। पत्थर और तांबे (चाल्कोलिथिक) के औजारों का उपयोग इन सभ्यताओं की एक सुस्पष्ट भिन्नता थी। इनके स्थलों के विभाजन की पद्धति से ही इनकी बस्तिेः के श्रेणी वर्गीकरण का पता चलता है। कुछ बस्तिः बहुत विशाल आकार की थीं, जिनमें बहुत भव्य भवन थे, जिससे ये संकेत मिलता है कि ये प्रमुख केंद्र थे। हड़प्पा सभ्यता के दायरे से बाहर की ताम्रपाषाण सभ्यताओं में, हड़प्पा सभ्यता की नगरीय और सम द्धि जैसी विशिष्टताएं नहीं थीं। ये गैर–शहरीक त सभ्यताएं थीं, जिनमें इनकी कुछ निजी विशेषताएं थीं, जैसे–घर बनाने की पद्धति, मिट्टी के बर्तनों की किस्में, औजारों की किस्में, और धार्मिक रीति–रिवाजों का प्रचलन इत्यादि। ये सभ्यताएं अभी भी क षि और शिकार–संग्रहकर्ताओं के कामों के साथ–साथ पशुओं को चराने जैसी अर्थव्यवस्था पर ही जीवन यापन करती थीं।

पाठान्त प्रश्न

1. हड़प्पाकालीन नगर योजना की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन करें?
2. हड़प्पा काल में प्रचलित उद्योगों और शिल्पों का संक्षिप्त ब्यौरा दें?
3. हड़प्पावासियों के मैसोपोटामिया के साथ व्यापार के संबंध में एक संक्षिप्त विवरण दें?

4. हड़प्पावासियों के धार्मिक जीवन के संबंध में कुछ प्रमुख विशिष्टताओं का उल्लेख करें?
5. हड़प्पा सभ्यता के पतन के संबंध में ब्यौरा दें?
6. गैर–हड़प्पा ताम्रपाषाणिक लोगों के जीवन के संबंध में संक्षिप्त विवरण दें?

पाठगत प्रश्नों के उतर

3.1

1. सिंधु घाटी सभ्यता को हड़प्पा सभ्यता इसलिए कहते हैं, क्योंकि हड़प्पा वह पहला स्थान था, जहाँ पर इस सभ्यता के अवशेष सबसे पहले प्राप्त हुए थे?
2. 1. प्रारंभिक हड़प्पा काल (3500 ई.पू.–2600 ई.पू.)
   2. परिपक्व हड़प्पा काल (2600 ई.पू.–1900 ई.पू.)
   3. उत्तर हड़प्पा काल (1900 ई.पू.–1400 ई.पू.)
3. हरियाणा में बनवाली और राखीगढ़ी और गुजरात में लोथल और धौलावीरा
4. श्री आर. डी. बनर्जी
5. रावी
6. किसी नागरीय सभ्यता की प्रमुख विशिष्टताएं हैं। भली–भांति नियोजित शहर, विशिष्ट कलाएं और शिल्प, व्यापार, कर–नीति (टैक्सेशन) और लिपि इत्यादि।

3.2

1. पश्चिमी
2. भट्ठी में पकी ईंटें
3. मोहनजोदड़ो
4. गोदीबाड़ा

3.3

1. पशु चराना (पशु–पालन)
2. गेहूं, जौ, तिल, सरसों, मटर, जेजुबी इत्यादि
3. लोथल और रंगपुर
4. मोहनजोदड़ो
5. मनके–मोती बनाना, मिट्टी के बर्तन बनाना
6. राजस्थान में खेतड़ी की खदानें



3.4

1. मात सत्तामक
2. हड़प्पा
3. सूत (कपास), ऊन

3.5

1. मोहनजोदड़ो
2. पीपल
3. हां, कालीबंगन और लोथल
4. लोथल

3.6

1. 400
2. बाढ़, भूकंप
3. दाएं से बाएं

3.7

1. मध्यप्रदेश में नवदातोली और महाराष्ट्र में इनामगांव
2. पत्थर, तांबा
3. मिट्टी
4. ग्रामीण
5. मध्यप्रदेश में क्याथा सभ्यता और महाराष्ट्र में जोर्वे सभ्यता

पाठान्त प्रश्नों के लिए संकेत

1. अनुच्छेद 3.2 देखें
2. अनुच्छेद 3.4 (2) देखें
3. अनुच्छेद 3.8 देखें
4. अनुच्छेद 3.8 देखें
5. अनुच्छेद 3.10 देखें
6. अनुच्छेद 3.13 और 3.14 देखें

शब्दावली

जीवोपासक - पौधों, पत्थरों और प्राक तिक घटनाक्रम की इस आस्था के साथ उपासना करना कि इनमें भी जीवन है, अतः इसीलिए इनका आध्यात्मिक महत्त्व है।



आपकी टिप्पणियाँ

बी. आर. डब्ल्यू. - काले और लाल म दभांड (बर्तन), एक प्रकार के मिट्टी के बर्तन, जो ताम्रपाषाण कालीन स्थलों पर पाए गए थे।

दुर्ग - सिटेडल (दुर्ग), हड़प्पा के नगरों का ऊंचे चबूतरे पर बना हुआ हिस्सा था और जो नगर के पश्चिमी भाग में स्थित था।

भावचित्र - आक तिः या चिन्ह, जिनसे कोई भाव संप्रेषित होते हों।

लाजवर्र (रावट) - एक चमकदार नीले रंग की शिला जिससे आभूषण बनाने के लिए उपयोग किया जाने वाला लेजुराइट मिलता है। हड़प्पाकाल में ये अफगानिस्तान क्षेत्र में मिलता था।

मैसोपोटैमिया - ईराक में इयूफ्रेट्स और टिगरिस, दो नदियों के बीच की जगह (दोआब भूमि)

ओसीपी - गेरुएं (आकरे) रंग के मिट्टी के बर्तन

पैशुचारण - जीवन निर्वाह के लिए घरेलू पशुपालन पर निर्भरता।

आदि-शिव - शिव का एक प्राचीन या प्रारंभिक (आदि) रुप जिससे बाद की कालावधियों में शिव के अन्य रुप विकसित हुए।

सेलखड़ी - सोप स्टोन के रुप में पाया जाने वाला एक खनिज, जिसे हड़प्पा काल के दौरान मुहरें बनाने के लिए उपयोग किया जाता था।

अधिशेष - अपनी जरुरतों से अधिक उत्पादन।

यूनिकार्न - हड़प्पा की मुहरों पर पाई गई एक सींग वाले पशु (गैंडे) की आक ति।

शहरीकरण - शहरी जीवन, जिसमें बढ़ती क षि उत्पाद, विशिष्ट कलाओं और शिल्प व्यापार, बड भवनों के ढांचे और संस्तरित समाज जैसे लक्षण मौजूद हों।



4

वैदिक काल

पिछले पाठ में आपने हड़प्पा सभ्यता के बारे में पढ़ा। हड़प्पा के लोग पूरी तरह से व्यवस्थित नगरों में रहते थे और उनकी व्यापारिक और शिल्पकारी संबंधी कार्यविधियाँ बहुत व्यवस्थित थीं, उनकी एक लिपि भी थी, परन्तु अभी तक हम उसे पढ़ नहीं पाए हैं। परन्तु 1900 ई. पू. के आसपास इन नगरों का पतन शुरू हो गया था। इसके पश्चात अनेक ग्रामीण बस्तियों का उदय हुआ। इन ग्रामीण बस्तियों में अनेक तत्त्व थे, जो हड़प्पा कालीन सभ्यता की निरंतरता दर्शाते थे। इसी कालावधि के दौरान हड़प्पा के क्षेत्रों के आसपास की बाहरी सीमाओं में आर्य या इंडो आर्य नाम के नए लोगों के भारत में प्रवेश के पुरातात्त्विक साक्ष्य मिलते हैं। इस पाठ में हम उन परिस्थितियों की जानकारी प्राप्त करेंगे, जिनके कारण इन नए लोगों ने प्रवेश किया और यह जानने का भी प्रयास करेंगे कि वैदिक साहित्य में इनकी सभ्यता के संबंध में इनकी किन–किन मुख्य विशेषताओं का उल्लेख मिलता है।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- वैदिक ग्रन्थों और उसकी विषय–वस्तु की जानकारी दे सकेंगे;
- आर्यों के बारे में जानकारी दे सकेंगे और जहाँ से वे स्थानांतरित हुए उन क्षेत्रों को पहचान सकेंगे;
- प्रारंभिक वैदिक काल (1500 ई.पू.–1000 ई.पू.) और उत्तर वैदिक काल (1000 ई. पू.–600 ई.पू.) के लोगों के निवास स्थलों को पहचान सकेंगे;
- लोहे से बनी चीज़ों के महत्त्व का उल्लेख कर सकेंगें, जिसका प्रयोग उत्तर वैदिक काल में शुरू हुआ; और
- 1000 ई.पू. से 600 ई.पू. की कालावधि के बाद शुरू होने वाली अवधि के दौरान वैदिककालीन लोगों की आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक संरचनाओं और संस्थानों में हुए परिवर्तनों को पहचान सकेंगे।

4.1 वैदिक साहित्य

वेद क्या है? 'वेद' विद् धातु से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'जानना'। 'वेद' शब्द का अर्थ है वेद साहित्य के रूप में जाने वाले वैदिक साहित्य में निहित पवित्र ज्ञान। वैदिक साहित्य की संपूर्ण ग्रन्थावली में दो प्रकार की पुस्तकें शामिल हैं। ये हैं–'मन्त्र' और 'ब्राह्मण'। मंत्र वर्ग की ग्रन्थावली वैदिक ग्रन्थों की प्रमुख ग्रन्थावली है, जिसमें चार प थक ग्रन्थ शामिल हैं–ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद। ब्राह्मण ग्रन्थों को ब्राह्मणीय वर्ग मानने की भूल न करें। वास्तव में गद्य रूप में लिखे गए ग्रन्थ हैं, जिनमें मंत्रों की परिभाषाओं के विस्तार हैं, जिनमें बलिदान संबंधी कर्मकाण्ड भी हैं। ब्राह्मण सहित चारों वेदों में उपलब्ध साहित्य को 'श्रुति' कहते हैं, जिसे प्रत्यक्ष रूप में ऋषियों से सुना गया था। आरण्यक (शाब्दिक अर्थ है जंगल संधि पत्र) और 'उपनिषद्' (पास में ही नीचे बैठना) मुख्य रूप से ब्राह्मण ग्रन्थों के परिशिष्ट हैं। इन्हें वेदान्त (वेदों का अन्त) भी कहा जाता है और इनमें दार्शनिक विचार–विमर्श हैं।

'ऋग्वेद' 1028 मंत्रों का संकलन है, जिसे 10 मण्डलों में बाँटा गया है। ये प्रारंभिक रचनाएं हैं, अतः इनमें भारत के वैदिक कालीन लोगों के प्रारंभिक जीवन का उल्लेख किया गया है। 'सामवेद' काव्य पदों का संकलन है, जो अधिकतर ऋग्वेद से लिए गए हैं–और इन्हें काव्यात्मक रूप दिया गया है ताकि इन्हें गाया जा सके। यजुर्वेद दो रूप में मिला है, श्याम (क ष्ण) और शुक्ल (सफेद) और इनमें सार्वजनिक और व्यक्तिगत रूप में किए जाने वाले अनुष्ठानों का विवरण है। 'अथर्ववेद' जादुई तंत्रों और मंत्रों का संग्रह है, जिनका प्रयोग भूत–प्रेतों को भगाने और रोगों के उपचार के लिए किया जाता था।

वैदिक साहित्य के गहन अध्ययन से पता चलता है कि वैदिक ग्रन्थ साहित्यिक द ष्टि से सामाजिक और सांस्क तिक विकास के दो चरणों के क्रमिक विकास की जानकारी देते हैं। 'ऋग्वेद' जो कि प्राचीनतम ग्रन्थ है, सामाजिक और सांस्क तिक विकास के एक चरण की जानकारी देता है तो अन्य तीन वेद दूसरे चरण के विकास क्रम की जानकारी देते हैं। प्रथम चरण को ऋग्वैदिक काल या प्रारंभिक वैदिक काल कहते हैं और उसके बाद के चरण को उत्तर वैदिक काल कहते हैं। प्रारंभिक वैदिक काल ऋग्वैदिक मंत्रों की रचना का काल है। 1500 ई.पू. से 1000 ई.पू. के कालखंड को इस कालावधि में रखा गया है। उत्तर वैदिक काल की अवधि 1000 ई.पू. से 600 ई.पू. मानी गई है। हाल ही में संयुक्त राष्ट्र शैक्षिक, वैज्ञानिक और सांस्क तिक संगठन (यूनेस्को) द्वारा 'ऋग्वेद' को विश्व मानव धरोहर के साहित्य में शामिल किया गया है।

पाठगत प्रश्न 4.1

1 'वेद' शब्द से आप क्या समझते हैं?

2. वैदिक ग्रन्थों में से कौन–से ग्रन्थों को मंत्रों की श्रेणी में रखा गया है? उनका उल्लेख करें?



3. 'श्रुति' कहे जाने वाले साहित्य की श्रेणी में किस प्रकार के ग्रन्थ हैं? उनका उल्लेख करें?

4. 'ब्राह्मण' श्रेणी के ग्रन्थों की विषय–वस्तु का विस्त त विवरण दें?

5. 'वेदान्त' शब्द को परिभाषित करें?

4.2 आर्यों का स्थानांतरण

वेद मंत्रों के लेखक आर्य हैं। 19वीं सदी में आर्यों को एक वंश माना जाता था, परन्तु अब इन्हें ऐसे भाषायी समूह के लोगों के रूप में माना जाता है, जो इंडो–यूरोपियन भाषा बोलते थे और उस भाषा से बाद में संस्क त, लैटिन और ग्रीक इत्यादि भाषाओं का जन्म हुआ। इसकी जानकारी इन भाषाओं के शब्दों से मिलती है, जिनकी ध्वनि और अर्थ समान हैं। अतः संस्क त शब्द 'मात्' और 'पित्' लैटिन शब्द मातर और पितर से मिलते हैं। इसी प्रकार 'इनार' शब्द जो कि हित्ती (तुर्की) भाषा से है वेदकाल के 'इन्द्र' शब्द के समान हैं। 'सूरय्यास' और 'मारुत्तश' शब्द जो कस्साइट (मैसोपोटामिया) के शिलालेखों में मिले हैं वेदकालीन 'सूर्य' और 'मारुत' के समान हैं।

माना जाता है कि आर्य लोग मूलतः दक्षिणी रूस से मध्य एशिया के बीच फैले घास के मैदानों (स्टेप्स) में रहते थे। यहाँ से आर्यों के एक समूह ने भारत के उत्तर–पश्चिम में प्रवेश किया और इन्हें इंडो–आर्यन अथवा केवल आर्यों के नाम से पुकारा जाने लगा। स्थानांतरण के पुरातात्त्विक साक्ष्यों से पता चलता है कि ये स्थानांतरित लोग दक्षिणी साइबेरिया स्थित एन्द्रोनोवो सभ्यता से आए थे। यह सभ्यता दो सहस्राब्दि ई.पू. काल में विकसित हुई थी। यहाँ से ये लोग हिन्दुकुश के उत्तर (जिसे बैक्ट्रिया मार्जियाना आर्कियॉलोजिकल कॉम्प्लेक्स कहा जाता था) की ओर अग्रसर हुए और वहाँ से इन्होंने भारत में प्रवेश किया। इस काल में यानी 1900 ई.पू. से 1500 ई.पू. के दौरान इन क्षेत्रों से हमें घोड़ों, आयु पहियों, अग्नि की उपासना और शवदाह के साक्ष्य मिले हैं, और ये सब चीजें बाद में भारत में आर्यों के जीवन का प्रमुख भाग रहीं। इनके अतिरिक्त कलाक तियां और मिट्टी के बर्तनों के अवशेषों से भी यही संकेत मिलते हैं कि लोग मध्य एशिया से दक्षिणी एशियाई क्षेत्रों की ओर स्थानांतरित हुए। परन्तु कुछ विद्वान अभी भी इस तर्क पर बहस करते हैं कि आर्य भारत के स्वदेशी लोग थे और किसी बाहरी स्थान से भारत में नहीं आए।

नए लोग कई हज़ार वर्षों की अवधि के दौरान अनेक समूहों में भारत आए। इस अवधि में देशज आबादी और बाहर से आए नए लोगों में परस्पर कार्यकलाप चलते रहे। परस्पर कार्यकलापों की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप एक मुख्य बात यह हुई कि आर्यों की वैदिक किस्म की भाषा संपूर्ण उत्तर भारत क्षेत्र की प्रमुख भाषा बन गई। इस भाषा में रची गई प्रचलित पुस्तकें, जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है, वैदिक साहित्य हैं।



मानचित्र 4.1 युरेशिया की प्राचीन सभ्यताएँ

पाठगत प्रश्न 4.2

1. आप कैसे जानते हैं कि संस्क त, लैटिन, ग्रीक, हित्ती (हैटाइट) और कैस्साइट भाषाएँ एक ही भाषायी समूह से संबंधित हैं?

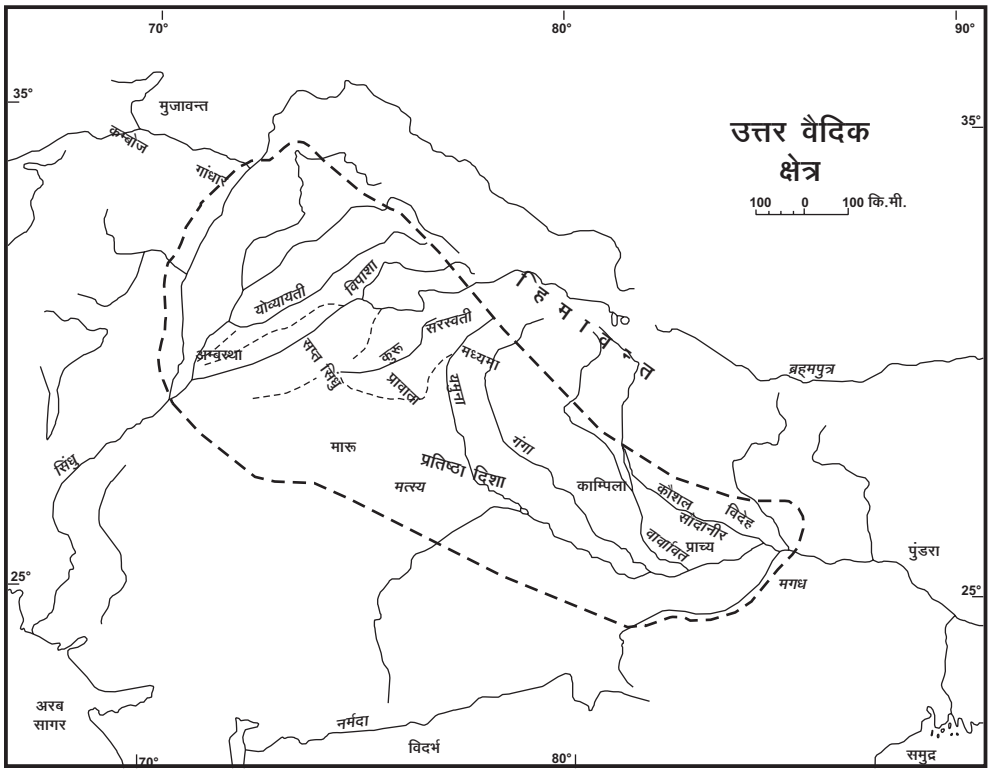
2. आर्यों के स्थानांतरण के पुरातात्त्विक साक्ष्य कहाँ से प्राप्त हुए हैं?

3. वे कौन–से स्थान हैं, जिन्हें आर्य सभ्यता की विशेषताओं वाले क्षेत्रों के रूप में पहचाना गया है?

4. आर्य सभ्यता के प्रमुख स्थलों का उल्लेख करें?

4.3 वैदिक आर्यों का भौगोलिक विस्तार क्षेत्र

प्राचीन आर्य लोग 'सप्त–सिंधु' नाम के क्षेत्र में रहते थे, जिसका अर्थ है सात नदियों वाला क्षेत्र। यह क्षेत्र मुख्यतया दक्षिण एशिया के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र से लेकर यमुना नदी तक के क्षेत्र में फैला है। सात नदियों में शामिल हैं, सिंधु, वितस्ता (झेलम), असिकनी (चिनाब), परुश्नी (रावी), विपाशा (व्यास), शुतुद्री (सतलुज) और सरस्वती। इस क्षेत्र में ऋग्वैदिक काल के लोगों ने निवास किया, युद्ध लड़े, अपने और अन्य पशुओं के झुंडों को चराया पशुओं को घरेलू पालतू जानवर बनाया। धीरे–धीरे पूर्व दिशा की ओर बढ़ते हुए उत्तर वैदिक काल में वे उत्तर प्रदेश (कौशल) और बिहार (विदेह) में पहुंचे। यहाँ आकर वे ऐसे लोगों के संपर्क में आए, जो उनसे भिन्न भाषाएँ बोलते थे और बहुत लम्बे समय से इस क्षेत्र में निवास कर रहे थे।



मानचित्र 4.2 उत्तर वैदिक क्षेत्र



आपकी टिप्पणियाँ



पाठगत प्रश्न 4.3

1. 'सप्तसिंधु' में शामिल सात नदियों के नाम लिखें?

2. उत्तर वैदिक काल में आर्य किस क्षेत्र के लोगों के संपर्क में आए?

4.4 प्रारंभिक वैदिक अर्थव्यवस्था

प्राचीन वैदिक आर्य लोग पशुपालक थे। पशुपालन उनका मुख्य व्यवसाय था। ये दूध, मांस और चमड़ा प्राप्त करने के लिए गाय, भैंस, भेड़ें, बकरियां और घोड़े पालते थे। ऋग्वेद में मिले साहित्यिक साक्ष्यों के विश्लेषण से हमें इनके साक्ष्य मिले हैं। 'गौ' शब्द से अनेक शब्दों का उद्‌भव हुआ, जिसका अर्थ है गाय। धनी व्यक्ति को 'गोमत' कहते थे और बेटी को 'दुहित्री' जिसका अर्थ है, जो गाय का दूध दुहती है। 'गवेषणा' शब्द का शाब्दिक अर्थ है गायों की खोज करना, परन्तु इस शब्द का अर्थ लड़ाई भी है, क्योंकि पशुओं के कारण अनेक लड़ाइयां भी लड़ी गई थीं। गायों को संपूर्ण इच्छाएँ पूरी करने वाली कामदा समझा जाता था। पशुओं की संख्या में व द्धि के लिए प्रार्थनाएं की जाती थीं। ऊपर उल्लिखित संदर्भों और इसके साथ ही अन्य अनेक संदर्भों से ये संकेत मिलते हैं कि ऋग्वैदिक काल के आर्यों के लिए घरेलू पशुपालन सबसे महत्त्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि थी।

परंतु इसका मतलब यह नहीं है कि प्रारंभिक वैदिक काल के लोगों को खेती–बाड़ी का ज्ञान नहीं था। पशु चराने के कार्यों की तुलना में खेती–बाड़ी करने के साक्ष्य बहुत कम मिलते हैं और लगता है ये संदर्भ प्रायः बाद में जोड़े गए हैं। कुछेक संदर्भों से यह पता चलता है कि उन्हें क षि की जानकारी थी और अपनी भोजन संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए वे खेती करते थे। ये 'यव' उगाते थे (आधुनिक जौ या बार्ले), जिसका अर्थ खाद्यान्नों की जाति की फ़सलों के लिए प्रयुक्त किया जाता था।

पशु पालन और लघु–स्तर पर खेती–बाड़ी करने के अतिरिक्त वे अनेक अन्य आर्थिक कार्यकलाप भी करते थे। शिकार, बढ़ईगिरी, रंगाई, कपड़ों की बुनाई, रथ बनाना और धातुओं को गला कर ढलाई के काम इत्यादि जैसे कुछ अन्य काम भी थे, जो वे करते थे। इन कार्यों के द्वारा बनाए गए उत्पादों को वे वस्तुओं की अदला–बदली के काम में लाते थे। परन्तु, वस्तु–विनियम का सबसे पसंदीदा माध्यम थीं, गायें। बलियों के अनुष्ठानों के उपरान्त ब्राह्मण पुजारियों को गायें, घोड़े और सोने के गहने शुल्क के रूप में मिलते थे।



पाठगत प्रश्न 4.4

1. प्राचीन वैदिक आर्यों के व्यवसाय का वर्णन करें?



2. कुछ उदाहरण देकर, पशुपालन के महत्त्व को रेखांकित करें?

3. प्राचीन आर्यों के जीवन में क षि का क्या महत्त्व था? विस्तार से लिखें।

4. प्राचीन आर्यों में कौन–सी आर्थिक गतिविधियां प्रचलित थीं? एक सूची बनाएँ।

5. प्राचीन वैदिक काल के दौरान परस्पर विनिमय प्रणाली का वर्णन करें?

4.5 उत्तर वैदिक काल में आए परिवर्तन

उत्तर वैदिक काल में क षि, वैदिक लोगों का मुख्य व्यवसाय बन गया थी। खेती–बाड़ी की प्रक्रिया शुरू करने के लिए अनेक धार्मिक अनुष्ठान प्रारंभ किए गए थे। इसमें यह भी कहा गया कि हल चलाने के लिए छह और आठ जोड़े बैल जोते जाएं। भैंसे को खेती के उद्देश्य से घरों में पाला जाता था। दलदली भूमि पर हल चलाने के लिए यह पशु बहुत ही उपयोगी था। इन्द्र देवता को इस काम में नया उपनाम दिया गया था 'क षि का देवता'। पौधों से उगाए जाने वाले खाद्य पदार्थों की संख्या में काफी व द्धि हुई। जौ के अतिरिक्त अब ये लोग गेहूँ, चावल, दालों, मसूर, ज्वार–बाजरा, गन्ने इत्यादि की खेती करते थे। पका हुआ चावल 'दान–दक्षिणा' की चीज़ों में शामिल था। इस प्रकार खाद्य उत्पादों की शुरुआत के बाद क षि के उत्पादनों को धार्मिक अनुष्ठानों में दान किया जाने लगा था। तिल, जिसमें से सर्वाधिक खाद्य वनस्पति–तेल निकाला जाता था, धार्मिक कर्मकांड में प्रयोग किया जाने लगा था।

उत्तर वैदिक काल में आर्य सभ्यता के विस्तार का एक मुख्य तत्त्व, 1000 ई.पू. के आस–पास लोहे के प्रयोग की शुरुआत होना था। ऋग्वैदिक काल के लोग 'अयस' नाम की जिस धातु से परिचित थे वह शायद 'तांबा' या 'कांसा' रही होगी। उत्तर वैदिक काल में 'अयस' के साथ 'श्याम' या 'क ष्ण' का विशेषण जोड़ा गया, जिसका अर्थ था 'काला' और इसे लोहे के संकेतक के रूप में जाना जाता था। पुरातात्त्विक साक्ष्यों से पता चला है कि लोहे का प्रयोग 1000 ई.पू. के आसपास आरंभ हुआ था, जिसे उत्तर वैदिक साहित्य का काल माना जाता है।

भारत के उत्तरी और पूर्वी भागों में, भारत के उत्तर–पश्चिमी भागों से अधिक वर्षा होती थी, जहाँ बाद में आर्य लोग स्थानांतरित हुए थे। वर्षा के परिणामस्वरूप यह क्षेत्र घने जंगलों से भरा था, जिनका सफाया ऋग्वैदिक काल के लोगों द्वारा प्रयोग किए जाने वाले तांबे या पत्थर के औजारों से होना संभव नहीं था। घने वर्षा वनों का अच्छे ढंग से सफाया करने के लिए लोहे के औजारों ने बहुत सहायता की, खास तौर पर जलावन के बाद बचे पेड़ों के बड़े–बड़े ठूंठों को पहले की तुलना में कम समय में विस्त त जंगली भू–भागों को क षि योग्य भूमि में परिवर्तित किया जा सकता था। लोहे के हल से गहरी मिट्टी की जुताई की जा सकती थी ताकि भूमि को उपजाऊ बनाया जा सके। ऐसी संभावना है कि यह प्रक्रिया ऋग्वैदिक काल के उत्तर काल में प्रारंभ हो गई थी, परन्तु लोहे से बने औजारों और उपकरणों के प्रयोग करने के प्रभावों के साक्ष्य उत्तर वैदिक काल के अंतिम चरण में ही ज्ञात हुए।

उत्तर वैदिक काल के दौरान क षि आधारित अर्थव्यवस्था के विस्तार से जनसंख्या में लगातार व द्धि होती गई। चित्रकारी किए गए सुरमई रंग के बर्तनों (पी.जी. डब्ल्यू.) की संख्या और आकार बढ़ने के अवशेष मिलने के कारण दोआब क्षेत्रों की आबादी बढ़ने के साक्ष्य मिलते हैं। समय बीतने के साथ–साथ वैदिक लोगों को मौसमों, खाद और सिंचाई की बेहतरीन जानकारी भी हासिल हो गई थी। इन सभी विकासों के परिणामस्वरूप उत्तर वैदिक काल के अंतिम चरण में कुछ स्थलों, जैसे हस्तिनापुर और कौशांबी में वास्तविक रूप में विस्तार हुआ। इन स्थलों में धीरे–धीरे नगरों की विशेषताएं विकसित होनी शुरू हो गईं थीं। ऐसे अर्धविकसित नगर जहां मुख्तः श्रेष्ठि राजकुमार, पादरी और कारीगर रहते थे, उनकी आबादी का भरण–पोषण किसान लोग करते थे, जो अपनी इच्छा या बिना इच्छा से अपने अनाज उन्हें देते थे।

पाठगत प्रश्न 4.5

1. उत्तर वैदिक काल के दौरान कौन–कौन से प्रमुख आर्थिक कार्यकलाप थे?

2. क षि का महत्त्व बढ़ने के साथ–साथ आर्यों के जीवन में कौन–से परिवर्तन आए?

3. 'क षि देवता' किसे कहा जाता था?

4. 'तिल' को धार्मिक अनुष्ठानों में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण क्यों समझा जाता है?

5. उत्तर वैदिक काल में लोहे के बने उपकरणों के प्रयोग से क षि में क्या सहायता मिली?

6. चित्रित सुरमई बर्तन प्रयोग करने वाले स्थलों के आकार बढ़ने के पीछे क्या कारण थे?

4.6 प्रारंभिक वैदिक समाज

ऋग्वैदिक समाज की मूलभूत इकाई परिवार थी। यह पिता प्रधान समाज था और विवाह की परंपरा थी। एक पत्नीव्रत धर्म था परन्तु श्रेष्ठिजन कभी–कभी अनेक पत्नियां भी रखते थे। बालिग होने पर ही शादियां होती थीं और विवाह के बाद पत्नी पति के घर में जाती थी। परिवार एक विशाल समूह का हिस्सा होता था, जिसे 'विस' या 'वंश' कहते थे। एक से अधिक वंशों के समूह को 'जन' या 'जाति' कहा जाता था। 'जन' सबसे बड़ी सामाजिक इकाई थी। एक वंश के लोग परस्पर रक्त संबंधों से जुड़े होते थे। किसी जाति के सदस्य बनने का आधार उस जाति में जन्म लेना था न कि किसी विशेष क्षेत्र में निवास होना। इस तरह भरत जाति के लोगों को भारत कहा जाता था। इसमें किसी प्रकार के



क्षेत्र की कोई भूमिका नहीं थी। ऋग्वैदिक समाज बहुत ही साधारण और आम तौर पर 'सामंतावादी' समाज था। इसमें किसी प्रकार का जातीय वर्गीकरण नहीं था। व्यवसाय जन्म पर आधारित नहीं थे, बल्कि परिवार के विभिन्न सदस्य अलग–अलग व्यवसाय कर सकते थे। परन्तु उस काल में कुछ भिन्नताएं अवश्य मौजूद थीं। आर्यों और अनार्यों में वर्ण या रंग भिन्नता का आधार था। आर्य लोग गौर–वर्ण के थे, जबकि गैर–आर्य (अनार्य) देशज लोग सांवले रंग के थे और अलग भाषा का प्रयोग करते थे। अतः ऋग्वेद में 'आर्य वर्ण' और 'दास वर्ण' का उल्लेख मिलता है। यहाँ 'दास' शब्द का उपयोग उस समूह के लोगों के लिए दिया गया है, जो ऋग्वैदिक लोगों से अलग थे। बाद में 'दास' का अर्थ गुलाम (सेवक) के रूप में रूढ़ हो गया। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य चीज़ें भी चलन में थीं, जैसे प्रमुख व्यक्तियों और पुजारियों के हाथों में युद्ध में लूटे माल का बड़ा हिस्सा हाथ लगने के परिणामस्वरूप उत्तर वैदिक काल में जाति के भीतर ही कुछ असमानताएँ पनप गई थीं। ऋग्वैदिक जाति में क्षत्रिय, पुजारी (पंडित) और सामान्य व्यक्तियों के तीन वर्ग थे। 'शूद्र' वर्ग ऋग्वैदिक काल के अंत में ही अस्तित्व में आया। इसका मतलब है कि प्रारंभिक वैदिक काल में समाज का वर्गीकरण अत्यधिक कठोर नहीं था। ऋग्वेद की इस काव्य रचना से इसका संकेत मिलता है जिसका भावार्थ है : 'मैं एक कवि हूं, मेरे पिता चिकित्सक हैं, और मेरी माता चक्की पर अन्न पीसती हैं, सम द्धि की कामना करते हैं, जिसके लिए हमारी विविध योजनाएँ हैं, हम पशुओं की तरह अपनी इच्छाएँ पूरी करते हैं। महिलाओं का समाज में बहुत ही सम्मानजनक स्थान था। उपयुक्त उम्र में उनका विवाह होता था और उन्हें अपनी पसंद का पति चुनने का अधिकार था। 'सभा' और 'समिति' जैसे संगठनों के कार्यों में भी वे भाग ले सकती थीं।

पाठगत प्रश्न 4.6

1. प्रारंभिक वैदिक काल में होने वाले विवाहों के बारे में विवरण दें?

   _____

2. क्या प्रारंभिक वैदिककालीन समाज समतावादी प्रव त्ति का था? अपने उत्तर को कारण सहित प्रमाणित करें?

   _____

3. प्रारंभिक वैदिक समाज के वर्गीकरण का आधार क्या था?

   _____

4. प्रारंभिक वैदिक काल में असमानताएँ किस प्रकार से आईं?

   _____

4.7 उत्तर वैदिक काल के सामाजिक परिवर्तन

परिवार अभी भी उत्तर वैदिक समाज की बुनियादी इकाई थी। तथापि इसके रचनात्मक ढाँचे में परितर्वन आ गया था। उत्तर वैदिक कालीन परिवार काफी विशाल हो गए थे, जिन्हें संयुक्त परिवार कहा जाता था, जिसमें तीन या चार पीढ़ियों के लोग एक साथ एक ही परिवार में रहते थे। पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अतरंजीखेड़ा और अहिछत्र में मिले चूल्हों

की कतारों से पता चलता है कि यहाँ सामूहिक भोज के लिए या फिर विशाल परिवारों के लिए भोजन पकाया जाता होगा। गोत्र की संकल्पना भी इसी काल में विकसित हुई इसका अर्थ यह हुआ कि एक ही गोत्र के लोग एक ही वंशावली से थे और एक ही गोत्र के व्यक्तियों में परस्पर विवाह संबंध नहीं होते थे। यद्यपि बहुपति प्रथा भी प्रचलित थी, परन्तु एक पत्नी विवाह प्रथा को ही बेहतर समझा जाता था। इस काल के दौरान महिलाओं पर कुछ प्रतिबंध भी लगाए गए थे। एक ग्रन्थ में उल्लेख मिलता है कि नारी को जूए और मद्यपान की तरह व्यसन माना जाता था। एक अन्य ग्रन्थ में पुत्री को सभी दुखों के मूल के रूप में वर्णित किया गया है। महिला विवाह के बाद अपने पति के घर में रहती थी। सार्वजनिक सभाओं में महिलाओं की भागीदारी पर प्रतिबंध लगा दिया गया था।

तथापि सबसे बड़ा परितर्वन था, 'वर्ण व्यवस्था' के रूप में समाज के वर्गीकरण का उद्‌भव और विकास। समाज को जिन चार वर्णों में बांटा गया था, वे थे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इस काल में बलियों और धार्मिक कर्मकांड की बढ़ती संख्या ने ब्राह्मणों को बहुत हीशक्तिशाली बना दिया था। वे विभिन्न प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान कराते थे, जिनमें क षि से संबंधित कार्यकलापों के विभिन्न चरणों से संबद्ध अनुष्ठान भी सम्मिलित थे। इसकी वजह से वे बहुत ही महत्त्वपूर्ण समझे जाने लगे थे। इसकी अगली सामाजिक श्रेणी में आते थे 'क्षत्रिय' जो शासक वर्ग में थे। ब्राह्मणों के साथ मिलकर ये जीवन के सभी पक्षों पर नियंत्रण करते थे। 'वैश्य वर्ण' जो बहुत बड़ी संख्या में थे, क षि कार्यों के साथ–साथ व्यापार और कारीगरी के काम भी करते थे। ब्राह्मण और क्षत्रिय, वैश्यों द्वारा दिए जाने वाले दान–दक्षिणा (उपहार और कर) पर निर्भर थे। 'शूद्र' अर्थात् चौथे वर्ण के लोग सामाजिक श्रेणी क्रम में सबसे निचले स्तर पर आते थे। उन्हें तीनों उच्च वर्णों की सेवा करने का आदेश दिया गया था। उन्हें उपनयन संस्कार (शिक्षा ग्रहण करने के लिए किया जाने वाला पवित्र यज्ञोपवीत संस्कार) जैसे धार्मिक क त्यों का अधिकार नहीं था। अन्य तीनों वर्णों के लोगों को इस संस्कार की अनुमति थी और इसीलिए इन्हें 'द्विज' कहा जाता था जिसका सांकेतिक अर्थ है कि वे दो बार जन्म लेते थे (द्वि = दो, ज = जन्म लेना) इसे शूद्रों को कमजोर बनाने और धार्मिक कर्मकांड में बुराइयों की संकल्पना की शुरुआत के रूप में माना जा सकता है।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण संस्था जिसने इस काल में रूप लेना प्रारंभ किया, वह थी 'आश्रम' व्यवस्था या जीवन की विभिन्न अवस्थाएँ। 'ब्रह्मचर्य' (विद्यार्थी जीवन), 'ग हस्थाश्रम' (घर मे रहना), 'वानप्रस्थ' (वैराग्य) अवस्थाओं का वर्णन ग्रन्थों में मिलता है। बाद में 'संन्यास आश्रम' की चौथी अवस्था को भी जीवन में जोड़ा गया। वर्ण व्यवस्था के साथ इसे वर्णाश्रम धर्म का नाम दिया गया था।

पाठगत प्रश्न 4.7

1. उत्तर वैदिक कालीन परिवार की प्रक ति क्या थी?



2. 'गोत्र' शब्द से आप क्या समझते हैं?

3. किन शब्दों से संकेत मिलता है कि शूद्रों को अशक्त बनाने का प्रारंभ हो रहा है?

4. 'वर्णाश्रम धर्म' की व्याख्या करें?

4.8 प्रारंभिक वैदिक धर्म

शारीरिक सुरक्षा और सुख–सम द्धि की सामग्री प्राप्त करने के लिए देवताओं के समक्ष प्रार्थना – पूजा अर्चना ऋग्वैदिक काल के लोग प्रमुखता से करते थे। ऋग्वैदिक काल के देवता प्राक तिक शक्तियों के विभिन्न रूप थे, जैसे वर्षा, तूफान, सूर्य इत्यादि। इन देवताओं के लक्षणों और विशेषताओं से भी यही प्रतिबिंबित होता है कि समाज का स्वरूप जनजातीय और पित सत्तात्मक (पुरुष प्रधान) था, क्योंकि उनके ग्रन्थों में किसी देवी के अस्तित्व का उल्लेख नहीं मिलता। इन्द्र, अग्नि, वरुण, मित्र, द्यौ, पुष्य, यम, सोम इत्यादि सभी देवता पुरुष देव थे। इसकी तुलना में हमारे पास कुछ ही देवियां हैं, जैसे उषा, सरस्वती, प थ्वी इत्यादि जिन्हें धर्म की व्याख्या में द्वितीय स्थान पर रखा गया है।

विभिन्न देवताओं के कार्यों से समाज में उनकी आवश्यकता का पता चलता है। अतः ऋग्वैदिक काल के लोग इन्द्र की युद्ध के देवता की तरह पूजा करते थे। ऋग्वेद में अनेक स्थानों पर इन्द्र देव का उल्लेख मिलता है। उसके हाथ में वज्र होता है और इन्हें मौसम के ऐसे देवता के रूप में भी पूजा जाता है, जो वर्षा लाते हैं। पवन देव मारुत, युद्धों में इन्द्र की उसी प्रकार सहायता करते थे, जैसे जनजातीय लोग जनजातीय युद्धों में अपने नायकों की सहायता करते थे। 'अग्नि देव' जो आग के देवता थे, उन्हें घर का देव मानते थे और उन्हें देवताओं और मनुष्य के बीच की कड़ी माना जाता था। सोम का संबंध पौधों और जड़ी–बूटियों के साथ था। 'सोम' एक ऐसा पौधा था, जिससे मादक रस निकाला जाता था। बलि दिए जाने के समय सोम रस का पान किया जाता था। 'वरुण' एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण देव थे, जिसे ब्रह्मांड का व्यवस्थापक माना जाता है, जिसे 'रीत' कहते थे। यह 'रीत' जनजातीय व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण पक्ष थी। पुष्य सड़कों, चरवाहों और पालतू पशुओं का देवता था। पशु चराने वाले खानाबदोशों के जीवन में इस देवता का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान रहा होगा। अन्य देवों का भी इसी प्रकार प्रक ति और जीवन के अन्य पक्षों से संबंध था।

इन सभी देवताओं का आह्वान किया जाता था और 'यज्ञों' या 'बलिदानों' के समय इनकी पूजा की जाती थी। इन बलियों की व्यवस्था जनजातियों के प्रमुख व्यक्तियों द्वारा की जाती थी और संपूर्ण कर्मकांड (ब्राह्मणों) पुजारियों द्वारा कराया जाता था। बलियाँ दिए जाने के समय जिन देवताओं का आह्वान किया जाता था, वे इन बलिदानों के फलस्वरूप युद्धों में विजय, संतानोत्पत्ति, पशु धन में व द्धि और दीर्घायु का वरदान देते थे। इस कार्य में ब्राह्मणों को दान–दक्षिणा के रूप में बहुत बड़ी संख्या में उपहार मिलते थे। ध्यान देने की बात है कि संपूर्ण वैदिक काल के दौरान लोगों ने किसी मंदिर का निर्माण नहीं किया और न ही किसी प्रकार की मूर्ति की पूजा–अर्चना की।



आपकी टिप्पणियाँ

पाठगत प्रश्न 4.8

1. किस आधार पर हम यह मानते हैं कि ऋग्वैदिक काल के देवताओं के लक्षणों से जनजातीय और पित सत्तात्मक समाज के स्वरूप का पता चलता है?

2. ऋग्वैदिक काल के 'इन्द्र देवता' की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें?

3. जनजातियों के प्रमुख 'यज्ञों' का आयोजन क्यों करते थे?

4. ऋवैदिक लोगों के लिए पुष्य देव का क्या महत्त्व था?

5. आग के देवता 'अग्नि देव' का क्या मुख्य कार्य था?

4.9 उत्तर वैदिक काल में हुए परिवर्तन

हमने पहले ही यह रेखांकित किया है कि उत्तर वैदिक काल में खेती–बाड़ी लोगों का मुख्य कार्य बन चुका था। भौतिक जीवन में आए परिवर्तनों के परिणामस्वरूप देवी और देवताओं के प्रति उनकी अभिरुचियों में भी परिवर्तन आया। स्थानीय अनार्य लोगों के साथ परस्पर लगातार लेन–देन ने भी इन परिवर्तनों में योगदान दिया। इस प्रकार 'विष्णु' और 'रुद्र' जो ऋग्वैदिक काल में कम महत्त्वपूर्ण देवता थे, अब बहुत ही महत्त्वपूर्ण देवता माने जाने लगे थे। तथापि हमें उत्तर वैदिक काल के किसी भी साहित्य में विभिन्न अवतारों या विष्णु के उन अवतारों का कोई संकेत नहीं मिलता, जिन से हम आज परिचित हैं।

उस काल की एक और महत्त्वपूर्ण विशेषता थी, बार–बार यज्ञ कराना और इनकी संख्या में व द्धि और इन यज्ञों का समापन प्रायः बहुत बड़ी संख्या में पशु बलि दिए जाने से होता था। शायद इसका कारण था, ब्राह्मण वर्ग का बढ़ता महत्त्व और बदलते समाज में अपना प्रभुत्व बनाए रखने के लिए किए गए उनेक प्रयास। इन यज्ञों से ब्राह्मणों को बहुत बड़ी मात्रा में दान–दक्षिणा और सम्पदा मिलती थी। कुछ प्रमुख यज्ञ थे – 'अश्वमेध', 'वाजपेय' और 'राजसूय' यज्ञ इत्यादि। महाभारत और रामायण की गाथाओं में आपने इन यज्ञों के बारे में अवश्य सुना होगा। इन यज्ञों, जो कि कई दिनों तक चलते थे, इनके संपन्न होने पर उपहारों का अधिकांश हिस्सा ब्राह्मणों को मिलता था। इन यज्ञों को करने का दोहरा उद्देश्य था। प्रथम तो इनसे लोगों के ऊपर वर्चस्व स्थापित होता था और दूसरे राजनीतिक द ष्टि से विशिष्ट प्रादेशिक क्षेत्र में राजनीतिक महत्ता स्थापित होती थी, क्योंकि इन बलियों में संपूर्ण राज्य क्षेत्रों से लोगों को आमंत्रित किया जाता था।

आपको जानकर आश्चर्य होगा कि उत्तर वैदिक काल में इस पशुवध का विरोध होना शुरू हो गया था। बहुत बड़ी संख्या में पशुओं और अन्य जानवरों की यज्ञ के अन्त में बलि दिए जाने के कारण आर्थिक विकास में बाधा आती थी क्योंकि पशुपालन एक प्रमुख



व्यवसाय था। इसलिए वेदांत के उपनिषद कहे जाने वाले साहित्य में सम द्धि और कल्याण के लिए सद्व्यवहार और आत्म–त्याग की अनुशंसा की गई थी। उपनिषदों में भारतीय दर्शन के दो मूल सिद्धांत निहित हैं यानी कर्म और आत्मा का पुनर्जन्म लेना अर्थात कर्मानुसार पुनः जन्म लेना। इन ग्रन्थों के अनुसार वास्तविक परमानन्द 'मोक्ष' यानी मानव को जन्म–मरण के आवागमन से मुक्ति मिलने पर मिलता है।

पाठगत प्रश्न 4.9

1. उत्तर वैदिक काल में बड़ी संख्या में यज्ञों में व द्धि के क्या कारण थे?

2. यज्ञ आयोजित कराने के क्या उद्देश्य थे?

3. यज्ञों के महत्त्व के बारे में विस्तार से लिखें?

4. लोगों ने यज्ञ करवाने का विरोध करना क्यों शुरू कर दिया था?

4.10 प्रारंभिक वैदिक राज्य व्यवस्था

ऊपर हमने उल्लेख किया है कि आर्यों की प्रमुख सामाजिक इकाई थी 'जन'। इस इकाई का प्रमुख राजनीतिक नेता होता था, जिसे 'राजन' कहते थे। इस प्रमुख का मुख्य काम था, जनता और पशुधन की शत्रुओं से रक्षा करना। अपने इस काम में उसकी सहायता करती थीं, जनजातीय संस्थाएँ जिन्हें सभा, समिति, विदिथा, गण और परिषद कहते थे। इन सबमें 'सभा' और 'समिति' सबसे महत्त्वपूर्ण संगठन थे। इन सभाओं में जीवन के सभी पक्षों पर विचार–विमर्श होता था। इनमें युद्ध, युद्धों में प्राप्त आय का वितरण, न्यायिक और धार्मिक क त्य इत्यादि कुछ भी शामिल हो सकता था। इस प्रकार ये सभाएँ एक तरह से इन राजनीतिक प्रमुखों की शक्तियों को नियंत्रित करती थीं। दिलचस्प बात यह है कि महिलाएं भी इन सभाओं और समितियों के विचार–विमर्श में भाग ले सकती थीं। प्रमुख का पद वंशानुगत नहीं था। आम तौर पर उसका चुनाव जनजाति करती थी। यद्यपि उसके उत्तराधिकारी उसी प्रमुख के परिवार से होने के संकेत मिलते हैं, परन्तु यह ज्येष्ठाधिकार (यानी सबसे बड़े पुत्र का पिता का स्थान ग्रहण करना) के नियम पर आधारित नहीं था। अनेक मामलों में पुरोहित मुखिया को परामर्श देता था। पुरोहित के अतिरिक्त कुछ सीमित संख्या में पदाधिकारी/कर्मचारी भी होते थे, जो मुखिया को दिन–प्रति–दिन के जनजातीय मामलों में सहायता करते थे। सेनानी, कुलापा, ग्रामणी इत्यादि कुछ कार्मिक थे, जिनके नामों का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। सेना स्थायी योद्धाओं का समूह नहीं था और इसमें योग्य जनजातीय व्यक्ति भी शामिल थे, जिन्हें केवल युद्ध के दौरान ही सक्रिय किया जाता था। 'तक्षण' यानी बढ़ई और 'रथकार' यानी रथ–निर्माता, रथ बनाने की सरकारी जिम्मेदारी निभाते थे। कर संग्रह के लिए किसी भी कर्मचारी का उल्लेख नहीं मिलता है। लोग जो भी भेंट मुखिया को देते थे उसे 'बलि'

कहते थे और यह आम जनजातीय लोगों द्वारा विशिष्ट अवसरों पर दिया जाने वाला स्वैच्छिक योगदान था। इससे यही द ष्टिगोचर होता है कि प्रारंभिक वैदिक कालीन राज्य व्यवस्था बिलकुल भी जटिल नहीं थी और सभी जनजातीय लोगों की सहायता और भागीदारी पर आधारित थी। परन्तु, उत्तर वैदिक काल में इस परिस्थिति में परिवर्तन आ गया था, जिसका परिचय आगे दिया जाएगा।

पाठगत प्रश्न 4.10

1. 'सभा' और 'समिति' के कार्यों का वर्णन करें?

2. 'राजन' का मुख्य काम क्या था?

3. प्रारंभिक वैदिक काल में 'बलि' की क्या प्रव त्ति थी?

4. विविध मामलों में मुखिया के मुख्य कार्यकर्ताओं की सूची बनाएं?

4.11 उत्तर वैदिक काल में आए परिवर्तन

उत्तर वैदिक काल के दौरान भौतिक और सामाजिक जीवन में आए परिवर्तनों का प्रभाव राजनीतिक क्षेत्र में आए परिवर्तनों पर भी पड़ा। प्रमुख नेता से लोगों का नियंत्रण ढीला पड़ने लगा और जिसके परिणामस्वरूप लोकप्रिय संस्थाएँ धीरे–धीरे समाप्त हो गईं।

मुखिया का पद वंशानुगत पिता के बाद पुत्र बन गया था। इस काल के साहित्य में उल्लेख मिलता है कि लोगों में धारणा थी कि राजा का पद दैवीय होता है। ब्राह्मणों ने मुखियाओं को इस प्रक्रिया में सहायता की। 'वाजपेय' और 'राजसूय' जैसे राज्याभिषेक के विस्त त धार्मिक कर्मकांड 'मुखिया' का प्राधिकार स्थापित करते थे। जैसे–जैसे मुखिया की शक्ति बढ़ती गई, जनप्रिय सभाओं के प्राधिकार कम होने लगे। मुखिया को प्रशासनिक सहायता देने के लिए अधिकारियों की नियुक्ति की जाती थी और उन्होंने प्रमुख परामर्शदाताओं के रूप में लोकप्रिय सभा के कार्यों को हथिया लिया था।

इस काल के दौरान एक प्रारंभिक सेना की संरचना भी राजनीतिक व्यवस्था का एक महत्त्वपूर्ण तत्व था। इन सभी की जीविका लोगों द्वारा दिए जाने वाले एक प्रकार के कर जैसे बलि, 'शुल्क' और 'भाग' पर निर्भर थी।

इस काल में मुखिया क्षत्रिय वर्ण से संबद्ध थे और उन्होंने ब्राह्मणों के सहयोजन से 'धर्म' के नाम पर लोगों पर नियंत्रण करने का प्रयास किया। परन्तु इन सभी तत्वों से यह जानकारी नहीं मिलती कि 'जनपद' या 'प्रादेशिक राज्य' अपनी सभी विशेषताओं, जैसे स्थायी सेना और नौकरशाही की व्यवस्था, का उद्भव उत्तर वैदिक काल में हुआ



परन्तु यह प्रक्रिया छठी सदी ईसा पूर्व के आसपास वैदिक काल के तुरंत बाद शुरू हुई, जब हमें उत्तर भारत में सोलह महाजनपदों के उत्थान की जानकारी मिलती है।

पाठगत प्रश्न 4.11

1. उत्तर वैदिक काल में मुखिया के पद की प्रक ति का विस्त त वर्णन करें?

2. उत्तर वैदिक काल के दौरान जनप्रिय सभाओं की शक्तियों में कमी क्यों आ गई थी?

3. राज्याभिषेक संस्कार के क्या–क्या कार्य थे?

आपने क्या सीखा

हड़प्पा कालीन नगरीकरण के पतन के पश्चात देखने में आया कि भारत के उत्तर–पश्चिमी क्षितिज पर, नए किस्म के लोगों का आगमंन दिखाई दिया। ये लोग पशुओं के झुंड रखते थे और दक्षिणी रूस के विभिन्न भागों से निकलकर समूहों में सभी जगह पर फैले थे। ऐसे अनेक लोगों के समूह अलग–अलग समय में अफ़गानिस्तान के मार्ग से भारत में प्रविष्ट हुए। उनकी भाषा, जिसे इंडो–आर्यन अथवा संस्क त कहा जाता था, स्थानीय भाषाओं से शब्द लेते हुए प्रधान भाषा बन गई थी। उनकी प्राचीनतम रचना थी 'ऋग्वेद' और इसके पश्चात अनेक प्रकार की साहित्यक रचनाएं लिखी गईं। इन लोगों की सभ्यता के संबंध में हमें इस वैदिक ग्रन्थावली से जानकारी मिलती है। प्रारंभ में आर्य लोग सात नदियों के अपवाह क्षेत्र 'सप्त सिंधु' में रहते थे, जिनका विस्तार आज के पंजाब और हरियाणा प्रदेशों में मिलता है। तत्पश्चात वे लोग गंगा, यमुना, सरयू, घाघरा और गंडक नदियों के बहाव क्षेत्र की ओर अग्रसर हुए जो कि आज के पूर्वी उत्तर–प्रदेश और पश्चिमी बिहार के आधुनिक प्रदेशों में से निकलती हैं।

आर्यन, जो पशु पालने वाले चरवाहे थे, बाद में किसान बन गए थे और जिन्हें लोहे की तकनीक का ज्ञान था, गंगा–यमुना के दोआब क्षेत्र में बड़ी बस्तियां बसाने में कामयाब हो गये थे। पी० जी० डब्ल्यू०, पुरातात्त्विक साक्ष्यों और उत्तर वैदिक साहित्य में निहित विषयों से हमें यह जानकारी मिलती है। इस परिवर्तन के सिलसिलेवार गहन अध्ययन से जीवन के अन्य क्षेत्रों में हुए परिवर्तन की कड़ी की भी जानकारी मिलती है। प्रारंभिक वैदिक काल में समतावादी, जनजातीय सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्था से वैदिक काल के अंतिम काल तक आते–आते आर्य लोगों में क्षेत्रीयता के आधार पर वर्णों में विभाजित सामाजिक व्यवस्था स्थापित हो चुकी थी। जनजातीय मुखियाओं ने वंशगत स्थान ग्रहण कर लिया था और शासकीय कार्मिकों ने लोकप्रिय सभा–समितियों की भूमिका को बलपूर्वक हथिया लिया था। यज्ञों की बढ़ती संख्या से राजाओं और ब्राह्मणों के महत्त्व का पता चलता है। इसी प्रकार जो देवता पहले बहुत महत्त्वपूर्ण

स्थान रखते थे अब अपना महत्त्व खो चुके थे, और उनका स्थान नए देवताओं ने ले लिया था। इन सभी परिवर्तनों के परिणामस्वरूप 'जनपदों' और 'महाजनपदों' का जन्म हुआ जो छठी सदी ईसा पूर्व काल में पहले से बड़े प्रादेशिक राज्य थे।

पाठांत प्रश्न

1. आर्य कौन थे? वे कहाँ से आकर सब जगहों पर बस गए?
2. प्रारंभिक वैदिक काल के लोगों के भौगोलिक स्थान के बारे में लिखिए।
3. आर्यों की सभ्यता की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें।
4. उत्तर वैदिक काल के दौरान आर्यों की अर्थव्यवस्था की पद्धतियों में आए परिवर्तनों का उल्लेख करें।
5. लोहे के तकनीकी ज्ञान से क षि के विस्तार में किस प्रकार सहायता मिली?
6. उत्तर वैदिक काल में महिलाओं पर किस प्रकार के प्रतिबंध लगाए गए थे?
7. उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मण कैसे इतने महत्त्वपूर्ण बन गए थे?
8. प्रारंभिक वैदिक काल में जनप्रिय सभाओं के क्या कार्य थे, उनका वर्णन करें?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

4.1

1. पवित्र ज्ञान
2. ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद
3. आरण्यक और उपनिषद
4. मंत्रों और बलि देने संबंधी धार्मिक अनुष्ठानों की टीका (परिभाषा) संबंधी गद्य–ग्रन्थावली
5. दार्शनिक विचार–विमर्श

4.2

1. इन भाषाओं में, समान ध्वनि और अर्थ वाले शब्द हैं।
2. दक्षिणी साइबेरिया में स्थित एन्द्रोनोवो सभ्यता।
3. बैक्ट्रिया–मार्जियाना
4. घोड़ों, पहियों, आग की भट्ठियाँ, शवदाह के साक्ष्य।

4.3

1. सिंधु, झेलम, चिनाब, रावी, व्यास, सतलुज, सरस्वती



2. उत्तर प्रदेश (कौशल) और उत्तरी बिहार (विदेह)

4.4

1. चरवाहे
2. देखें 4.4 अनुच्छेद 1
3. देखें 4.4 अनुच्छेद 2
4. शिकार, बढ़ईगिरी, प्रशिक्षण, कपड़ा बुनाई, जुआ (द्यूतक्रीड़ा), रथ–निर्माण और धातुओं को गला कर ढलाई
5. गायों के माध्यम से परस्पर वस्तु–विनिमय

4.5

1. कषि
2. देखें 4.5 अनुच्छेद 2
3. इन्द्र देवता
4. यह पहला वनस्पति तेल था, जिसका बड़े पैमाने पर प्रयोग होता था।
5. घने जंगलों की कटाई के लिए; लोहे के हल से मिट्टी को उपजाऊ बनाने के लिए इसकी जुताई (ऊपर–नीचे) की जा सकती थी।
6. कषि पर आधारित अर्थव्यवस्था के विस्तार और जनसंख्या में लगातार वद्धि के कारण।

4.6

1. एक–पत्नी धर्म और बहु–पत्नी धर्म
2. हां, कोई जाति विभाजन नहीं, व्यवसाय जन्म के आधार पर नहीं थे और कोई भी व्यवसाय वर्जित नहीं था।
3. वर्ण या रंग के आधार पर
4. मुखियाओं और पुजारियों के हाथों में, युद्ध में प्राप्त माल (पुरस्कारों) का ज्यादा भाग हाथ लगना।

4.7

1. संयुक्त परिवार
2. एक ही पूर्वज की संतान, एक समान गोत्र के सदस्यों (व्यक्तियों) में विवाह संबंध वर्जित
3. उपनयन संस्कार के अधिकारी नहीं थे (धार्मिक बुराई)
4. 4.7 अंतिम अनुच्छेद



आपकी टिप्पणियाँ

4.8

1. देखें 4.8
2. मौसम का देवता जिसके हाथ में वज्र है।
3. देवताओं के आह्वान और आराधना के लिए
4. क्योंकि वह मार्गों, चरवाहों और पशुओं का देवता था
5. देवों और मानवों के मध्य कड़ी के रूप में था।

4.9

1. ब्राह्मण वर्ण के लोगों के बढ़ते महत्त्व और अपनी श्रेष्ठता बनाए रखने के प्रयासों के कारण।
2. लोगों के ऊपर मुखियाओं द्वारा अपना प्राधिकार स्थापित करने और राजनीति में प्रादेशिक वर्चस्व पुनः स्थापित करने के लिए।
3. दान–दक्षिणा के रूप में धन की अत्यधिक मात्रा ब्राह्मणों को मिलती थी।
4. इससे उनके आर्थिक जीवन पर प्रभाव पड़ रहा था।

4.10

1. जीवन के सभी पक्षों पर विचार के लिए जैसे युद्ध में जीते गए पुरस्कारों के वितरण, न्यायिक और धार्मिक कर्मकाण्ड।
2. जन और पशुधन की शत्रुओं से रक्षा के लिए।
3. साधारण जनजातीय लोगों द्वारा विशेष अवसरों पर दिया जाने वाला स्वैच्छिक योगदान।
4. पुरोहित, सेनानी, कुलाप, ग्रामणी।

4.11

1. यह वंशानुगत बन गया था।
2. क्योंकि मुखिया अधिक शक्तिशाली बन गए थे, प्रशासकीय कामों में मुखिया की सहायता के लिए बनाए गए अधिकारियों ने बलपूर्वक 'जनप्रिय सभाओं' के कार्यों को हथिया लिया था।
3. मुखिया के प्राधिकार स्थापित करने के लिए।

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. देखें 4.2 अनुच्छेद 1 और 2
2. देखें अनुच्छेद 4.3
3. देखें अनुच्छेद 4.2 और 2
4. देखें 4.5



5. देखें 4.5 अनुच्छेद 2
6. देखें 4.7 अनुच्छेद 1
7. देखें 4.11
8. देखें 4.10

शब्दावली

पशुपालन - मूल रूप से पशुपालन और सीमित क षि कार्यों पर आधारित जीवन पद्धति।

पित सत्तामक - परिवार/समाज के पुरुष सदस्य की श्रेष्ठता पर आधारित सामाजिक व्यवस्था।

एक पत्नी व्रत- जीवन में किसी भी समय एक पत्नीव्रत का धर्म

बहु पत्नी व्रत - एक समय में एक से अधिक पत्नियां रखने की सामाजिक व्यवस्था।

गोत्र - एक ही पूर्वज से उत्पन्न एक वंशावली के परिवारों का समूह जिनके सदस्यों के परस्पर कुछ कर्त्तव्य होते थे।

जनजाति - यह उन समूहों की ओर संकेत करती है, जिनकी एकता रक्त संबंधों के विस्तार यानी प्रादेशिक संगठनों के विस्तार पर नहीं, बल्कि संबंधों के बढ़ने पर निर्भर होती है।

समतावादी - ऐसा समाज जिसमें सभी को समानता का अधिकार हो।

पी.जी.डब्ल्यू - चित्रित सुरमई बर्तन; इस शब्द का अभिप्राय था उत्तर वैदिक काल में लोहे का प्रयोग करने वाले वे लोग जो समाज के सम द्ध वर्ग के लोगों के लिए इस शब्द का प्रयोग करते थे।



6

मौर्योत्तर काल

पिछले अध्याय में आपने मौर्य वंश के बारे में पढ़ा, जो आधुनिक अफगानिस्तान के कंधार क्षेत्र सहित भारतीय उपमहाद्वीप के बड़े हिस्से तक फैला हुआ था। 197 ई.पू. के लगभग मौर्य वंश का पतन हो गया। इस पाठ में हम मौर्य वंश के पतन से लेकर गुप्त वंश के उदय तक भारतीय उपमहाद्वीप में हुए राजनीतिक तथा सांस्क तिक चरणों का अध्ययन करेंगे अर्थात 200 ई.पू. से 300 ई. तक। इन पाँच सौ वर्षों में हम मात्र उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में विभिन्न शक्तियों का ही नहीं, बल्कि कला, स्थापत्य कला तथा धर्म के क्षेत्र में भी नई विशेषताओं का विकास देखेंगे।



उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप जान सकेंगे:

- मौर्य वंश के पतन के पश्चात कौन–कौन से राजनीतिक वंशों का उदय हुआ;
- मध्य एशिया से आने तथा बसने वाले विदेशियों को जान सकेंगे;
- भारत और रोम के बीच व्यापार की प्रगति तथा इसके प्रभाव का मूल्यांकन कर सकेंगे;
- 200 ई. पू. से 300 ई. में कला तथा मूर्तिकला की विभिन्न शैलियों की महत्त्वपूर्ण विशेषताएं बता सकेंगे और
- दक्षिण भारत का प्रारंभिक इतिहास तथा संगम साहित्य के महत्त्व का विश्लेषण कर सकेंगे।

6.1 उत्तर भारत का राजनीतिक इतिहास

मौर्य वंश के पतन ने देश के विभिन्न भागों में क्षेत्रीय वंशों का उदय हुआ। उसी समय मध्य एशिया तथा पश्चिमी चीन से भी कई आक्रमणकारियों ने भारत पर आक्रमण किए। वे थे भारती–यूनानी, शक, पह्लव तथा कुषाण। इन्हीं राजनीतिक प्रक्रियाओं ने भारत को मध्य एशिया की राजनीति तथा सभ्यता के निकट जाने का अवसर दिया।



क) शुंग वंश

मौर्य वंश का आखिरी सम्राट ब हद्रत अपने सेनापति पुष्यमित्र शुंग के हाथों मारा गया, जिसने बाद में अपना साम्राज्य उत्तरी भारत में स्थापित किया। इसे शुंग वंश के रूप में जाना गया। एक तरफ जहाँ शुंग उत्तर भारत में शासन कर रहे थे, उसी समय भारतीय–यूनानी, जिन्हें यवन भी कहा जाता है, बल्ख में स्वतंत्र शक्ति के रूप में उभरे तथा जल्द ही उन्होंने भारत के उत्तर पश्चिमी तथा उत्तर क्षेत्रों में अपने साम्राज्य का विस्तार करना प्रारंभ कर दिया। इसका अध्ययन हम बाद में करेंगे। इस बात के भी संकेत मिलते हैं कि पुष्यमित्र शुंग का बल्ख के शासक डेमीट्रियस से संघर्ष भी हुआ, लेकिन उसका कोई राजनीतिक नुकसान नहीं हुआ।

बेसनगर (आधुनिक विदिशा) में एक स्तम्भ पर अंकित विवरण से किसी हेलीडोरियस, जो कि तक्षशिला (वर्तमान पाकिस्तान में रावलपिंडी के निकट) का निवासी था, के भागभद्र के राजदरबार के एक भारतीय यूनानी शासक अतिलकी दास के दूत के रूप में विवरण मिलता है। उल्लेख के अनुसार वह श्रीक ष्ण का भक्त था।

ई.पू. की प्रथम शताब्दी के द्वितीय चतुर्थांश में, अंतिम शुंग शासक की हत्या धोखे से उसके मंत्री वासुदेव ने की, जिसने कण्व वंश की नींव डाली। कण्व वंश के विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

ख) बैक्ट्रीयन या भारतीय यूनानी

323 ई. पू. में सिकन्दर की म त्यु के पश्चात कई यूनानी भारत के उत्तरी पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र बैक्ट्रीया (हिन्दुकुश पर्वत का उत्तर पश्चिम क्षेत्र, वर्तमान उत्तर अफगानिस्तान) को महत्त्वपूर्ण केंद्र बनाकर वहाँ निवास करने आ बसे। अपने यूनानी उच्चारण की वज़ह से बैक्ट्रीया के शासक बैक्ट्रीया–यूनानी कहलाए। ऊपर वर्णित भारतीय यूनानी शासक डेमीट्रियस का पुष्यमित्र के साथ संघर्ष हुआ।

सर्वाधिक सफल भारतीय–यूनानी शासक मेनेन्दर या जिसके साम्राज्य में सम्भवतः उत्तरी अफगानिस्तान तथा सिंधु नदी का पूर्वी क्षेत्र गंधार भी सम्मलित थे। प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ मिलिन्दपन्हो में उसका परिचय मिलिन्द के रूप में दिया गया है जिसमें मिलिन्द द्वारा ग्रन्थ के बौद्ध लेखक महाराज नागसेन से पूछे गए सवाल हैं। इससे हमें जानकारी मिलती है कि दिए गए उत्तरों से प्रभावित होकर राजा ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया था। माना जाता है कि मेनेन्दर ने 155 ई.पू. से 130 ई.पू. तक शासन किया।

ग) शक वंश

शक, साइथियन वंश के लिए प्रयोग होने वाला हिन्दी नाम है, जो मूल रूप से मध्य एशिया के निवासी थे। अपने पड़ोसियों यू–चिस (कुषाणों से संबंधित आदिवासी समूह) से पराजित होकर वे ई.पू. प्रथम शताब्दी में भारत के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र तक्षशिला के आसपास निवास करने आए। सफल शक शासकों के राज्य में उनकी सीमाएं मथुरा तथा गुजरात तक व्यापक हो चली थीं।

शक शासकों में सबसे उल्लेखनीय शासक रुद्रदमन रहा, जिसने द्वितीय शताब्दी के मध्य शासन किया। उसका साम्राज्य लगभग समस्त पश्चिमी भारत तक विस्त त था। उसकी तमाम उपलब्धियों की जानकारी गिरनार अथवा जूनागढ़ में खुदे शिलालेख से

मिलती है। इस विवरण को प्राचीन भारत में पवित्र संस्क त में लिखा हुआ प्रथम शाही विवरण माना जाता है।

घ) पार्थियन

पार्थियन मूलतः ईरानी मूल के थे तथा शकों के साथ अपने मजबूत सांस्क तिक संबंधों की वजह से भारतीय मूल में उन्हें शक–पह्लव के रूप में जाना गया। पार्थियन शासन के बारे में महत्त्वपूर्ण जानकारी पाकिस्तान के उत्तर पश्चिम क्षेत्र में पेशावर के निकट मरदान में प्रसिद्ध तख्त–ए–बही विवरण से मिलती है। 5वीं ईस्वी के आसपास के इस उल्लेख में पार्थियन शासक के रूप में गोंडोफ्रेंस या गोंडोफेयर्स का विवरण मिलता है। कुछ इतिहासकार इसे संत थॉमस के समकालीन मानते हैं। माना जाता है कि इन्होंने राजा तथा उसके भाई को ईसाई धर्म में धर्मान्तरण कराया था।

पाठगत प्रश्न 6.1

1. आखिरी मौर्य शासक कौन था?

2. हेलीडोरियस कौन था?

3. प्रसिद्ध बौद्ध ग्रन्थ मिलिन्दोपन्हों में किस भारतीय–यूनानी शासक का विवरण मिलिन्द के रूप में मिलता है?

4. कौन–सा खुदा हुआ संस्क त में लिखा गया विवरण प्राचीन भारत का प्रथम विवरण माना जाता है?

5. शक किस क्षेत्र के निवासी थे?

6.2 कुषाण वंश

कुषाण मूल रूप से पश्चिमी चीन के निवासी थे। उन्हें यू–चिस भी कहा जाता है। शकों तक पह्लवों को पराजित कर कुषाणों ने पाकिस्तान में बड़े साम्राज्य की स्थापना की। कुषाण वंश का प्रथम महत्त्वपूर्ण शासक कुंजुल कडफीसिस था। उसके बाद उसका पुत्र वेया कडफीसिस राजा बना। अगला शासक कनिष्क था। वह कुषाण वंश का सबसे महान शासक था। उसके शासन काल का आरंभ 78 ई. के लगभग माना जाता है। उसने एक नए युग की नींव डाली, जिसे शक संवत के रूप में जाना जाता है। कनिष्क के शासन काल में कुषाण साम्राज्य का क्षेत्रीय विस्तार अधिकतम क्षेत्रों में हुआ। उसका साम्राज्य मध्य एशिया से लेकर उत्तर प्रदेश के वाराणसी, कौशाम्बी और श्रावस्ती सहित उत्तर भारत तक विस्त त था। कुषाण के शासन का राजनीतिक महत्त्व इस तथ्य से सिद्ध



होता है कि उसने उत्तर भारत तथा मध्य एशिया को एक ही साम्राज्य का अविभाज्य अंग बनाया। परिणामस्वरूप विभिन्न अन्तर्क्षेत्रीय संस्क तियों का समन्वय हुआ तथा अन्तर्क्षेत्रीय व्यापार में व द्धि हुई।

इतिहास में कनिष्क को बौद्ध धर्म के महान संरक्षक के रूप में जाना जाता है। उसने कुंडलवन (वर्तमान में जम्मू–कश्मीर में श्रीनगर के निकट हरवान) में चतुर्थ बौद्ध समिति का आयोजन कराया, जिसमें बड़ी संख्या में बौद्ध भिक्षुओं ने भाग लिया था। उसी सम्मेलन में बौद्ध धर्म दो शाखाओं में विभक्त हो गया था हीनयान तथा महायान। कनिष्क ने स्थापत्य कला की दो शाखाओं–गांधार तथा मथुरा को भी संरक्षित किया, जिसके बारें में आप बाद में इसी पाठ में पढ़ेंगे। उसने पुरुषपुर नगर (वर्तमान पेशावर) में बौद्ध अवशेषों को संरक्षित करते हुए विशाल स्तूप का निर्माण कराया था। 15वीं शताब्दी के प्रारंभ में जब चीनी तीर्थयात्री फाह्यान ने यहां यात्रा की थी तो यह इमारत पूर्ण भव्यता के साथ मौजूद थी। कुषाण वंश का तीसरी शताब्दी के प्रारंभ में पतन हो गया।

कुषाण राजतंत्र तथा प्रशासन

कुषाणों की प्रशासनिक तंत्र के संबंध में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है। संभवतः पूरा साम्राज्य छोटे–छोटे क्षेत्रों में विभाजित था तथा हर क्षेत्र एक महाक्षत्रप (सेनापति) द्वारा संचालित होता था। जिसका सहायक क्षत्रप होता था। किन्तु पूरे साम्राज्य में कितने क्षेत्र थे, यह ज्ञात नहीं है। सूत्र इंगित करते हैं कि कुषाण घुड़सवार घुड़सवारी करते समय पतलून का प्रयोग करते थे। मथुरा में पाई गई शीर्षविहीन मूर्ति से इस बात की जानकारी मिलती है। कुषाणों की सबसे महत्त्वपूर्ण विशिष्टता देवपुत्र शीर्षक का प्रयोग है, जिसका अर्थ है भगवान की संतान। यह कुषाण शासकों द्वारा दिव्यता के दावे की ओर संकेत करता है।

कुषाणों की उपलब्धियाँ

प्राचीन भारतीय इतिहास में कुषाण वंश जीवन के हर क्षेत्र में अपने विशेष योगदान की वजह से महत्त्वपूर्ण स्थान रखता हैं। उनके विशाल साम्राज्य की वजह से आंतरिक तथा बाहरी व्यापार में प्रगति हुईं इसके फलस्वरूप नए नगर केंद्रों का उदय हुआ। कुषाण काल की सम्पन्नता की झलक उनके द्वारा प्रयुक्त होने वाली सोने तथा तांबे की मुद्राओं से भी मिलती है।

साहित्य तथा चिकित्सा के क्षेत्र में भी भारत ने प्रगति की। आयुर्वेद का जनक माने जाने वाले चरक ने चिकित्सा आधारित पुस्तक 'चरक–संहिता' की रचना की, वहीं प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान अश्वघोष ने बुद्ध की विस्त त जीवन चरित्र की रचना की। दोनों ही विद्वान कनिष्क के समकालीन माने जाते हैं। कुषाणों ने मूर्तिकला की गंधार तथा मथुरा कला को संरक्षण प्रदान किया, जो कि बुद्ध तथा बोधिसत्वों की प्रारंभिक छवियों के स जन के लिए विख्यात है।

पाठगत प्रश्न 6.2

1. कुषाण वंश का सबसे प्रसिद्ध शासक कौन था?

   _____

2. शक संवत किसके द्वारा तथा कब प्रारंभ हुआ?

   _____



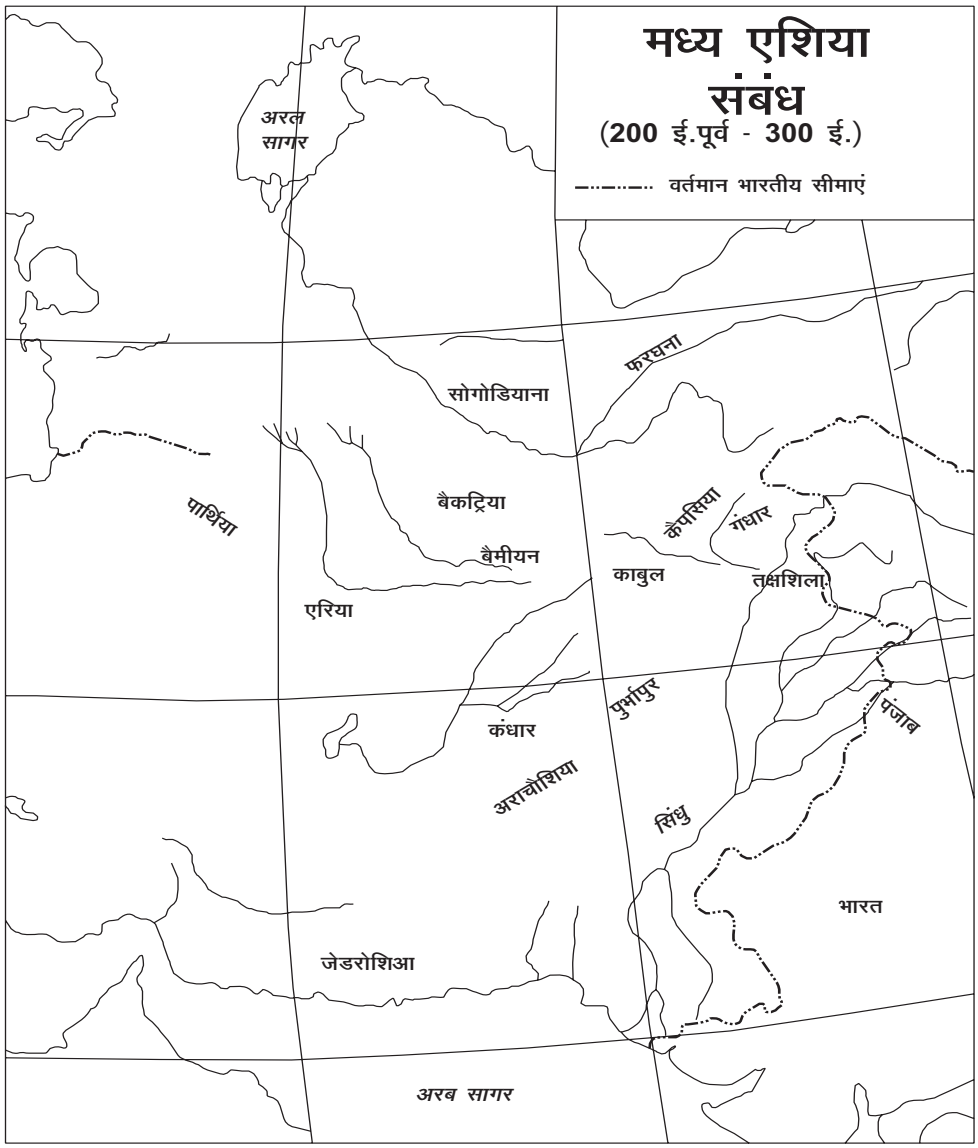
आपकी टिप्पणियाँ

3. किसके संरक्षण में चतुर्थ बौद्ध समिति का आयोजन किया गया?

4. चरक कौन थे?

6.3 मध्य एशिया के साथ संबंध

भारत पर बैक्ट्रीया यूनानी तथा शक पह्लव के आक्रमण कुषाणों के शासन काल में मध्य एशिया के राजनीतिक सम्पर्कों ने दो क्षेत्रों के मध्य उत्तरवर्ती सांस्क तिक समन्वय को जन्म दिया। धीरे–धीरे इन विदेशी समूहों ने अपनी पहचान खो दी तथा क्षत्रिय के रूप में अवतरित हो गए। कईयों ने बौद्ध धर्म धारण कर लिया। भारतीय–बैक्ट्रीया शासक मेनेन्दर का उल्लेख पहले हो चुका हैं, जिसने बौद्ध धर्म की दीक्षा नागसेन नामक भिक्षुक से ली थी।



मानचित्र 6.1 मध्य एशिया संबंध



मध्य एशिया के साथ सम्पर्क ने भारत में मुद्रा निर्माण की नई विधियों को जन्म दिया। छिद्र वाले अपरिष्क त सिक्कों का स्थान धीरे–धीरे महान विभूतियों तथा पूर्व प्रचलित शासकों के चित्र वाले परिष्क त यूनानी शैली के सिक्कों ने ले लिया। यह नया प्रकार भारत में उत्तरवर्ती सिक्का प्रणाली के लिए प्रतिमान बन गया। इसके अतिरिक्त, मध्य एशिया से विशेषकर यूनानियों से खगोलशास्त्र का ज्ञान लिया। खगोल–विज्ञान के प्राचीन भारतीय ग्रन्थों में यूनानी खगोल–वैज्ञानिकों का संदर्भ यवनाचार्यों के रूप में मिलता है। भविष्यफल ज्ञात करने की कला भी भारतीयों ने यूनानियों से सीखी। मध्य एशिया सम्पर्कों की वजह से मूर्तिकला के क्षेत्र में भी नए युग की शुरुआत हुई। गांधार शाखा, भारतीय तथा यूनानी शैली के समन्वय के फलस्वरूप उत्पन्न हुई।

पाठगत प्रश्न 6.3

1. यूनानी शैली के सिक्कों की क्या विशेषताएँ थीं?

2. आरंभिक भारतीय साहित्य में यूनानी खगोलविदों के लिए किस शब्द का प्रयोग किया गया है?

6.4 उड़ीसा तथा दक्कन में प्रारंभिक राज्य का उदय

हम जानते हैं कि दक्कन तथा पूर्वी भारत अशोक के साम्राज्य के हिस्से थे। उसने हिंसक युद्ध द्वारा कलिंग पर विजय प्राप्त की थी, जिसमें व्यापक जनहानि हुई थी। यह मौर्य शासन का ही प्रभाव है कि इसके पतन के पश्चात भारतीय इतिहास में प्रथम बार कलिंग तथा दक्कन का उदय हम देखते हैं।

कलिंग

अशोक के पश्चात कलिंग (वर्तमान उड़ीसा) चेदी वंश के शासन काल में महत्त्वपूर्ण हो गया था। दुर्भाग्यवश खारवेल के अतिरिक्त इस वंश के किसी शासक के विषय में सूचना उपलब्ध नहीं है। उसकी उपलब्धियाँ उड़ीसा में भुवनेश्वर के निकट उदयगिरि पहाड़ियों पर हाथीगुम्फा अभिलेख में संग हीत हैं। शिलाखंड के निकट हाथी की छवि अंकित होने के कारण अभिलेख का नाम हाथीगुम्फा पड़ा। इस विवरण से हमें ज्ञात होता है कि वह जैन धर्म का उपासक था तथा अपने पड़ोसियों के विरुद्ध कई युद्धों में उसने सफलता पाई थी। सम्भवतः उसकी कालावधि ई.पू. प्रथम शताब्दी थी।

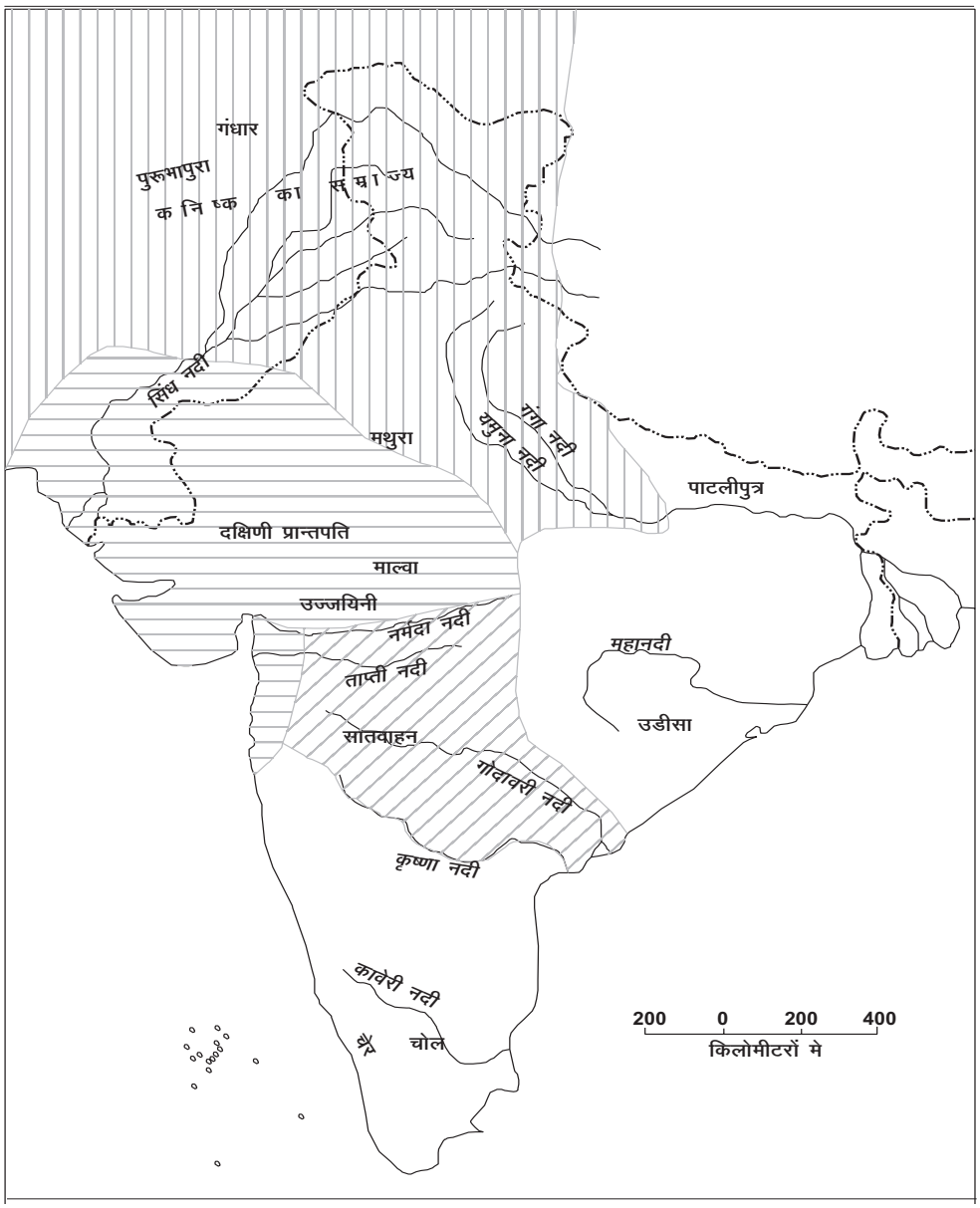
पाठगत प्रश्न 6.4

1. खारवेल कौन था?

2. हाथीगुम्फा अभिलेख कहाँ है?

6.5 सातवाहन वंश

ई. पू. प्रथम शताब्दी के मध्य सातवाहन वंश भारतीय राजनीतिक परिद श्य में प्रमुख रूप से उभरा। सातवाहन शासकों में महानतम शासक गौतमीपुत्र शतकर्णी (पहली शताब्दी) को माना जाता है। सबसे पश्चिम भारत के शक शासक नहपन को पराजित कर सातवाहन साम्राज्य के विस्तार का श्रेय उसे जाता है। उसका साम्राज्य दक्षिण में क ष्णा नदी से लेकर उत्तर में गोदावरी नदी तक फैला हुआ था। सातवाहन साम्राज्य की राजधानी महाराष्ट्र में औरंगाबाद के निकट प्रतिष्ठान (वर्तमान पैथन) थी। तीसरी शताब्दी के चतुर्थ भाग में सातवाहन वंश का पतन हो गया तथा इक्ष्वाकु वंश का शासन स्थापित हो गया।



मानचित्र 6.2 सातवाहन तथा कुषाण साम्राज्य



सातवाहनः राजव्यवस्था तथा प्रशासन

सातवाहन साम्राज्य 'आहार' अथवा 'राष्ट्ररूपी' उप–प्रभागों अर्थात जिलों में विभाजित था। प्रशासन की लघुतम इकाई 'ग्राम' थी, जिसका अध्यक्ष 'ग्रामिक' हुआ करता था। राजा के सहायक तथा मंत्री के रूप में 'अमात्य' का भी विवरण मिलता है। नकद तथा वस्तुएँ दोनों ही प्रकार से राजस्व एकत्र किया जाता था। भारतीय इतिहास में प्रथम बार सातवाहन शासकों ने धर्म को स्वीकार करने के लिए बौद्धों तथा ब्राह्मणों को कर–मुक्त भू–दान की व्यवस्था की। बाद के काल में यह व्यवस्था और भी महत्त्वपूर्ण हो गई थी। सातवाहन शासक स्वयं को ब्राह्मण मानते थे तथा वर्ण व्यवस्था को बनाए रखना अपना प्रथम उद्देश्य समझते थे।



पाठगत प्रश्न 6.5

1. सातवाहन शासकों में सबसे महान शासक कौन माना जाता है?

   _____

2. सातवाहन वंश की राजधानी का नाम लिखे?

   _____

3. सातवाहन साम्राज्य में प्रशासन की सबसे छोटी इकाई क्या थी?

   _____

4. कर–मुक्त धार्मिक अनुदान की परम्परा भारत मे किस वंश के शासकों ने प्रारंभ की?

   _____

5. सातवाहन शासक स्वयं को किस वर्ण से संबंधित मानते थे?

   _____

6.6 व्यापारिक तथा व्यावसायिक गतिविधियाँ

क) आंतरिक तथा बाहरी मार्ग

मौर्योत्तर युग की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता आंतरिक तथा बाह्य व्यवसाय व्यापार के क्षेत्र में प्रगति रही। प्राचीन भारत के दो मुख्य आंतरिक मार्ग माने जाते हैं पहला उत्तरपथ जो कि भारत के उत्तरी तथा पूर्वी हिस्सों को उत्तरपश्चिमी सीमाओं से जोड़ता था अर्थात वर्तमान में पाकिस्तान तथा उससे आगे का क्षेत्र द्वितीय दक्षिणपथ जो भारतीय प्रायद्वीप को पश्चिमी तथा उत्तरी हिस्सों से जोड़ता था।

उत्तर तथा दक्षिण भारत को जोड़ने वाला प्रमुख मार्ग दक्षिणपथ था। यह इलाहाबाद के निकट कौशाम्बी से प्रारंभ होता था तथा आधुनिक उज्जैन, तत्कालीन उज्जैयनी से होता हुआ पश्चिमी तट के महत्त्वपूर्ण बंदरगाह भ गुकच्छ अथवा भड़ौच तक पहुंचता था। दक्षिणपथ आगे जाकर प्रतिष्ठान (वर्तमान पैठान) तक था जो कि सातवाहन साम्राज्य की राजधानी थी।

बाह्य व्यापार मार्ग की बात करें, तो हम पाएंगे कि 45 ई. में एक यूनानी समुद्री यात्री हिप्पेट्स द्वारा मानसून की खोज के पश्चात व्यापारिक उद्देश्यों के लिए ज्यादा से ज्यादा



आपकी टिप्पणियाँ

समुद्री यात्राएँ प्रारंभ हो गईं भारत के पश्चिमी तट (उत्तर से दक्षिणो–मुखी) के प्रमुख बंदरगाह थे भारुकच्छ, सोपारा, कल्याण, मुजिरिस इत्यादि। इन बंदरगाहों से मालवाहक जहाज लाल सागर द्वारा रोम साम्राज्य में जाते थे।

दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ व्यापार समुद्री मार्ग से होता था। भारत के पूर्वी तट पर स्थित प्रमुख बंदरगाह थे ताम्रलिप्ति (प. बंगाल), अरिकमेडु (तमिलनाडु समुद्री तट)। दक्षिण–पूर्वी एशिया के बंदरगाहों तथा भारुकच्छ के मध्य भी समुद्री मार्ग से व्यापार होता था।

ख) पश्चिम तथा मध्य एशिया के साथ व्यापार

मौर्योत्तर कालीन व्यावसायिक गतिविधियों की महत्त्वपूर्ण विशेषता भारत तथा पश्चिम के साथ होने वाला व्यापार या, जब रोमन साम्राज्य अपने चरम पर था। प्रारंभ में व्यापार भूमि के माध्यम से होता था, किन्तु इन मार्गों के रास्ते पर शासन करने वाले पारसियों द्वारा उत्पन्न अवरोधों के पश्चात समुद्री मार्ग पर स्थानांतरित हो गया। अब मालवाहक पोत भारतीय तटों से सीधे लाल सागर तथा फ़ारस की खाड़ी होते हुए जा सकते थे।

प्रथम ईस्वी में एक अज्ञात लेखक द्वारा लिखी गई पुस्तक 'पेरिप्लस ऑफ द एरिथ्रियन सी' में भारत–रोम व्यापार का सर्वश्रेष्ठ विवरण प्राप्त होता है। रोमवासियों द्वारा वांछित भारतीय उत्पाद थे मसाले, इत्र, रत्न, हाथी दांत तथा परिष्क त वस्त्र जैसे मलमल। भारत से रोम साम्राज्य को निर्यात होने वाले मसालों में काली–मिर्च भी शामिल थी, जिसे 'यवनप्रिया' के नाम से भी जानते हैं (संभवतः रोमवासियों के मध्य लोकप्रियता के आधार पर)। रोम साम्राज्य के साथ भारतीय मसालों का व्यापार मुख्यतः दक्षिण भारत से संचालित होता था। रोमवासी कई बहुमूल्य तथा आंशिक कम दुर्लभ रत्नों का भी आयात करते थे। यथा–हीरे, फ़िरोजा, नीलम, गोमेद इत्यादि तथा मोती, नील, चन्दन की लकड़ी तथा इस्पात आदि।

इन आयातों के बदले में रोमवासी भारत को स्वर्ण तथा चांदी का निर्यात करते थे। इस तथ्य का प्रमाण प्रथम सदी में महाद्वीप में प्रचलित रोमन सिक्कों से मिलता है। इससे रोम साम्राज्य का भारत के साथ सोने के अत्यधिक निर्यात का संकेत मिलता है। रोम द्वारा निर्यात होने वाली महत्त्वपूर्ण वस्तु थी 'वाइन' अंगूर की शराब, जिसका प्रमाण दक्षिण भारत में अरिकमेडु में व्यापक मात्रा में पाए गए अंगूर की शराब के पात्रों तथा रोमन लिपि की कतरनों से मिलता है। अन्य निर्यातित वस्तुओं में टिन, शीशा, मूंगा तथा दासी लड़कियाँ थीं।

ग) हस्तशिल्प तथा उद्योग

इस काल में हस्तशिल्प का उत्पादन असाधारण गति से हुआ क्योंकि आंतरिक तथा विदेशी दोनों ही प्रकार के व्यवसाय तथा व्यापार बहुत हद तक हस्तशिल्प गतिविधियों पर ही आधारित थे। मिलिन्दपन्हो नामक ग्रन्थ में 750 व्यवसायों का उल्लेख है, जिनमें से 60 हस्तशिल्प पर आधारित थे। कुशलता का स्तर बहुत ही ऊँचा था तथा सोने, चांदी बहुमूल्य रत्नों के कारीगर भिन्न–भिन्न थे। उज्जैन माला उत्पादन का प्रमुख केंद्र था। वस्त्र उद्योग अन्य प्रमुख उद्योग था। सूती तथा रेशमी वस्त्रों के प्रकारों के लिए मथुरा वंग (पूर्वी बंगाल) प्रसिद्ध थे।

दक्षिण भारत के कुछ स्थानों पर प्राप्त रंगों की टंकियों से यह संकेत मिलता है कि इस काल में उस क्षेत्र में रंगाई एक विकसित हस्तशिल्प उद्योग था। इस काल में शिल्पियों ने सम्पन्नता की नई ऊंचाइयों को छुआ तथा बहुत से प्राप्त अभिलेखों से यह भी संकेत मिलता है कि शिल्पियों ने धार्मिक मठों को भी अनुदान किया।



घ) कारीगरों के संघ-श्रेणी

व्यापारियों का समुदाय एक समूह के रूप में संगठित था, जिसे श्रेणी कहा जाता था तथा 'श्रेष्ठि' जिसका अध्यक्ष होता था। अन्य प्रकार का व्यावसायिक समूह 'सार्थ' कहलाता था, जो अर्न्तक्षेत्रीय व्यवसाय के घुमन्तु या कारवां प्रकार के व्यवसाय को परिभाषित करता था। इस संगठन का अध्यक्ष 'सार्थव' के नाम से जाना जाता था। इन व्यापारियों की भाँति सभी हस्तशिल्पी समूह भी संघ के रूप में संगठित थे तथा 'ज्येष्ठ' उनका प्रधान होता था। इसमें बुनकर, अनाज व्यवसायी, बांस के तेल उत्पादक, कुम्हार इत्यादि शामिल थे। मुख्य रूप से ये संघ उन व्यापारियों तथा शिल्पियों का संगठन था, जो या तो एक ही व्यवसाय में थे या एक ही प्रकार की वस्तुओं का व्यापार करते थे। वे अपने प्रमुख का चुनाव स्वयं करते थे तथा पारस्परिक सद्भाव के आधार पर अपने व्यवसाय को नियंत्रित करने के लिए मूल्य तथा गुणवत्ता से संबंधित नियमों का निर्माण करते थे। वे बैंक की तरह भी कार्य करते थे एक निश्चित ब्याज दर पर जनता से अमानती रकम प्राप्त करते थे।



पाठगत प्रश्न 6.6

1. उत्तरपथ से आप क्या समझते हैं?

   _____

2. दक्षिणपथ क्या था?

   _____

3. भारतीय इतिहास में मानसून की खोज का क्या प्रभाव पड़ा?

   _____

4. भारतीय–रोम व्यापार संबंधों को कौन–सी पुस्तक दर्शाती है?

   _____

5. 'श्रेणी' का क्या अर्थ है?

   _____

6.7 कला तथा स्थापत्य कला

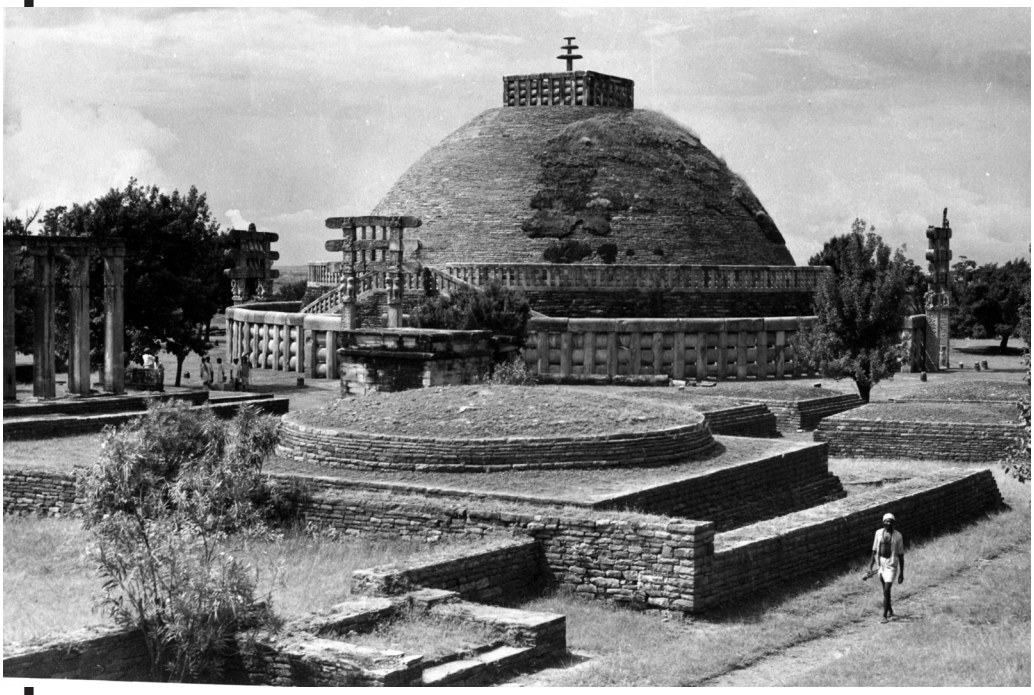
मौर्योत्तर काल में कला मुख्यतः धार्मिक थी। कला तथा स्थापत्य कला के क्षेत्र में इस युग की दो मुख्य विशेषताएँ स्तूपों का निर्माण तथा मूर्तिकला की विभिन्नृशैलियों का विकास रहीं। बुद्ध की मूर्तियाँ इसी काल में प्रथम बार बनाई गईं। उत्तर–पश्चिम क्षेत्र के साथ संपर्कों की वजह से मूर्तिकला में नई शैली का विकास हुआ, जिसे गांधार कला कहा गया। बहुत हद तक यह यूनानी शैली से प्रभावित थी।

1. स्तूप

स्तूप एक विशाल अर्द्धव त्ताकार गुम्बद होता है, जिसमें एक केंद्रीय प्रकोष्ठ होता था, जहाँ एक छोटी संदूकची में बुद्ध अथवा बौद्ध भिक्षुओं के अवशेषों को रखा जाता था। उसका

आधार दक्षिणावर्त रास्ते से घिरा हुआ होता था, जिसमें लकड़ी की बाड़ होती थी, जो बाद में पत्थरों की हो गई थी। इस काल के प्रमुख स्तूप थे भरहुत सांची (दोनों मध्य प्रदेश में) जो कि अशोक द्वारा निर्मित थे। जिनका बाद में विस्तार किया गया तथा अमरावती और नागार्जुन कोंडा (दोनों आंध्र प्रदेश में)।

भरहुत स्तूप का निर्माण काल ई.पू. दूसरी शताब्दी माना जाता है। यह इसकी मूर्तिकला के लिए महत्त्वपूर्ण है। इसकी बाड़ लाल पत्थरों से बनी हुई है। इस काल में सांची में तीन



चित्र 6.1 सांची स्तूप

विशाल स्तूपों का निर्माण हुआ। इन तीनों में सबसे बड़ा सम्राट अशोक द्वारा बनवाया गया था, जिसका ई.पू. दूसरी शताब्दी में दो बार विस्तार हुआ। दक्षिण भारत में भी कई स्तूपों का निर्माण हुआ, किन्तु अपने पूर्ण रूप में कोई भी न बच सका। आंध्र प्रदेश में अमरावती स्थित अमरावती स्तूप अपने निर्णायक रूप में दूसरी शताब्दी में आया। स्तूप पर बसी मूर्तियां जातक तथा अन्य बौद्ध कहानियों पर आधरित हैं।

2. चट्टान स्थापत्यकला

स्तूपों के अतिरिक्त इस काल में चट्टान काटकर भवन निर्माण/स्थापत्य कला के क्षेत्र में भी प्रगति हुई। सातवाहन शासकों के काल में महाराष्ट्र में पुणे तथा नासिक के निकट ठोस चट्टानों को काटकर बड़ी संख्या में मंदिरों, भवनों तथा भिक्षुओं के रहने के लिए निवास स्थलों का निर्माण करते थे। उस स्थान को चैत्य के नाम से जाना जाता था तथा भिक्षुओं के निवास स्थान को विहार कहा जाता था।

3. मूर्तिकला की शैलियाँ

ईसा के बाद की प्रथम शताब्दी में बौद्ध धर्म में दो विभाजन हुए, हीनयान तथा महायान। महायान बौद्धों ने बुद्ध को भगवान मानकर मानव रूप में पूजा करने पर बल दिया। परिणाम



स्वरूप बड़ी संख्या में विभिन्न क्षेत्रों में महात्मा बुद्ध की प्रतिमाओं का स जन हुआ। इस काल में मूर्ति निर्माण की तीन मुख्य शैलियां विकसित हुईं। वे थीं मथुरा शैली, गांधार शैली तथा अमरावती शैली।

(i) मथुरा शैली, समकालीन कला में मथुरा शैली का सबसे बड़ा योगदान महात्मा बुद्ध की वे मूर्तियां रहीं, जो कला के इस प्रकार में सम्भवतः पहली बार तराशी गईं। मथुरा शैली के कलाकार मूर्ति बनाने के लिए स्थानीय लाल पत्थरों का प्रयोग काले बिन्दुओं के साथ करते थे। मथुरा शैली में बड़ी संख्या में 'अयागपता' या पूजा के लिए पत्थरों के टुकड़ों के अतिरिक्त जैन तीर्थंकरों की मूर्तियां भी गढ़ी गईं। मथुरा शैली में ब्राह्मणों का प्रभाव भी देखा जा सकता है। कुषाण के शासन काल के दौरान व्यापक संख्या में हिन्दू देवी–देवताओं की मूर्तियों का निर्माण हुआ, जैसे कार्तिकेय, विष्णु तथा कुबेर।

4. कला की गांधार शैली

भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र में गांधार क्षेत्र स्थित था। इस क्षेत्र पर यूनानी, मौर्य, शुंग, शक तथा कुषाण वंशियों ने सदियों तक सफलतापूर्वक शासन किया। ईसाई युग के आरम्भ में इस क्षेत्र में जिस कला की शैली का विकास हुआ, उसे कई नामों से जाना गया, जैसे यूनानी–रोमन, भारतीय–यूनानी या यूनानी–बौद्ध। इसका कारण सम्भवतः इस



चित्र 6.2 गांधार कला बोधिसत्व



आपकी टिप्पणियाँ

शैली पर रोम, यूनानी तथा भारतीय प्रभाव था। मुख्यतया मूर्तियों का विषय बौद्ध धर्म था, किन्तु शैली यूनानी थी। गांधार–कला के मुख्य संरक्षक शक तथा कुषाण थे।

इस शैली में बुद्ध तथा बोधिसत्व की मूर्ति निर्माण के लिए प्रयुक्त होने वाले पत्थर मुख्यतः भूरे–नीले रंग के होते थे। कला की गांधार शैली की मुख्य विशेषता मानव आक तियों के शरीर की विभिन्न मांसपेशियों सहित आकर्षक चित्रण में निवास करती है। महात्मा बुद्ध का चित्रण यूनानी शैली में कपड़ा ओढ़कर घुंघराले बालों के साथ किया गया है। महात्मा बुद्ध की ये प्रतिमाएं मूर्तिकला के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ मूर्तियों में आंकी जाती हैं।

5. कला की अमरावती शैली

क ष्णा तथा गोदावरी की निचली घाटी के मध्य आंध्र प्रदेश के क्षेत्र में कला की अमरावती शैली विकसित हुई इस कला को मुख्य संरक्षण सातवाहन वंश के शासकों द्वारा मिला, किन्तु यह उसके उत्तरवर्ती इक्ष्वाकु वंश के शासकों द्वारा संरक्षण मिलने के कारण बाद में भी फली–फूली। इस कला का उन्नत काल 150 ई.पू. से 300 ई. तक समझा जाता है। इस शैली की मुख्य कलाक तियां बांड़ों, खंभों तथा स्तूप के अन्य हिस्सों में पाई जाती हैं। इनकी विषय–वस्तु में महात्मा बुद्ध के जीवन से संबंधित कथाएँ सम्मिलित हैं।

अमरावती शैली की मुख्य विशिष्टता आख्यान कला है। गोलाकार आभूषण इस प्रकार उकेरे गए हैं कि वे स्वाभाविक तरीके से घटना का वर्णन करते हैं। जैसे एक आभूषण महात्मा बुद्ध द्वारा एक हाथी को पालतू बनाने की कथा की व्याख्या करता है। अमरावती शैली की दूसरी मुख्य विशेषता आक तियों को उभारने के लिए सफेद संगमरमर का प्रयोग था। इस शैली में प्रक ति की तुलना में मानव आक तियों का महत्त्व अधिक था।



पाठगत प्रश्न 6.7

1. मौर्योत्तर कालीन स्थापत्य कला की दो प्रमुख विशेषताएँ क्या थीं?

2. स्तूप से आप क्या समझते हैं?

3. मौर्योत्तर काल के प्रमुख स्तूप कौन–से थे?

4. चैत्य तथा विहार में क्या अंतर है?

5. मूर्तिकला की दो प्रमुख शैलियों के नाम बताएं जो मौर्योत्तर युग में विकसित हुई।



6. मथुरा शैली में किस प्रकार के पत्थर प्रयुक्त किए जाते थे?

_____

7. गांधार शैली के प्रमुख संरक्षक कौन थे?

_____

6.8 दक्षिण भारत का प्रारंभिक इतिहास

क) दक्षिण भारत की महापाषाणिक संस्क ति

दक्षिण भारत में नवप्रस्तरकाल जिसमें पत्थरों को परिष्क त कुल्हाड़ी तथा धारदार हथियारों के प्रयोग की झलक मिलती है, के बाद महापाषाणिक संस्क ति अस्तित्व में आई (1200 ई.पू. से 300 ई.पू. तक) महापाषाणिक विशाल पत्थरों के साथ दफन तथा कब्रों को संग हीत करते गुम्बद स्थल हुआ करते थे। अधिकतर वे निवास स्थल से दूर ही स्थित होते थे। इन्हीं महापाषाणिक दफन स्थलो ने दक्षिण भारत से प्रथम लौह पदार्थ को उपलब्ध कराया। इनके अतिरिक्त काले तथा लाल मिट्टी के बर्तन महापाषाणिक सभ्यता की विशेषता थे। ये महापाषाणिक महाराष्ट्र में नागपुर के उत्तर से लेकर भारतीय प्रायद्वीप के दक्षिण बिन्दु तक बड़ी संख्या में पाए जाते थे। महापाषाणिक के महत्त्वपूर्ण स्थान रहे ब्रह्मगिरी, मस्की (कर्नाटक), आदिचल्लानुर (तमिलनाडु) तथा नागपुर (महाराष्ट्र) के निकट जूनापानी।

लोहे के औजार हर महापाषाणिक कब्र में पाए गए हैं। ये औजार उनकी शिल्प गतिविधियों की ओर संकेत करते हैं तथा इनमें मुख्य है–तीर का सिरा, कटार, तलवार, त्रिशूल, कुल्हाड़ी, हंसिया, कुदाली तथा हल इत्यादि। इन औजारों के साथ महापाषाणिक स्थानों में अनाज जैसे चावल, गेहूं की उपलब्धता यह संकेत करती है कि महापाषाणिक वंशज अपनी आजीविका के लिए क षि तथा शिकारी गतिविधियों पर निर्भर थे। दक्षिण भारत में महापाषाणिक सभ्यता के पश्चात संगमकाल का प्रारंभ हुआ।

ख) संगम काल

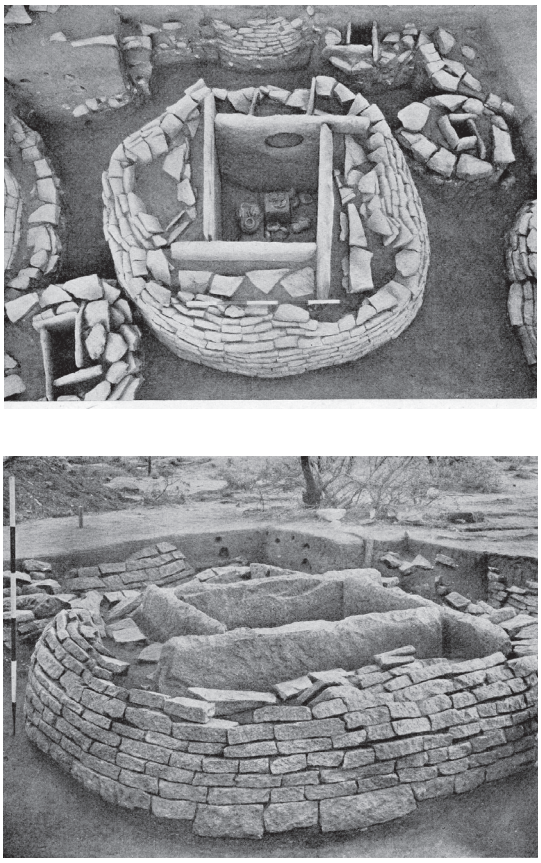
संगम काल से तात्पर्य दक्षिण भारत के आरम्भिक इतिहास का वह युग है, जब तमिल कवियों द्वारा बड़ी संख्या में तमिल कविताओं की रचना की गई। 'संगम' शब्द कवियों के समागम या एक साथ आने को बतलाता है। परम्परागत रूप से एक के पश्चात एक तीन संगम आयोजित किए गए। सभी तीनों संगम मदुरै के पांड्य शासकों के संरक्षण में विभिन्न स्थानों पर आयोजित किए गए। संगम साहित्य में रची कविताएं दो विषय–वस्तु पर आधारित थीं प्रेम तथा युद्ध। जिन्हें बाद में इत्तोतोगई नामक आठ संग्रहों में संग हीत किया गया। इस साहित्य का स जन काल ई.पू. 300 से 300 ई. तक माना जाता है। इस साहित्य की एक स्मरणीय विशेषता तत्कालीन तमिल समाज का विविधतापूर्ण वर्णन तथा उत्तर (आर्य) सभ्यता के साथ सामंजस्यपूर्ण रिश्तों का विवरण है।

तमिल क्षेत्र तिरुपति की पहाड़ियों से लेकर कन्याकुमारी के छोर तक विस्तत था। यह बड़ी संख्या में कबीलाई समूहों में विभक्त था तथा कबीले के सरदार की परम्परा वंशवादी थी।

संगम युग के दौरान तमिल क्षेत्र पर शासन करने वाले बड़े कबीलाई सरदार थे चोल, जिनकी राजधानी थी उरैयर, चेर जिनकी राजधानी थी। वनजी (करुर के निकट) तथा पांड्या जिनकी राजधानी थी मदुरै। चोल, चेर तथा पांड्यों के बीच बार–बार संघर्ष होते रहते थे। इसके फलस्वरूप संगम कवियों के युद्ध आधारित कविताओं के सजन की प्रेरणा मिली।

इस युग का तमिल क्षेत्र पाँच 'टिनाइयों' अर्थात आर्थिक क्षेत्रों में विभाजित था अर्थात विशेष आर्थिक स्रोतों पर आधारित क्षेत्र। वे थे–'कुरिनजी' (पहाड़ी क्षेत्र) 'पलाई' (निर्जल क्षेत्र): 'मुलई' (चरवाहे क्षेत्र):'मरुदम' (नम क्षेत्र) तथा 'नीतल' (समुद्री तट)। इन क्षेत्रों का सीमांकन स्पष्ट नहीं था तथा पूरे क्षेत्र में ये बिखरे थे। अपनी विभिन्न भौगोलिक संदर्भों तथा पर्यावरण विषयक विशेषताओं की वजह से विभिन्न 'टिनाइयों' के नागरिकों के अपने स्वयं के निर्वाह के लिए स्वयं के माध्यम थे। जैसे कुरिंजी में शिकार करना तथा कंदमूल चुनना था। पलाई में, जहाँ कुछ उत्पादन सम्भव नहीं था, यह आक्रमण तथा लूटपाट था। मुलाई में यह पशुओं की देखभाल के रूप में या, मरुदम में क षि तथा नीतल में यह मछली पकड़ना तथा नमक उत्पादन था।

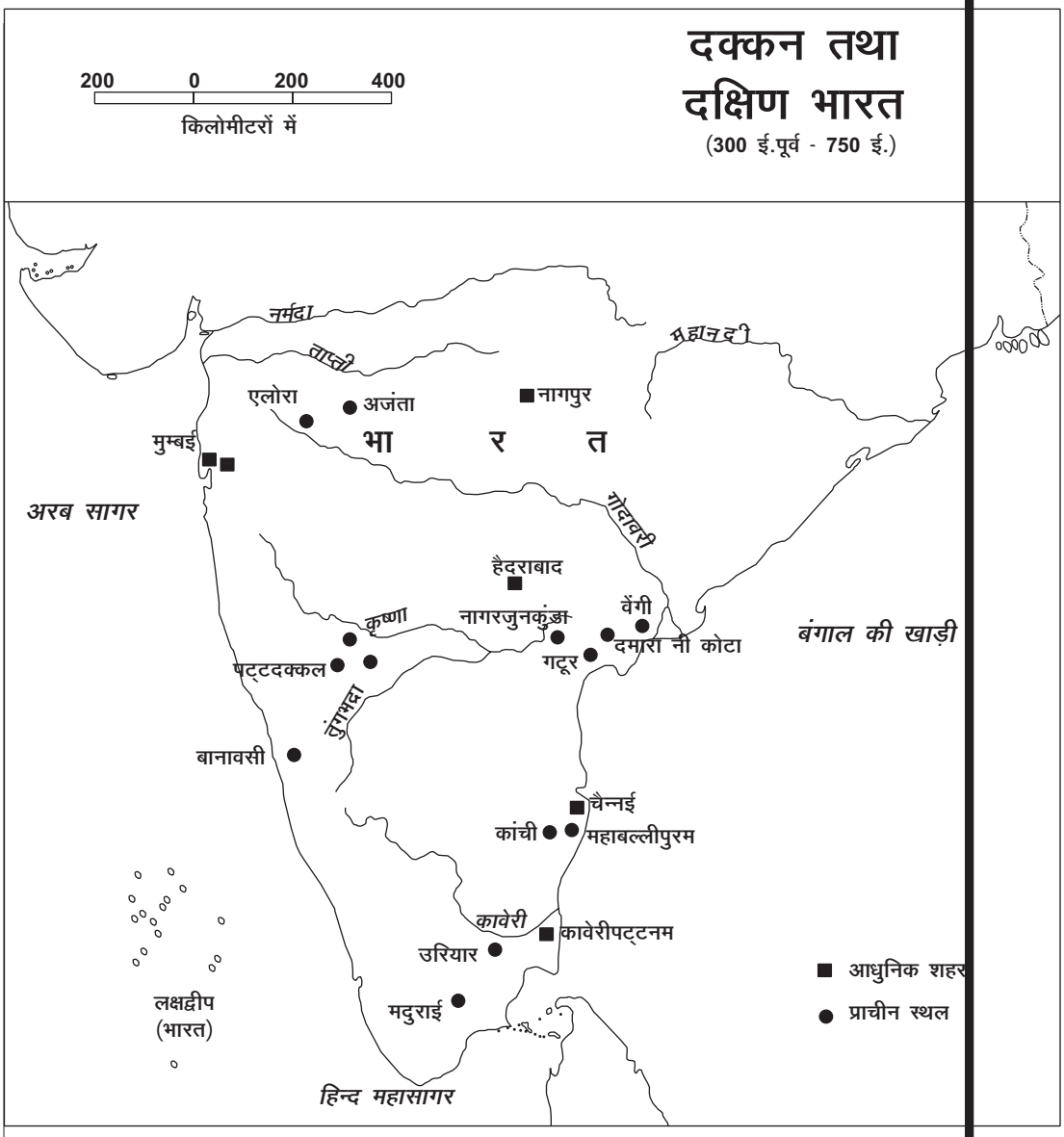
हालाँकि वर्ण व्यवस्था का ज्ञान होने के बावजूद उत्तर भारतीयों की भाँति संगम काल में समाज के वर्ग को उच्च अथवा निम्न श्रेणी से नहीं पहचाने जाते थे। जैसे समाज में ब्राह्मणों का अस्तित्व था तथा सभी वैदिक कर्मकाण्ड तथा समारोह वे ही संचालित करते



चित्र 6.3 महापाषाणिक कब्रें

थे सरदार के सलाहकार के रूप में भी कार्य करते थे, किन्तु उन्हें समाज में विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था। व्यक्ति अपने व्यवसाय के अनुसार ही जाने जाते थे। जैसे कारीगर, शिल्पी, नमक विक्रेता, व्यवसायी, कपड़ा व्यवसायी। सम्पन्न वर्ग ईंटों से बने पक्के मकानों में निवास करता था तथा मूल्यवान वस्त्र धारण करता था, वहीं निर्धन वर्ग मिट्टी की झोंपड़ी में निवास करता था साधारण वस्त्र धारण करता था।

योद्धाओं को समाज में विशिष्ट स्थान प्राप्त था तथा युद्ध करते समय अपने प्राण अर्पित करने वाले योद्धाओं के सम्मान में पत्थर के स्मारक 'नटुकल' या 'विरुकल' स्थापित किए



मानचित्र 6.3 तमिलनाडु तथा उत्तर संस्क ति



आपकी टिप्पणियाँ

जाते थे उन्हें देव–प्रतिमाओं के समान पूजा जाता था। संगम युग की महिलाएं शिक्षित प्रतीत होती हैं। यह संगम साहित्य में कवियत्रियों द्वारा रचनाओं के योगदान से ज्ञात होता है। महिलाओं की क्रियाशीलता आर्थिक गतिविधियों में भी मिलती है यथा धानारोपण, पशुओं का पालन–पोषण, टोकरी निर्माण, धागा बनाना इत्यादि। हालाँकि सती प्रथा जैसी क्रूर परम्परा भी तमिल समाज में अस्तित्व में थी तथा इसे 'तिपायदल' कहते थे। किन्तु यह बाध्यकारी नहीं थी, क्योंकि समाज में कई विधवाओं के संदर्भ भी प्राप्त होते हैं। हालाँकि उनकी स्थिति शोचनीय थी, क्योंकि उनके साज–सिंगार पर तथा किसी भी प्रकार के आमोद–प्रमोद में भाग लेने पर प्रतिबंध था।

लोग क षि, शिल्प तथा व्यवसाय जैसी विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में व्यस्त थे। धान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पैदावर मानी जाती थी। यह लोगों के भोजन का अभिन्न अंग होने के साथ–साथ वस्तु विनिमय में भी काम आती थी। चूंकि तमिल क्षेत्र में निरन्तर बहने वाली नदी नहीं है अतः शासक वर्ग तालाब तथा बांधों का निर्माण करके क षि गतिविधियों को प्रोत्साहित करता था। चोल शासक कारिकल को कावेरी नदी पर बांध का निर्माण करने का श्रेय दिया जाता है। इसे देश में प्रथम बांध होने का भी गौरव प्राप्त है। शिल्प के क्षेत्र में सूती तथा रेशमी वस्त्रों की कताई सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थी। नमक उत्पादन अन्य महत्त्वपूर्ण गतिविधि थी। संगम काल की सबसे विशिष्ट विशेषता रोम साम्राज्य के साथ व्यापारिक प्रगति थी। दक्षिण भारत से मिली रोम मुद्राओं से इस तथ्य की पुष्टि होती है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है कि मानसूनों की खोज तथा भारतीय तटों पश्चिमी विश्व के मध्य प्रत्यक्ष समुद्री मार्ग इस व्यावसायिक प्रगति का मुख्य कारक रहा। इसने तमिल क्षेत्र में नए जिलों तथा शिल्प केंद्रों को जन्म दिया। वनजी जो तमिलनाडु में वर्तमान करूर के नाम से जाना जाता है, चेर वंश की राजधानी होने के साथ–साथ व्यापार तथा शिल्प का महत्त्वपूर्ण केंद्र था। 'मुजरिस' अर्थात दक्षिण पश्चिम तट पर क्रैंगेनोर चेर साम्राज्य का सर्वोत्तम बंदरगाह था। हमें बताया जाता है कि सोने से लदे रोम के पोत यहाँ आते थे तथा बड़ी मात्रा में काली मिर्च ले जाते थे। यह उत्क ष्ट वस्तुओं तथा हाथी दाँत का महत्त्वपूर्ण केंद्र था। तमिलनाडु के तिरुनेलवल्ली जिले में स्थित कोरकेई पांड्यों का एक प्रमुख बंदरगाह था। यह अपने मोतियों के लिए प्रसिद्ध था। चोल वंश की राजधानी उरैयुर (तमिलनाडु मे तिरुचनापल्ली) वैभवशाली भवनों वाली भव्य नगरी थी। चोलों का प्रमुख बंदरगाह केवरीपट्टनम अथवा पुहार था। संगम कवियों ने बाज़ार को सैनिकों द्वारा सुरक्षित बताया है।

धर्म के क्षेत्र में संगम काल में उत्तर भारतीय तथा दक्षिण भारतीय परम्पराओं के मध्य शांतिपूर्ण तथा निकट संबंध थे। धार्मिक कर्मकांड करवाने वाले ब्राह्मणों ने दक्षिण भारत में इन्द्र, विष्णु तथा शिव इत्यादि की अराधना को लोकप्रिय बनाया। जैन तथा बौद्ध भिक्षुओं के भी तमिल क्षेत्र में अस्तित्व के प्रमाण मिलते हैं। स्थानीय नागरिक, विशेषकर पहाड़ों पर निवास करने वाले, मुरुगन नामक देवता की आराधना करते थे, जिसे उत्तर भारत में युद्ध का देवता कार्तिकेय माना जाता है।

संक्षेप में, संगम साहित्य प्रेम तथा भावनाओं (अहम्) युद्ध तथा सामाजिक आचरण (पूरम) के माध्यम से ई.पू. 300 से 300 ई. तक तमिल क्षेत्र के राजनीतिक संघर्ष, सामाजिक विषमता तथा आर्थिक सम द्धि का पूर्ण चित्र प्रस्तुत करता है।

पाठगत प्रश्न 6.8

1. महापाषाणिक से आाप क्या समझते हैं?

2. संगम शब्द से क्या तात्पर्य है?

3. संगम साहित्य की विषय–वस्तु क्या थी?

4. संगम साहित्य में वर्णित मुख्य कबीले तथा सरदार कौन थे?

5. संगम कविताओं में वर्णित पाँच टिनाई अथवा आर्थिक क्षेत्र कौन से थे?

6. किस चोल शासक ने कावेरी नदी पर बांध का निर्माण किया?

आपने क्या सीखा

मौर्योत्तर काल में शुंग उत्तर भारत में मौर्यों के उत्तराधिकारी बने। उनके पश्चात कुषाणों ने शक तथा पह्लवों को पराजित कर वाराणसी से लेकर मध्य–एशिया तक बड़े साम्राज्य की स्थापना की। कुषाण शासकों ने सर्वाधिक प्रसिद्ध शासक कनिष्क था। वह बौद्ध धर्म का महान संरक्षक था। उसने चतुर्थ बौद्ध समिति का आयोजन कराया तथा कला की गांधार मथुरा शैली को राजकीय संरक्षण दिया। उसके विशाल साम्राज्य की वज़ह से आंतरिक तथा विदेशी व्यापार में प्रगति हुई।

दक्षिण में सातवाहन वंश का साम्राज्य क ष्णा नदी तथा गोदावरी नदी के मध्य स्थापित हुआ तथा इस वंश ने औरंगाबाद के निकट प्रतिष्ठान को अपनी राजधानी बनाया। रोम साम्राज्य के साथ होने वाले लाभकारी व्यापार की वजह से भारतीय उपमहाद्वीप में व्यापार तथा वाणिज्य में अभूतपूर्व प्रगति देखी गई। कला की अमरावती शैली आंध्र प्रदेश में उनके प्रश्रय में फूली–फली।

दक्षिण भारत में नवप्रस्तर काल के बाद 1200 ई. पू. से 300 ई. पू. के मध्य महापाषाणिक सभ्यता अस्तित्व में आई।

महापाषाणिक नागरिक अपने जीवन निर्वाह के लिए क षि आधारित गतिविधियों पर आश्रित थे। ई.पू. 300 से 300 ई. तक संगम साहित्य दक्षिण भारत के आरम्भिक इतिहास पर प्रकाश डालता है। इससे हमें दक्षिण भारत के तीन प्रमुख नायक चोल, चेर तथा पांड्या की गतिवधियों का ज्ञान होता है। यह तत्कालीन तमिल समाज की अर्थव्यवस्था तथा सभ्यता का विविधतापूर्ण चित्रण करता है।

पाठांत प्रश्न

1. मौर्य वंश के बाद उत्तर भारत में प्रमुख राजनीतिक विकास पर प्रकाश डालिए।
2. कुषाण कौन थे? भारत में उनके योगदान की समीक्षा कीजिए?
3. ईसाई युग की आरम्भिक शताब्दी में भारत तथा मध्य एशिया के मध्य संबंधों की विस्तार से चर्चा कीजिए?
4. गौतमीपुत्र शतकर्णी की उपलब्धियों पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए?
5. भारत के समुद्री व्यापार की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए?
6. उत्तर मौर्योत्तर काल में प्रस्फुटित में मूर्तिकला की विभिन्न शैलियों का विस्तार से वर्णन करें?
7. ईस्वी सम्वत की आरम्भिक शताब्दियों के बारे में तमिल क्षेत्र की राजनीतिक सामाजिक व्यवस्था की जानकारी संगम साहित्य हमें किस प्रकार देता है?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

6.1

1. बहद्रत
2. शुंग शासक भागभद्र के दरबार में हेलीडोरस भारतीय यूनानी शासक अतिलकी दास का राजदूत था।
3. मेनेन्दर
4. जूनागढ़ का रुद्रदमन अथवा गिरनार शिलालेख
5. मध्य एशिया

6.2

1. कनिष्क
2. 78 ई. में, कनिष्क
3. कुंडलवन (वर्तमान में जम्मू/कश्मीर में श्रीनगर के निकट हरवान) कनिष्क के संरक्षण में
4. आयुर्वेद के जनक के रूप में, जिन्होंने चरकसंहिता नामक पुस्तक लिखी।

6.3

1. उनमें शासक के चित्रों का चित्रण होता था।
2. यवना



6.4

1. चेरी वंश का शासक खारवेल, जिसने कलिंग पर ई.पू. द्वितीय शताब्दी के लगभग शासन किया
2. भुवनेश्वर के निकट उड़ीसा

6.5

1. गौतमी पुत्र शतकर्णी (प्रथम शताब्दी उत्तरार्द्ध)
2. प्रतिष्ठान (महाराष्ट्र में औरंगाबाद के निकट पैठान)
3. ग्राम
4. सातवाहन
5. ब्राह्मण

6.6

1. उत्तरपथ एक भूमिपथ था, जो भारत के उत्तरी तथा पूर्वी हिस्सों को उत्तर–पश्चिमी सीमाओं से जोड़ता था (आधुनिक पाकिस्तान तथा उसके आगे)
2. दक्षिणपथ वह थलमार्ग था, जो भारतीय प्रायद्वीप को भारत के उत्तर तथा पश्चिमी हिस्सों के साथ जोड़ता था।
3. इससे भारत तथा रोम के मध्य समुद्री व्यापार को प्रोत्साहन मिला।
4. 'फैरीप्लस ऑफ द एरीथ्रियन सी' एक अज्ञात लेखक द्वारा प्रथम शताब्दी में लिखी गईं।
5. कारीगरों व्यापारियों का संघ।

6.7

1. स्तूपों का निर्माण तथा कला की क्षेत्रीय शैलियों का विकास।
2. स्तूप बौद्धों का उपासना स्थल हुआ करते थे, क्योंकि इसमें बुद्ध अथवा बौद्ध भिक्षुओं के अवशेष संग हीत होते थे।
3. सांची, बरहुत अमरावती तथा नागार्जुनकोंडा स्तूप
4. बौद्ध स्थापत्य कला के अन्तर्गत चैत्य तथा विहार चट्टान काट कर बनाए गए भवन थे। चैत्य मंदिर की भाँति था विहार भिक्षुओं का निवास स्थान था।
5. कला की मथुरा, गांधार तथा अमरावती शैलियां।
6. काले बिन्दुओं के साथ लाल पत्थर
7. शक कुषाण

6.8

1. महापाषाणिक कब्र स्थल थे, जिसमें कब्रें हुआ करती थीं।

2. यह तमिल कवियों के सम्मेलन को इंगित करता है।
3. प्रेम तथा युद्ध
4. 'कुरनिजी' (पहाड़ी क्षेत्र), 'पलाई' (निर्जल क्षेत्र), 'मुलाई' (चरवाहे क्षेत्र) 'मरुदम' (नम क्षेत्र) तथा 'नीतल' (समुद्री तट)
5. संगमकालीन चोल शासक करिकल

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें अनुच्छेद 6.2
2. देखें अनुच्छेद 6.2.2
3. देखें अनुच्छेद 6.3
4. देखें अनुच्छेद 6.5
5. देखें अनुच्छेद 6.6.2
6. देखें अनुच्छेद 6.7.3
7. देखें अनुच्छेद 6.8.2



7

गुप्तवंश तथा उनके उत्तराधिकारी

कुषाण वंश के पतन के पश्चात उत्तर भारत में गुप्त वंश का उदय हुआ। इस वंश के शासकों ने बड़े साम्राज्य की स्थापना की, जिसमें पूरा उत्तर भारत शामिल था। गुप्तों के पास कुछ अनुकूल भौतिक परिस्थितियां थी, जिन्होंने साम्राज्य के गठन में सहायता प्रदान की। वे पूर्वी उ.प्र. तथा बिहार से संचालन किया करते थे, जो कि बेहद उपजाऊ क्षेत्र थे। वे अपने लाभ के लिए मध्य भारत तथा बिहार के लौह अयस्कों को भी ले सकते थे। इस युग में कला, वास्तुकला तथा साहित्य के क्षेत्र में बहुत प्रगति हुई। उन्होंने सन् 550 तक शासन किया। उनके पतन के पश्चात् उत्तर भारत विभिन्न क्षेत्रीय शक्तियों में विभाजित हो गया। दक्षिण भारत में भी दो महत्त्वपूर्ण वंशों क्रमशः चालुक्य तथा पल्लवों का सन् 550 से 750 तक शासन रहा।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप :

- गुप्त साम्राज्य का उदय तथा उनके शासकों की राजनीतिक उपलब्धियों की व्याख्या कर सकेंगे;
- गुप्तों के पतन के पश्चात् क्षेत्रीय शक्तियों के शासन का वर्णन कर सकेंगे;
- गुप्तकालीन तथा गुप्तोत्तरकालीन राजनीतिक व्यवस्था का विश्लेषण कर सकेंगे;
- सन् 300 से सन् 700 के मध्य हुए सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों का विवरण प्रस्तुत कर सकेंगे;
- कला तथा साहित्य के संदर्भ में सांस्क तिक विकास को दिखा सकेंगे;
- ब्राह्मणवादी परम्पराओं/रीतिरिवाजों को मजबूत होने तथा पौराणिक धर्म के उदय के विषय में ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे और
- विज्ञान तथा तकनीकी के क्षेत्र में हुए विकास को दिखा सकेंगे।



आपकी टिप्पणियाँ

7.1 राजनीतिक इतिहास

गुप्त वंश की स्थापना श्रीगुप्त ने की थी जो संभवतया वैश्य जाति से संबंधित थे। वे मूलतः मगध (बिहार) तथा प्रयाग (पूर्वी उ.प्र.) के वासी थे। उसके पुत्र घटोत्कच जिसने महाराजा की उपाधि धारण की थी, एक छोटा–मोटा शासक प्रतीत होता है, किन्तु उसके विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

क) चन्द्रगुप्त प्रथम

गुप्त वंश की वास्तविक नींव चन्द्रगुप्त प्रथम के शासनकाल में (सन् 319 से 334) पड़ी। सन् 319 में उसके राज्यारोहरण को गुप्त साम्राज्य का प्रारम्भ माना जाता है। समस्त अभिलेखों में इसी का उल्लेख मिलता है तथा उनके सामंतो में भी। उसने महाराजाधिराज की उपाधि धारण की थी। उसका विवाह लिच्छवी वंश की राजकुमारी कुमारदेवी से हुआ था। चन्द्रगुप्त द्वारा ज़ारी की गई स्वर्ण मुद्राओं की श्रंखला में इस घटना को वर्णित किया गया है। प्रतीत होता है कि इस वैवाहिक सम्बन्ध ने गुप्त सम्राट को वैधता, सम्मान तथा शक्ति प्रदान की। चन्द्रगुप्त का साम्राज्य मगध (बिहार), साकेत (आधुनिक अयोध्या) तथा प्रयाग (वर्तमान इलाहाबाद) तक विस्त त था। उसकी राजधानी पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) थी।

पाठगत प्रश्न 7.1

1. गुप्त वंश का वास्तविक संस्थापक कौन था?

   _____

2. ऐसी दो अनुकूल परिस्थितियों को बतलाएं जिन्होंने गुप्त वंश के प्रसार में सहायता दी।

   _____

3. लिच्छवी के साथ हुए वैवाहिक संबंध ने चन्द्रगुप्त को किस प्रकार सहायता प्रदान की।

   _____

(ख) समुद्रगुप्त

समुद्रगुप्त (सन् 335-375) चन्द्रगुप्त प्रथम का उतराधिकारी बना। समुद्रगुप्त ने युद्ध तथा विजय की नीति का अनुसरण किया एवं अपने साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार किया। उसकी उपलब्धियों का सम्पूर्ण विवरण उसके राजदरबारी कवि हरिसेन द्वारा संस्क त में लिखे गए वर्णन में लिपिबद्ध किया गया है। यह आलेख इलाहाबाद के निकट एक स्तंभ पर वर्णित है। यह समुद्रगुप्त द्वारा जीते गए वंशों तथा क्षेत्रों के नाम को बतलाती है। उसने हर जीते हुए क्षेत्र के लिए भिन्न नीतियाँ अपनाई थीं।

गंगा यमुना दोआब में उसने दूसरे राज्यों को बलपूर्वक सम्मिलित करने की नीति का अनुसरण किया। उसने नौ नागा शासकों को पराजित कर उनके राज्य को अपने साम्राज्य में मिलाया। तत्पश्चात् वह मध्य भारत के वन प्रदेशों की ओर बढ़ा जिनका उल्लेख 'अतवीराज्य' के रूप में मिलता है। इन कबायली क्षेत्रों के शासक



पराजित हुए तथा दासत्व को बाध्य हुए। इस क्षेत्र का राजनीतिक द ष्टि से भी व्यापक महत्त्व हैं क्योंकि इससे दक्षिण भारत को मार्ग जाता था। इसने समुद्रगुप्त को दक्षिण की ओर कूच करने में सक्षम किया तथा पूर्वीतट को जीतते हुए, बारह शासकों को पराजित करते हुए वह सुदूर काँची (चेन्नई के निकट) तक पहुँच गया। समुद्रगुप्त ने राज्यों को बलपूर्वक अपने साम्राज्य में सम्मिलित करने के स्थान पर उदारता का परिचय दिया तथा उन शासकों को उनके राज्य वापस लौटा दिए। दक्षिण भारत के लिए राजनीतिक समझौते की नीति इसलिए अपनाई गई क्योंकि उसे ज्ञात था कि एक बार उत्तर–भारत में अपने क्षेत्र में लौटने के पश्चात इन राज्यों पर नियन्त्रण स्थापित रखना दुष्कर होगा। अतः उसके लिए इतना पर्याप्त था कि ये शासक उसकी सत्ता को स्वीकारें तथा उसे कर तथा उपहारों का भुगतान करें।

इलाहाबाद अभिलेख के अनुसार पाँच पड़ोसी सीमावर्ती प्रदेश तथा पंजाब एवं पश्चिम भारत के नौ गणतन्त्र समुद्रगुप्त की विजयों से भयभीत हो गए थे। उन्होंने बिना युद्ध किए ही समुद्रगुप्त को धन तथा करों का भुगतान करना तथा एवं उसके आदेशों का पालन करना स्वीकार कर दिया था। अभिलेख से यह भी ज्ञात है कि दक्षिण–पूर्वी एशिया के भी कई शासकों से समुद्रगुप्त को धनादि प्राप्त होता था।

मुख्य रूप से यह माना जाता है कि हालांकि उसका साम्राज्य एक विस्त त भू–खण्ड तक फैला हुआ था, किन्तु समुद्रगुप्त का प्रत्यक्ष प्रशासनिक नियन्त्रण मुख्य गंगा घाटी में था। वह अपनी विजय का उत्सव अश्वबलि देकर मनाता था अश्वमेध एवं इस अवसर पर अश्वमेध प्रकार के सिक्के (बलि को वर्णित करते सिक्के) जारी करता था। समुद्रगुप्त केवल विजेता ही नहीं, बल्कि एक कवि, एक संगीतकार, तथा शिक्षा का महान संरक्षक था। संगीत के प्रति उसका प्रेम उसकी उन मुद्राओं से मुखरित होता है, जिसमें उसे वीणा बजाते हुए दिखाया गया है।

पाठगत प्रश्न 7.2

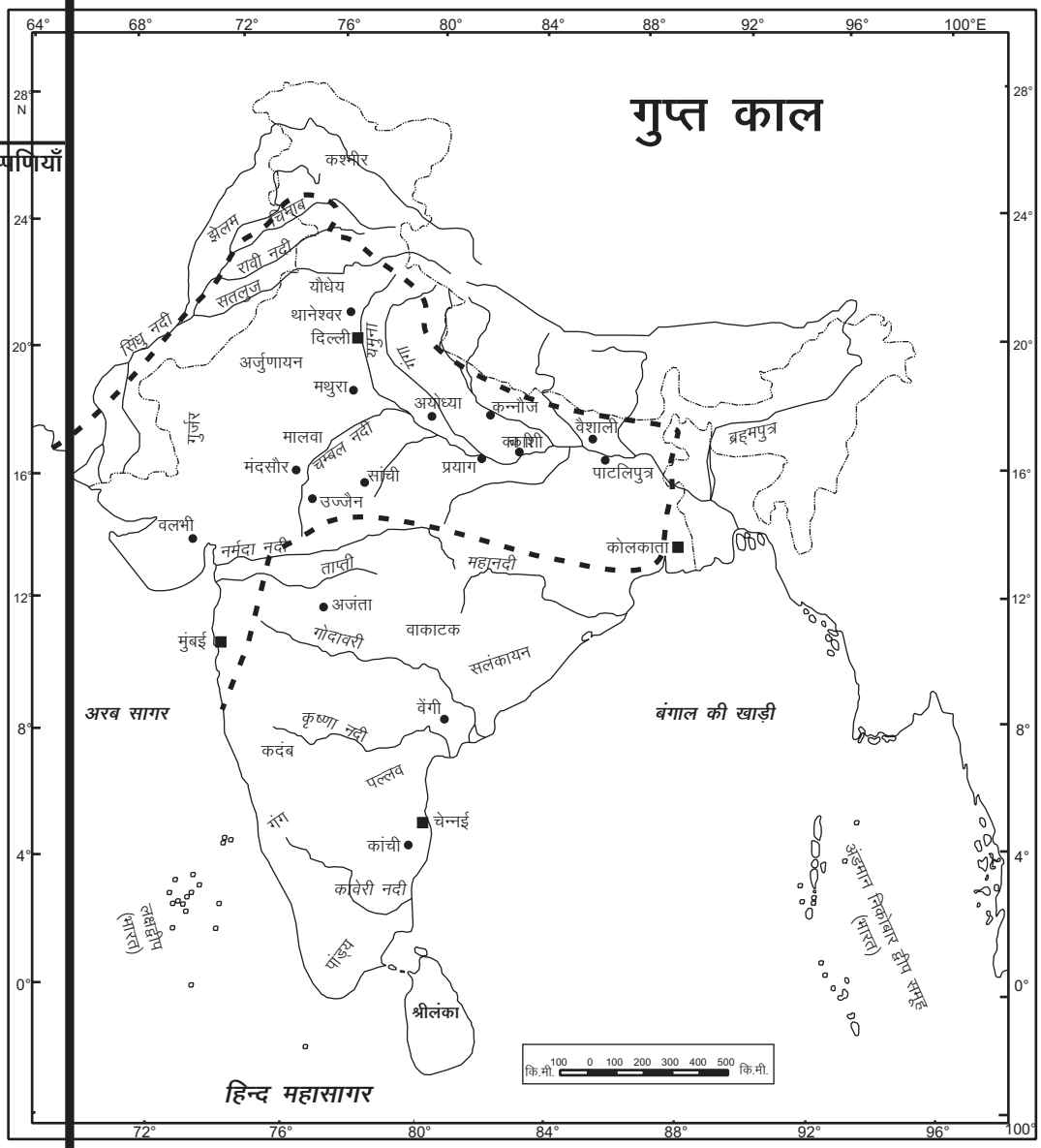
1. समुद्रगुप्त के इतिहास में इलाहाबाद स्तंभ के अभिलेख की क्या महत्ता है?

2. समुद्रगुप्त के काल की मुद्राओं से उसकी कौन–सी विशेषताओं का पता चलता है।

(ग) चन्द्रगुप्त द्वितीय

समुद्रगुप्त के पश्चात् उसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय उसका उत्तराधिकारी बना। उसे चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के नाम से भी जाना जाता है। उसने मात्र अपने पिता के साम्राज्य का विस्तार ही नहीं किया, बल्कि इस युग के अन्य वशों के साथ वैवाहिक संबंधों द्वारा अपनी स्थिति को भी सुद्ढ़ किया।

आपकी टिप्पणियाँ



मानचित्र 7.1 गुप्त साम्राज्य

उसने नागा राजकुमारी कुवेरनाग से विवाह किया तथा उसे प्रभावती नामक पुत्री भी थी। प्रभावती का विवाह दक्षिण में शासन कर रहे वाकाटक वंश के शासक रुद्रसेन द्वितीय से हुआ था। अपने पति की म त्यु के उपरान्त कलावती ने अपने पिता की सहायता से अपने अवयस्क पुत्र के संरक्षक के रूप में शासन किया था। वाकाटक क्षेत्र पर नियंत्रण चंद्रगुप्त द्वितीय के लिए वरदान सिद्ध हुआ, क्योंकि अब वह अपने अन्य शत्रुओं पर और बेहतर तरीके से आक्रमण कर सकता था।

उसकी महानतम सैन्य उपलब्धि पश्चिमी भारत में 300 वर्षों से शासन कर रहे शासक साम्राज्य पर विजय रही। इस विजय के फलस्वरूप गुप्त साम्राज्य की सीमाएं भारत के पश्चिमी तट तक पहुंच गईं



मेहरौली, दिल्ली में स्थित एक लौह स्तंभ से हमें संकेत मिलते हैं कि उसके साम्राज्य में उत्तर–पश्चिम भारत तथा बंगाल के भी राज्य थे। उसने विक्रमादित्य की उपाधि धारणा की थी अर्थात् सूर्य के समान बलशाली। चंद्रगुप्त द्वितीय कला तथा साहित्य के संरक्षण के लिए विख्यात है। उसके दरबार में नवरत्न हुआ करते थे। संस्क त के महान कवि तथा नाटककार कालिदास इनमें सर्वाधिक चर्चित रहे। चीनी बौद्ध तीर्थयात्री फाह्यान (सन् 404-411) ने उसके शासन काल में भारत की यात्रा की थी। उसने पांचवी शताब्दी के लोगों के जीवन का विवरण दिया है।

पाठगत प्रश्न 7.3

1. चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री का विवाह किस वंश के शासक से हुआ था?

   _____

2. इस संबंध ने चन्द्रगुप्त को किस प्रकार लाभान्वित किया?

   _____

3. चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन काल में यात्रा करने वाले चीनी तीर्थयात्री का नाम बताएं?

   _____

4. चन्द्रगुप्त द्वितीय के दरबार में अलंक त होने वाले चर्चित संस्क त कवि तथा नाटककार का नाम बताएं।

   _____

(घ) पतन

चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् उसका पुत्र कुमारगुप्त (सन् 415 से 455) सिंहासन पर आरूढ़ हुआ। अपने पिता के साम्राज्य की रक्षा करने में वह प्रारंभ में सफल रहा, किन्तु उसके शासन के उत्तरार्द्ध में मध्य एशिया में शासन कर रहे हूणों से उन्हें चुनौती मिलनी प्रारंभ हो गईं। बैक्ट्रिया पर अधिपत्य स्थापित करने के उपरान्त हूणों ने हिन्दुकुश पर्वत को पार कर भारत में प्रवेश किया। हूणों का प्रथम आक्रमण राजकुमार स्कन्दगुप्त द्वारा विफल कर दिया गया। किन्तु गुप्त शासक हूणों के उत्तरवर्ती आक्रमणों से अपने साम्राज्य की रक्षा नहीं कर पाए तथा बार–बार के आक्रमणों ने साम्राज्य को दुर्बल बना दिया। यह गुप्त साम्राज्य के विघटन के लिए उत्तरदायी घटकों में मुख्य घटक था।

हूणों द्वारा लिखे गए आलेखों से ज्ञात होता है कि सन् 485 तक उन्होंने मालवा तथा मध्य भारत के बड़े हिस्से पर अधिपत्य स्थापित कर लिया था। पंजाब तथा राजस्थान भी उनकी झोली में थे। हूण वंश का प्रथम चर्चित शासक तोरमण था, जिसने मध्य भारत में भोपाल के निकट एरान तक अपने साम्राज्य की सीमाओं का विस्तार किया। उसका पुत्र मिहिरकुल सन् 515 में उसका उत्तराधिकारी बना। आलेखों में उसका विवरण तानाशाह

तथा क्रूर शासक के रूप में मिलता है। मालवा के शासक यशोधर्मन तथा गुप्त शासक नरसिंहगुप्त बालादित्य ने अंततः मिहिरकुल को पराजित किया, किन्तु हूणों पर यह विजय भी गुप्त साम्राज्य को नया जीवन न दे सकी।

हूणों के आक्रमण के अतिरिक्त आर्थिक सम द्धि में भी ह्रास हुआ। यह उत्तरवर्ती गुप्त शासकों के काल की मुद्राओं से ज्ञात होता है, जिसमें सोने की मात्रा कम थी तथा मिश्र धातु की अधिकता थी। हम गुप्तोत्तर काल में मुद्राओं की क्रमिक कमी भी पाते हैं। इसने शासकों को नकद राशि के स्थान पर भूमि के रूप में भुगतान करने की प्रक्रिया को जन्म दिया। इस तथ्य का ज्ञान ब्राह्मणों तथा अधिकारियों को बड़े पैमाने पर दान किए भूखण्डों के अधिकार पत्रों से मिलता है।

धार्मिक तथा साम्प्रदायिक उद्देश्यों से भूखण्ड दान के बदले शासन को सेवाएं प्रदान करने की परम्परा जागीरदारी प्रथा कहलाई। इस प्रथा के अंतर्गत, दान पाने वाले व्यक्ति को मात्र कर संग्रह का ही नहीं, बल्कि दान में प्राप्त भूमि के प्रबंध का भी अधिकार दिया जाता था। इसने विभिन्न छोटे शक्ति केंद्रों को जन्म दिया, जिन्होंने शासन को चुनौती देने के लिए अपने प्रभाव क्षेत्र का विस्तार किया।

गुप्त साम्राज्य के पतन के परिणामस्वरूप उत्तर भारत में विभिन्न क्षेत्रों में बड़ी संख्या में शासक वंशों का उदय हुआ। इनमें प्रमुख रहे थानेसर के पुष्यभूति, कन्नौज के मौखरी एवं वलभी के मैत्रक। भारतीय प्रायद्वीप में भी राजनीतिक परिद श्य भिन्न नहीं था। दक्षिण तथा उत्तरी तमिलनाडु में क्रमशः चालुक्य तथा पल्लव मजबूत राजनीतिक शक्तियों के रूप में प्रकट हुए।

पाठगत प्रश्न 7.4

1. तोरमण किस वंश से सबंधित था?

   _____

2. हूणों के प्रथम आक्रमण को विफल करने वाले गुप्त वंश के राजकुमार का नाम लिखें।

   _____

3. गुप्त वंश के पतन के उपरांत उदय होने वाले दो वंशों का नाम लिखें।

   _____

7.2 मैत्रक

मैत्रक गुप्त वंश के सहायक मुखिया थे, जिन्होंने पश्चिम भारत में एक स्वतंत्र सत्ता की स्थापना की थी। मैत्रक वंश का सर्वाधिक प्रमुख शासक ध्रुवसेन द्वितीय था। वह हर्षवर्धन का समकालीन था तथा हर्षवर्धन की पुत्री के संग उसका विवाह हुआ था। ह्वेनत्सांग के विवरणों से हमें पता चलता है कि ध्रुवसेन द्वितीय ने हर्षवर्धन द्वारा प्रायोजित



सभा में प्रयाग (इलाहाबाद) में हिस्सा लिया था। गुजरात में सौराष्ट्र पर शासन करते हुए मैत्रक सम्राटों ने वलभी को अपनी राजधानी के रूप में विकसित किया। यह नगर शीध्र ही ज्ञानार्जन का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया। अरब सागर के किनारे स्थित होने के कारण यह प्रमुख बंदरगाही शहर था, जिसमें व्यवसाय तथा वाणिज्य सम द्व था। मैत्रक वंश का शासन आठवीं शताब्दी तक सुचारू रूप से चलता रहा जब तक कि अरब आक्रमणकारियों ने उनकी शक्ति को क्षीण नहीं कर दिया।

7.3 मौखरी

मौखरी वंश का शासन पश्चिमी उत्तर प्रदेश के मथुरा जिले में रहा जो धीरे–धीरे पाटलिपुत्र के स्थान पर उत्तर भारत में सत्ता का केन्द्र बन कर उभरा। मौखरी शासक गुप्त शासकों के अधीन शासक थे तथा 'सामंत' उपाधि का प्रयोग करते थे। हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री का विवाह ग हवर्मन से हुआ था। बंगाल के शासक शशांक एवं उत्तरवर्ती गुप्त शासक देवगुप्त ने संयुक्त रूप से ग हवर्मन पर आक्रमण किया तथा उनकी हत्या कर दी। कन्नौज के राज्य का पुष्यभूति के राज्य में विलय हो गया एवं हर्षवर्धन ने अपनी राजधानी थानेसर (कुरूक्षेत्र) से कन्नौज में स्थानान्तरित कर दी।

7.4 थानेसर का पुष्यभूति वंश

गुप्त साम्राज्य के क्षीण होने के पश्चात प्रमुख शासक वंश पुष्यभूति रहा जिनकी राजधानी थानेसर (कुरूक्षेत्र में थानेस्वर) थी। प्रभाकरवर्धन के सिंहासनारोहण के पश्चात् यह वंश अत्यधिक प्रभावी हो गया था। प्रभाकरवर्धन ने हूणों को पराजित करने में सफलता प्राप्त की एवं पंजाब तथा हरियाणा क्षेत्र में अपनी स्थिति को सुद ढ़ किया। उसकी म त्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र सिंहासन पर बैठा, किन्तु बिहार तथा बंगाल के शासक शशांक द्वारा उसकी निर्मम हत्या कर दी गई। सन् 606 के लगभग हर्षवर्धन का राज्याभिषेक हुआ। उस समय वह मात्र 16 वर्ष का था। तथापि उसने स्वयं को एक महान योद्धा तथा कुशल प्रशासक सिद्ध किया। हर्षवर्धन (606–647) के जीवन तथा काल के संबंध में प्रकाश डालने के लिए हमारे पास मूल्यवान स्रोत है। वे हैं उसके दरबारी कवि बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित्र तथा चीनी बौद्ध तीर्थयात्री ह्वेनत्सांग का यात्रा व त्तांत 'सी–यू–की', जिससे सन् 629 से लेकर 644 तक भारत यात्रा की।

गद्दी संभालने के पश्चात् हर्षवर्धन ने अपने साम्राज्य को अपनी बहन के साम्राज्य के साथ मिला कर संयुक्त किया एवं अपनी राजधानी को कन्नौज में स्थानान्तरित किया। हर्षवर्धन को उत्तर का देव की उपाधि दी गई । उसने पंजाब, उत्तर प्रदेश, बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा को संगठित किया। हर्ष अपने साम्राज्य की पताका दक्षिण में भी फैलाना चाहता था किन्तु नर्मदा नदी के तट पर चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय ने उसे पराजित कर दिया। इस प्रकार नर्मदा नदी उसके साम्राज्य की दक्षिणी सीमा बन गई।

हर्षवर्धन की म त्यु के उपरान्त सन् 647 से भारत में राजनीतिक अनिश्चितता का दौर प्रारंभ हुआ जो आठवीं शताब्दी तक चला, जब उत्तर भारत में गुर्जर, प्रतिहार, राजपूत शासक बड़ी शक्तियों के रूप में उभरे।

पाठगत प्रश्न 7.5

1. हर्षचरित्र का रचयिता कौन था?

2. किस राजा के शासन काल में ह्वेनत्सांग ने भारत की यात्रा की?

3. हर्षवर्धन को किस शासक ने पराजित किया।

भारतीय प्रायद्वीप

7.5 वाकाटक साम्राज्य

भारतीय प्रायद्वीप में वाकाटक एक स्थानीय सत्ता थे जिनका साम्राज्य उत्तरी महाराष्ट्र तथा विदर्भ में था। उनका इतिहास ब्राह्मणों को दान की गई भूमि के लिए जारी किए गए अधिकार पत्रों की सहायता से पुनः लिखा जा सकता है। शाही वाकाटक वंश के रूद्रसेन द्वितीय का विवाह महान गुप्तवंश के प्रतापी शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्त के साथ हुआ था। वाकाटक साम्राज्य सांस्कतिक रूप से महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि वह दक्षिण भारत में ब्राह्मणवाद की संस्कति के विस्तार का माध्यम बना।

7.6 चालुक्य वंश

दक्कन तथा दक्षिण भारत के इतिहास में चालुक्य वंश ने छठी शताब्दी के प्रारंभ से लेकर 200 वर्ष तक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उन्होंने पश्चिमी दक्कन में अपने साम्राज्य की स्थापना की तथा वातापी (वर्तमान कर्नाटक में बादामी) को अपनी राजधानी बनाया।

पुलकेशिन द्वितीय के शासन काल में (सन् 610–642) साम्राज्य की ख्याति शीघ्रता से शिखर पर पहुंच गई वह चालुक्य वंश का महानतम शासक था। उसने अपनी स्थिति को महाराष्ट्र में सुदढ़ किया तथा दक्कन के बड़े भू–भाग पर विजय प्राप्त की। उसने सन् 630 के निकट हर्षवर्धन को पराजित कर 'दक्षिणपथेश्वर' अर्थात् दक्षिण के देव की उपाधि अर्जित की। हालांकि वह स्वयं सन् 642 में पल्लव शासक नरसिम्हवर्मन के हाथों पराजित होकर मारा गया। इसने चालुक्य तथा पल्लवों के मध्य लंबे राजनीतिक संघर्ष के युग को प्रारंभ किया जो कि सौ वर्षों से अधिक उत्थान एवं पतन के साथ निरंतर चलता रहा। इस संघर्ष पर विराम सन् 757 के निकट लगा जब उन्हीं के सामन्तों राष्ट्रकूट वंश ने उनका तख्ता पलट दिया। सांस्कतिक रूप से दक्कन क्षेत्र में कला तथा स्थापत्य कला की प्रगति के लिए इस युग की अपनी महत्ता है।

पाठगत प्रश्न 7.6

1. चालुक्य साम्राज्य की राजधानी क्या थी?

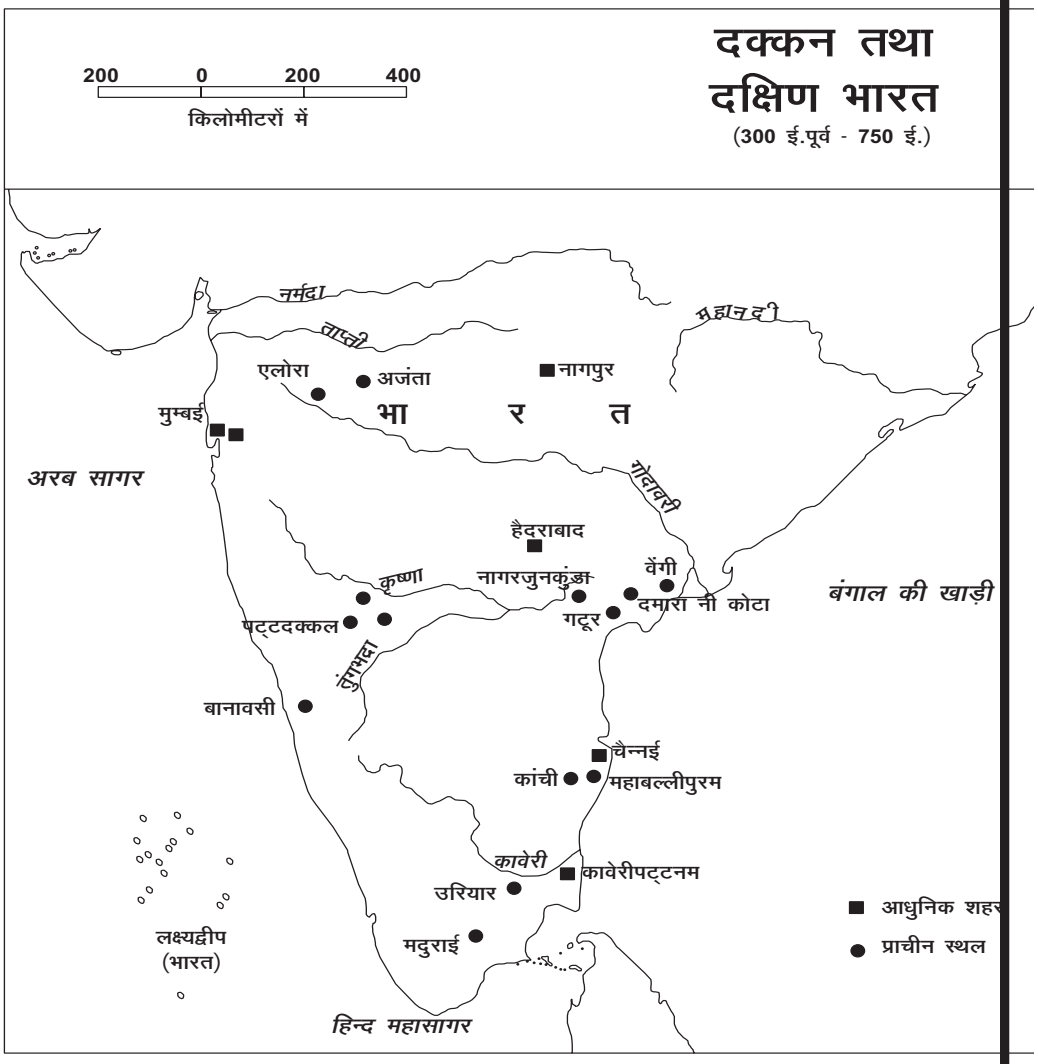
2. पुलेकशिन द्वितीय को किस नाम से जाना जाता है?

_____

7.7 पल्लव वंश

पल्लव वंश ने अपना साम्राज्य दक्षिण आंध्र प्रदेश से लेकर उत्तरी तमिलनाडु तक स्थापित किया। उन्होंने कांची को अपनी राजधानी बनाया। उनके शासनकाल में कांची व्यापारिक तथा व्यावसायिक गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण केन्द्र तथा मंदिरों के लिए विख्यात नगर बन गया था।

महेन्द्रवर्मन (सन् 600–630) तथा नरसिम्हवर्मन (सन् 630–668) के शासन काल में पल्लव वंश के साम्राज्य का विस्तार हुआ। अपने शासन के दौरान उनका संघर्ष उत्तर



मानचित्र 7.2 दक्कन तथा दक्षिण भारत

में वातापी के चालुक्य वंश, चोलों के तमिल साम्राज्य तथा दक्षिण में पांड़यों के साथ निरंतर चलता रहा। प्रतापी चोल शासकों द्वारा दक्षिण भारत में उनके शासन का अंत हुआ। सांस्क तिक रूप से उनका शासन काल तमिल साहित्य में भक्ति धारा के विकास के लिए एवं दक्षिण भारत में कला तथा स्थापत्य कला के क्षेत्र में द्रविड़ शैली की प्रगति के लिए स्मरणीय रहेगा। उन्हीं के शासनकाल में चेन्नई का दक्षिण क्षेत्र महाबलीपुरम, मंदिरों की वास्तुकला के महत्त्वपूर्ण केन्द्र के रूप में प्रकट हुआ।

पाठगत प्रश्न 7.7

1. पल्लवों की राजधानी का नाम लिखें?

2. उत्तर के पल्लवों के प्रमुख दुश्मनों के नाम क्या थे?

7.8 प्रशासनिक प्रणाली (300-750 ई०)

मौर्ययुग में राजनीतिक शक्ति राजा के हाथों में ही केन्द्रित थी किन्तु गुप्त प्रशासन स्वभावतया विकेन्द्रित था। इसका तात्पर्य जागीरें अर्थात् स्थानीय शासक एवं छोटे मुखिया उनके साम्राज्य के बड़े हिस्से पर शासन करते थे। प्रतापी गुप्त शासकों ने महाराजाधिराज, परमेश्वर जैसी शानदार उपाधियां धारण की हुई थीं। इनके दुर्बल शासकों ने राजा अथवा महाराजा उपाधियों से अपने नाम को अलंक त किया।

सामान्यतया राजपद वंशानुगत था। प्रशासन का मुख्य बिंदु राजा होता था। राजकुमार मंत्री तथा सलाहकार उसकी सहायता करते थे। राजकुमारों को भी क्षेत्रों का राज्यपाल नियुक्त किया जाता था। प्रान्त मुख्यतः देश, राष्ट्र अथवा भुक्ति के नाम से जाने जाते थे। उनका प्रधान 'उपारिक' कहलाता था। प्रान्त विभिन्न जिलों में विभक्त हुआ करते थे जिन्हें 'प्रदेश' अथवा 'विषय' कहा जाता था। 'विषय' का प्रधान 'विषयपति' के नाम से जाना जाता था। 'विषय' भी ग्रामों में विभक्त हुआ करते थे। ग्राम प्रमुख 'ग्रामाध्यक्ष' कहलाता था तथा ग्राम के वरिष्ठ नागरिकों की सहायता से ग्राम के विषयों की जिम्मेदारी निभाता था। गुप्त काल के दौरान कलाकार तथा व्यापारी नगर प्रशासन में सक्रिय भूमिका निभाते थे। मौर्यो की तुलना में गुप्त अधिकारी वर्ग कम बड़ा था। गुप्तों के अधीनस्थ उच्च स्तरीय केन्द्रीय अधिकारी कुमारअमात्य से संबोधित होते थे। महत्त्वपूर्ण पदाधिकारी, यथा–मंत्री, सेनापति सभी इसी संवर्ग से चयनित होते थे। प्रशासनिक पद मात्र वंशानुगत ही नहीं होते थे बल्कि प्रायः कई कार्यालय संयुक्त रूप से एक ही व्यक्ति द्वारा संचालित होते थे जैसे कि इलाहाबाद स्थित समुद्रगुप्त के आलेख का रचयिता, हरिसेन उसका उल्लेख 'महादण्डनायक' (युद्ध तथा शक्ति मंत्री) के रूप में प्राप्त होता है। प्रायः उच्च पदाधिकारियों का चयन शासक स्वयं करता था किन्तु पद वंशानुगत होने से प्रशासन पर शाही नियंत्रण दुर्बल हो गया था।



गुप्तकाल में भू–करों में व्यापक व द्धि हुईं। भू–कर अर्थात 'बालि', कुल उत्पादन का 1/4 से 1/6 हिस्से तक भिन्न होता था। गुप्त काल में हमें आलेख से दो नए क षि करों का भी आभास होता है यथा 'उपरिकर' तथा 'उद्रंग।' तथापि इनका यथार्थ स्वरूप स्पष्ट नहीं है। साथ ही क षक वर्ग को सामन्तों की आवश्यकताओं को भी पूर्ण करना होता था। उन्हें गांव से शाही सैन्य बल को भोजन भी कराना होता था जिस गांव से वे गुजरते थे। ग्रामवासियों से बेगार कार्य भी लिया जाता था।अपने पिछले समय की तुलना में गुप्तकाल की न्यायिक व्यवस्था अत्यधिक उन्नत थी। अपने पिछले समय की तुलना में प्रथम बार दीवानी तथा अपराधिक विधि नियमों का स्पष्ट वर्गीकरण हुआ था। विभिन्न प्रकार की सम्पत्तियों से संबंधित विवाद दीवानी कानून के अन्तर्गत आए। उत्तराधिकार से संबंधित विस्त त नियमों की रचना इस युग में हुईं। चोरी तथा व्यभिचार आपराधिक न्याय विधान के अन्तर्गत आए। राजा ने नियमों को मजबूत बनाया तथा ब्राह्मणों की सहायता से विषयों का निराकरण किया। कारीगरों तथा व्यापारियों के संगठन स्वनिर्मित नियमों द्वारा नियंत्रित होते थे।

हर्षवर्धन ने इसी पद्धति पर अपने साम्राज्य का संचालन किया, किन्तु उसके शासन काल में प्रशासन में विकेन्द्रीकरण की गति में प्रगति हुई तथा सामंत जागीरों की संख्या में भी व द्धि हुईं। हर्षवर्धन के शासन काल में अधिकारी तथा धार्मिक व्यक्तियों को भूमि के रूप में भुगतान किया जाता था। इसने सामंती प्रथा को प्रोत्साहन दिया जो कि हर्षोत्तर काल में असाधारण रूप से विकसित हुईं।

हर्षवर्धन के शासन काल में कानून, न्याय एवं दंड व्यवस्था उतनी प्रभावी प्रतीत नहीं होती है। भारत में अपनी यात्रा के दौरान ह्वेनत्सांग को दो बार लूट लिया गया जबकि गुप्त काल के यात्री फाह्यान ने ऐसी किसी भी कठिनाई का उल्लेख नहीं किया है।

पाठगत प्रश्न 7.8

1. गुप्त शासकों द्वारा धारण की गई उपाधियों के नाम लिखें?

   _____

2. गुप्त काल में प्रान्तों को किस नाम से जाना जाता था?

   _____

3. गुप्त कालीन प्रशासन की लघुतम इकाई का नाम लिखें?

   _____

4. कुमारअमात्य कौन थे?

   _____

5. गुप्तों द्वारा आरोपित किए गए दो नए करों के नाम लिखें?

   _____



आपकी टिप्पणियाँ

6. हर्ष के काल में कानून एवं दंड व्यवस्था कैसी थी?

_____

7.9 समाज

गुप्तकाल में समाज का तानाबाना एक परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। ब्राह्मणों की सर्वोच्चता में व द्धि हो रही थी। उन्हें न सिर्फ शासकों से बल्कि साधारण जनता से भी दान के रूप में भूखण्डों की प्राप्ति हो रही थी। भूखण्ड उन्हें प्रबन्ध के अधिकार तथा करों में छूट के सहित प्राप्त होते थे। अतः भू–स्वामी ब्राह्मणों के नए वर्ग का निर्माण हुआ। शासक का समर्थन प्राप्त होने की वजह से उनमें किसानों के शोषण की प्रव त्ति को जन्म लिया।

इस युग में हम जातियों में भी व द्धि पाते हैं। सुदूर एवं विभिन्न क्षेत्रों में ब्राह्मणवादी सभ्यता के विस्तार के परिणामस्वरूप बड़ी संख्या में आदिवासी जनजातियां तथा कुछ विदेशी आक्रमणकारी, जैसे–हूण वंश, वर्ण व्यवस्था के अन्तर्गत ब्राह्मणवादी सामाजिक व्यवस्था में सम्मिलित हो गए। जहां विदेशी तथा जनजाति के मुखिया क्षत्रिय कहलाए वहीं साधारण जनजातियों को शूद्रों की स्थिति प्राप्त हुई।

तथापि कुछ हद तक शूद्रों की स्थिति में इस युग में सुधार दिखलाई पड़ता है। उन्हें महाकाव्य तथा पुराण सुनने की अनुमति थी। वे घरेलू कर्मकाण्डों को भी कर सकते थे जो पूर्व में उनके लिए प्रतिबंधित थे। सातवीं शताब्दी में ह्वेनत्सांग ने शूद्रों को क षक तथा वैश्यों को व्यापारी कहा है। शूद्रों तथा अस्प श्यों के मध्य भी अंतर किया गया। अस्प शयों को समाज में शूद्रों से भी निम्न स्थान प्राप्त था।

अस्प श्यों को चाण्डाल कहा जाता था। उनका निवास गांव से बाहर होता था तथा वे नाली साफ करना अथवा कसाईगीरी जैसे कार्य करते थे। चीनी यात्री फाह्यान के अनुसार जब वे जिलों अथवा व्यापारिक केन्द्रों में प्रवेश करते थे, तब वे अपने आने की घोषणा लकड़ी के टुकड़े को बजाकर करते थे जिससे कि अन्य उनसे छूकर भ्रष्ट न हो जाएं।

दासों का संदर्भ भी समकालीन धर्मशास्त्रों में मिलता है। नारद के अनुसार 15 प्रकार के दास हुआ करते थे। उनमें मुख्यतः ग हकार्य हेतु अर्थात् सफाई करने तथा झाड़ू लगाने हेतु दास थे। युद्ध के कैदी, कर्जदार, दास मां की कोख से जन्म लेने वाले सभी दास ही समझे जाते थे।

गुप्तकाल में स्त्रियों की सामाजिक स्थिति ठीक नहीं थी। स्त्रियों की अधीनता का मुख्य कारण पुरुषों पर उनकी पूर्ण निर्भरता रही। सम्पत्ति को पैत क रूप में पाने का अधिकार महिलाओं को नहीं था। तथापि स्त्रीधन अर्थात विवाह के समय प्राप्त उपहारों पर उसका पूर्णाधिकार था। कला में स्त्रियों का मुक्त चित्रण समाज में पर्दा प्रथा न होने का संकेत देते हैं। तथापि सती प्रथा का अस्तित्व अवश्य मिलता है। मध्य प्रदेश के एरान में अंकित एक उल्लेख (सन् 510) में प्रथम सती का प्रमाण मिलता है। बाणभट्ट के हर्ष चरित्र में रानी, अपने पति राजा प्रभाकरवर्धन की म त्यु पर सती हो जाती है। यहां तक कि हर्षवर्धन की बहन राजश्री भी सती प्रथा का पालन करने जा रही थी जब हर्षवर्धन ने उनकी जान बचाई।

पाठगत प्रश्न 7.9

1. ह्वेनत्सांग द्वारा शूद्रों के विषय में क्या विवरण किया गया है?

2. स्त्रीधन क्या है?

3. किस ग्रन्थ में सती प्रथा का प्रथम सबूत मिलता है?

7.10 अर्थव्यवस्था

चौथी शताब्दी से आंठवी शताब्दी का काल एक महान क षि विस्तार का युग था। भूमि का बड़े क्षेत्र पर जुताई प्रारंभ हुई तथा उच्च परिणाम प्राप्त करने हेतु उत्पादन के तत्कालीन उपलब्ध तरीकों में सुधार किए गए। इस सुधार का एक मुख्य कारण ब्राह्मणों तथा गैर धार्मिक कर्मिकों को विभिन्न क्षेत्रों में भूमि दान करने की परम्परा रही। इसने बिना काम वाली भूमि को भी क षि के योग्य बना दिया। लौह वाले हल, गोबर की खाद, सिंचाई, तथा पिछड़े क्षेत्रों में पशुधन संरक्षण ने ग्रामीण सम्पन्नता में अपना सहयोग दिया। तथापि कर्ज से पीड़ित किसानों को इससे कोई लाभ नहीं हुआ।

गुप्त तथा गुप्तोत्तर युग में व्यापार तथा वाणिज्य के क्षेत्र में पतन हुआ। सन् 550 तक भारत के पूर्वी रोम साम्राज्य के साथ व्यापारिक संबंध थे, जब भारत मसालों तथा रेशम का निर्यात किया करता था। छठी शताब्दी के लगभग रोम नागरिकों ने रेशम के धागे बुनने की कला को सीख लिया। इस विशेष वस्तु के उत्पादन क्षेत्र में विदेशी व्यापार को इससे काफी ठेस पहुंची। हूणों द्वारा उत्तर पश्चिमी मार्ग पर अवरोध उत्पन्न करना भी इस पतन के घटकों में रहा। भारत ने इसकी क्षतिपूर्ति दक्षिण पूर्वी एशिया के साथ वाणिज्य संबंध बना कर करनी चाही किन्तु इससे भी अर्थव्यवस्था को पुनर्जीवित करने में सहायता प्राप्त नहीं हुई। निम्न व्यापार ने देश में सोने एवं चांदी की आपूर्ति पर भी असर डाला। इसका प्रमाण गुप्तकाल के पश्चात स्वर्ण की कमी से मिलता है।

गुप्त शासकों द्वारा बड़ी संख्या में स्वर्ण मुद्राएं प्रचलन में लाई गई थीं, जिन्हें दीनार कहते थे। किन्तु चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् हर गुप्त शासक के शासन काल में स्वर्ण मुद्राओं में सोने की तुलना में मिश्र धातु की अधिकता रही। गुप्त वंश के उपरांत कुछ ही वंशों के समकालीन सिक्के प्राप्त हो पाए है। सिक्कों की अनुपलब्धता से यह समझा जा सकता है कि गुप्तों के पतन के पश्चात एक सीमित व्यापार वाली अपने में संपूर्ण अर्थव्यवस्था का उदय हुआ।

पाठगत प्रश्न 7.10

1. भारतीयों द्वारा पूर्वी रोमन साम्राज्य को निर्यात की जाने वाली वस्तुओं के नाम लिखें?



आपकी टिप्पणियाँ

2. गुप्तकालीन स्वर्ण मुद्राएं किस नाम से जानी जाती थीं?

7.11 साहित्य

कला तथा साहित्य के क्षेत्र में गुप्तकाल स्वर्ण युग माना जाता था। बड़ी संख्या में धार्मिक तथा अन्य साहित्य की रचना इस काल में हुईं। रामायण तथा महाभारत दोनों महाकाव्य चौथी शताब्दी में पूरे हो गए। दोनों ही महाकाव्यों की विषयवस्तु में अधर्म पर धर्म की विजय है। राम तथा क ष्ण दोनों ही भगवान विष्णु के अवतार माने गए।

गुप्तकाल से साहित्य में 'पुराणों' का स जन प्रारंभ हुआ। इन रचनाओं में हिन्दू देवी–देवताओं की कहानियां हैं तथा व्रत एवं कर्मकाण्डों और तीर्थ यात्रा द्वारा उन्हें प्रसन्न करने के तरीकों का विवरण है। इस काल में स जित मुख्य पुराण थे–'विष्णु पुराण,' 'वायु पुराण' एवं 'मत्स्य पुराण। शिव की आराधना के लिए 'शिव पुराण' की रचना हुई वहीं विष्णु के विभिन्न अवतारों का महिमामंडन 'वाराह पुराण,' 'वामन पुराण' तथा 'नरसिम्हा पुराण' में मिलता है। ये साधारण जन के लिए लिखे गए थे। गुप्त काल में कुछ विधि विषयक पुस्तकें 'स्म ति' भी लिखी गईं इनमें से नारद स्म ति सामान्य सामाजिक तथा आर्थिक नियमों तथा नियमावलियों पर प्रकाश डालती है।

गुप्तकालीन साहित्य की भाषा संस्क त थी। संस्क त के महानतम कवि, कालिदास पांचवीं शताब्दी में चन्द्रगुप्त द्वितीय के दरबार के मुख्य रत्न थे। उनके साहित्यिक कार्य बहुत ही लोकप्रिय हैं तथा कई यूरोपीय भाषाओं में उनका अनुवाद हुआ। उनकी कुछ चर्चित रचनाएं 'मेघदूत', 'अभिज्ञान–शाकुन्तलम', 'रघुवंश', 'कुमार संभव' तथा 'ऋतुसंहार' है। उनकी रचनाओं का मुख्य आकर्षण उच्च कुल के पात्रों द्वारा संस्क त का प्रयोग तथा साधारण लोगों द्वारा प्राक त भाषा का प्रयोग रहा। इस युग के अन्य चर्चित लेखक 'शूद्रक' जिन्होंने 'म च्छकटिकम' तथा 'विशाखादत्त' जिन्होंने 'मुद्राराक्षस' की रचना की।

सातवी शताब्दी में हर्षवर्धन के दरबारी कवि ने अपने संरक्षक की प्रशंसा करते हुए 'हर्षचरित्र' का स जन किया। अत्यधिक अलंक त भाषा में लिखी गई यह रचना बाद के लेखकों के लिए बन गईं उदाहरण हर्षवर्धन के शासन काल के आरम्भिक इतिहास की जानकारी इसी पुस्तक से प्राप्त होती है। उसके द्वारा लिखित अन्य रचना है 'कादम्बरी'। हर्षवर्धन स्वयं भी एक साहित्यिक सम्राट था। कहा जाता है कि उसने तीन नाटक लिखे–प्रिय दर्शिका, नागनन्द तथा रत्नावली।

दक्षिण भारत में सन् 550 से 750 तक तमिल में भक्ति साहित्य का स जन हुआ। अपने–अपने देवताओं की प्रशंसा में वैष्णव संतों (अल्वर) तथा शैव संतों (नयन्नर) ने गीतों का स जन किया। अल्वर संतों में सर्वाधिक चर्चित संत एक महिला 'अन्दल' थी। वैष्णव भजनों को बाद में 'नलयिरा प्रबंधम्' तथा शैव भजनों को 'देवराम' नामक संकलनों में संकलित कर लिया गया।

पाठगत प्रश्न 7.11

1. पुराण क्या थे?



2. अन्दल कौन थी?

_____

3. नयन्नरों का भक्ति–साहित्य किस नाम से प्रसिद्ध हुआ?

_____

7.12 कला तथा स्थापत्य कला

प्राचीन भारतीय कला मुख्यतः धर्म पर आधारित हेाती थी। गुप्त काल में भी बौद्ध धर्म ने कला को आश्चर्यजनक रूप से प्रभावित किया। सुल्तानगंज, बिहार में तांबे की बनी विशालकाय प्रतिमा पाई गई है। मथुरा एवं सारनाथ में महात्मा बुद्ध की आकर्षक प्रतिमाएं गढ़ी गई हैं। गुप्तकालीन बौद्ध कला का सबसे परिष्क त उदाहरण अजन्ता की गुफाओं में की गई चित्रकारी है। महात्मा बुद्ध एवं जातक कहानियों का वर्णन करते इन चित्रों का पक्का रंग चौदह शताब्दी उपरान्त भी फीका नहीं हुआ। अजन्ता की गुफाएं अब संयुक्त राष्ट्र द्वारा विश्व धरोहर स्थलों की सूची में सम्मिलित हो चुकी हैं।

गुप्तकाल में ही प्रथम बार भवन के आकार के मंदिर–निर्माण की शैली उत्तर भारत में विकसित हुई। इन मंदिरों को स्थापत्य कला में 'नागर' के नाम से जाना गया। इस प्रकार के दो मंदिर उत्तर प्रदेश में कानपुर में भितरगांव एवं झांसी में देवगढ़ में पाए गए हैं, जो क्रमशः ईंट तथा पत्थरों द्वारा निर्मित है। इन मंदिरों में विष्णु की प्रतिमाएं केंद्र में मुख्य देव के रूप में स्थापित हैं।

गुप्तकालीन मुद्राएं भी कला का ही उत्क ष्ट उदाहरण थीं। उनकी बनावट सुंदर थी तथा सतर्कता से उन्हें गढ़ा जाता था। उन पर शासकों की गतिविधियों का आकर्षक ढंग से



चित्र 7.1 देवगढ़ नर–नारायण

चित्रण होता था। समुद्रगुप्त द्वारा चलाई गई संगीतात्मक स्वर्ण मुद्राओं में उसे वीणा बजाते देखा जा सकता है। इस चित्रण में संगीत के प्रति उसका आकर्षण दिखाई देता है। जैसा कि ऊपर वर्णित है उसने अश्वमेध प्रकार की मुदाएं भी प्रचलन में लाईं। भारतीय प्रायद्वीप में शिव तथा विष्णु की आराधना लोकप्रिय हो रही थी।



चित्र 7.2 रथ मंदिर महाबलिपुरम

इन देवताओं की प्रतिमाओं को स्थापित करने के लिए सातवी तथा आठवी शताब्दी में पल्लव शासकों ने पत्थरों के मंदिरों का निर्माण कराया। सर्वाधिक प्रसिद्ध सात रथ मंदिर हैं; प्रत्येक मंदिर पत्थर के ठोस टुकड़े से बना हुआ है। यह चेन्नई से 65 किलोमीटर दूर महाबलीपुरम् में स्थित है एवं इसका निर्माण राजा नरसिंहवर्मन ने करवाया था। पल्लवों के शासन में सर्वाधिक उल्लेखनीय मन्दिर आठवी शताब्दी के कैलाशनाथ मंदिर है।

वातापी के चालुक्य भी मंदिर निर्माण में पीछे नहीं रहे तथा उन्होंने एहोल, बादामी तथा पत्तादकल में असंख्य मंदिरों का निर्माण कराया। सातवी, आठवीं शताब्दी में पत्तादकल में ही दस मंदिरों का निर्माण हुआ तथा विरुपोक्ष मंदिर का भी। मंदिरों की दक्षिण भारत की स्थापत्य कला को द्रविड़–कला का नाम मिला।

पाठगत प्रश्न 7.12

1. उत्तर प्रदेश में गुप्तकालीन मंदिर कहाँ पाए गए हैं?

2. उत्तर तथा दक्षिण स्थापत्य शैलियों के नाम लिखें?



3. महाबलीपुरम क्यों महत्त्वपूर्ण है?

7.13 धर्म

गुप्त शासकों ने भागवत पंथ को प्रश्रय दिया, किन्तु वे अन्य धर्मो के प्रति भी सहिष्णु थे। गुप्त काल तथा हर्षवर्धन के समय में भारत यात्रा पर आए चीनी तीर्थ यात्री क्रमशः फाहयान एवं ह्वेनत्सांग के यात्रा व त्तांतों से यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म भी प्रगति कर रहा था। हर्ष ने शैव मत को मानने के बावजूद बौद्ध धर्म को स्वीकार कर लिया था तथा वह इस धर्म का महान संरक्षक बन गया था। उसने महायान को लोकप्रिय बनाने के लिए कन्नौज में एक सभा का आयोजन किया था। उसके शासन–काल में नालन्दा बौद्ध धर्म की महायान शाखा का प्रमुख शिक्षा केंद्र बन कर उभरा। बाहर के देशों के विद्यार्थी भी इस विश्वविद्यालय में ज्ञानार्जन को आते थे। ह्वेनत्सांग के अनुसार सौ गांवों के राजस्व से यह संचालित होता था।

भागवत पंथ भगवान विष्णु तथा उनके अवतारों की पूजा–अर्चना पर आधारित था। इसमें वैदिक कर्मकाण्डों तथा बलि के स्थान पर भक्ति एवं अहिंसा पर बल दिया जाता था। नया पंथ उदारवादी था तथा निम्न जाति के लोग भी इसका अनुसरण करते थे। 'भगवदगीता' के अनुसार जब भी अधर्म होता है, भगवान विष्णु मानवरूप में जन्म लेते हैं तथा जगत की रक्षा करते हैं। इस प्रकार विष्णु के दस अवतारों को माना गया। हर अवतार के गुणों को लोकप्रिय बनाने के लिए पुराणों की रचना की गई थी। गुप्तकालीन मंदिरों में भगवान की प्रतिमाएं स्थापित होती थीं।

दक्षिण भारत में सातवी शताब्दी के पश्चात् अलवर तथा नयन्नर तमिल संतों ने भक्ति के सिद्धांत को लोकप्रिय बनाया। अल्वर संतों ने भगवान् विष्णु के रूप को तथा नयन्नर संतों ने भगवान शिव के रूप को जन–जन में लोकप्रिय बनाया। तंत्रवाद का उदय भी हम इस युग में देखते हैं। पांचवीं शताब्दी के पश्चात् ब्राह्मणों को नेपाल, असम, बंगाल, उड़ीसा तथा मध्य भारत एवं दक्कन के प्रदेशों में जनजातीय क्षेत्रों में भूखण्ड मिलने प्रारंभ हो गए। परिणामस्वरूप ब्राह्मणों के समाज में ये जनजातीय तथ्य सम्मिलित हो गए। ब्राह्मणों ने उनके देवी, देवताओं, कर्मकाण्डों को अपना लिया। यह ब्राह्मणवादी संस्क ति तथा जनजातीय परम्पराओं का सम्मिश्रण है, जिसने तंत्रवाद को जन्म दिया। इसमें लिंग अथवा जाति आधारित भेदभाव नहीं था तथा महिलाओं एवं शूद्रों को स्थान प्राप्त था। उन्होंने स्त्री को शक्ति तथा ऊर्जा का केंद्र बताया। तन्त्र के सिद्धांत ने शैव, वैष्णव, बौद्ध तथा जैन सभी धर्मों पर प्रभाव डाला। परिणामस्वरूप इन क्षेत्रों में देवी पूजन की प्रथा प्रारंभ हुई।

पाठगत प्रश्न 7.13

1. बौद्ध धर्म के लिए सभा का आयोजन हर्षवर्धन ने कहाँ पर किया था?

2. हर्ष के शासनकाल में महायान सम्प्रदाय के प्रमुख शिक्षा केंद्र का नाम लिखें?

3. भगवान विष्णु के कितने अवतार माने जाते हैं?

4. दक्षिण भारत में विष्णु तथा शिव की अर्चना को लोकप्रिय बनाने वाले संतों के क्या नाम थे?

7.14 विज्ञान तथा तकनीक

गुप्त काल में विज्ञान तथा तकनीक के क्षेत्र में प्रगति के बारे में जानकारी हमें इस काल में इन विषयों में रचित ग्रन्थों से हो जाता है। इन ग्रन्थों में सर्वाधिक चर्चित ग्रन्थ खगोल–विज्ञान पर आधारित 'आर्यभट्टयम' है, जो कि आर्यभट्ट द्वारा पाचवीं शताब्दी में लिखा गया था। आर्यभट्ट एक खगोल विज्ञानी तथा गणितज्ञ थे। उन्होंने ही प्रथम बार यह सिद्ध किया था कि प थ्वी अपनी धुरी पर घूमती है तथा सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है, जिसकी वजह से सूर्य ग्रहण होता है। उन्होंने ही 'शून्य' की खोज की थी तथा दशमलव प्रणाली का प्रयोग प्रथम बार किया था। एक अन्य विद्वान वराहमिहिर (छठी शताब्दी के उत्तरार्द्ध) महान खगोल शास्त्री थे, जिन्होंने खगोल विज्ञान पर कई पुस्तकों की रचना की। उनकी रचना 'पंचसिद्धांन्ति' में पांच प्रकार की खगोलीय पद्धतियां बतलाई गई हैं। एक सुप्रख्यात गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त भी गुप्तकालीन थे।

गुप्त वंश में धातु विज्ञान में भी नई तकनीकों का आगमन हुआ। इस युग में निर्मित महात्मा बुद्ध की तांबे की विशालकाय मूर्ति उन्नत तकनीक का एक उदाहरण है। मेहरौली स्थित लौह स्तंभ भी धातु के क्षेत्र में गुप्त वंश की विकसित तकनीक का बखान करता है। खुले क्षेत्र में स्थापित होने के बावजूद भी पन्द्रह शताब्दियों उपरान्त भी इस स्तंभ में जंग नहीं लगी है। अजन्ता की गुफाओं में उकेरे गए पक्के रंग के चित्र रंगों के क्षेत्र में रंग बनाने की कला की व्याख्या करते हैं।

पाठगत प्रश्न 7.14

1. आर्यभट्ट कौन थे एवं उन्होंने किन सिद्धांतों का प्रतिपादन किया?

2. वराहमिहिर द्वारा रचित ग्रंथ का नाम लिखें?

3. धातु विज्ञान में गुप्त वंश की विकसित स्थिति का ज्ञान आपको किस महत्त्वपूर्ण उदाहरण से ज्ञात होता है।



आपने क्या सीखा

चन्द्रगुप्त प्रथम (319 ई.–334 ई.) गुप्त साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था। गुप्त शासक मध्य भारत तथा बिहार के लौह अयस्कों के दोहन तथा इन क्षेत्रों के उपजाऊ होने की वजह से बड़ा साम्राज्य स्थापित करने में सक्षम रहे। उसके उत्तराधिकारी क्रमशः समुद्रगुप्त (335–375 ई.) तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय (375–414 ई.) थे। सन् 404 ई. से 411 ई. तक चीनी बौद्ध तीर्थ यात्री ने भारत की यात्रा की एवं यहां के जीवन का विविधतापूर्ण चित्रण किया। चन्द्रगुप्त द्वितीय के राजदरबार के मुख्य रत्नों में संस्क त के महान कवि एवं नाटककार 'कालिदास' थे। मध्य एशिया के हूण वंश ने गुप्त वंश की सत्ता को चुनौती दी एवं उनके आक्रमणों ने गुप्त वंश की नींव हिला दी। आर्थिक सम द्धि का क्रमशः पतन भी गुप्त वंश के विघटन का कारण बना।

एक महान योद्धा तथा कुशल प्रशासक हर्षवर्धन (606–647 ई.) ने उत्तर में अपना राज्य स्थापित किया, जिसका विवरण उसके राजदरबारी कवि बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित्र में मिलता है। चीनी बौद्ध तीर्थ यात्री ह्वेनत्सांग ने उसके शासनकाल के दौरान भारत की यात्रा की थी। हर्षवर्धन, दक्षिण के चालुक्य शासक पुलकेशिन द्वितीय द्वारा पराजित हुआ। इस प्रकार नर्मदा नदी हर्षवर्धन के साम्राज्य की दक्षिणी सीमा बन गईं।

भारतीय प्रायद्वीप में पल्लव मुख्य सत्ता में आए। इस काल में दक्षिण भारत में भक्ति साहित्य तथा कला की द्रविड़ शैली का विकास हुआ।

गुप्त शासन काल में समाज परिवर्तन के दौर से गुजरा। ब्राह्मणवादी संस्क ति का सुदूर दक्षिण तक प्रसार हुआ। बड़ी संख्या में जनजातियों ने स्वयं को वर्ण व्यवस्था में आत्मसात कर लिया। कई विदेशी, जैसे–हूण आदि भी इसी व्यवस्था का अंग बन गए। महिलाओं की सामाजिक स्थिति इस काल में कमज़ोर हुईं।

कला तथा साहित्य के क्षेत्र में गुप्त काल 'स्वर्णयुग' था। चतुर्थ शताब्दी में रामायण एवं महाभारत दोनों ही महाकाव्यों की रचना पूर्ण हुईं। पुराणों का लेखन आरम्भ हुआ। दक्षिण भारतीय सन्तों अल्वर एवं नयन्नरों ने साहित्य की रचना की।

मंदिरों की उत्तर भारतीय स्थापत्य शैली 'नागर' तथा दक्षिण भारत की द्रविड़ शैली इसी युग में अस्तित्व में आईं। महात्मा बुद्ध के जीवन पर आधारित चित्र भी अजंता की गुफाओं में पक्के रंग से उकेरे गए। चर्चित महाबलीपुरम् रथ मंदिर भी इसी काल में निर्मित हुआ था।

प्रख्यात खगोलविद आर्यभट्ट ने खगोल ग्रन्थ आर्यभट्टयम् की रचना इसी काल में की। उन्होंने प्रथम बार यह खोज की कि प थ्वी अपनी धुरी पर सूर्य के चारों ओर घूमती है। धातु शास्त्र में भी गुप्त काल ने शिखर छुआ। दिल्ली में मेहरौली लौह स्तंभ तथा महात्मा बुद्ध की ताम्र प्रतिमा इस सम द्धि के उदाहरण हैं।

पाठांत प्रश्न

1. इलाहाबाद स्तंभ लेख के अनुसार समुद्रगुप्त की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए?
2. गुप्त साम्राज्य के पतन के क्या कारण थे?



आपकी टिप्पणियाँ

3. गुप्त साम्राज्य की प्रशासन व्यवस्था का विवरण दीजिए।
4. इस काल के दौरान जाति व्यवस्था उद्‌भव पर टिप्पणी लिखें।
5. गुप्तकाल में महिलाओं तथा अश्प श्यों की स्थिति की विवेचना कीजिए।
6. गुप्त वंश में क षि विस्तार के प्रमुख कारण लिखें।
7. गुप्त साम्राज्य में वाणिज्य तथा व्यापार के पतन के मुख्य कारण लिखें?
8. कला तथा साहित्य के क्षेत्र में गुप्त काल स्वर्णयुग क्यों कहलाता है?
9. गुप्तकालीन मुद्राओं पर टिप्पणी लिखें?
10. स्थापत्य कला के क्षेत्र में पल्लव तथा चालुक्य की उपलब्धियां लिखें।
11. भागवत पंथ पर एक अनुच्छेद लिखें?
12. तन्त्रवाद के उदय के क्या मुख्य कारण थे?
13. विज्ञान तथा तकनीक के क्षेत्र में 300–750 ई तक के विकास की व्याख्या करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

7.1

1. चन्द्रगुप्त प्रथम
2. उपजाऊ भूमि, लौह अयस्कों की सम द्धि
3. वैधता, प्रतिष्ठा, शक्ति

7.2

1. इससे समुद्रगुप्त के काल की जानकारी प्राप्त होती है।
2. कवि, संगीतज्ञ तथा शिक्षा का संरक्षक

7.3

1. वाकाटक
2. अपने दुश्मनों से निपटने में ज़्यादा सक्षम हो सका।
3. फाह्यान
4. कालिदास

7.4

1. हूण
2. स्कन्दगुप्त
3. थानेसर में पुष्यभूति, कन्नौज में मौखरी



7.5

1. बाणभट्ट
2. हर्ष
3. पुलकेशिन द्वितीय

7.6

1. वातापी
2. दक्षिणपथेश्वर

7.7

1. कांची
2. चालुक्य

7.8

1. महाराजाधिराज, परमभतरक, परमेशवर
2. देश, राष्ट्र, भुक्ति
3. ग्राम
4. उच्चस्तरीय केंद्रीय अधिकारी
5. उपरिकर एवं उद्रंग
6. यह अच्छी नहीं थी, क्योंकि ह्वेन त्सांग को दो बार लूटा गया था।

7.9

1. कषक
2. विवाह के समय दुल्हन को मिलने वाले उपहार
3. मध्य प्रदेश में एरान

7.10

1. रेशम, मसाला
2. दीनार

7.11

1. हिन्दू देवताओं तथा उन्हें प्रसन्न करने के तरीकों को बतलाता ग्रन्थ
2. दक्षिण भारत की महिला अल्वर सन्त
3. देवराम

7.12

1. कानपुर में भितरगांव एवं झांसी में देवगढ़
2. नागर एवं द्रविड़
3. पल्लव शासकों द्वारा निर्मित सात रथों का मंदिर यहां है।

7.13

1. कन्नौज
2. नालन्दा
3. दस
4. अल्वर एवं नयन्नर

7.14

1. खगोलविद तथा गणितज्ञ। शून्य का अविष्कार किया तथा दशमलव पद्धति की महत्ता स्थापित की। धरती अपनी धुरी पर धूमती है एवं सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती है, सिद्धांत का प्रतिपादन किया।
2. पंचसिद्धान्तिक
3. मेहरौली दिल्ली में लौह स्तम्भ

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें अनुच्छेद 7.1–3
2. देखें अनुच्छेद 7.1
3. देखें अनुच्छेद 7.8
4. देखें अनुच्छेद 7.9–2
5. देखें अनुच्छेद 7.9–4
6. देखें अनुच्छेद 7.10–1
7. देखें अनुच्छेद 7.10–2
8. देखें 7.11 तथा 7.12
9. देखें अनुच्छेद 7.10–3 तथा 7.12–3
10. देखें अनुच्छेद 7.12 –4 तथा 5
11. देखें अनुच्छेद 7.13–1
12. देखें अनुच्छेद 7.13–3
13. देखें अनुच्छेद 7.14



शब्दावली

दानप्राप्तकर्ता – भू–दान का लाभ प्राप्त करने वाला

प्रशस्ति – प्रशंसा पत्र

सांमतवाद – भू–स्वामी द्वारा भूखण्ड के वित्तीय, प्रशासनिक एवं न्यायिक अधिकारों सहित भूखण्ड का दान

भू-दान परिपत्र – ताम्रपत्र पर अंकित। इनके द्वारा भूदान लेने वाले ब्राह्मणों द्वारा किसानों से राजस्व एकत्र करने का प्रमाण मिलते हैं।



8

750-1200 ई. के मध्य भारतीय परिद श्य

सन 750 से 1200 के मध्य का समय भारतीय इतिहास में आरम्भिक मध्यकालीन युग के नाम से जाना जाता है। पूर्व में इतिहासकारों द्वारा इसे 'अंधेरे–युग' की संज्ञा दी गई थी। यह संभवतः इसलिए कि इस दौरान संपूर्ण राष्ट्र छोटे–छोटे प्रांतों में विभक्त था, जो आपस में युद्ध करने में व्यस्त रहते थे। किन्तु नवीनतम अध्ययन इस बात की ओर इशारा करते हैं कि राजनीतिक रूप से छिन्न–भिन्न भारत भी कला, साहित्य तथा भाषा के क्षेत्र नई सम द्ध सांस्क तिक उपलब्धियों का केन्द्र बना। जबकि मंदिर स्थापत्य कला भारतीय साहित्य के क्षेत्र में तो कुछ सर्वश्रेष्ठ उदाहरण इसी काल की देन हैं। इस प्रकार 'अंधेरे' से हट कर इसे भारतीय इतिहास का सबसे प्रभावशाली काल कहा जा सकता है।



उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आप :

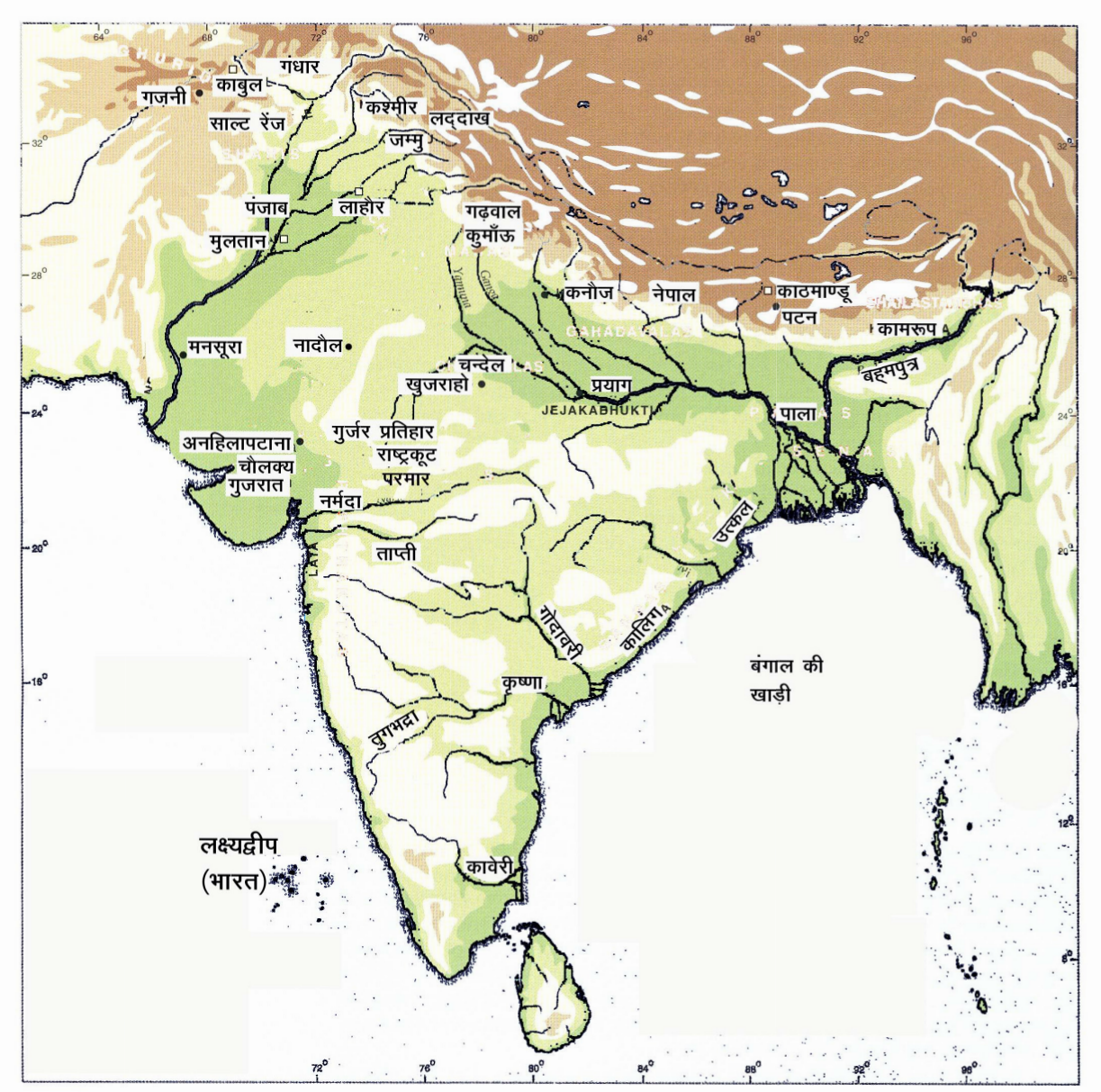
- 750 ई. तथा 1200 ई. के मध्य प्रस्फुटित होने वाले विभिन्न राज्यों को पहचान सकेंगे;
- शासन की प्रक ति को परख सकेंगे;
- सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन को चिह्नित कर सकेंगे;
- सांस्क तिक गतिविधियों को जांच सकेंगे और
- 8वीं 12वीं शताब्दियों के मध्य भारत दक्षिण–पूर्व एशिया के संबंधों की महत्ता स्थापित कर सकेगे।

8.1 राजनीतिक गतिविधियाँ

हर्षवर्धन, जिसके विषय में हम पिछले अध्याय में पढ़ चुके हैं, के पश्चात का राजनीतिक विकास तभी बेहतर ढंग से समझा जा सकता है यदि हम 750–1200 ई. तक की कालावधि को दो चरणों में विभाजित करें– 750 ई. 1000 ई. तथा 1000 ई.–1200 ई। प्रथम चरण में भारत में तीन प्रमुख राजनीतिक शक्तियों का उदय हुआ। ये थे, उत्तर भारत में प्रतिहार, पूर्वी भारत में पाल तथा दक्षिण भारत में राष्ट्रकूट। ये तीनों वंश उत्तर

भारत के गंगा क्षेत्र पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के लिए आपस में लगातार युद्ध करते रहते थे। इन शक्तियों के मध्य सशस्त्र संघर्ष को त्रिपक्षीय युद्ध की संज्ञा दी जाती है। दूसरे चरण में हम इन शक्तियों का विघटन पाते हैं। इसके परिणामस्वरूप भारत में कई छोटी–छोटी सत्ताओं का उदय हुआ। उदाहरण के लिए, उत्तर भारत में प्रतिहार वंश के विघटन के फलस्वरूप विभिन्न राजपूत वंशों, जैसे–चौहान, चंदेल तथा परमार इत्यादि के नियंत्रण में राजपूत वंश आ गए। ये वहीं प्रान्त थे, जिन्होंने 11वीं तथा 12वीं शताब्दी में मुहम्मद गोरी तथा महमूद गजनबी के आक्रमणों से भारत की रक्षा की। किन्तु आक्रमणकारियों के खिलाफ संगठित न हो पाने की वजह से वे अन्ततः हार गए।

हम अब ऊपर वर्णित तीनों शक्तियों के विषय में संक्षेप में चर्चा करेंगे हैं। गुर्जर प्रतिहार वंश की स्थापना 8वीं शताब्दी में नागाभट्ट प्रथम ने मालवा क्षेत्र में की थी। वह एक

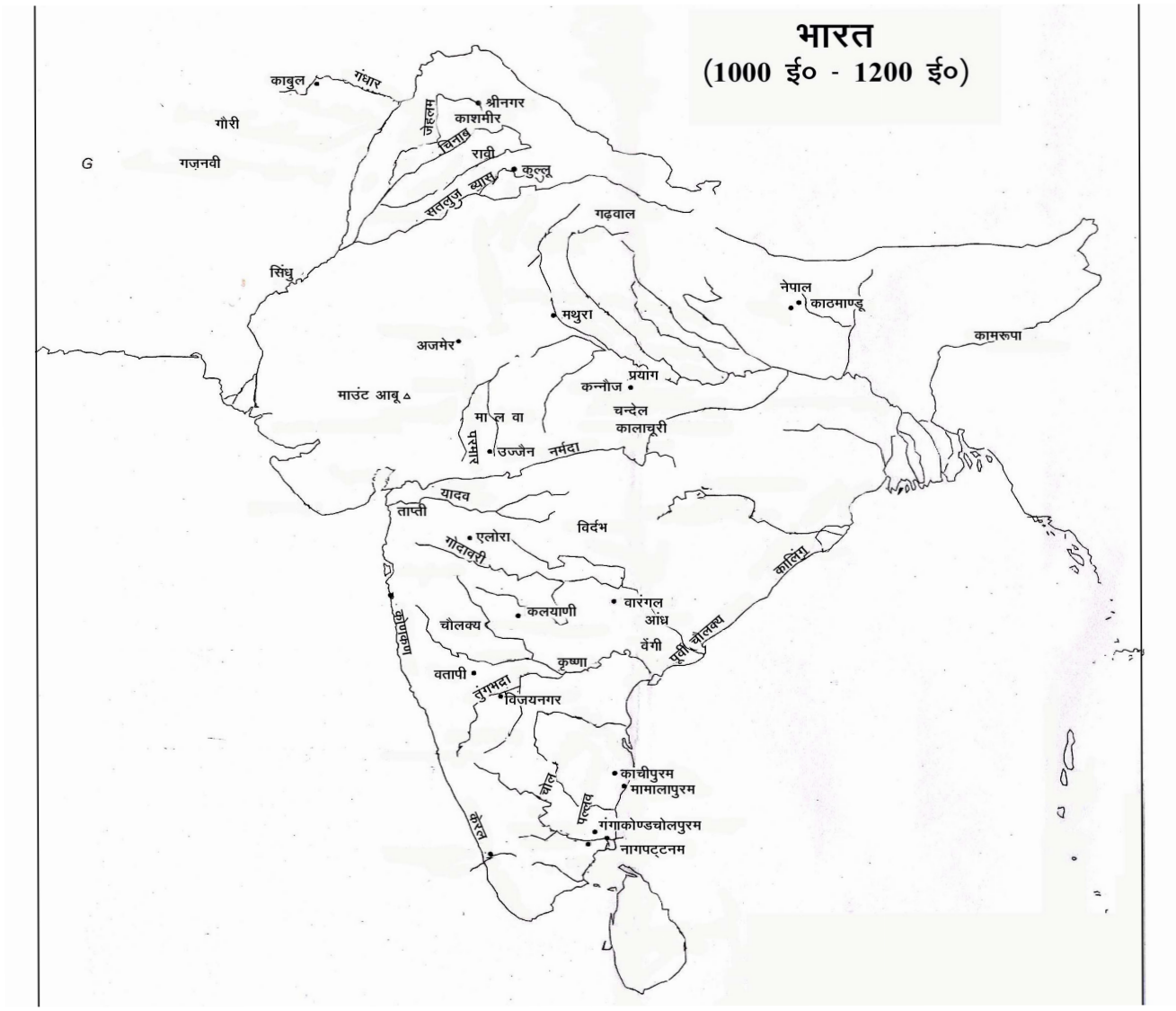


मानचित्र 8.1 भारत का राजनीतिक मानचित्र (750-1000 ई.)

आपकी टिप्पणियाँ

राजपूत था तथा उसके उत्तराधिकारी वत्सराज ने अपने साम्राज्य को उत्तर भारत के एक बड़े हिस्से तक फैलाया तथा पश्चिमी उत्तर प्रदेश में कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। वत्सराज की विस्तार नीति ने उसका बंगाल तथा बिहार के शासक धर्मपाल के साथ संघर्ष कराया। शीघ्र ही दक्षिण भारत से राष्ट्रकूट सम्राट भी इस संघर्ष में कूद पड़ा तथा तभी त्रिकोणीय संघर्ष का प्रारम्भ हुआ अर्थात तीन शक्तियों के बीच युद्ध। यह अगले डेढ़ सौ वर्षों तक आगे के विभिन्न शासकों के मध्य जारी रहा। तथापि कन्नौज पर अपना आधिपत्य बनाए रखने के लिए गुर्जर–प्रतिहारों का संघर्ष चलता रहा। इस वंश का एक और महान शासक नवीं शताब्दी में मिहिर भोज था। अपने साम्राज्य को लुटरों से सुरक्षित बनाए रखने के लिए अरब विद्वान सुलेमान ने उसकी प्रशंसा की है।

पूर्वी भारत में 8वीं शताब्दी में 'गोपाल' द्वारा पाल वंश की स्थापना हुई। चूँकि सभी शासकों के नाम पाल पर ही समाप्त होते थे, अतः इस वंश को 'पालवंश' के नाम से जाना जाता



मानचित्र 8.2 भारत का राजनीतिक मानचित्र (1000-1200 ई.)



है। गोपाल के पुत्र तथा पौत्र अर्थात धर्मपाल तथा देवपाल ने पालवंश की प्रतिष्ठा तथा शक्ति में चार चाँद लगाए। हालाँकि पश्चिम की ओर उनका विस्तार प्रतिहारों ने रोक दिया, लेकिन पालों ने बिहार तथा बंगाल में छोटे से अन्तराल के साथ लगभग चार सौ वर्षों तक शासन किया। पाल शासक बौद्ध धर्म को मानते थे। उन्होंने अपने धर्म का विस्तार करने के लिए पूर्वी भारत में विहारों तथा मन्दिरों का बड़ी संख्या में निर्माण कर दिया। भागलपुर (बिहार) के निकट विक्रमशिला विश्वविद्यालय को स्थापित करने का श्रेय भी धर्मपाल को ही जाता है। नालन्दा विश्वविद्यालय की ही भाँति यह पूरे भारत तथा तिब्बत के विद्यार्थियों को आकर्षित करता था। इस विहार में कई संस्क त ग्रंथों का तिब्बती भाषा में अनुवाद किया गया। विक्रमशिला विश्वविद्यालय से सम्बद्ध सर्वाधिक चर्चित नाम अतिशा दीपंकर का रहा, जो तिब्बत में बड़े आदरणीय थे।

दक्षिण भारत में 8वीं शताब्दी में दंतीदुर्ग ने राष्ट्रकूट वंश की स्थापना की। राष्ट्रकूटों की राजधानी शोलापुर के निकट माल्खेड अथवा मान्यखेत थी। ध्रुव के शासन काल में राष्ट्रकूटों ने वैभवशाली नगरी कन्नौज पर आधिपत्य के लिए उत्तर भारत की ओर रुख किया, किन्तु जैसा कि पहले बताया गया है, इसने त्रिकोणीय संघर्ष को जन्म दिया। राष्ट्रकूट वंश का प्रमुख शासक क ष्ण प्रथम था। इसने एलोरा में विख्यात कैलाश मन्दिर का निर्माण कराया। यह पत्थर के एक ही टुकड़े से बना है तथा भगवान शिव को समर्पित है। अरब लोगों द्वारा लिखे विवरण हमें सूचना देते हैं कि राष्ट्रकूट शासकों के अरब व्यापारियों के साथ बहुत अच्छे संबंध थे। इन व्यापारियों को मस्जिदों का निर्माण करने बिना किसी अवरोध के अपने धर्म का अनुसरण करने की स्वतंत्रता थी। यह राष्ट्रकूट शासकों की धार्मिक उदारता को ही उजागर नहीं करता, बल्कि अरब लोगों के साथ व्यापार बढ़ाकर आर्थिक लाभ प्राप्त करने की उनकी प्रव त्ति को भी दर्शाता है।

दक्षिण भारत में चोल शासकों ने एक शक्तिशाली साम्राज्य की स्थापना 1000–1200 ई. के दौरान की। संगम काल के दौरान वर्णित 'प्रतापी चोल शासक' इस काल के चोल शासकों के मध्य संबंधों में स्पष्टता नहीं है। दक्षिण भारत में पल्लव वंश को सिंहासन से हटाने के बाद चोल शासक सत्ता में आए। चोल साम्राज्य का संस्थापक विजयालय (9वीं शताब्दी) था किन्तु उसके गौरव के वास्तविक वास्तुकार राजराजा प्रथम (985–1014 ई.) तथा उसका पुत्र राजेन्द्र प्रथम (1014–1044 ई.) थे। अपने सर्वोत्तम काल में चोल साम्राज्य उत्तर में तुंगभद्र नदी (क ष्ण नदी की सहायक नदी) से लेकर दक्षिण में कन्याकुमारी तक विस्त त था। चोल शासकों ने अपनी जल सेना का सफल उपयोग किया तथा न सिर्फ मालदीव तथा लक्षद्वीप द्वीपों को पराजित किया बल्कि श्रीलंका को भी अपने अधीन किया। उन्होंने जाबा, सुमात्रा तथा मलाया के भी शासकों को पराजित किया। राजराजा प्रथम का महानतम योगदान तंजौर स्थित प्रभु श्री शिव को समर्पित उस प्रसिद्ध मन्दिर का निर्माण है जिसे राजराजेश्वर ब हदेश्वर मन्दिर के नाम से जाना जाता है। उसके पुत्र राजेन्द्र प्रथम का शासन और भी अधिक रोमांचक था। उसने पाल शासक मणिपाल को पराजित कर बंगाल में गंगा तक अपनी शक्ति का डंका बजवाया। इस विजय को स्मरणीय बनाने के लिए उसने एक नई राजधानी 'गंगईकोंडचोलपुरम' की नींव डाली तथा स्वयं 'गंगई–कोंड' (गंगा विजेता) की उपाधि धारण की। वह शिक्षा का महान प्रश्रयदाता था तथा पंडित–चोल के उपनाम से प्रख्यात था। अन्तिम प्रमुख चोल शासक कुल्लोतुंग (1070–1122 ई.) था। उसके शासन काल में चोल साम्राज्य में विघटन प्रारम्भ हुआ वह एक बहुत छोटे क्षेत्र में सिमट गया।

उपर्युक्त विवरण से आप समझ गए होंगे कि हालाँकि अंतर्क्षेत्रीय संघर्ष निरन्तर हो रहे थे परन्तु साथ ही संस्क ति भी सम द्धि की ओर बढ़ रही थी। वास्तव में बड़ी राजनीतिक शक्तियों के उदय से विभिन्न क्षेत्रों में अपेक्षाक त शांति की स्थापना हुई। इसने इन क्षेत्रों के कला, वास्तु तथा साहित्य से संबंधित विशेष क्षेत्रीय तरीकों के विकास को जन्म दिया। हम इन तरीकों का इस अध्याय में बाद में अध्ययन करेंगे।

पाठगत प्रश्न 8.1

1. त्रिपक्षीय संघर्ष में भाग लेने वाली तीन प्रमुख शक्तियों के नाम लिखें। साथ ही तीनों वंशों के एक–एक प्रमुख शासक का नाम लिखें।

2. तीनों शक्तियों के मध्य संघर्ष का मुख्य कारण क्या था?

3. वह कौन सा प्रतिहार शासक था जिसकी प्रशंसा अरब विद्वानों ने की है?

4. विक्रमशिला विश्वविद्यालय की नींव किसने रखी थी?

5. पाल शासकों द्वारा कौन से धर्म को प्रश्रय प्रोत्साहन प्राप्त हुआ?

6. किस चोल शासक ने 'गंगईकोंड' की उपाधि धारण की और क्यों?

8.2 शासन की प्रव त्ति

शासन का तत्कालीन ढाँचा प्रायः विकेन्द्रीक त राजनीतिक पद्धति के रूप में दर्शाया गया है। विकेन्द्रीक त राजतंत्र है क्या? यह वह प्रणाली है जिसमें निस्संदेह सर्वोच्च पद पर राजा ही होता है किन्तु वह अपना शासन जागीरदारों अथवा सामंतों जैसे उप–प्रमुखों के सहयोग से करता था। सामन्त व्यवस्था से तात्पर्य ऐसे शासकों से था, जो पराजित हो जाते थे किन्तु उनका राज्य उन्हें इस शर्त पर वापस मिल जाता था कि वह विजयी राजा की अधीनता स्वीकार करेगें तथा उसे नकद तथा अन्य प्रकार से शुल्क की आपूर्ति करते रहेंगे, और आवश्यकता के समय वे सैन्य सहायता भी करेंगे। चूँकि ये सामन्त अपने क्षेत्र में शासन करने के लिए स्वतंत्र होते थे, अतः वे बहुत शक्तिशाली थे। आप अनुमान लगा सकते हैं कि ये सरदार शासन के लिए खतरा भी हो सकते थे तथा इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि दुर्बल शासक के समय ये बगावत का झण्डा उठाकर अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर लेते थे। ऊपर दिये गए प्रतिहार साम्राज्य के साथ यही हुआ था।

विकेन्द्रित राजव्यवस्था का अन्य पहलू ब्राहमणों तथा अन्य को भूखंड दान करने की प्रथा में भी देखा जा सकता है। इस परम्परा को सातवाहन वंश के शासकों ने प्रथम तथा द्वितीय शताब्दी में प्रारम्भ किया था, किन्तु गुप्त साम्राज्य के शासन के पश्चात तो यह सम्पूर्ण भारत में प्रचलन में आ गईं। अब भूखंडों का दान मात्र धार्मिक व्यक्तियों को ही नहीं बल्कि कुछ राजकीय अधिकारियों को भी किया जाने लगा था। इसके क्या कारण थे? माना जाता है कि व्यापार में लगातार पतन की स्थिति ने इस काल में भूमि दान की परम्परा को जारी करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई होगी क्योंकि सरकारी कर्मचारियों तथा अन्य को उनकी सेवाओं का भुगतान करने के लिए मुद्राओं का अभाव हो चला था। गुप्तोत्तर काल में पुरातत्व खोज में सिक्कों की उपलब्धता न होने से पता चलता हैं कि मुद्राओं का अभाव हो गया था। दान में मिलने वाली भूमि कर मुक्त होती थी अर्थात दान प्राप्त करने वाला व्यक्ति शासन को कोई भी शुल्क अदा करने के लिए बाध्य नहीं था तथा अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए वह उस भूमि का उपयोग करता था। दान प्राप्तकर्ता दान की गई भूमि पर किसी भी शासकीय हस्तक्षेप से मुक्त था। इस प्रकार दान प्राप्त करने वाला दान में मिली भूमि को अपने अधिकार में ले लेता था।

दक्षिण भारत में चोल शासकों की प्रशासनिक व्यवस्था थोड़ी भिन्न थी। ग्राम स्तर पर, स्थानीय लोग स्वशासन का आनन्द उठाते थे। स्वयं द्वारा निर्वाचित जन–प्रतिनिधियों की सहायता से वे अपने प्रशासन की देख–रेख किया करते थे। अभिलेखों में दो प्रकार की ग्राम सभाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। वे थे, सभा तथा उर। ब्राह्मणों द्वारा वंशानुगत रूप से शासित ग्रामों की समितियों को सभा कहा जाता था, जबकि गैर–ब्राह्मण प्रभुत्व वाली समितियां उर कहलाती थीं। ये समितियां ग्रामीणों द्वारा एक निश्चित प्रणाली के तहत निर्वाचित सदस्यों की सहायता से जन–कल्याणकारी कार्य, कर संचरण तथा मंदिर प्रबंधन जैसे कार्यों के उत्तरदायित्व का निर्वाह करती थीं। यह चोल प्रशासन की एक अनुपम विशिष्टता थी, क्योंकि इससे केंद्रीय सत्ता तथा स्थानीय स्व–शासन के बीच बेहतर संबंध का पता चलता है।

पाठगत प्रश्न 8.2

1. विकेंद्रित राजतंत्र प्रणाली से क्या तात्पर्य है? यह आरम्भिक मध्यकालीन इतिहास के दौरान उत्तर भारत के राजतंत्र के लिए किस प्रकार हानिकारक थी?

   _____

2. किस वंश ने ग्राम समितियों को महत्ता प्रदान की? ग्राम समितियां किस नाम से जानी जाती थीं?

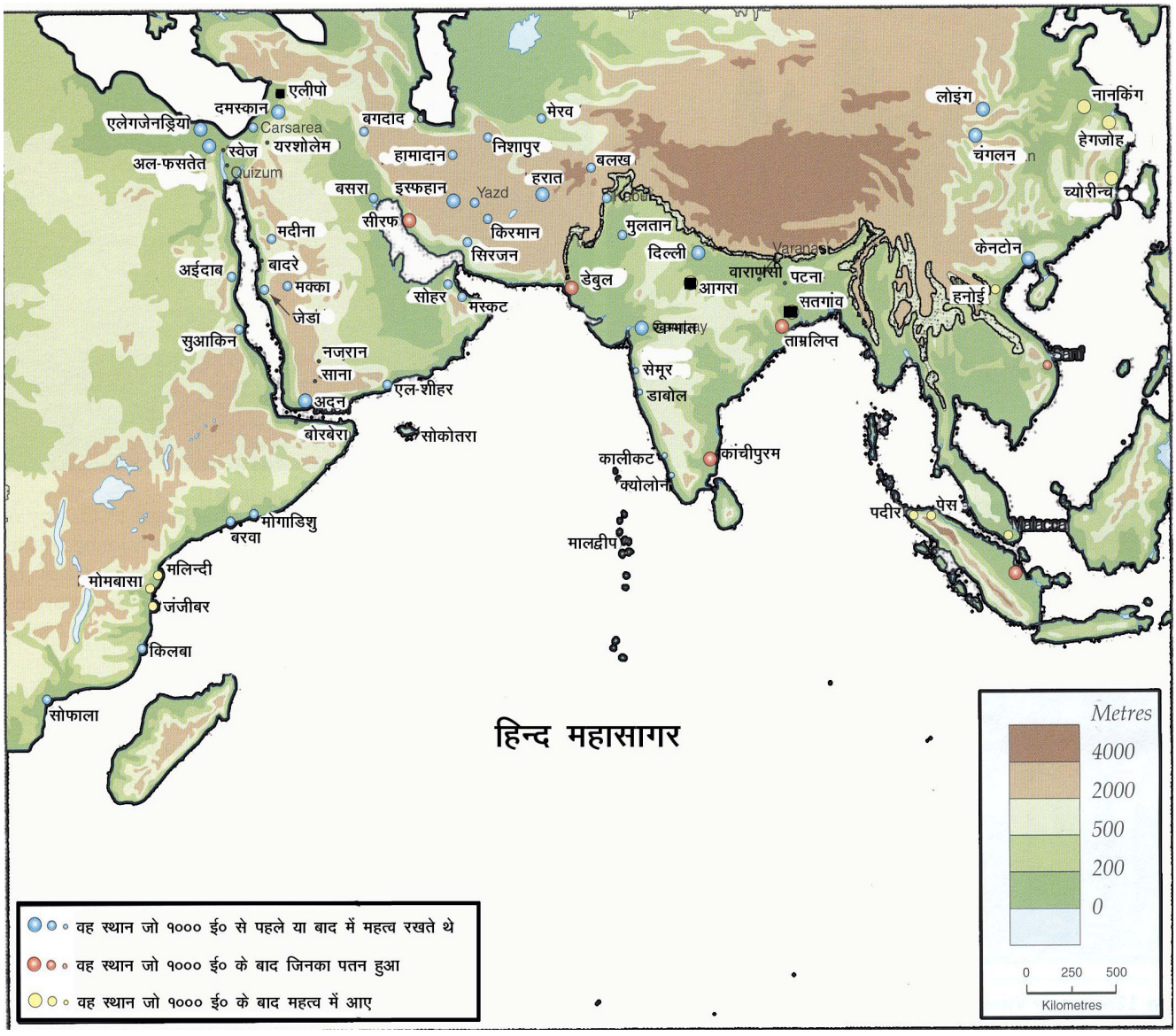
   _____

8.3 सामाजिक आर्थिक परिवर्तन

आरम्भिक मध्य काल में कई सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तन भी देखे गए। सामाजिक द ष्टि से इस काल का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटनाक्रम जातियों की संख्या में व द्धि होना था।

आपकी टिप्पणियाँ

यह कैसे घटित हुआ? इसका एक प्रमुख कारण ब्राह्मणों में नए समूहों का समावेश रहा। समझा जाता है कि ज्यों–ज्यों भूदान में व द्धि हुई, क षि के दायरे में नए क्षेत्र भी आने लगे। इसने स्थानीय नागरिकों को शिकार करना त्यागने तथा क षि को अपनाने को प्रेरित किया। वे क षक के रूप में सामने आए तथा समाज में शूद्र के रूप में स्थापित हो गए। वास्तव में भूदान की परम्परा ने विभिन्न आंतरिक प्रान्तों में ब्राह्मणों के स्थान परिवर्तन तथा प्रवास को जन्म दिया, जहां वे अपनी ब्राह्मणवादी संस्क ति को पल्लवित और पोषित कर सकें। भूदान ने कायस्थों की संख्या में भी व द्धि की। कायस्थ मूलतः लिपिक थे तथा भूदान के लेख–पत्रों के लेखन में दक्ष थे। स्वाभाविक रूप से ज्यों–ज्यों भूदान में व द्धि हुई, कायस्थों के महत्त्व में भी अभूतपूर्व व द्धि हुई।



मानचित्र 8.3 दक्षिण–पूर्व एशिया



किन्तु इस युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता नए राजपूत वर्ग का उदय रहा, जैसे चौहान, परमार तथा चंदेल इत्यादि। बहुत से इतिहासकारों के अनुसार वे विभिन विदेशी शासकों, जैसे शक, हूण तथा कुषाण इत्यादि के वंशज थे, जो इतिहास में भिन्न युगों में उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र से भारत में आए थे। धीरे–धीरे ये व्यक्ति राजस्थान के निवासी हो गए भारतीय समाज में शामिल होने के पश्चात, योद्धा वर्ग के रूप में उभरे। कई इतिहासकार इन्हें ब्राह्मणवादी समाज के क्षत्रिय वर्ग के रूप में भी देखते हैं, किन्तु वर्तमान में कई विद्वान राजस्थान में राजपूतों के उदय क षि गतिविधियों की प्रगति में कुछ संबंध मानते हैं। यह स्पष्ट है कि भूखंड दान करने में व द्धि होने पर क षि बस्तियों में व द्धि हुई थी। परिणामस्वरूप कई स्थानीय प्रमुखों के पास अपनी स्वतंत्र इकाई की स्थापना करने के लिए पर्याप्त आर्थिक राजनीतिक शक्ति थी। अपनी नवीनतम स्थिति की प्रमाणिकता को बनाए रखने के लिए उन्होंने गंगा क्षेत्र के ब्राह्मणों को कर्मकांड तथा शाही उत्सव प्रस्तुत करने के लिए आमंत्रित किया तथा बदले में उन्हें भूमि दक्षिणा के रुप में दी। उन्होंने ब्राह्मणों को अपने विषय में राम (सूर्यवंशी) क ष्ण (चन्द्रवंशी) के वंशज होने के बारे में भी लिखने को प्रोत्साहित किया, जिससे वे योद्धा वर्ग में एक सम्मानजनक स्थिति को कायम रख सकें।

आर्थिक रूप से प्रथम–चरण (750–1000 ई.) पतन का काल माना जाता है। यह सिक्कों के आदान–प्रदान उत्तर भारत में नगरों की वर्तमान स्थिति से ज्ञात होता है। किन्तु सन 1000 ई. में द्वितीय चरण में इस व्यापारिक परिस्थितियों में सुधार की अवस्था को देखते हैं। न सिर्फ हमें नई मुद्राओं के प्राप्त होने बल्कि व्यापारिक वस्तुओं नगरों का भी विवरण मिलता है। इसके क्या कारण हो सकते हैं? इसके दो मुख्य कारण प्रतीत होते हैं–पहला भूखंड दान देने की प्रक्रिया के फलस्वरूप क षि में व द्धि हुई, जिससे हम वस्तु विनिमय के लिए अतिरिक्त उत्पादन की स्थिति पाते हैं तथा दूसरा अंतर्राष्ट्रीय जल व्यापार में भारतीय तटीय क्षेत्रों में अरब व्यापारियों का उदय हुआ। अरबों ने 712 ई. में सिंध में अपना राज्य स्थापित किया तथा धीरे–धीरे उन्होंने अरब से चीन तक अपना औपनिवेशिक विस्तार किया। इन उपनिवेशों ने भारतीय उत्पादों के विक्रय तथा उत्पादन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा भारत के बाहरी व्यापार की प्रगति में सहायता की। चोल शासकों के शासन काल में दक्षिण–पूर्व एशिया (मलय, इंडोनेशिया) तथा चीन के साथ घनिष्ठ व्यापारिक संबंध देखने को मिलते हैं।

पाठगत प्रश्न 8.3

1. राजपूत वर्ग के उदय के मुख्य कारण क्या थे?

8.4 सांस्क तिक विकास

नई क्षेत्रीय शक्तियों के आने से नए राजनीतिक सांस्क तिक क्षेत्रों का उदय हुआ जैसे–उत्तरी गुजरात में बंगाल उड़ीसा, मध्य भारत में महाराष्ट्र तथा दक्षिण भारत में आंध्र, कर्नाटक तमिलनाडु। हमारे वर्तमान कला, साहित्य, भाषाओं के रूप की नींव उसी



आपकी टिप्पणियाँ

युग में पड़ी। बंगाली, असमिया, उड़िया तथा मराठी इत्यादि भारत के उत्तर–दक्षिण पूर्वी भाग में बोली जाने वाली भाषाएँ इसका उदाहरण हैं। इन भाषाओं में रचे गए साहित्य ने संस्क त के एकाधिकार को समाप्त किया। नए क्षेत्रीय शासकों के संरक्षण के कारण ही स्थानीय भाषाओं में विविध–साहित्य का स जन हो सका। इस काल की सर्वाधिक प्रमुख क्षेत्रीय भाषाओं की रचना, चोल शासकों के शासन काल में कदम्ब द्वारा रचित तमिल में 'रामायण' रही। इसी प्रकार कर्नाटक क्षेत्र में पंपा, जिसे कन्नड साहित्य के महत्त्वपूर्ण रत्नों में से एक माना जाता है, ने, 'पंपा–भारत' के नाम से प्रचलित विक्रमार्जुन–विजय की रचना की। इसी प्रकार आंध्र क्षेत्र में ननिया ने महाभारत के कुछ अंशों का अनुवाद तेलुगू में किया, जिसे कवि तिकन्ना ने 13वीं शताब्दी में पूर्ण किया।

तथापि संस्कत की महत्ता विद्वानों में ज्ञान की भाषा के रूप में बनी रही। संस्कत में लिखी गई इस काल की प्रमुख रचनाएं थी कथा–संग्रह 'कथासरितसागर', कश्मीर के विभिन्न शासकों का विवरण प्रस्तुत करने वाली कल्हण द्वारा रचित 'राजतरंगिणी', तथा पाल शासकों के काल में बंगाल के कवि 'जयदेव' द्वारा रचित 'गीतगोविन्दम'।

राजसंरक्षण प्राप्त करने वाली अन्य गतिविधि थी, मन्दिर–निर्माण। इन मंदिरों का निर्माण करवाने वाले शासकों ने गौरव तथा शक्ति को दर्शाया। जितना भव्य मंदिर, उतना ही शक्तिशाली उसका निर्माण करवाने वाला माना जाता था। यकीनन इनमें परस्पर संबंध था। मंदिर–निर्माण तथा उनके नियमित रख–रखाव में बड़ी मात्रा में मानव तथा वितीय संसाधनों की आवश्यकता पड़ती होगी यह तभी संभव था जब वह राजा धनी तथा शक्तिशाली हो।

इस काल के दौरान निर्मित हुए मंदिरों की स्थापत्य कला में हम तीन श्रेणियों का उदय पाते हैं, जिन्हें नागर, द्रविड़ तथा वेसर (मिश्रित) के नाम से जाना गया। नागर शैली की प्रमुख विशेषता विशाल मीनारों का निर्माण था। इस शैली में निर्मित मंदिर उत्तर भारत के विस्त त भूभाग में फैले हैं, विशेषकर मध्यभारत, गुजरात तथा उड़ीसा में। तथापि प्रचलित नागर शैली में भी क्षेत्रीय स्तर पर क्षेत्रीय विशेषताएं थीं। इस शैली के प्रमुख मंदिरों में भुवनेश्वर में लिंगराज मंदिर, कोणार्क का सूर्य मंदिर, दक्षिण भारत में मंदिर–निर्माण की द्रविड़ शैली विकसित हुई। चोल शासन काल में यह अपने गौरव के उच्चतम स्तर तक पहुंची। इस शैली की प्रमुख विशेषताएं थीं गर्भग ह, विमान, मंडप गोपुरम का निर्माण। गर्भग ह से तात्पर्य था मुख्यदेव का अन्तर्निवास स्थल। गर्भग ह के ऊपर बनी इमारतों को विमान कहा गया, मंडप अंकित स्तंभों का विशाल भवन, जो गर्भग ह के सम्मुख निर्मित होता था। मन्दिर क्षेत्र के चारों ओर बने भव्य बड़े दरवाजों को गोपुरम कहा गया।

इस शैली का सर्वाधिक प्रमुख मंदिर चोल शासक राजराजा द्वारा तंजौर स्थित ब हदेश्वर मंदिर है। वेसर मन्दिर मिश्र पद्धति का प्रतिनिधित्व करते हैं। ये चालुक्य शासकों के संरक्षण में निर्मित हुए तथा बदामी (कर्नाटक) के निकट पट्टकल में पाए गए। मूर्ति निर्माण के क्षेत्र में भी इस युग ने नई ऊंचाइयों को छुआ। चोल कलाकारों द्वारा तांबे की बनी नटराज की मूर्ति इस युग की अनमोल देन है। इन मूर्तियों में शिव को न त्य करने की भंगिमा में दर्शाया है, जो कि अपनी धुन तथा संतुलन में अतुलनीय है।



चित्र 8.1 नटराज

पाठगत प्रश्न 8.4

1. उत्तर भारत में विकसित होने वाली स्थापत्य कला की शैली का नाम लिखें?

2. मूर्ति निर्माण के क्षेत्र में चोल कलाकारों का योगदान लिखें?

8.5 दक्षिण पूर्व एशिया के साथ संबंध

भारतीय प्राचीन काल से ही व्यापार तथा अन्य गतिविधियों की वजह से विश्व के तमाम हिस्सों में भ्रमणशील रहे हैं। जहां तक भारत के दक्षिणपूर्व एशिया के साथ संबंधों का प्रश्न है, वह ई.पू. पांचवीं शताब्दी के लगभग प्रतीत होता है। जातक तथा अन्य बौद्ध साहित्य में भारतीयों द्वारा स्वर्णद्वीप की यात्रा का उल्लेख मिलता है, जिसे जावा के रूप में जाना जाता है। दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ इन संबंधों की पहचान हमें नवीनतम पुरातत्व खोजों में थाइलैंड, वियतनाम तथा इंडोनेशिया के तटीय क्षेत्रों से प्राप्त भारतीय मोती, गोमेद तथा

अन्य बहुमूल्य रत्नों से प्राप्त होती है। ये खोजें ई.पू. प्रथम शताब्दी तक चलती चीनी कथाओं के अनुसार दक्षिण–पूर्व एशिया में प्रथम साम्राज्य की स्थापना फूनान (कम्बोडिया) में प्रथम शताब्दी में कौन्दिन्य नामक ब्राह्मण ने की, जो भारत से आया तथा उसने स्थानीय राजकुमारी से विवाह किया। हालांकि दक्षिण–पूर्व एशिया के साथ भारतीय व्यापारिक संबंध 5वीं शताब्दी के लगभग और प्रगाढ़ हुए, जब संस्क त भाषा में लिखे उल्लेख विभिन्न क्षेत्रों में प्रारंभ हुए। यह अपने सर्वोच्च शिखर पर 800 ई०–1300 ई० तक रहा, जब पूरे दक्षिण–पूर्व एशिया में भारतीय नाम के कई शासक तथा वंशों का उदय हुआ।

दक्षिण और पूर्व के संबंध मुख्यतः व्यापार पर आधारित थे। दक्षिण–पूर्व एशिया इलायची, चन्दन की लकड़ी तथा लौंग में सम द्ध था जिसने भारत तथा पश्चिम के बीच व्यापारिक संबंधों में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। प्रारंभ में भारतीय व्यापारी वर्ग ने तटीय क्षेत्र में निवास करना प्रारंभ किया, किन्तु धीरे–धीरे उन्होंने अपना सूचनातंत्र आंतरिक क्षेत्रों में स्थानांतरित कर दिया। भारतीयों की धार्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए मुख्यतः बौद्ध ब्राह्मण पुजारी भी व्यापारियों के साथ आए। इस प्रकार दक्षिण–पूर्व एशिया में भारतीय संस्क ति सभ्यता का विस्तार हुआ, किन्तु यहां यह स्मरणीय होगा कि भारतीय संपर्कों ने स्थानीय संस्क ति को अलग नहीं किया। यह स्थानीय विशेषताओं तथा भारतीय संस्क ति का एक मिला–जुला रूप था। उदाहरण के लिए संस्क त न्यायालय की भाषा के रूप में अपनाई गई, वहीं विभिन्न क्षेत्रीय भाषाएं भी साथ में प्रयुक्त होती रहीं। क्योंकि हमें संस्क त तथा स्थानीय भाषाओं में वर्णित उल्लेख प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार दक्षिण–पूर्वी एशियावासियों तथा ब्राह्मणों में वर्ण–व्यवस्था तो थी, किन्तु समाज का वर्गीकरण भारत की तरह कठोर नहीं था।

दक्षिण–पूर्व एशिया में सर्वाधिक प्रमुख वंश 8वीं शताब्दी में स्थापित हुआ शैलेन्द्र वंश था। इसमें जावा, सुमात्रा तथा दक्षिण–पूर्व एशिया के अन्य हिस्से थे। वे एक विकसित नौ–शक्ति थे तथा अपनी भौगोलिक परिस्थितियों के चलते चीन, भारत तथा पश्चिम के अन्य देशों के व्यापार को नियंत्रित करते थे। शैलेन्द्र शासक बौद्ध धर्म के अनुयायी थे तथा भारतीय शासकों के साथ उनके घनिष्ठ संबंध थे। इसी वंश के एक शासक ने नवीं शताब्दी में नालन्दा में एक बौद्ध मठ का निर्माण करवाया तथा उसके अनुरोध पर बंगाल के पाल शासक देवपाल ने उसके रख–रखाव के लिए पांच गांव दान में दिए। इसी प्रकार अन्य चोल शासक राजपाल प्रथम द्वारा तमिल तट पर एक बौद्ध मठ के निर्माण की अनुमति प्रदान की गई। शैलेन्द्र शासकों ने एक भव्य बौद्ध मंदिर का निर्माण जावा में बारोबुदुर में किया। यह एक पहाड़ी पर स्थित है तथा उसमें नौ चबूतरे हैं।

बौद्ध धर्म के अतिरिक्त हिन्दू देवी–देवता जैसे शिव, विष्णु की आराधना भी दक्षिण–पूर्व एशिया में प्रचलित थी। उन्हें समर्पित कई मंदिर विभिन्न स्थानों पर पाए जाते हैं। यह भारतीय प्रेरणा तथा प्रभाव की झलक देता है। भगवान विष्णु को समर्पित सर्वाधिक प्रसिद्ध मंदिर अंगकोरवाट में स्थित है, जो 12वीं शताब्दी में कम्बोडिया के शासक सूर्यवर्मन द्वितीय द्वारा बनवाया गया था। यह पानी से भरी हुई खाई से घिरा हुआ है। इसमें विशाल गोपुरम है तथा इसमें विशाल दीर्घाएं हैं, जिनकी भित्तियों पर रामायण महाभारत से संबंधित मूर्तियां अलंक त हैं।

पाठगत प्रश्न 8.5

1. दक्षिण–पूर्व एशिया के शासकों के किन भारतीय शासकों के साथ 9वीं तथा 11वीं शताब्दी के मध्य घनिष्ठ संबंध थे?

2. दक्षिण–पूर्व एशिया के दो प्रमुख मंदिरों के नाम लिखें। वे किन्हें समर्पित थे?

आपने क्या सीखा

सन 750 से 1200 तक की कालावधि अब 'अंधेरे युग' के नाम से नहीं जानी जाती है। इसमें कई महत्त्वपर्ण राजनीतिक, सामाजिक तथा सांस्क तिक घटनाएं हुईं। राजनीतिक रूप से 750–1200 ई. के मध्य विभिन्न क्षेत्रीय सत्ताओं का उदय हुआ। उत्तर भारत में गुर्जर–प्रतिहार, पूर्व में पाल तथा दक्षिण में राष्ट्रकूटों का उदय प्रारम्भिक काल (750–1000 ई.) के मध्य हुआ तथा आगे चलकर (1000–1200) उत्तर में राजपूत दक्षिण में चोल शासकों ने पूर्ववर्ती शासकों से सत्ता हासिल की।

शासन की प्रव त्ति विकेंद्रीयक त थी, जहां सर्वोच्च पद पर राजा होता था तथा सामन्त उप–प्रमुख हुआ करते थे। धार्मिक व्यक्तियों तथा राज अधिकारियों को उनके वेतन में भूखंड दान करने का प्रचलन बढ़ा था। सभा (ब्राह्मणों के प्रभुत्व वाले गांव) तथा उर (गैर–ब्राह्मण प्रभुत्व वाले गांव) दक्षिण भारत में दो प्रमुख प्रशासनिक शक्तियां थीं।

समुद्रपार के घटते व्यापार ने इस युग में आर्थिक प्रगति को क्षीण किया। इस युग के दौरान ही विभिन्न जनजातीय लोगों ने शिकार त्यागकर क षि करना आरंभ किया तथा ब्राह्मणवादी समाज में प्रवेश किया।

इस युग को अभूतपूर्व साहित्यक विकास के लिए जाना जाता है। क्षेत्रीय साहित्य तथा क्षेत्रीय भाषाओं का विकास इस काल में हुआ। मंदिर स्थापत्य कला में नागर, द्रविड़ तथा वेसर शैलियों का विकास हुआ। भारतीय व्यापारियों द्वारा दक्षिण–पूर्व एशिया (जावा, सुमात्रा, मलय, कम्बोडिया, थाइलैंड, वियतनाम, इंडोनेशिया) में व्यापार स्थापित करने के कारण सांस्क तिक संबंध स्थापित हुए।

पाठांत प्रश्न

1. 10वीं तथा 12वीं शताब्दी के मध्य दक्षिण भारत के इतिहास में ऐसे वंश का नाम लिखें जो शिखर पर पहुंचा। इस वंश के शासकों की मुख्य उपलब्धियों का वर्णन करें।

2. त्रिपक्षीय संघर्ष में सम्मिलित तीनों वंशों के नाम लिखें।

3. जनता की नजरों में अपनी शाही वैधता स्थापित करने की आवश्यकता राजपूतों को क्यों हुई?
4. आरंभिक मध्यकाल में सांमतों का शासन के राजनीतिक ढांचे में अभिन्न अंग बनने की प्रक्रिया समझाएं?
5. आरंभिक मध्यकाल में हुए सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों का विश्लेषण कीजिए।
6. आरंभिक मध्यकाल में हुए मुख्य सांस्क तिक विकास समझाएं?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

8.1

1. गुर्जर प्रतिहार–नागभट

   पाल–गोपाल

   राष्ट्रकूट–क ष्ण प्रथम
2. कन्नौज पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए
3. मिहिरभोज
4. धर्मपाल
5. बौद्ध धर्म
6. राजेन्द्र प्रथम क्योंकि उसने गंगा को जीता था

8.2

1. सर्वोच्च पद पर राजा होता था तथा अपनी प्रशासनिक उत्तरदायित्वों को उप–प्रमुख (सामन्तों) के साथ साझा करता था। जब भी कोई दुर्बल शासक सिंहासन पर बैठता था, वे शासन के विरुद्ध झंडा उठा देते थे।
2. चोल : सभा उर

8.3

1. राजस्थान में क षि गतिविधियों का विस्तार

8.4

1. नागर
2. नटराज की ताम्र प्रतिमा

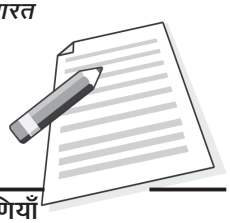
8.5

1. जावा, सुमित्रा तथा मलय
2. अंगरकोवाट (कम्बोडिया) बराबुदुर–जावा



पाठान्त प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें अनुच्छेद 8.2
2. देखें अनुच्छेद 8.1
3. देखें अनुच्छेद 8.3
4. देखें अनुच्छेद 8.2
5. देखें अनुच्छेद 8.3 और
6. देखें अनुच्छेद 8.4



9

दिल्ली सल्तनत की स्थापना और विस्तार

सन 1200 से 1526 के दौरान उत्तर भारत के विशाल भू–भाग पर शासन करने वाले शासकों को सुल्तान तथा उनके शासन काल को दिल्ली सल्तनत के नाम से जाना गया। ये शासन मूलतः तुर्क तथा अफग़ान मूल के थे। उन्होंने उत्तर भारत के मुख्य वंशों, मुख्यतः राजपूतों को हराकर अपनी सत्ता की स्थापना की। आक्रमणकारी तुर्क मुहम्मद गोरी ने प्रसिद्ध शासक प थ्वीराज चौहान को सत्ता से अलग कर दिल्ली में अपना राज्य स्थापित किया था। इन सुल्तानों ने सन 1200 से 1526 तक लगभग 300 वर्षों से अधिक शासन किया। सल्तनत के आखिरी सुल्तान इब्राहिम लोदी को सन 1526 में मुगल वंश के संस्थापक बाबर ने पराजित कर भारत में मुगल वंश की नींव डाली थी।

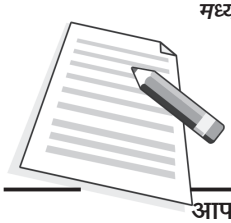
इन 300 वर्षों की कालावधि में पांच विभिन्न वंशों ने दिल्ली पर शासन किया था। ये थे, गुलाम वंश के नाम से मशहूर 'मामलुक' (1206–1290 ई.), खिलज़ी वंश (सन 1290-1320), तुगलक वंश (सन 1320-1412), सैय्यद वंश (सन 1412-1451) तथा लोधी वंश (1452-1526) इन सभी वंशों का शासनकाल दिल्ली सल्तनत के नाम से जाना जाता है।

इस पाठ में हम आपको दिल्ली सल्तनत के गठन की प्रक्रिया से परिचित कराएंगे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- अरबों द्वारा भारत के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्रों पर किए गए आरंभिक आक्रमणों का उल्लेख कर सकेंगे;
- महमूद गज़नबी के हमलों की चर्चा कर सकेंगे;
- मुहम्मद गोरी के आक्रमण की प्रक ति की व्याख्या कर सकेंगे।;
- उन तथ्यों की पहचान कर सकेंगे, जो उत्तर भारत में मुहम्मद गोरी द्वारा तुर्क–शासन के मुख्य कारण बने;
- मामलुक सुल्तानों द्वारा दिल्ली सल्तनत के विस्तार का विवरण दे सकेंगे;
- खिलज़ी तुगलक वंशों के दौरान दिल्ली सल्तनत की स्थिति की व्याख्या कर सकेंगे;
- अपने शासन को संगठित करने में सुल्तानों की चुनौतियों का वर्णन कर सकेंगे और



आपकी टिप्पणियाँ

- सल्तनत के पतन के कारणों को समझा सकेंगे।

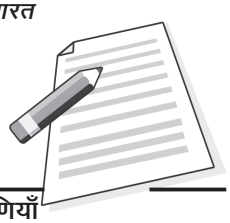
9.1 भारत पर अरब आक्रमण

8वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत के उत्तर–पश्चिमी क्षेत्र पर अरबों ने आक्रमण किया। सन 712 में भारत पर किए गए आक्रमण का नेत त्व उमैयद खलीफा के सेनापति मुहम्मद बिन कासिम ने किया था। भारत में हुए आक्रमण का उद्देश्य अरब राज्य का विस्तार था। अरब में इस्लाम के उदय (बॉक्स देखें) ने एक नई राजनीतिक व्यवस्था को जन्म दिया। इस्लाम के प्रचार–प्रसार की प्रक्रिया पैगम्बर मुहम्मद साहब द्वारा मक्का पर आधिपत्य स्थापित करने के बाद, उनकी म त्यु के पश्चात भी जारी रही।

इस्लाम का उदय और विस्तार

7वीं शताब्दी में अरब में इस्लाम नामक एक नए धर्म का उदय हुआ तथा शीघ्र ही इसकी पताका उत्तरी अफ्रीका से अरब प्रायद्वीप तथा ईरान और भारत तक लहराने लगी। इस्लाम पैगम्बर मुहम्मद साहब द्वारा स्थापित किया गया उन्होंने इस धर्म के उपदेश प्रचारित किए (570-632 ई.)। इस धर्म ने सिर्फ अरब के ही धार्मिक, राजनीतिक तथा सामाजिक जीवन को नहीं बदला, बल्कि विश्व के कई हिस्सों पर अपना प्रभाव स्थापित किया। इस्लाम एक ही ईश्वर की उपासना पर जोर डालता है और उसकी पवित्र पुस्तक 'कुरान' है। मुस्लिमों का विश्वास है कि स्वयं ईश्वर ने कुरान का इलहाम मुहम्मद साहब को दिया है। कुरान को इस्लाम जगत में सर्वोच्च दर्जा हासिल है। प्रत्येक मुस्लिम को दिन में पांच बार नमाज़ पढ़ने को कहा गया, रमज़ान के माह में रोज़े रखने, दान करने तथा मुमकिन हो तो मक्का की तीर्थयात्रा करने को कहा गया। पैगम्बर की म त्यु के पश्चात (632 ई.) मुस्लिमों को राजनीतिक तथा धार्मिक नेत त्व प्रदान करने की जिम्मेदारी खलीफा (अर्थात उप–प्रमुख, यह उपाधि पैगम्बर मुहम्मद साहब के उत्तराधिकारियों को दी गई) पर आ गई। 632 ई. से 661 तक चार पवित्र खलीफा हुए जो मुहम्मद साहब के नजदीकी थे। उमैयद खलीफा (661-750 ई.) पवित्र खलीफाओं के उत्तराधिकारी के रूप में आए। उमैयद वंश ने खलीफाओं को स्थिरता सम्पन्नता प्रदान की। उमैयद वंश में बाद में अब्बासिद खलीफा थे (सन 750-1258) अब्बासिद के बाद खलीफा की राजनीतिक शक्ति का ह्रास होने लगा था विभिन्न क्षेत्रों में स्वतंत्र मुस्लिम शासकों का उदय हुआ।

अरब के विस्तार की कहानी उल्लेखनीय है, जिसमें वे पूर्णतः निपुण थे। सन 633-637 के मध्य अरबों ने पश्चिमी एशिया, जोर्डन, सीरिया, इराक, तुर्कों तथा पर्शिया पर विजय हासिल की। उन्होंने उत्तरी अफ्रीका तथा दक्षिण यूरोप में भी अपना झंडा लहराया। सन 637-639 के दौरान मिस्र भी अरबों के अधीन हो चुका था। सन 712 तक स्पेन में प्रवेश के उपरान्त जल्द ही उन्होंने फ्रांस की ओर कूच किया। 8वीं शताब्दी तक अरबों ने स्पेन



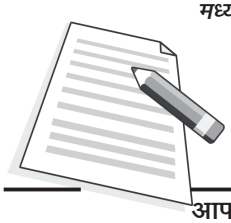
से लेकर भारत तक, भूमध्य सागर हिन्द महासागर के व्यापार को संयुक्त करते हुए मुख्य भूमिका हासिल की।

8वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उमैयद वंश अपनी सत्ता के सर्वोच्च शिखर पर पहुंचा। उन्होंने सबसे विशाल मुस्लिम राज्य का निर्माण किया। अरब भारत की सम द्धि द्वारा भी आकर्षित हुए। अरब व्यापारी तथा नाविक भारत की सम्पन्नता की कहानियां साथ लेकर जाते थे। हालांकि सिंध पर आक्रमण का कारण देबोल के लुटेरों द्वारा अरब मालवाहक पोतों मे हुई लूट का बदला लेना था। किंतु राजा दाहिर ने लुटेरों को दंडित करने से इंकार कर दिया। इराक के शासक हज्जाज ने मुहम्मद बिन कासिम के नेत त्व में एक सेना भेजी। वह 712 ई. में सिंध पहुंचा तथा उसने समुद्र तट पर राज कर रहे देबोल को पराजित किया। सिंधु नदी को पार करने के बाद वह आगे की ओर बढ़ा। रावार में मुहम्मद बिन कासिम ने दाहिर पर आक्रमण कर उसे पराजित किया। अरबों ने बड़ी संख्या में जान बचाकर भाग रहे सैनिकों का कत्लेआम किया। दाहिर भी पकड़ा गया और मारा गया। मुहम्मद बिन कासिम और आगे बढ़ा तथा जल्द ही उसने सिंध के महत्त्वपूर्ण स्थानों पर विजय हासिल कर ली। कासिम के अभियानों के चलते सिंध की आर्थिक दशा चरमरा गई। बड़ी संख्या में लोग तथा व्यापारी सिंध से भाग निकले। उसने पंजाब के निचले हिस्से तक सिंध के महत्त्वपूर्ण भागों को जीत लिया था। उसका शासन काल दो वर्ष ही चला। हालांकि बहुत से अरब यहीं बस गए तथा उन्होंने स्थानीय लोगों के साथ रिश्ते स्थापित कर लिए। अरब का प्रभाव सिंध में काफी समय तक चला, क्योंकि सिंध के कई हिस्सों में हमें मुस्लिम शासन देखने को मिलता है।

9.2 महमूद गजनी

महमूद गजनी ने सन 1000-1026 के दौरान कुल मिलाकर 17 बार भारत पर आक्रमण किया। महमूद गजनी, सबुक्तिगिन का पुत्र, गजनी वंश का संस्थापक तथा तुर्की गुलाम सेनापति था।

महमूद गजनी ने भारत में पहला युद्ध 1001 ई. में हिन्दुशाई शासक जयपाल के विरुद्ध लड़ा। 1004-1006 के दौरान गजनी ने मुल्तान के शासकों पर धावा बोला। जल्द ही पंजाब भी गजनी के अधीन हो गया। 1014-1019 के मध्य गजनी ने नगरकोट, थानेसर, मथुरा तथा कन्नौज के मंदिरों को लूटकर अपने खजाने को और भी सम द्ध बनाया। सन 1008 में नगरकोट मंदिर पर किया गया आक्रमण उसकी सबसे महान विजय के रूप में जाना जाता है। सन् 1025 में गजनी ने सौराष्ट्र के सोमनाथ मंदिर पर आक्रमण कर अपने सबसे महत्त्वाकांक्षी अभियान की शुरुआत की। एक भीषण संघर्ष के पश्चात महमूद ने शहर पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया जिसमें बचाव पक्ष के 50,000 से अधिक सैनिक हताहत हुए। महमूद ने 15 दिनों बाद तब शहर छोड़ा जब उसे गुजरात के शासक भीम प्रथम द्वारा अपने विरुद्ध की जा रही युद्ध की तैयारियों की जानकारी मिली। भारत पर किए गए उसके आक्रमणों का मुख्य उद्देश्य मध्य एशिया की राजनीति में अपनी महत्ता स्थापित करना था। भारत पर किए गए हमले सिर्फ भारत की दौलत को हथियाने के लिए किए गए थे। इस संपदा से मध्य एशिया में उसके विशाल साम्राज्य को संगठित करने में मदद मिलनी थी। उसने भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने का कोई प्रयास नहीं किया। गजनी वंश के कुछ शासकों का नियंत्रण पंजाब तथा सिंध के कुछ हिस्सों में था जो 1135 तक चलता



आपकी टिप्पणियाँ

रहा। इन आक्रमणों ने भारत की रक्षानीति की दुर्बलताएं उजागर कीं। इन्होंने भविष्य में तुर्कों द्वारा आक्रमणों के लिए भी रास्ते खोल दिए।

9.3 मुहम्मद गोरी (शहाबुद्दीन मुहम्मद)

सन 1173 में शहाबुद्दीन मुहम्मद उर्फ मुहम्मद गोरी (1173-1206) गजनी की गद्दी पर बैठा। ख्वारिज्मी साम्राज्य की बढ़ती शक्ति तथा बल का सामना करने में गोरी वंश सक्षम नहीं था। अतः उन्होंने भाँप लिया था कि मध्य एशिया से उन्हें कुछ भी हासिल होने वाला नहीं है। इसने मुहम्मद गोरी को अपनी विस्तारवादी महत्त्वाकांक्षाओं की पूर्ति के लिए भारत की ओर मोड़ दिया।

मुहम्मद गोरी भारत में लूटपाट करने के स्थान पर स्थायी शासन की स्थापना के पक्ष में था। उसके सभी अभियान सुनियोजित थे तथा उसने हर जीते हुए क्षेत्र में एक सेनापति की नियुक्ति की, जो उसकी अनुपस्थिति में शासन का संचालन कर सके। उसके आक्रमणों के परिणामस्वरूप विध्यांचल पर्वत के उत्तर में स्थायी तुर्क साम्राज्य की स्थापना को हुई।

पंजाब तथा सिंध में विजय

मुहम्मद गोरी ने अपना पहला अभियान सन 1175 में छेड़ा। उसने मुल्तान की ओर रुख किया और उसे उसके शासक से मुक्त कराया। इसी अभियान के तहत उसने भाटी राजपूतों से कच्छ को जीता। सन 1178 में उसने पुनः गुजरात पर विजय हासिल करने के लिए आक्रमण किया, किन्तु गुजरात के चालुक्य शासक घीम–द्वितीय ने उसे अहिलवारा के युद्ध में पराजित कर दिया। हालांकि यह हार भी उसे निराश न कर सकी। उसने समझ लिया था कि पंजाब में मजबूत आधार बनाए बिना वह भारत के अन्य हिस्सों को जीत नहीं सकता।

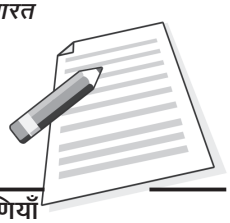
उसने गजनवी शासकों के खिलाफ पंजाब में अभियान आरंभ किया। परिणामस्वरूप सन 1179-80 में पेशावर और 1186 में लाहौर उसके कब्जे में आ गया। सियालकोट का किला देबोल अगला शिकार बने। इस प्रकार 1190 तक मुल्तान, सिंध तथा पंजाब को अपने अधीन करने के उपरान्त मुहम्मद गोरी ने गंगा के दोआब में प्रवेश के लिए रास्ता साफ कर लिया था।

तराई का प्रथम युद्ध (1191 ई.)

पंजाब पर गोरी का आधिपत्य और गंगा दोआब में अपने साम्राज्य के विस्तार का प्रयास उसे राजपूत शासक प थ्वीराज चौहान के सामने ले आया। प थ्वीराज चौहान ने कई छोटे राजपूत शासकों को जीत कर, दिल्ली पर भी अधिकार स्थापित किया था और उसकी योजना पंजाब तथा गंगा घाटी तक विस्तार की थी। भटिंडा के दावे को लेकर युद्ध प्रारंभ हुआ। तराई के मैदान में हुए प्रथम युद्ध (1191) में गोरी की सेना पराजित हुई और वह भी मरते–मरते बचा। प थ्वीराज चौहान ने भटिंडा को जीत लिया पर उसकी मोर्चाबन्दी करने का प्रयास उसने नहीं किया। इसने गोरी को भारत पर दोबारा आक्रमण के लिए अपनी शक्ति संगठित करने का एक और मौका दे दिया।

तराई का द्वितीय युद्ध (1192 ई.)

इस युद्ध को भारतीय इतिहास का निर्णायक मोड़ माना जाता है। मुहम्मद गोरी ने इस आक्रमण के लिए बड़ी चतुराई से तैयारियां कीं। तुर्की तथा राजपूत सेनाएं एक बार फिर



तराई के मैदान में आमने–सामने आईं। भारतीय सेना हालांकि संख्या में अधिक थी पर तुर्क सेना अधिक सुनियोजित और तेज दौड़ने वाली अश्वरोही टुकड़ी के साथ थी। भारी–भरकम भारतीय सेना किसी भी प्रकार से सुनियोजित, कुशल तथा तेज तुर्की अश्वरोही सेना के मुकाबले की नहीं थी। तुर्कों ने अपनी अश्वारोही सेना में दो उत्तम तकनीकों का प्रयोग किया। पहली, उन्होंने घोड़ों के पैरों में नाल लगवाई पहनाएं जिससे न सिर्फ घोड़ों की उम्र लंबी हुई, बल्कि उनके खुरों की भी रक्षा हुई तथा दूसरे रकाब का प्रयोग, जिससे घुड़सवारों की घोड़ों पर पकड़ बन सकी और युद्ध में वह दोगुनी मारक क्षमता का उपयोग कर सके। बड़ी संख्या में भारतीय सैनिक मारे गए। प थ्वीराज चौहान ने भी भागने का प्रयत्न किया, किन्तु सरस्वती नदी के निकट वह पकड़ा गया। तुर्की सेना ने हांसी, सरसुती तथा सामाना के किलों पर कब्जा कर लिया। उसके बाद वे दिल्ली तथा अजमेर की ओर बढ़ चले।

तराई के युद्ध के पश्चात मुहम्मद गोरी अपने विश्वस्त सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक के हाथ में भारत की सत्ता सौंप कर गजनी वापस लौट गया। सन 1194 में मुहम्मद गोरी वापस भारत लौटा। उसने 50,000 घुड़सवारों के साथ यमुना पार कर कन्नौज की ओर रुख किया। उसने कन्नौज के निकट चंदवार में जयचन्द्र को पराजित किया। इस प्रकार तराई तथा चंदवार के युद्ध के पश्चात उत्तर भारत में तुर्की शासन की नींव पड़ी।

मुहम्मद गोरी के आक्रमण के भारतीय राजनीति पर प्रभाव महमूद गजनवी के आक्रमण की तुलना में दीर्घकालिक थे। जहां महमूद गजनवी का उद्देश्य लूटपाट मात्र था, वहीं मुहम्मद गोरी अपना राजनीतिक नियंत्रण स्थापित करना चाहता था। सन 1206 में हुई उसकी म त्यु के बाद भी भारत में तुर्क शासन अप्रभावित रहा। उसने अपने पीछे अपने दास सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक को नियुक्त किया था, जो दिल्ली सल्तनत का प्रथम सुल्तान बना।

पाठगत प्रश्न 9.1

1. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें:

   (क) सुल्तान मुहम्मद गोरी _____ का शासक था।

   (ख) तराई का प्रथम युद्ध _____ तथा _____ के बीच लड़ा गया।

   (ग) मुहम्मद गोरी ने अपने भारतीय साम्राज्य का उत्तराधिकारी _____ को बनाया।

2. तराई का द्वितीय युद्ध कब लड़ा गया?

   _____

3. महमूद गजनवी और मुहमद गोरी के आक्रमणों में सबसे बड़ा अंतर आप क्या देखते है?

   _____

9.4 मामलुक सुल्तान

कुतुबुद्दीन ऐबक के शासन के साथ भारत में मामलुक सुल्तान/गुलाम वंश के युग का प्रारंभ हुआ। मामलूक एक अरबी शब्द है जिसका अर्थ है स्वामित्व। यह सैन्य अभियानों के लिए उपयोग किए जाने वाले तुर्की गुलामों को निम्न गुलामों से जो घरेलू कार्य अथवा कारीगरों से, अंतर व्यक्त करने के लिए प्रयोग किया जाता था। मामलुक सुल्तानों का शासन 1206 ई. से 1290 ई. तक रहा।

कुतुबुद्दीन ऐबक

कुतुबुद्दीन ऐबक तुर्की गुलाम था जो मुहम्मद गोरी की सेना में उच्च पद तक पहुंचा था। सन 1206 में मुहम्मद गोरी की म त्यु के पश्चात भारतीय साम्राज्य का नियंत्रण कुतुबुद्दीन के पास चला गया। गुलाम वंश का संस्थापक, ऐबक उत्तर भारत में प्रथम प्रसिद्ध मुस्लिम शासक था।

ऐबक को राजपूतों अन्य भारतीय सरदारों की ओर से विद्रोह का सामना करना पड़ा था। गजनी का शासक तजुद्दीन यल्दौज दिल्ली पर अपना अधिकार समझता था। मुल्तानं सिंध का शासक नसीरूद्दीन कबाचा स्वतंत्रता पाने के लिए व्याकुल था। कुतुबुद्दीन ऐबक समझौतों और शक्ति प्रदर्शन द्वारा इन शत्रुओं पर विजय पाने में सफल रहा। उसने यल्दौज को पराजित कर गजनी को जीता। जयचन्द के उत्तराधिकारी हरिश्चन्द्र ने बदायूं तथा कन्नौज से तुर्को को बाहर खदेड़ दिया था। ऐबक ने ये दोनों क्षेत्र पुनः जीत लिए।

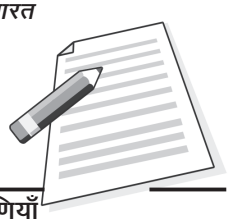
कुतुबुद्दीन ऐबक वीर, वफादार तथा नम्र था। उसकी विनम्रता के चलते ही उसे 'लाख बक्श' की उपाधि मिली हुई थी। कई विद्वान ऐबक को भारत में मुस्लिम शासन का वास्तविक संस्थापक मानते हैं।

इल्तुतमिश (सन 1210-1236)

सन 1210 में चौगान (पोलो) खेलते समय घोड़े से गिरने से ऐबक की म त्यु हो गई। उसकी म त्यु के पश्चात कुछ अमीरों ने उसके पुत्र आरामशाह को गद्दी पर बैठा दिया। किन्तु आरामशाह अयोग्य व्यक्ति था तथा तुर्की अमीरों ने उसके खिलाफ़ विद्रोह आरंभ कर दिया। दिल्ली के तुर्की सरदारों ने बदायूं के शासक (ऐबक के दामाद) इल्तुतमिश को दिल्ली आमंत्रित किया। आरामशाह ने बड़ी सेना के साथ लाहौर से दिल्ली आकर उसका सामना किया किन्तु इल्तुतमिश ने उसे पराजित किया 'शम्सुद्दीन' के नाम से गद्दी पर बैठा। दिल्ली सल्तनत को संगठित करने का श्रेय उसी को जाता है।

जब इल्तुतमिश गद्दी पर बैठा तो वह चारों ओर से समस्याओं से घिरा हुआ था। यलदौज, क्बाचा अली मर्दान जैसे अन्य तुर्क सेनापति फिर से सिर उठा रहे थे। जालार और रणथम्भौर के शासक ग्वालियर और कालिंजर शासकों के साथ मिलकर स्वतंत्रता की घोषणा कर चुके थे। इनके अतिरिक्त सल्तनत की उत्तर पश्चिमी सीमा पर चंगेज खान की बढ़ती शक्ति का भी भय था।

इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम स्वयं को संगठित करना प्रारंभ किया। उसने तराइन के मैदान में यल्दौज को 1215 में पराजित किया। सन 1217 में उसने क्वाचा के पांव पंजाब से उखाड़े। सन 1220 में जब चंगेज खाँ ने ख्वारिज साम्राज्य का विनाश किया तो



इल्तुतमिश को मंगोलों से प्रत्यक्ष संघर्ष को टालने की आवश्यकता महसूस हुई। अतः जब ख्वारिज के शाह का पुत्र जलालुद्दीन मंगबरानी मंगोलों से बचता हुआ शरण पाने इल्तुतमिश के दरबार में आया तो इल्तुतमिश ने उसे इंकार कर दिया। इस प्रकार इल्तुतमिश ने दिल्ली सल्तनत को मंगोलों द्वारा होते विनाश से बचाया।

सन 1225 के उपरांत इल्तुतमिश ने अपनी सेनाओं को पूर्व प्रदेश के विरोधों को दबाने के लिए प्रयोग किया। सन 1226-1227 में इल्तुतमिश ने अपने पुत्र के नेत त्व में विशाल सेना भेजी, जिसने इवाजखान को पराजित कर बंगाल और बिहार को पुनः दिल्ली सल्तनत का हिस्सा बनाया। राजपूत शासकों के विरुद्ध भी समान अभियान चलाया गया। सन 1226 में रणथम्भौर को जीता तथा सन 1231 तक इल्तुतमिश ने अपना अधि ाकार मन्दौर, जालौर, बयाना तथा ग्वालियर पर कर लिया था।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इल्तुतमिश ने ऐबक के छूटे हुए कार्य को पूर्ण किया था। दिल्ली सल्तनत अब एक विस्त त भू–भाग तक फैली थी। इसके अतिरिक्त उसने अपने विश्वासपात्र अधिकारियों का एक समूह तुर्क–ए–चहलगनी (चालीस) बनाया था। वह एक दूरदर्शी शासक था और उसने नवस्थापित दिल्ली सल्तनत को संगठित और नियोजित किया।

> इल्तुतमिश ने तुर्क–ए–चहलगनी (चालीस का समूह) की स्थापना की थी। इस समूह में वे अमीर हुआ करते थे जो शासन के प्रबंधन में सुल्तान की सहायता किया करते थे। इल्तुतमिश की म त्यु के पश्चात इनके हाथों में काफी शक्ति आ गई थी। कई वर्षों तक वे एक के बाद दूसरे सुल्तानों का चयन करते रहे। अन्ततः बलबन ने इस समूह को नष्ट कर दिया।

इल्तुतमिश ने सफलतापूर्वक दिल्ली के असंतुष्ट अमीरों का सफाया किया। उसने दिल्ली सल्तनत को गजनी, गोर मध्य एशिया से अलग किया। इल्तुतमिश ने बगदाद के अब्बासी खलीफा से बैधता पाने के लिए पत्र भी सन 1229 में हासिल किया था।

इल्तुतमिश ने प्रशासनिक संस्थानों जैसे 'इक्त', 'सेना' तथा 'सिक्का' व्यवस्था को रूप देने के लिए उल्लेखनीय कार्य किए। उसने सल्तनत को दो मूल सिक्के दिए –चांदी का टंका तथा तांबे का जीतल। अपने अधीनस्थ क्षेत्रों पर बेहतर नियंत्रण स्थापित करने के लिए इल्तुतमिश ने व्यापक स्तर पर अपने तुर्क अधिकारियों को (वेतन के बदले भूमि समझौता) इक्ता दान किए। इक्ता को पाने वाले को इक्तदार कहा जाता था तथा वे अपने अधीन क्षेत्रों से राजस्व वसूल करते थे। इसके द्वारा वे सत्ता की सेवा प्रदान करने के लिए एक सेना का रख–रखाव किया करते थे, कानून तथा व्यवस्था का पालन करवाया करते थे तथा अपने खर्चों की भरपाई किया करते थे। इल्तुतमिश ने दोआब के आर्थिक संभावनाओं को पहचाना और मुख्यतः उसी क्षेत्र में इक्ता बांटे गए। इसने इल्तुतमिश को उत्तर भारत के सर्वाधिक प्रतिष्ठित क्षेत्रों में से एक पर वित्तीय और प्रशासनिक नियंत्रण के प्रति आश्वस्त किया। (आप 12वें पाठ में प्रशासनिक जानकारी विस्तार से पढ़ेंगे।)

रजिया (1236-40 ई०)

अपने अंतिम दिनों में इल्तुतमिश के सम्मुख उत्तराधिकारी की मुख्य समस्या थी। इल्तुतमिश ने अपने किसी भी पुत्र को सुल्तान बनने के काबिल नहीं समझा। उसने अपनी

पुत्री रजिया को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया। किंतु उसकी म त्यु के उपरांत उसका पुत्र रूकुनुद्दीन फिरोज सेना के कुछ अधिकारियों की सहायता से गद्दी पर बैठ गया, और दिल्ली की जनता के समर्थन से तथा कुछ सैन्य अधिकारियों के सहयोग से रजिया गद्दी पर बैठ गई।

अपनी खूबियों के बावजूद रजिया बेहतर शासन नहीं कर पाई, क्योंकि मुख्यतः उसने गैर तुर्को को कुलीन वर्ग के बराबरी का दर्जा देकर तुर्की अमीरों में विरोध पैदा कर दिया। इसमें सबसे मुख्य उत्तेजित करने वाली बात अबीसियाई मलिक जमालुद्दीन याकूत को अमीर–ए–अखनूर (घोड़ों का मालिक) नियुक्त करना रहा। कई अन्य महत्त्वपूर्ण पदों पर अन्य गैर तुर्कों की नियुक्ति ने भी आग में घी का काम ही किया।

विद्वान मानते हैं कि महिला होने के बावजूद वह दूसरे के हाथों की कठपुतली नहीं बनना चाहती थी। अतः सरदारों ने उसके क्षेत्रों में विद्रोह करना प्रारंभ कर दिया। उन्होंने उसे महिला की मर्यादा भंग करने और अबीसियाई सरदार याकूब के साथ अति करीबी होने का आरोप लगाया। वह सरदारों द्वारा पराजित हुई और मारी गई। इस प्रकार उसका शासन काल छोटा रहा तथा 1240 में समाप्त हो गया।

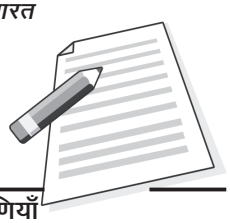
नसीरूद्दीन महमूद (1246-66 ई.)

सुल्तान तथा तुर्की सरदारों 'चहलगनी' के बीच सत्ता का संघर्ष जो रजिया के समय से प्रारंभ हुआ था, वह चलता रहा। रजिया की मत्यु के बाद इन चहलगनियों की शक्ति इतनी बढ़ गई कि वे राजा को गद्दी पर बैठाने और उतारने के लिए बहुत हद तक काबिल हो गए। बेहराम शाह (1240-42) तथा मसूद शाह (1242-44) क्रमशः सुल्तान बनाए तथा हटाए गए। इसके पश्चात सन 1246 में उलुग खान (कालांतर में जिसे बलबन के नाम से जाना गया) ने एक प्रयोग किया तथा युवा नसीरूद्दीन (इल्तुतमिश का पोता) को सुल्तान बनाकर खुद उसका नाइब बना। अपनी स्थिति को और सुदढ़ बनाने के लिए उसने अपनी पुत्री का विवाह नसीरूद्दीन से कर दिया। सुल्तान नसीरूद्दीन मसूद 1265 में मारा गया। इब्नबतूता तथा इलामी के अनुसार बलबन ने अपने राजा को जहर देकर मारा तथा उसके सिंहासन पर कब्जा कर लिया।

बलबन (1266-87 ई.)

सुल्तान तुर्की सरदारों के बीच सत्ता का संघर्ष तब तक चलता रहा जब तक इतिहास में बलबन के नाम से प्रसिद्ध उलुग खान ने सत्ता का केन्द्रीकरण करके सन 1266 में सिंहासन पर कब्जा नहीं कर लिया। जब बलबन सुल्तान बना, उसकी स्थिति मजबूत नहीं थी। कई तुर्क सरदार उसके विरोधी हो चुके थे। मंगोल दिल्ली सल्तनत पर कब्जा करने का अवसर तलाश रहे थे। सुदूर प्रांतों के शासक स्वतंत्र होने की कोशिश कर रहे थे। वहीं, भारतीय शासक भी विद्रोह करने के लिए छोटे से मौके की तलाश में थे।

दिल्ली तथा दोआब क्षेत्र में कानून और व्यवस्था की स्थिति सोचनीय थी। गंगा–यमुना दोआब अवध के मध्य सड़कों पर डकैतों और लुटेरों का वर्चस्व था जिस वजह से पूर्वी



क्षेत्रों में यातायात असंभव हो चला था। कुछ राजपूत जमींदारों ने इन क्षेत्रों में अपने किले बनवाकर सरकार के प्रति विद्रोह दर्शाया था। मेवाती इतने निर्भीक हो चले थे कि बाहरी दिल्ली क्षेत्र में भी लोगों को लूट लिया करते थे। इन तत्वों से निबटने के लिए बलबन ने कठोर नीति अपनाई, मेवात में कई मारे गए। राजपूतों के मजबूत गढ़ बदायूं के आसपास का क्षेत्र नष्ट कर दिया गया।

बलबन ने निरकुंश तरीके से शासन किया तथा सुल्तान के रूप में अपनी स्थिति सुद ढ़ करने के लिए बहुत मेहनत की। उसने किसी भी कुलीन वर्ग के व्यक्ति के पास ज्यादा शक्ति अर्जित नहीं होने दी। उसने राजत्व के सिद्धांत की भी स्थापना की। इतिहासकार बरनी, जो स्वयं भी तुर्की विद्वानों में श्रेष्ठ था, के अनुसार बलबन कहता था, जब भी मैं नीच कुल में जन्मे, नीच व्यक्ति को देखता हूं तो मेरी आंखें सुलग उठती है तथा गुस्से में मैं तलवार उठा लेता हूं (मारने के लिए)। हमें नहीं पता कि बलबन ने वास्तव में ऐसा कहा था किन्तु गैर तुर्कों के प्रति उसके विचार इसी प्रकार के थे। बलबन अपनी सत्ता किसी से नहीं बांट सकता था, यहाँ तक कि परिवार वालों से भी नहीं।

बलबन चहलगनी की शक्तियां नष्ट करने के लिए कटिबद्ध था। स्वयं को सजग रखने के लिए बलबन ने हर विभाग में गुप्तचर नियुक्त किए। उसने एक मजबूत केंद्रीय सेना का गठन किया, जो आंतरिक विद्रोहों से भी लड़ सके तथा पंजाब की ओर रुख कर रहे तथा दिल्ली सल्तनत के लिए गंभीर खतरा बन रहे मंगोलों को भी माकूल जवाब दे सके। उसने सैन्य विभाग का (दीवान–ए–अर्ज) का पुनर्गठन किया तथा विद्रोहों का दमन करने के लिए देश के विभिन्न हिस्सों में सेना की नियुक्ति की। मेवात, दोआब, अवध और कौशल के विद्रोह निर्ममतापूर्वक कुचल दिए गए। बलबन ने पूर्वी राजपूताना क्षेत्र अजमेर और नागौर पर विजय पाई किन्तु ग्वालियर और रणथम्भौर पर विजय हासिल करने में वह नाकामयाब रहा। सन 1279 में मंगोलों के खतरों से उत्साहित होकर और सुल्तान की बढ़ती आयु देखकर बंगाल के शासक तुगरिल बेग ने विद्रोह कर, सुल्तान की उपाधि धारण की तथा अपने नाम का खुतबा पढ़वाया। बलबन ने अपनी सेना को बंगाल भेजा और तुगरिल मारा गया। परिणामस्वरूप उसने अपने पुत्र बुगरा खान को बंगाल का शासक नियुक्त किया।

इन सब कठोर निर्णयों द्वारा बलबन ने स्थिति को नियंत्रित किया। लोगों को अपनी सत्ता की शक्ति तथा भव्यता से प्रभावित करने के लिए बलबन ने एक वैभवशाली दरबार बनाया। उसने दरबार में हंसना तथा चुटकुले सुनना बंद कर दिया तथा शराब का सेवन भी बंद कर दिया, जिससे कोई भी उसे आरामवाली अवस्था में न देख ले। उसने दरबार में सिजदा (सलाम) तथा पाइबोस (राजा के कदम चूमने) जैसी प्रथाओं पर बल दिया।

बलबन ने विस्तार के स्थान पर संगठन की नीति अपनाई। उसने राजपद के नए सिद्धांत का प्रतिपादन किया कुलीनों तथा सुल्तान के मध्य रिश्तों को पुनः परिभाषित किया। इन तरीकों द्वारा ही बलबन ने दिल्ली सल्तनत को मजबूती प्रदान की।

बलबन निस्संदेह दिल्ली सल्तनत के मुख्य निर्माताओं में से एक था, विशेषकर सरकार और उसके संस्थानों राजा की शक्तियों को सुद ढ़ कर बलबन ने दिल्ली सल्तनत को

मजबूती प्रदान की। किन्तु फिर भी वह मंगोलों के आक्रमणों से उत्तर भारत को बचा नहीं पाया और तो और गैर तुर्कों को महत्त्वपूर्ण पदों और अधिकारों से विमुक्त कर मात्र कुछ ही समूहों के बीच अधिकारों/शक्तियों के वितरण ने अन्य लोगों में उसके प्रति असंतोष उत्पन्न किया। इसने उसकी म त्यु के पश्चात् नए संघर्षों को जन्म दिया।

बलबन की म त्यु 1287 में हो गई। उसकी म त्यु के उपरान्त कुलीनों ने उसके पोते कैकवाबाद को गद्दी पर बैठाया। किन्तु जल्द ही उसके पुत्र कैमूर ने उसे सत्ता से अलग कर दिया, जो स्वयं मात्र तीन माह तक ही शासन कर सका। बलबन के शासन के दौरान फिरोज उत्तर–पश्चिमी सैन्य अभियानों का संचालक था तथा उसने मंगोलों के खिलाफ कई सफल अभियान लड़े थे। उसे दिल्ली में बुलाया गया तथा अर्ज–ए–मुमालिक (युद्ध–मंत्री) बनाया गया। उसने 1290 में एक कड़ा कदम उठाकर कैमूर की हत्या कर दी तथा खुद गद्दी पर बैठ गया। खिलज़ी कुलीनों के एक वर्ग ने खिलज़ी वंश की नींव डाली। कुछ विद्वान इसे वांशिक क्रांति के रूप में परिभाषित करते हैं। इसने तथाकथित गुलाम वंश का अन्त किया तथा फिरोज जलालुद्दीन खिलज़ी के रूप में सिंहासन पर बैठा।

पाठगत प्रश्न 9.2

1. सिंहासन पर बैठते समय इल्तुतमिश के सम्मुख कौन–सी कठिनाइयाँ आई? किन्हीं दो का उल्लेख करें?

   _____

2. इल्तुतमिश द्वारा बनाया गया तुर्क–ए–चहलगनी क्या था?

   _____

3. दिल्ली सल्तनत का प्रथम सुलतान आपके अनुसार कौन था?

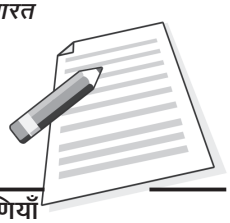
   _____

4. सत्ता के वर्चस्व को सुलतान के पास कायम रखने के लिए बलबन ने किन उपायों को अपनाया?

   _____

9.5 खिलज़ी (1290-1320 ई.)

जलालुद्दीन खिलजी ने खिलज़ी वंश की नींव डाली। जलालुद्दीन 70 वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा। हालांकि जलालुद्दीन ने अपने प्रशासन में पूर्व कुलीनों को बरकरार रखा, किन्तु खिलज़ियों के उदय ने महत्त्वपूर्ण कार्यालयों में कुलीन वर्ग में गुलामों के वर्चस्व को कम कर दिया। जलालुद्दीन का शासन मात्र 6 वर्ष ही रहा। उसने बलबन द्वारा अपनाए कड़े नियमों को भी ढीला किया वह सल्तनत का पहला ऐसा सुल्तान था, जिसने विचार दिया कि शासन जनता के समर्थन से चलना चाहिए तथा चूंकि भारत में हिन्दू आबादी अधिक है अतः यह सच्चा इस्लामिक राज्य नहीं हो सकता।



जलालुद्दीन खिलज़ी ने उदारता की नीति अपनाकर अभिजात्य वर्ग का समर्थन हासिल किया। उसने कड़े दंड वाली नीति का त्याग किया। यहां तक कि उन्हें भी कड़ा दंड नहीं दिया, जिन्होंने उसके खिलाफ विद्रोह किया था। उसने न सिर्फ उन्हें क्षमादान दिया, बल्कि उनका विश्वास जीतने के लिए सम्मानित भी किया। हालांकि उसके कई समर्थकों ने उसे कमजोर सुल्तान की संज्ञा दे डाली थी। जलालुद्दीन खिलजी की सभी नीतियां अलाउद्दीन खिलज़ी द्वारा पलट दी गई, जिसने अपना विरोध करने वाले को कड़ा दंड देने का प्रावधान किया था।

अलाउद्दीन खिलज़ी (1296 – 1316 ई.)

अलाउद्दीन खिलज़ी, जलालुद्दीन खिलज़ी का महत्त्वाकांक्षी भतीजा और दामाद था। उसने अपने चाचा की मदद सत्ता पाने में की थी तथा अमीर–ए–तुजुक (उत्सवों का शहंशाह) के रूप में नियुक्त हुआ था। जलालुद्दीन के शासनकाल में अलाउद्दीन की दो प्रमुख जीत थीं। सन 1292 में भीलसा (विदिशा) को अधीन करने के उपरान्त कारा के साथ–साथ उसे अवध का इक्ता प्रदान किया गया था। वह अरिजि–ए–मुमालिक (युद्ध मंत्री) के रूप में नियुक्त हुआ था। सन 1294 में पहली बार दक्षिण की ओर तुर्क साम्राज्य का विस्तार किया तथा देवगिरि को अपने अधीन किया। इस सफल अभियान ने साबित कर दिया कि अलाउद्दीन खिलज़ी एक सक्षम सेनाध्यक्ष और कुशल योजनाकार था। जुलाई 1296 में उसने अपने चाचा तथा ससुर जलालुद्दीन खिलज़ी की हत्या कर दी तथा स्वयं गद्दी पर बैठ गया।

अलाउद्दीन ने बलबन के शासन की निष्ठुर नीतियां पुनः लाने का निर्णय लिया। उसने कुलीन वर्ग की स्वतंत्रता छीनी शासन में उलेमाओं का हस्तक्षेप बंद किया। उसे अपने शासनकाल के आरम्भिक वर्षों में कई विद्रोहों का भी सामना किया। तारीख–ए–फिरोजशाही के लेखक बरनी के अनुसार अलाउद्दीन खिलज़ी ने महसूस किया कि इन विद्रोहों के चार प्रमुख कारण हैं–

1. गुप्तचर व्यवस्था की अयोग्यता,
2. शराब का आम उपयोग,
3. कुलीनों के मध्य सामाजिक व्यवहार और आपस में विवाह संबंध, तथा
4. कुछ कुलीनों के पास अत्यधिक संपत्ति।

इन विद्रोहों की कड़ियों को तोड़ने के लिए अलाउद्दीन ने कुछ नियम बनाए तथा उन्हें लागू किया-

1. वे परिवार जिन्हें मुफ्त में जमीन मिली हुई है, वे अपने स्वामित्व वाली वस्तुओं के लिए करों का भुगतान करेंगे।
2. सुल्तान ने गुप्तचर व्यवस्था को पुनः संगठित किया तथा उसे और प्रभावी बनाने के लिए समुचित उपाय किए।
3. शराब का प्रयोग प्रतिबंधित किया। तथा

4. शासन की अनुमति के बगैर अभिजात्य वर्गों के आपस में सामाजिक समारोह तथा शादी–विवाह पर रोक लगा दी।

अलाउद्दीन खिलज़ी ने इलाके जीतने की महत्त्वाकांक्षा और मंगोलों से देश की रक्षा के लिए एक विशाल स्थायी सेना की स्थापना की।

अलाउद्दीन खिलज़ी के बाजार सुधार

बाजार पर नियंत्रण स्थापित करने के लिए अलाउद्दीन द्वारा किए गए उपाय सबसे महत्त्वपूर्ण नीतियों में से एक है। चूंकि अलाउद्दीन एक विशाल सेना रखना चाहता था, अतः उसने आवश्यक वस्तुओं के मूल्य कम किए तथा निर्धारित किए। मूल्यों को नियंत्रित करने के लिए अलाउद्दीन ने विभिन्न वस्तुओं के विभिन्न बाजार बनाए। ये थे अनाज बाजार (मंडी), कपड़ा बाजार (सराय आदिल) तथा घोड़ों/जानवरों/गुलामों का बाजार। अलाउद्दीन ने एक पर्यवेक्षक शाहना–ए–मंडी की नियुक्ति की, जिसके अधीन एक सूचनाधिकारी होता था। शहाना–ए–मंडी के अतिरिक्त, अलाउद्दीन 'बरीद' (सूचना अधिकारी) तथा मुहियन (गुप्तचर) के द्वारा भी बाजार की दैनिक जानकारी पाता था। सुल्तान के आदेशों का उल्लंघन का अर्थ होता था कड़े से कड़ा दंड, जैसे राज–धानी से निष्कासन, आर्थिक दंड, जेल तथा अंगभंग।

घोड़ों के मूल्यों का नियंत्रण सुल्तान के लिए बहुत आवश्यक था, क्योंकि अच्छे घोड़ों की आपूर्ति के बिना सेना की कार्यकुशलता सुनिश्चित नहीं हो सकती थी। दिल्ली बाजार में घोड़ों के विक्रेताओं तथा दलालों द्वारा घोड़ों की खरीददारी से उनके कम मूल्य सुनिश्चित किए गए।

दिल्ली सल्तनत का विस्तार

अलाउद्दीन खिलज़ी के शासन काल में दिल्ली सल्तनत की सीमाएं उत्तर भारत को पार कर अपनी सर्वोच्च ऊंचाई तक पहुंची।

अलाउद्दीन ने क्षेत्रीय विस्तार अभियान की शुरुआत गुजरात के खिलाफ की। अलाउद्दीन खिलज़ी अपने साम्राज्य विस्तार के साथ–साथ गुजरात की विशाल संपदा के प्रति भी आकर्षित था। गुजरात की दौलत से उसके आगामी अभियानों में मदद होती तथा उसके समुद्री तट से उसकी सेना के लिए अरबी घोड़ों की आपूर्ति सुनिश्चित हो जाती। सन 1299 में अलाउद्दीन के दो प्रमुख सेनापतियों उलुगखान तथा नुसरत खान ने गुजरात की ओर रुख किया। गुजरात का शासक राय करन जान बचाकर भाग गया तथा सोमनाथ मंदिर जीत लिया गया। विशाल मात्रा में लूट का माल इकट्ठा किया गया। यहां तक कि सम्पन्न मुस्लिम व्यापारी भी नहीं बख्शे गए। कई गुलाम बंदी बनाए गए। उनमें से एक मलिक काफूर था, जो बाद में जाकर खिलज़ी सेना का मुख्य सेनापति बना तथा उसने दक्षिण अभियानों का संचालन किया। गुजरात अब दिल्ली सल्तनत का ही हिस्सा था।

गुजरात पर अधिकार स्थापित करने के उपरान्त अलाउद्दीन ने अब अपना ध्यान राजस्थान पर केंद्रित किया उसका पहला लक्ष्य रणथम्भौर था। रणथम्भौर का किला

राजस्थान का सबसे प्रतिष्ठित किला माना जाता था तथा पूर्व में वह जलालुद्दीन खिलज़ी को चुनौती दे चुका था। राजपूतों का नैतिक मनोबल तोड़ने के लिए रणथम्भौर को जीतना अत्यंत ही आवश्यक था। रणथम्भौर पर आक्रमण करने का तत्कालीन कारण राजपूत शासक हमीरदेव द्वारा दो विद्रोही मंगोल सैनिकों को शरण देना था तथा उनको खिलज़ी शासकों को देने से इंकार कर दिया था। अतः रणथम्भौर के खिलाफ मोर्चा खोला गया। प्रारंभ में खिलज़ी सेना को नुकसान हुआ। यहां तक कि नुसरत खान को अपनी जान गंवानी पड़ी। अंततः अलाउद्दीन खिलज़ी को युद्ध के मैदान में खुद आना पड़ा तथा सन 1301 में अलाउद्दीन ने किले को जीत लिया।

सन 1303 में अलाउद्दीन ने एक अन्य शक्तिशाली प्रदेश चित्तौड़ को जीता। कुछ विद्वानों के अनुसार अलाउद्दीन ने राजा रतन सिंह की सुंदर पत्नी पद्मावती के प्रति आकर्षित होकर चित्तौड़ पर हमला किया था। हालांकि कुछ इतिहासकार इस कथा को मानने से इंकार करते हैं, क्योंकि इस गाथा का वर्णन जायसी द्वारा 200 वर्ष बाद पद्मावत में पहली बार किया गया। अमीर खुसरो के अनुसार सुल्तान ने आम जनता के कत्लेआम की आज्ञा दी थी। अपने पुत्र खिजरखान के नाम पर उसने चित्तौड़ का नाम खिजराबाद कर दिया। अलाउद्दीन को दिल्ली वापस आना पड़ा, क्योंकि मंगोल सेना दिल्ली की ओर कूच कर रही थी।

सन 1305 में एन–उल–मुल्क के नेत त्व में खिलज़ी सेना ने मालवा पर अधिकार स्थापित किया। अन्य राज्य जैसे उज्जैन, मंडू, धर तथा चंदेरी भी जीत लिए गए। मालवा विजय के उपरांत अलाउद्दीन ने मालिक काफूर को दक्षिण में भेजा स्वयं सिवाना पर आक्रमण किया। सिजाना के शासक राजा शीतल देव ने दुर्ग की वीरतापूर्वक रक्षा की, किन्तु अंततः पराजित हुआ। सन 1311 में अन्य राजपूत प्रदेश जालौर भी सल्तनत का हिस्सा था। इस प्रकार 1311 तक अलाउद्दीन ने राजपूतों के सभी क्षेत्रों को जीत लिया तथा उत्तर भारत का शहंशाह बन गया।

दक्कन तथा दक्षिण भारत

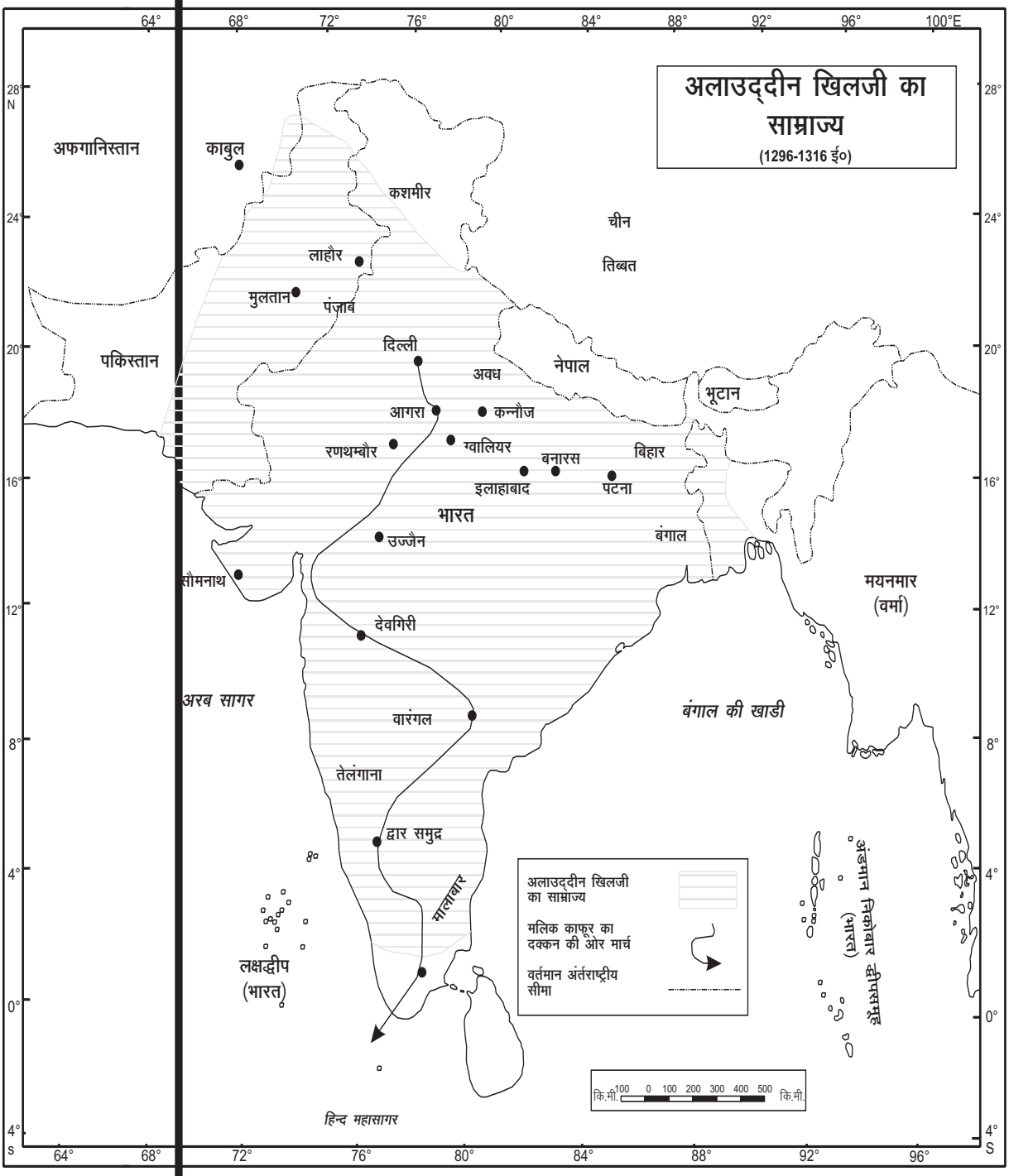
अलाउद्दीन की साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा उत्तर भारत पर अधिकार के साथ पूर्ण नहीं हुई थी। वह दक्षिण को जीतने के लिए भी कटिबद्ध था। दक्षिण भारत की सम्पत्ति ने उसे आकर्षित किया। दक्षिण में युद्ध के लिए अलाउद्दीन के विश्वसनीय सेनापति मलिक काफूर के नेत त्व में फौज को भेजा गया, जो नायब का कार्य भार संभाले था। सन 1306-07 में अलाउद्दीन ने दक्कन में पहला अभियान प्रारंभ किया। उसका पहला निशाना (गुजरात का पूर्व शासक) रायकरन था जो अब बगलाना का शासक था तथा खिलजी से पराजित हुआ। उसका अगला निशाना देवगिरि का शासक रामचन्द्र था, जिसने पहले सुल्तान को राशि देने का वादा किया था, किन्तु कभी दी नहीं। रामचंद्र ने हल्के संघर्ष के उपरान्त मलिक काफूर के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया तथा उसके साथ सम्मानजनक व्यवहार हुआ। उसे गुजरात का एक जिला प्रदान किया गया तथा उसकी एक पुत्री का विवाह अलाउद्दीन से हुआ था। अलाउद्दीन ने रामचंद्र के प्रति गरमजोशी का परिचय दिया, क्योंकि वह दक्षिण के अभियानों में रामचंद्र को साथी बनाना चाहता था।

सन 1309 के उपरान्त मलिक काफूर दक्षिण भारत के खिलाफ अभियान पर रवाना हुआ। पहला आक्रमण तेलंगाना क्षेत्र में वारंगल के शासक प्रताप रुद्रदेव के खिलाफ था।

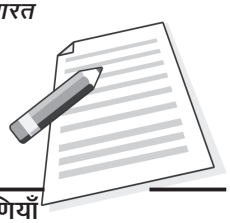
आपकी टिप्पणियाँ

घेराबंदी कई महीनों तक चली तथा तब समाप्त हुई जब प्रताप रुद्रदेव के सुल्तान को अपनी सम्पत्ति में हिस्सा देने तथा सुल्तान को शुल्क अदा करने का वादा किया।

दूसरा अभियान द्वार समुद्र तथा मालबार (वर्तमान कर्नाटक तमिलनाडु) के खिलाफ था। द्वार समुद्र के शासक वीर बल्ला त तीय यह समझने के पश्चात कि मलिक काफूर को



मानचित्र 9.1 अलाउद्दीन खिलज़ी का साम्राज्य



हराना असंभव है, बिना किसी संघर्ष के सुल्तान को शुल्क अदा करना स्वीकार कर लिया। मालबार (पांड्य राज्य) की यदि बात करें तो सीधा संघर्ष नहीं हो सका। हालांकि मलिक काफूर ने सम द्ध मंदिरों सहित बहुत ज्यादा लूटपाट की इनमें चिदम्बरम का मंदिर मुख्य था। अमीर खुसरों के अनुसार काफूर 512 हाथियों, 7000 घोड़ों तथा 500 मन बहुमूल्य पत्थरों के साथ लौटा था। सुल्तान ने मलिक को साम्राज्य का नायब बनाकर पुरस्क त किया था। मलिक के नेत त्व में अलाउद्दीन की सेनाओं ने दक्कन प्रदेशों में अपना नियंत्रण कायम रखा।

पाठगत प्रश्न 9.3

1. रणथम्भौर का नियंत्रण क्यों आवश्यक था?

   _____

2. अलाउद्दीन खिलज़ी के शासन काल में दक्षिण में सेना का नेत त्व किसने किया था?

   _____

3. जलालुद्दीन के शासन काल में दो प्रमुख सैन्य अभियानों के नाम लिखें?

   _____

4. विद्रोहों को दबाने के लिए अलाउद्दीन खिलज़ी द्वारा किए गए चार प्रावधानों का उल्लेख करें?

   _____

1316 मे अलाउद्दीन की म त्यु के पश्चात दिल्ली सल्तनत में पुनः भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो गई थीं। कुछ दिनों के लिए मलिक काफूर सिंहासन पर बैठा पर कुतुबुद्दीन मुबारकशाह ने उसे हटा दिया। कुतुबुद्दीन मुबारक शाह भी जल्द ही मारा गया तथा खुसरो ने गद्दी हासिल की। हालांकि उसका शासन भी अधिक लम्बा न चल सका तथा गयासुद्दीन तुगलक के नेत त्व में कुछ असंतुष्ट अधिकारियों ने उसे युद्ध में पराजित कर मार डाला। इस प्रकार अलाउद्दीन खिलज़ी की म त्यु के मात्र चार वर्ष बाद ही खिलज़ी साम्राज्य का पतन हो गया।

9.6 तुगलक वंश (1320-1412 ई.)

तुगलक वंश का संस्थापक गजनी मलिक था, जिसने ग्यासुद्दीन तुगलक के रूप में सन् 1320 में सिहांसन हासिल किया था तथा जिसका वंश 1412 ई. तक सत्ता में रहा। अलाउद्दीन के शासन काल में ग्यासुद्दीन तुगलक ने विशिष्ट पदों पर कार्य किया था (1325 ई.) छोटे से शासन काल के उपरांत ग्यासुद्दीन तुगलक की म त्यु हो गई तथा उसका पुत्र मुहम्मद तुगलक गद्दी पर बैठा। तुगलकों के शासन काल में दिल्ली सल्तनत और संगठित हुई सल्तनत के सीधे नियंत्रण में कई नए क्षेत्र भी आए।

दक्कन और दक्षिण प्रदेश

अलाउद्दीन द्वारा विजित दक्कन के क्षेत्रों ने शुल्क अदा करना बंद कर दिया था तथा स्वतंत्रता का झंडा उठा दिया था। मुहम्मद बिन तुगलक ने राजकुमार होते हुए (जूना खान के नाम से प्रचलित) राय रुद्रदेव के खिलाफ अभियान छेड़ा, जो लम्बे युद्ध के पश्चात् पराजित हुआ। वारंगल अब दिल्ली सल्तनत के सीधे नियंत्रण में था। मालबार भी पराजित हुआ। अब पूरे तेलंगाना क्षेत्र को प्रशासनिक टुकड़ियों में बांटा तथा सल्तनत का हिस्सा बनाया। मुहम्मद तुगलक ने तो दिल्ली के स्थान पर देवगिरी को राजधानी बनाने का निर्णय लिया उसका नाम दौलताबाद रखा गया। वास्तव में वह उत्तर क्षेत्र को यहीं से नियंत्रित करना चाहता था। व्यापक संख्या में कुलीन वर्ग, धार्मिक व्यक्ति और शिल्पी नई राजधानी में स्थानांतरित किए गए। प्रतीत होता है कि उसका इरादा दौलताबाद को दिल्ली के साथ–साथ दूसरी राजधानी बनाने का था। कालान्तर में यह योजना त्याग दी गई हालांकि इस योजना ने दक्षिण तथा उत्तर के मध्य रिश्तों में सुधार किया। क्षेत्रीय विस्तार के साथ–साथ सामाजिक, सांस्क तिक तथा आर्थिक संबंध भी बने और फले–फूले।

पूर्वी भारत

जाजनगर उड़ीसा के शासक भानुदेव द्वितीय ने वारंगल के राय रुद्रदेव की सहायता सुल्तानों के खिलाफ युद्ध में की थी। उलुग खान के नेत त्व में सन् 1324 में भानुदेव द्वितीय पराजित हुआ और उसके राज्य को भी सम्मिलित कर लिया गया। बंगाल में सुल्तान के खिलाफ दरबारियों में असंतोष था। असंतुष्टों ने राजकुमार को आमंत्रित किया कि वहां के शासक पर हमला करें। बंगाल की सेना पराजित हुई तथा नसीरुद्दीन नामक सरदार को गद्दी सौंप दी गई।

राजधानी परिवर्तन

मुहम्मद तुगलक के सर्वाधिक विवादास्पद निर्णयों में एक था, दिल्ली से देवगिर (दौलताबाद) राजधानी परिवर्तन करना। डॉक्टर मेंहदी हसन के अनुसार सुल्तान दोनों राजधानियों को बरकरार रखना चाहता था। बर्नी के अनुसार सन 326-27 मे सुल्तान ने अपनी राजधानी स्थानांतरित करने का निर्णय लिया, क्योंकि वह केंद्रीय स्थिति में स्थित था। इब्नबतूता के अनुसार दिल्ली की जनता सुल्तान को गालियों वाले पत्र भेजा करती थी। अतः उन्हें दंडित करने के लिए सुल्तान ने राजधानी परिवर्तन का निर्णय लिया। इमामी कहते हैं कि वह स्थान उत्तर–पश्चिमी सीमा से काफी दूर था अतः मंगोलों की पहुंच से परे था। विभिन्न मतों की वजह से इस स्थानांतरणा की मुख्य वजह पर पहुंचना बहुत ही मुश्किल है।

दिल्ली के समस्त लोगों को दिल्ली छोड़ने को नहीं कहा गया था, मात्र उच्च वर्ग जैसे शेख, अभिजात्य वर्ग, उलेमा इत्यादि ही दौलताबाद ले जाए गए थे। बाकी लोगों को ले जाने का कोई प्रयास नहीं किया गया। मुहम्मद तुगलक ने हालांकि दिल्ली से देवगिर तक सड़क का निर्माण किया था तथा विश्राम ग हों को भी स्थापित किया था, किन्तु लोगों के लिए सफर आसान नहीं था। कष्टदायक यात्रा और भयानक गरमी की वजह से काफी लोग मर गए। बढ़ते असंतोश को देखकर तथा यह भांपकर कि दक्षिण से उत्तर भारत नियंत्रित नहीं हो पाएगा, सुल्तान ने दौलताबाद छोड़ने का निर्णय ले लिया।

उत्तर पश्चिम

नियमित अंतराल पर दिल्ली सल्तनत पर मंगोलों के आक्रमण होते रहते थे। सन 1326-27 में तरमशरीन खान के नेत त्व में बड़ा मंगोली आक्रमण हुआ। मुहम्मद तुगलक ने सीमाओं को सुरक्षित करने का निर्णय लिया। लाहौर से कलानौर, पेशावर तक जीत लिए गए तथा नया प्रशासनिक नियंत्रण लागू किया गया। इसके अतिरिक्त सुल्तान ने कराचिल क्षेत्र (वर्तमान हिमाचल) तथा कंधार को भी जीतने का प्रयत्न किया, किन्तु सफल नहीं हुआ। वास्तव में इन योजनाओं में बहुत नुकसान हुआ।

नई नीतियां अपनाने के विषय में मुहम्मद तुगलक अच्छा था। उसने क षि के विकास के लिए नए विभाग का निर्माण कराया। जिसे 'दीवान–ए–कोही, कहा गया। किसानों को जुताई के लिए बीज लेने की सहायता प्रदान की गई। फसल बरबाद होने पर भी यह ऋण दिया जाता था। अन्य महत्त्वपूर्ण सुधार चांदी की कमी से पार पाने के लिए प्रतीकात्मक मुद्रा का चलन था। हालांकि यह योजना असफल हुई तथा इसने सल्तनत को भारी आर्थिक नुकसान पहुंचाया।

प्रतीकात्म्क मुद्रा

मुहम्मद बिन तुगलक द्वारा आरंभ की गई अन्य विवादास्पद योजना 'प्रतीकात्मक मुद्रा' का प्रयत्न था। बर्नी के अनुसार सुल्तान ने प्रतीकात्मक मुद्रा का प्रचलन प्रारंभ किया, कि अति विस्तारवादी योजनाओ की वजह से तथा अत्यधिक उदारता की वजह से खजाना खाली हो चुका था। कुछ इतिहासकारों का मत है कि उन दिनों विश्व स्तर पर चांदी की कमी थी, इसलिए भारत भी इससे अछूता नहीं था अतः सुल्तान को चांदी के स्थान पर तांबे के सिक्के चलाने पड़े।

मुहम्मद ने चांदी के सिक्के (टका) के स्थान पर तांबे की मुद्रा (जितल) चलाई तथा आदेश दिया कि इसे टका के रूप में स्वीकार किया जाए। हालांकि प्रतीकात्मक मुद्रा का विचार भारत के लोगों के लिए नया था तथा व्यापारियों आम लोगों के लिए इसे स्वीकारना अत्यंत कठिन था। शासन ने भी सिक्कों की गढ़ाई के विषय में उचित सावधानी नहीं बरती। सरकार लोगों को नए सिक्के ढालने से रोक न सकी तथा जल्द ही बाजार में नकली प्रतीकात्मक मुद्राओं की बाढ़ आ गई। बर्नी के अनुसार लोगों ने सिक्के घर मे ही ढालने प्रारंभ कर दिए थे। अतः सामान्य जनता के लिए सरकारी सिक्कों तथा लोगों द्वारा ढले सिक्कों में अंतर करना मुश्किल हो रहा था। अंततः सुलतान को यह योजना वापस लेनी पड़ी।

मुहम्मद बिन तुगलक के पश्चात उसका चचेरा भाई फिरोज तुगलक सुल्तान बना। उसके शासन काल में कोई भी नया क्षेत्र नहीं जीता गया। उसने विशाल साम्राज्य को बनाए रखने के लिए बहुत प्रयत्न किए। हालांकि दिल्ली पर शासन की पकड़ फिरोज के उत्तराधिकारियों के समय में ढीली होने लगी थी। सन 1398 में तैमूर के हमलों ने सल्तनत को हिला दिया। तुगलक साम्राज्य के अंतिम दिनों में 1412 ई. में सल्तनत उत्तर भारत के एक छोटे से हिस्से में सिमट गई थी। कई राज्यों ने खुद को स्वतंत्र

घोषित कर दिया था। पूर्व में उड़ीसा तथा बंगाल पूर्ण स्वायत्तता घोषित कर चुके थे। पूर्वी उत्तर प्रदेश तथा बिहार के कई हिस्सों में एक नए वंश का उदय हुआ –शरकी प्रशासन। दक्कन तथा दक्षिण में विजयनगर और बहमनी राजनीतिक शक्तियां बन गईं। पंजाब का बड़ा हिस्सा स्वतंत्र सरदारों द्वारा जीत लिया गया। गुजरात और मालवा स्वतंत्र हो गए। राजस्थान के राजपूत सल्तनत को अपना स्वामी स्वीकार नहीं करते थे।

पाठगत प्रश्न 9.4

1. गाजी मालिक किस नाम से गद्दी पर सन 1320 में बैठा?

2. दक्षिण विजय के लिए ग्यासुद्दीन को किसने भेजा था?

3. मुहम्मद बिन तुगलक द्वारा राजधानी स्थानांतरण के पीछे राजनीतिक कारण क्या था?

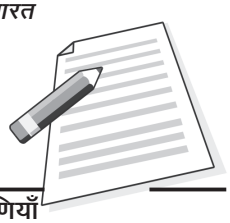
4. प्रतीकात्मक मुद्रा के सिद्धांत का वर्णन करें?

9.7 सैय्यद वंश 1414-1450 ई.

1398 में दिल्ली की सेना को पराजित करने के उपरांत तैमूर ने खिज्रखान को मुल्तान का शासक नियुक्त किया। खिज्रखान ने सुल्तान दौलत खान को पराजित कर सैय्यद वंश की स्थापना की। उसने सुल्तान की उपाधि धारण नहीं की। बल्कि वह रायत–ए–आला से ही संतुष्ट था। तारीख–ए–मुबारकशाही के लेखक याहया सिरहिंदी दावा करते हैं कि सैयद वंश का संस्थापक पैगम्बर मुहम्मद साहब का वंशज था।

खिज्रखान, सैय्यद शासन का सबसे सक्षम शासक था, खिज्रखान की म त्यु के पश्चात मुबारक शाह (1412-34) तथा मुहम्मद शाह (1434-45 ई.) तक क्रमशः दिल्ली की गद्दी पर बैठे। इन शासकों ने कटेहर, बदायूं, इटावा, पटियाली, ग्वालियर, काम्पिल, नागौर तथा मेवात जैसे विद्रोही क्षेत्रों को नियंत्रित करने का प्रयत्न किया, किन्तु कुलीन वर्ग के षड्यंत्र के चलते वे ऐसा न कर सके।

सन 1445 में आलम शाह गद्दी पर बैठा। वह एकदम निकम्मा सुल्तान साबित हुआ। आलमशाह के वजीर हमीद खां ने बहलोल लोदी को सैन्य अध्यक्ष बनने के लिए आमंत्रित किया तथा यह महसूस करने के उपरान्त कि अब वह अधिक समय तक सुल्तान न रह सकेगा, आलम शाह बदायूं भाग गया।



9.8 लोधी वंश तथा सल्तनत का पुर्नगठन (1451-1526 ई.)

कुछ सरदारों की मदद से बहलोल लोदी ने सेना का कार्यभार संभाला (1451-1484 ई.) तथा सुल्तान बन गया। इस प्रकार उसने लोधीवंश की नींव डाली, जो अफगान के शासक थे। लोधी शासक दिल्ली सल्तनत के आखिरी शासक थे तथा प्रथम अफगानी शासक थे।

सुल्तान बहलोल लोदी सक्षम सेनापति था। वह इस सत्य से भलीभांति परिचित था कि सल्तनत पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के लिए उसे अफगान कुलीनों की आवश्यकता पड़ेगी। अफगान अमीर सुल्तान से अपेक्षा करते थे कि वह उनके साथ पूर्ण शासक के बजाय समान सहयोगी जैसा बर्ताव करे। उन्हें प्रसन्न करने के लिए बहलोल ने स्वयं घोषणा की कि वह सुल्तान नहीं है, बल्कि अफगान साथियों में से ही एक है। न तो लोदी गद्दी पर बैठा तथा न ही उसने अपने दरबार में अमीरों के खड़े होने पर जोर दिया। उसके लंबे शासनकाल के लिए यह नीति कारगर रही तथा उसे शक्तिशाली अफगान अमीरों द्वारा किसी भी विरोध का सामना नहीं करना पड़ा।

दोआब तथा मेवात के विद्रोहों का बहलोल लोदी ने सफलतापूर्वक दमन किया। सन 1476 में उसने जौनपुर के सुल्तान को पराजित कर दिल्ली सल्तनत में शामिल कर लिया। कालपी तथा धोलपुर के शासकों को भी वह दिल्ली साम्राज्य का अंग बनाने में सफल रहा। हालांकि वह बंगाल, गुजरात तथा दक्कन प्रदेशों को जीत न सका।

बहलोल लोदी की म त्यु के उपरांत सिकंदर लोदी (1489-1517) गद्दी पर बैठा। सिकंदर लोदी गैर मुस्लिमों के प्रति सहनशील नहीं था तथा उसने जजिया कर गैर मुस्लिमों पर दोबारा से लगाया।

सिकन्दर लोदी सुल्तान की सर्वोच्चता में विश्वास करता था। उसने सरदारों और अमीरों को दरबार में सुल्तान के प्रति आदर दर्शाने को विवश किया तथा दरबार के बाहर उनसे कड़ाई से बर्ताव किया। उसने बिहार, धौलपुर, नारवार तथा ग्वालियर और नागौर के कुछ हिस्सों को दिल्ली सल्तनत का दोबारा से हिस्सा बनाया।

सन् 1517 में सिकन्दर लोदी की म त्यु के पश्चात उसके सरदारों ने इब्राहिम लोदी को सुल्तान बनाया। उसका साम्राज्य शासन काल विद्रोहों का काल साबित हुआ। पहले उसके भाई जलाल खान ने विद्रोह किया। सुल्तान इब्राहिम लोदी ने उसे मरवा दिया। बिहार ने खुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया। पंजाब के शासक दौलत खां ने भी विद्रोह का बिगुल बजा दिया। सुल्तान के व्यवहार ने भी असंतोष उत्पन्न किया। असन्तुष्ट दौलत खान ने काबुल में बाबर को भारत पर आक्रमण के लिए आमंत्रित किया। बाबर ने 1526 पानीपत के प्रथम युद्ध में सुल्तान इब्राहिम लोदी को पराजित कर दिया।

सल्तनत के अंत की व्याख्या करते हुए एक विद्वान का कथन है ''दिल्ली सल्तनत ने, जिसने 1192 में तराई के प्रथम युद्ध से जन्म पाया था, अपनी आखिरी साँस पानीपत के मैदान से कुछ मील दूर 1526 में अपनी आखिरी साँस ली।''

पाठगत प्रश्न 9.5

1. अफगान अभिजात्य वर्ग का समर्थन पाने के लिए बहलोल लोदी ने क्या नीति अपनाई?

2. सैय्यद वंश का संस्थापक कौन था?

3. तारीख–ए–मुबारकशाह की रचना किसने की?

4. सुल्तान के पद के गौरव को बनाए रखने के लिए सिकन्दर लोदी ने क्या कदम उठाए?

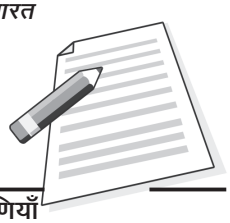
9.9 सल्तनत के सम्मुख चुनौतियां

दिल्ली में मुगल वंश की स्थापना के साथ ही दिल्ली सल्तनत का अन्त हो गया। 300 वर्षों से अधिक के शासन काल में सल्तनत ने काफी उतार–चढ़ाव देखे पर एक राजनीतिक शक्ति के रूप में वर्चस्व कायम रखा। यहाँ हम सल्तनत के समक्ष आई चुनौतियों पर चर्चा करेंगे।

मंगोल तथा अन्य शक्तियों द्वारा आक्रमण

अपनी स्थापना के साथ ही सल्तनत मंगोल के आक्रमणकारियों के निशाने पर रही। मंगोलेंकबीलाई समूह थे जो उत्तर–चीन तथा बाइकल झील के पूर्व के मूल निवासी थे। उन्होंने चंगेज खां के नेत त्व में 12वीं शताब्दी में साम्राज्य की स्थापना की। 13वीं शताब्दी के बाद से ही उन्होंने भारत पर लगातार आक्रमण किए। एक नीति के अंतर्गत सुल्तानों ने उन्हें प्रसन्न रखा तथा कई बार रोका भी। बलबन तथा अलाउद्दीन खिलज़ी ने विशाल सैन्य शक्ति की मदद से उन्हें रोका। खिलज़ी के शासन काल के दौरान कुतलुग ख्वाजा के नेत त्व में मंगोल दिल्ली तक पहुंचे तथा बहुत नुकसान भी पहुंचाया। मंगोलों द्वारा किया गया अंतिम महत्त्वपूर्ण हमला मुहम्मद तुगलक के शासनकाल में तरशमरीन के नेत त्व में हुआ था। सुल्तानों की शक्ति तथा संसाधनों का बड़ा हिस्सा इन हमलों को रोकने में प्रयुक्त हुआ, किन्तु ये हमले सल्तनत को नष्ट नहीं कर पाए।

एक अन्य हमला जिसने सल्तनत को पूरी तरह हिलाकर रख दिया था, 1398 में तैमूर का हमला था। दिल्ली सल्तनत की कमजोर स्थिति तैमूर के दिल्ली आक्रमण के बाद और कमजोर हो गई थी। तैमूर तुर्कों की चगताई जाति के सरदार का पुत्र था। जब उसने भारत पर आक्रमण किया। उस समय वह पूरे मध्य एशिया का सुल्तान था। भारत पर तैमूर द्वारा किया गया हमला लूट–पाट वाला हमला था तथा उसका मुख्य उद्देश्य 200 वर्षों में दिल्ली के सुल्तानों द्वारा एकत्र की गई दौलत को लूटना था। सुल्तान



नसीरुद्दीन तथा उनके वजीर मुल्लू एकबसल ने हालांकि तैमूर का सामना करने की कोशिश की, परन्तु वे पराजित हुए। तैमूर ने दिल्ली में प्रवेश किया तथा 15 दिन रहा। उसने कत्लेआम का आदेश दिया तथा महिलाओं बच्चों सहित बड़ी संख्या में हिन्दू–मुसलमान मारे गए। भारत छोड़ने से पूर्व तैमूर के आक्रमण ने दिल्ली सल्तनत की नींव हिला दी। दिल्ली सल्तनत ने पंजाब से नियंत्रण खो दिया। तैमूर ने मुल्तान के शासक के रूप में खिज्ररखान को नियुक्त किया, जिसका नियंत्रण पंजाब पर भी था। तुगलक वंश के पतन के पश्चात उसने दिल्ली पर नियंत्रण स्थापित कर लिया तथा सैय्यद वंश की नींव डाली।

कुलीन वर्ग की आपसी जंग

300 वर्ष के दिल्ली सल्तनत के युग ने पांच वंशों का शासन देखा। इन वंशों के परिवर्तन तथा शासकों के सत्ताच्युत होने में मुख्य भूमिका सुल्तान तथा कुलीनों (उमरों) के संघर्ष ने निभाई ऐबक की म त्यु के तुरंत बाद ही वे उत्तराधिकार के मुद्दे पर उलझ गए। अंततः इल्लुतमिश विजेता बनकर उभरा। इल्तुतमिश ने वफादार उमरों का समूह बनाया, जिसे तुर्क–ए–चहलगनी (चालीस) कहा गया। इल्लुतमिश की म त्यु के उपरांत चालीस समूह के कुछ सदस्य अपने प्रिय पुत्र/पुत्री को सुल्तान बनाने की फिराक में लग गए। 10 वर्षों में 5 सुल्तान बदले गए। इसके पश्चात जिस सुल्तान ने शासन किया वह नसीरुद्दीन महमूद था, जिसने लगभग 20 वर्ष शासन किया बलबन कार्यकारी सुल्तान था। यही बलबन नसीरुद्दीन महमूद की म त्यु के पश्चात सुल्तान बना। हर शक्तिशाली शासक की म त्यु के पश्चात् समान घटनाएं हुईं (बलबन, अलाउद्दीन खिलज़ी, फिरोज तुगलक इत्यादि)। उत्तराधिकारी का कोई निश्चित नियम न होने की वजह से हर शक्ति शाली अमीर अपने पसन्द के उत्तराधिकारी को गद्दी पर बैठाने का प्रयत्न करता था। अंततः बहलोल लोदी के सिंहासनारोहण के साथ, अफगानों ने सुल्तान पद की दौड़ से तुर्कों को बाहर कर ही दिया।

प्रान्तीय शक्तियां

संघर्ष का अन्य रूप विभिन्न क्षेत्रों में विविध प्रान्तीय प्रमुखों द्वारा स्वतंत्रता का झंडा बुलंद करना था। परिणामस्वरूप कई स्वतंत्र तुर्क तथा अफगान शक्तियों का उद्य हुआ। ऐसे प्रदेशों में मुख्य थे बंगाल (लखनौती) जौनपुर, मालवा, गुजरात तथा दक्कन का बहमनी राज्य, ये प्रदेश अकसर सल्तनत के साथ युद्धरत रहते थे। इस प्रक्रिया ने सल्तनत को दुर्बल बनाया।

भारतीय शासकों के विद्रोह

सुल्तानों को भारतीय शासकों की चुनौतियों का भी सामना करना पड़ा था। राजपूताना के राजपूत सरदार (मेवाड़, रणथम्भौर, चित्तौड़ आदि) वारंगल, देवगिर, दक्कन तथा दक्षिण में मालबार, धार का राजा, मध्य भारत में मालवा, उड़ीसा में जाजनगर, तथा कई छोटे प्रान्त प्रमुख लगातार पराजयों के पश्चात भी सल्तनत के साथ संघर्षरत रहते थे। इन सभी संघर्षों ने सल्तनत को कमजोर किया।

खिलज़ी तथा तुगलक वंश के शासन के उपरान्त सल्तनत की स्थिति कमजोर होती चली गई। अतः 1526 में बाबर ने निर्णायक आक्रमण करके इसका अंत कर डाला। अब एक अधिक संगठित मुगल साम्राज्य भारत में स्थापित हुआ उसने आगे 200 वर्षों तक शासन

किया। इसकी चर्चा हम अपने अगले पाठ मुगलश्शासन में करेंगे। किन्तु मुगल काल पर चर्चा करने से पूर्व क्षेत्रीय शक्तियों को जानना आवश्यक होगा।

क्षेत्रीय शक्तियों का उदय

आप पढ़ चुके हैं कि मुहम्मद तुगलक के शासनकाल से ही दिल्ली सल्तनत का विघटन प्रारंभ हो चुका था। हालांकि फिरोजशाह तुगलक ने नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया, किन्तु असफल हुआ। इस अवधि के दौरान कुछ प्राचीन शक्तियों ने खुद को सल्तनत के शासन से स्वतंत्र घोषित कर दिया था।

जौनपुर

दिल्ली सल्तनत के पूर्वी भाग की एक प्रमुख सम द्ध शक्ति जौनपुर थी। मलिक सरवर जौनपुर का शासक था। जल्द ही वह कन्नौज, कारा, अवध, संदील, दालमऊ, बहराइच, बिहार तथा त्रिहुट का भी शासक बन बैठा। हालांकि उसने सुल्तान की उपाधि धारण नहीं की, पर उसने शरकी वंश की नींव डाली।

सन 1399 मे मलिक सरवर की म त्यु के पश्चात उसका गोद लिया पुत्र मलिक करनफुल सिंहासन पर बैठा। उसने मुबारक शाह की उपाधि धारण की और शरकी वंश का प्रथम सुल्तान बना। जहां मुबारकशाह जौनपुर का शासक था, उसी समय महमूद तुगलक, दिल्ली का सुल्तान, मल्लू इकबाल के हाथों की कठपुतली था। मल्लू इकबाल ने जौनपुर को जीतने का प्रयास किया, पर असफल रहे। सन 1402 में मुबारक शाह की म त्यु के पश्चात उसका छोटा भाई इब्राहिम शासक बना, जिसकी शासन अवधि 34 वर्ष तक रही।

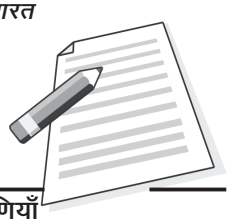
इब्राहिम के शासनकाल के दौरान दिल्ली और जौनपुर के संबंध मधुर नहीं रहे। इब्राहिम शरकी वंश का महान शासक था, जिसके शासन काल में जौनपुर शिक्षा का महत्त्वपूर्ण केंद्र बन गया था। उसके शासनकाल के दौरान विशेष प्रकार की स्थापत्य कला का विकास हुआ, जिसे स्थापत्य की शरकी शैली कहा गया। इस कला की प्रमुख इमारत जौनपुर की अटाला मस्जिद है।

इब्राहिम के उत्तराधिकारी ने चुनार के किले पर विजय पाई उसने कालपी को विजय करने का भी प्रयत्न किया पर असफल हुए। उसने दिल्ली पर आक्रमण किया पर बहलोल लोदी ने उसे पराजित कर दिया। महमूद के पश्चात मुहम्मद शाह तथा हुसैन शाह का शासन काल चला। सन 1500 में हुसैन शाह की म त्यु के साथ ही शरकी वंश का अंत हो गया।

कश्मीर

शम्सुद्दीन शाह (1339 ई.) कश्मीर का प्रथम मुस्लिम शासक हुआ। सन 1398 में सिकन्दर गद्दी पर बैठा। वह एक शक्तिशाली तथा वीर शासक था। सिकन्दर की म त्यु 1416 ई. में हुई तथा उसका पुत्र अली शाह गद्दी पर बैठा। कुछ वर्षों के उपरान्त उसका भाई शाह खान जैनुल आबिदिन के नाम से गद्दी पर बैठा।

जैनुल आबिदिन उदार तथा बुद्धिमान शासक था। प्रत्येक समूह का समर्थन प्राप्त करने के लिए उसने उन सभी संघों का आह्वान किया, जिन्हें सिकंदर ने नष्ट कर दिया था। उसने जजिया कर को हटाया तथा गौवध पर प्रतिबंध लगाया। जैनुल आबिदिन ने कश्मीर के आर्थिक विकास पर विशेष बल दिया। वह फ़ारसी, संस्क त, तिब्बती तथा कश्मीरी भाषा



का विद्वान था। उसने महाभारत तथा राजतरंगिणी (कश्मीर का इतिहास) के फ़ारसी में अनुवाद की आज्ञा दी थी। जैनुअल आबिदिन के उत्तराधिकारी कमजोर शासक साबित हुए। उनकी दुर्बलताओं का फायदा उठाकर बाबर के एक रिश्तेदार मिर्जा हैदर ने कश्मीर पर कब्जा कर लिया। सन 1586 में अकबर ने कश्मीर को मुगल साम्राज्य में शामिल कर दिया।

मालवा

मालवा दिल्ली सल्तनत का दक्षिण–पश्चिमी क्षेत्र था। सन 1310 में सुल्तान अलाउद्दीन ने इसे जीता था तथा फिरोज तुगलक की म त्यु तक यह दिल्ली सल्तनत का ही हिस्सा बना रहा। सन 1401 में तैमूर के आक्रमण के पश्चात् दिलावर खान ने दिल्ली के प्रति अपनी प्रतिबद्धता को उतार फेंका। उसने सुल्तान की शाही उपाधि धारण नहीं की। सन 1405 में दिलावर खान की म त्यु के पश्चात् उसका पुत्र आला खान सिंहासन पर बैठा तथा होशांग शाह की उपाधि धारण की। उसने मांडू को अपनी राजधानी बनाया। हिन्दी महल, जामा मस्जिद तथा जहाज महल मांडू स्थापत्यकला के कुछ नमूने हैं।

होशांग खान के पश्चात गाजी खान सिंहासन पर बैठा, जिसे 1436 ई. में उसके मंत्री महमूद खान ने सत्ताच्युत कर दिया। महमूद ने शाह की उपाधि धारण की और मालवा के खिलजी वंश की स्थापना की। महमूद खिलजी के शासनकाल में मालवा शक्तिशाली तथा सम द्ध राज्य बन गया था। फरिश्ता के अनुसार वह विनम्र, बहादुर तथा विद्वान व्यक्ति था। महमूद के बाद उसके उत्तराधिकारी क्रमशः गयासुद्दीन नसीरुद्दीन हुए। सन 1510 में महमूद द्वितीय ने गद्दी संभाली। उसने दगाबाज अमीरों को दबाने के लिए वीर राजपूत मेदिनी राय को बुलाया तथा उसे अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया। दरबार में राजपूतों के वर्चस्व ने ईर्ष्या के माहौल का निर्माण किया। गुजरात के सुल्तान ने मालवा को हराकर उसे गुजरात का एक अंग बना दिया।

गुजरात

गुजरात की भौगोलिक स्थिति, सम्पन्नता तथा उपजाऊ उर्वरता ने आक्रमणकारियों को सदा ही अपनी ओर आकर्षित किया। सुल्तान अलाउद्दीन खिलज़ी पहला सुल्तान था, जिसने गुजरात को दिल्ली सल्तनत का हिस्सा बनाया। उसके बाद यह तुर्क शासकों के ही अधीन रहा। तैमूर के आक्रमण के समय ज़फर खान उस क्षेत्र का संचालन कर रहा था। उसने दिल्ली के प्रति अपनी निष्ठा को छोड़ दिया। सन 1410 में वह गुजरात का स्वतंत्र शासक बन गया। गुजरात के शासकों में सबसे प्रमुख शासक अहमद शाह (1411-1441) था। अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए उसने राजपूतों को नियंत्रण में रखा। अहमदशाह ने अहमदाबाद शहर की स्थापना की।

सन 1441 में अहमदशाह की म त्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मद शाह सिंहासन पर बैठा। वह ज़र–बख्श के नाम से जाना जाता है। 1451 में षड्यंत्रकारियों के हाथों उसकी म त्यु हो गई। मुहम्मद शाह के बाद दो अयोग्य शासकों का समय चला। अमीरों ने अहमद शाह के पौत्र फतेह खान को सिंहासन पर बैठाया। वह इस वंश का सफलतम शासक था। उसने 52 वर्षों तक शासन किया। उसके पश्चात कई उत्तराधिकारी हुए, जिनके शासनकाल बहुत छोटे रहे। सन 1572 में अकबर ने गुजरात को जीत कर मुगल साम्राज्य का हिस्सा बना लिया।

बंगाल

दिल्ली सल्तनत का सुदूर पूर्वी क्षेत्र बंगाल था। यातायात तथा संचार के साधनों के अभाव की वजह से इस क्षेत्र के नियंत्रण में कठिनाई आती थी। हालांकि बंगाल दिल्ली सल्तनत का ही हिसा बन गया था। परन्तु कई बार इसने स्वयं को स्वतंत्र घोषित किया था।

12वीं शताब्दी के अंतिम दशक में मुहम्मद बिन बख्तियार ने बंगाल को मुहम्मद गोरी द्वारा विजित क्षेत्रों का ही एक हिस्सा बना दिया था। किन्तु उसकी म त्यु के पश्चात उसके उत्तराधिकारियों ने स्थानीय जनता की सहायता से स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया था। बलबन ने बंगाल को दिल्ली की अधीनता स्वीकारने को बाध्य किया तथा अपने पुत्र बुगराखान को वहां का शासक नियुक्त किया। किन्तु बलबन की म त्यु के उपरान्त उसने स्वयं को स्वतंत्र घोषित कर दिया। ग्यासुद्दीन तुगलक ने इस झगड़े को सुलझाने का प्रयास किया तथा बंगाल को तीन प्रशासनिक इकाइयों में बांटा–लखनौती, सतगाँव सोनारगावं। मुहम्मद बिन तुगलक ने दिल्ली की सर्वोच्चता घोषित करने का प्रयत्न किया किन्तु जब सुल्तान अन्य विद्रोहों को दबाने में व्यस्त था तो बंगाल ने खुद को दिल्ली से एकदम अलग कर दिया।

एक अभिजात हाज़ी इलियास ने बंगाल को पुनः संगठित किया शम्सुद्दीन इलियास शाह के नाम से गद्दी पर बैठा। हाज़ी इलियास के बढ़ते प्रभाव को कम करने के लिए फिरोज तुगलक ने बंगाल को जीतने का प्रयत्न किया, किन्तु उसे असफलता ही हाथ लगीं। उसे इलियास के साथ संधि करनी पड़ी। संधि के अनुसार दोनों राज्यों के बीच कोसी नियंत्रण रेखा बनी। सन् 1357 ई. में हाज़ी इलियास की म त्यु के पश्चात उसका पुत्र सिकन्दर गद्दी पर बैठा। उसके शासन काल के दौरान फिरोजशाह तुगलक ने बंगाल को सल्तनत में मिलाने का दोबारा प्रयत्न किया, किन्तु वह पुनः असफल हुआ सिकन्दर की म त्यु के पश्चात ग्यासुद्दीन आज़म सिंहासन का अधिकारी बना। उसने चीन के शासक के साथ मैत्रीपूर्ण संबंध कायम किए, जिसने सम द्ध विदेशी व्यापार को जन्म दिया। इसके पश्चात नसीरुद्दीन, हाज़ी इलियास का पौत्र बंगाल का शासक था। उसका शान्तिपूर्ण शासन काल 17 वर्षों तक चला।

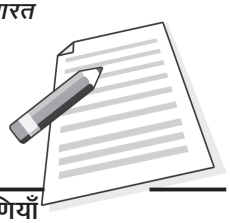
अलाउद्दीन हुसैन शाह के शासन काल में बंगाल धनी तथा सम्पन्न प्रदेश बन गया। उसकी म त्यु के पश्चात 1518 ई. में नसीब खान सिंहासन पर नसीरउद्दीन नुसरत शाह के नाम से बैठा।

सन 1538 में शेरशाह सूरी ने सुल्तान ग्यासुद्दीन महमूद शाह को पराजित कर बंगाल को अपने साम्राज्य का ही अंग बनाया।

पाठगत प्रश्न 9.6

1. दिल्ली सल्तनत पर मंगोल आक्रमण क्यों करते थे?

2. अमीरों के मध्य संघर्ष का मुख्य कारण क्या था?



3. जौनपुर शासकों के वंश को किस नाम से जाना गया?

_____

4. बुगरा खान द्वारा स्वतंत्रता घोषित करने से निबटने के लिए ग्यासुद्दीन तुगलक ने क्या कदम उठाए?

_____



आपने क्या सीखा

इस्लाम अरब मे उदय हुआ तथा खलीफाओं के नेत त्व मे जल्द ही विश्व के सम्पूर्ण हिस्सों में फैल गया। अरब की सेनाओं ने मध्य एशिया के बड़े भू–भाग पर अधिकार स्थापित किया तथा सन् 712 ई. में भारत पर आक्रमण किया। अन्य महत्त्वपूर्ण हमला महमूद गज़नबी द्वारा भारत पर किया गया आक्रमण था। उसके आक्रमण का मुख्य उद्देश्य भारत की दौलत को गजनी लेकर जाना था।

12वीं शताब्दी में भारत छोटे–छोटे प्रांतों में विभक्त हो गया, जिनकें शासक मुख्यतः राजपूत थे। इस समय भारत की राजनीतिक स्थिति सुद ढ़ न होने की वजह से मुहम्मद गोरी ने अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए भारत का रुख किया। सन् 1191 में तराई के प्रथम युद्ध में मुहम्मद गोरी राजपूत राजा प थ्वीराज चौहान से पराजित हुआ। किन्तु 1192 में (तराई के द्वितीय युद्ध) मुहम्मद गोरी वापस लौटा तथा इस बार राजपूत पराजित हुए। इस प्रकार दिल्ली तुर्क शासकों के नियंत्रण में चला गया। मुहम्मद गोरी भारत का शासन अपने विश्वसनीय सिपहसालार कुतुबुद्दीन ऐबक के हाथों सौंप कर वापस चला गया। कुतुबुद्दीन ऐबक ने दिल्ली सल्तनत की नींव डाली। इल्तुतमिश ने आंतरिक विद्रोहियों का दमन करके तथा विश्वसनीय अमीरों का समूह बनाकर सल्तनत को संगठित किया। गुलाम वंश का अंतिम शक्तिशाली सुल्तान बलबन था, जो सन् 1266 में सुल्तान बना। उसने निरंकुश शासन किया तथा सुल्तान की गरिमा को कायम करने के लिए कई कदम उठाए। सन् 1287 में बलबन की म त्यु के उपरान्त सन् 1290 में खिलज़ी सत्ता में आए।

खिलज़ियों के उदय ने तुर्क शासकों के एकाधिकार पर लगाम लगा दी। जलालुद्दीन खिलज़ी ने खिलज़ी वंश की नींव डाली। सन् 1296 में अलाउद्दीन खिलज़ी ने अपने चाचा जलालुद्दीन खिलज़ी को मारकर स्वयं सुल्तान की पदवी धारण की। उसने पद की प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित किया। उसने अमीरों का दमन किया तथा एक तानाशाह की तरह शासन किया। उसके योग्य सेनापतियों, अल्पखान, नुसरत खान, ज़फर खान, अलुग़खान तथा मलिक काफूर ने कई महत्त्वपूर्ण विजय हासिल की। अलाउद्दीन खिलज़ी की एक अन्य उपलब्धि बाजार सुधार थे, जहां वस्तुएं निर्धारित मूल्य पर ही बेची जाती थी तथा व्यापारी अधिक लाभ नहीं कमा सकते थे। उसने विभिन्न वस्तुओं के लिए विभिन्न बाजारें की स्थापना की।

खिलज़ी वंश के पश्चात् तुगलक वंश ने गद्दी की बागडोर अपने हाथ में ले ली। सन् 1320 में ग्यासुद्दीन तुगलक सिंहासन पर बैठा। सन् 1325 में मुहम्मद बिन तुगलक उसका उत्तराधिकारी बना। मुहम्मद बिन तुगलक को उसकी नयीश्योजनाओं के लिए

जाना जाता है। इन योजनाओं में मुख्य है दिल्ली से दौलताबाद राजधानी का स्थानांतरण तथा प्रतीकात्मक मुद्रा का चलन।

मुहम्मद तुगलक की म त्यु के पश्चात् अमीरों तथा उलेमाओं ने फिरोज तुगलक को गद्दी पर बैठाया। उसके शासन काल में विघटन प्रारंभ हो गया। सन् 1398 ई. में तैमूर ने दिल्ली सल्तनत पर लूटपाट के उद्देश्य से आक्रमण किया। तैमूर के आक्रमणों ने सभी क्षेत्रीय शक्तियों को सल्तनत से स्वतंत्रता घोषित करने का अवसर दिया।

मलिक सरवर ने जौनपुर के कार्यकारी शासक के रूप में शासन किया। अन्य प्रांत मालवा ने भी दिल्ली सल्तनत की प्रभुता को झटक दिया तथा उसके शासक महमूद खिलज़ी ने मालवा की सीमाओं का विस्तार किया। गुजरात भी सल्तलत के प्रभाव से तब मुक्त हो गया जब उसके शासक जफरखान ने खुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया। गुजरात का सर्वाधिक प्रसिद्ध शासक अहमद शाह था, जिसने अहमदाबाद की स्थापना की। प्रान्तीय शासनों में सर्वाधिक उल्लेखनीय शासन कश्मीर के शासक जैनल आबिदिन का रहा। उसके शासनकाल में कश्मीर शक्तिशाली तथा सम द्ध राज्य बन गया था।

सल्तनत के सुदूरपूर्वी क्षेत्र बंगाल को बार–बार सल्तनत का हिस्सा बनाया, किन्तु उसने बार–बार स्वतंत्रता हासिल कर ली। हाजी इलियास ने सल्तनत द्वारा तीन प्रशासनिक इकाइयों में विभाजित बंगाल को संयुक्त किया।

तैमूर ने खिज्ररखान को मुल्तान का शासक नियुक्त किया। जिसने सैय्यद वंश की स्थापना की। इस वंश को लोधी शासकों द्वारा सत्ताच्युत कर दिया गया। बहलोल लोदी ने सन् 1451 में लोधी वंश की नींव डाली। बहलोल लोदी एक सक्षम शासक था तथा वह कुलीनों का विश्वास जीतने में सफल रहा। उसका उत्तराधिकारी सिकन्दर लोदी हुआ। लोदी वंश के आखिरी शासक इब्राहिम लोदी को बाबर ने सन् 1526 में पानीपत के प्रथम युद्ध में पराजित कर दिया। सन् 1192 में जन्मी दिल्ली सल्तलत ने आखिरी सांस 1526 में ली तथा मुगल साम्राज्य की स्थापना के लिए रास्ता बनाया।

पाठान्त प्रश्न

1. महमूद गज़नी कौन था? उसने भारत पर आक्रमण क्यों किया?
2. मामलुक सुल्तान कौन थे? इल्तुतमिश ने अपनी स्थिति को किस प्रकार सुद ढ़ किया?
3. दिल्ली सल्तनत के संचालन के लिए उच्चस्तरीय केंद्रीयक त प्रणाली विकसित करने के लिए बलबन ने कौन से कदम उठाए?
4. बाजार पर नियंत्रण रखने के लिए अलाउद्दीन खिलज़ी द्वारा अपनाए गए कदमों की विस्तार से व्याख्या कीजिए?
5. मुहम्मद तुगलक द्वारा राजधानी परिवर्तन तथा प्रतीकात्मक मुद्रा के चलन का वर्णन करें?
6. दिल्ली सल्तनत पर तैमूर के आक्रमण के क्या प्रभाव पड़े?
7. किन कारणों से बंगाल दिल्ली सल्तनत के लिए समस्या बना रहा?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

9.1

1. • गजनी
   • प थ्वीराज चौहान तथा महुम्मद गोरी
   • कुतुबुद्दीन ऐबक
2. सन् 1192 ई.
3. महमूद गजनवी जहां भारत में सम्पत्ति की लूटपाट के लिए आया था, वहीं मुहम्मद गोरी भारत में तुर्की शासन की स्थापना करना चाहता था।

9.2

1. क. अमीरों तथा अभिजात्य वर्ग में असंतोष और विद्रोह

   ख. असंगठित प्रशासन

   ग. सल्तनत की अव्यवस्थित अपरिभाषित सीमाएं (कोई दो)
2. शासन का समर्थन करने के लिए
3. कुतुबुद्दीन ऐबक
4. क. कड़े नियमों वाला शानदार दरबार

   ख. शासक के सिद्धांत को स्थापित किया तथा सुल्तान और अमीरों के रिश्तों को पुनः परिभाषित किया।

   ग. सिज़दा (सिर झुकाने) तथा पायबोस (शासक के पैर चूमने) की शरुआत

   घ. किसी भी कुलीन को शक्ति केंद्रित नहीं करने दीं।

9.3

1. राजपूतों की शक्ति तथा मनोबल को तोड़ने के लिए रणथम्भौर का जीता जाना आवश्यक था।
2. मलिक काफूर
3. देवगिरी और भील्सा
4. क) वे परिवार जो स्वयं के निर्वाह के लिए भूमि को मुक्त रूप से भोग रहे थे, उन्हें अब अपनी सम्पत्ति के लिए कर चुकाना अनिवार्य हो गया था।

   ख) सुल्तान ने गुप्तचर व्यवस्था को पुनः संगठित किया तथा इसे अधिक प्रभावी बनाने के लिए कदम उठाए।

   ग) शराब तथा नशे की वस्तुओं के सेवन पर प्रतिबंध लगाया।

घ) कुलीन वर्गों को हिदायत दी गई कि वे शासन की अनुमति के बगैर सामाजिक समारोह तथा आपस में विवाह नहीं करेंगे।

9.4

1. ग्यासुद्दीन तुगलक
2. उसका पुत्र उलुग़खान
3. क) दक्कन पर नियंत्रण के लिए

   ख) केंद्र में राजधानी स्थापित करने के लिए
4. चांदी की कमी से निपटने के लिए चांदी के सिक्कों 'टका' के स्थान पर सुल्तान ने तांबे की मुद्रा प्रचलन में शुरू की।

9.5

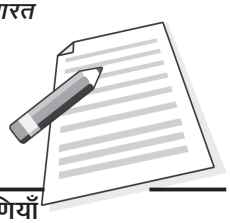
1. अमीरों के साथ बराबरी
2. खिज्ररखान
3. याहया सरहिन्दी
4. अमीरों को दरबार में खड़ा होने, तथा राजा को इज्जत देने और उसकी आज्ञा मानने को बाध्य किया।

9.6

1. मध्य एशिया की राजनीति में परिवर्तन और अमीरों को लूटने के लिए
2. अमीरों के मध्य संघर्ष का मुद्दा उत्तराधिकार का प्रश्न होता था
3. शरकी राजवंश
4. ग्यासुद्दीन तुग़लक ने बंगाल को तीन स्वतंत्र प्रशासनिक इकाइयों लखनौती, सतगावं तथा सोनार गाँव में विभाजित कर इस समस्या से निपटने का प्रयास किया।

पाठान्त प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें अनुच्छेद 9.2, 1 तथा 2
2. देखें मुमालुक सुल्तान का उपशीर्षक तथा अनुच्छेद 9.4 इल्तुतमिश
3. देखें अनुच्छेद 9.4 में बलबन
4. देखें अनुच्छेद 9.5
5. देखे पहले बॉक्स का पहला अनुच्छेद तथा अनुच्छेद 9.6 में दूसरे बॉक्स का दूसरा अनुच्छेद
6. देखें अनुच्छेद 9.9 बॉक्स 3 के अन्दर
7. देखें अनुच्छेद 9.9 बंगाल उपशीर्षक।



शब्दावली

अमीर - सेनापति, दिल्ली सल्तनत का तीसरा सबसे ऊंचा आधिकारिक पद

अरीज-ए-मुमालिक - पूरे देश की सेना का मंत्री

अमीर-ए-अखनूर - अश्वों का प्रधान

अमीर-एक-तुजुक - समारोह प्रमुख

बरीद - सूचना अधिकारी

चौग़ान - पोलो जैसा खेल

दलाल - मध्यस्थ

दरबार - शाही दरबार

दोआब - गंगा तथा यमुना के बीच की भूमि

दीवान-ए-अर्ज - बलबनकालीन सैन्य विभाग

इक्ता - भूखंड जो वेतन के बदलें में दिया जाता है

इक्तादार - इक्ता प्राप्त करने वाला

जज़िया - गैर मुस्लिमों पर लगने वाला व्यक्तिगत कर

जित्तल - दिल्ली सल्तनत का तांबे का सिक्का

खुतबा - धार्मिक प्रवचन

ख्वाज़ा - मालिक, व्यापारी

मालिक - दिल्ली सल्तनत में इसका अर्थ अधिकारियों की दूसरी उच्च श्रेणी

मामलुक - गुलाम अधिकारी

मंडी - अनाज बाजार

मुहियान - गुप्तचर

नायब - उप सलाहकार

पायबोस - पैरों को चूमना

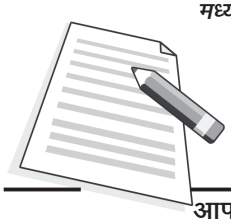
राय रायन - अलाउद्दीन खिलवी द्वारा देवगीर के शासक रामदेव को दी गई उपाधि।

सराय आदिल - कपड़ा बाजार

टंका - सल्तनत कालीन चांदी के सिक्के

उलेमा - मुस्लिम धार्मिक विद्वान

उमरा - अमीर का बहुवचन। अमीर का अर्थ है दिल्ली सल्तनत के कुलीन व्यक्ति।



10

मुगल शासन की स्थापना

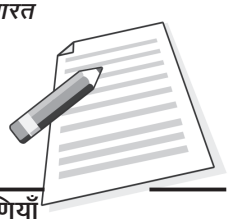
पिछले अध्याय में आपने दिल्ली सल्तनत की स्थापना (1206–1526) और संघटन के संबंध में पढ़ा। इस अवधि के दौरान शासक थे, तुर्क और अफ़गान। आपने ध्यान दिया होगा कि सम्पूर्ण सल्तनत शासन की अवधि के दौरान विविध तुर्क समूहों और अफगानों के बीच परस्पर संघर्ष ही होता रहा। दिल्ली सल्तनत समाप्त होने के कारण यहाँ विभिन्न प्रादेशिक शक्तियों का उद्भव हो गया था। इसलिए, जब 1526 में बाबर ने भारत पर आक्रमण किया तो दिल्ली सल्तनत की केन्द्रीय शक्ति मूलतः बहुत क्षीण हो गई थी और प्रादेशिक स्तर पर अनेक स्वतंत्र साम्राज्य पैदा हो गए थे। दिल्ली और उसके आसपास के क्षेत्र सुल्तान इब्राहिम लोधी के अधीन थे। अन्य महत्त्वपूर्ण साम्राज्य थे गुजरात, मालवा, बंगाल, बीजापुर, गोलकुंडा, अहमदनगर, बरार, मेवाड़ और दक्षिण में विजयनगर का साम्राज्य। इसके अतिरिक्त बहुत बड़ी संख्या में छोटे–छोटे स्वयंभू राजा भी थे जो देश के विभिन्न भागों पर शासन कर रहे थे।

इस पाठ में हम जानेंगे कि भारत पर मुगल शासक वंश ने कैसे विजय प्राप्त की। मुगलों का नेत त्व मध्य एशिया से आए एक बहुत ही योग्य सेनापति और प्रशासक ज़हीरुद्दीन मोहम्मद बाबर के हाथों में था। उसके उत्तराधिकारी धीरे–धीरे सम्पूर्ण भारत में एकछत्र राज्य स्थापित करने में सफल हो गए थे। आइए भारत में बाबर के आगमन से शुरुआत करते हैं।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के बाद आप :

- बाबर की उन परिस्थितियों के बारे में बता सकेंगे जिसमें उसने भारत में प्रवेश किया;
- भारतीय शासकों पर मुगलों की जीत की सफलता के कारण बता सकेंगे;
- बाबर की म त्यु के पश्चात् हुमायूँ को किन चुनौतियों का सामना करना पड़ा, उसका परिचिय दे सकेंगे;
- उन परिस्थितियों का विश्लेषण कर सकेंगे जिनके अधीन बाबर को हार स्वीकार करनी पड़ी और अफ़गानों की शक्ति का पुनरुद्धार हुआ;



- हुमायूँ द्वारा दोबारा भारत पर विजय प्राप्त करने से संबंधित घटनाओं का वर्णन कर सकेंगे;
- अकबर के अधीन मुग़ल साम्राज्य के विस्तार और संघटन की परिस्थितियों का आकलन कर सकेंगे;
- औरंगज़ेब के शासन काल तक राज्य के प्रादेशिक विस्तार का विस्त त वर्णन कर सकेंगे; और
- भारत में मुग़ल साम्राज्य को किन चुनौतियों का सामना करना पड़ा। इसका विश्लेषण कर सकेंगे।

10.1 बाबर का आगमन (1526-30)

सन् 1494 में बारह व़र्ष की उम्र में, अपने पिता की म त्यु के उपरान्त, बाबर ट्रांसौक्सियाना में एक छोटी सी जागीर फ़रग़ाना की राजगद्दी पर बैठा। मध्य एशिया में उस समय बहुत अस्थिरता थी और बाबर को अपने ही अभिजात वर्ग से विरोध का सामना करना पड़ा। य़द्यपि वह समरक़न्द को जीतने के लिए समर्थ था, परन्तु बहुत जल्द ही उसे पीछे हटना पड़ा क्योंकि उसके अपने ही कुलीनों ने साथ छोड़ दिया था। उसे उज़बेगियों के हाथों फरग़ाना को हारना पड़ा।

तिमूरियन (तिमूर वंश)

बाबर, मध्य एशिया को जीतने वाले महान विजेता तिमूर और बहुत ही विशिष्ट महान विजेता चंगे़ज़ ख़ान के वंश से था। अपनी माता के पक्ष से वह मंगोल वंश से संबंधित था और पिता की ओर से महान सेनानायक तिमूर से। तिमूर वंश से संबद्ध होने के कारण मुगलों को तिमूरियन भी कहा जाता है।

मध्य एशिया में बाबर को शासन के प्रारंभिक काल में बहुत कठिन संघर्ष करना पड़ा। इस पूरी अवधि के दौरान वह हिन्दोस्तान की तरफ बढ़ने की योजनाएँ बनाता रहा। और अंत में 1517 में बाबर ने भारत की ओर बढ़ने का द ढ़ निश्चय कर लिया। भारत में उस दौरान हुई कुछ उथल–पुथल ने भी बाबर को भारत पर आक्रमण करने की योजनाओं पर अमल करने में मदद की।

सिकंदर लोदी की म त्यु के उपरान्त उभरी भारत की राजनीतिक अस्थिर परिस्थितियों ने उसे यह सोचने का मौका दिया कि लोदी साम्राज्य में कितना राजनीतिक असंतोष और अव्यवस्था फैली हुई थी। इसी दौरान कुछ अफ़गानी सूबेदारों के साथ परस्पर संघर्ष हुआ। उनमें से एक प्रमुख सूबेदार था दौलतख़ान लोदी, जो पंजाब के एक विशाल भूभाग का सूबेदार था। मेवाड़ का राजपूत राजा राणा सांगा भी इब्राहिम लोदी के खिलाफ अधिकार जताने के लिए ज़ोर–अज़माइश कर रहा था और उत्तर भारत में अपने प्रभाव का क्षेत्र बढ़ाने की कोशिश कर रहा था। उन दोनों ने ही बाबर को संदेश भेजकर उसे भारत पर आक्रमण करने का न्यौता दिया। राणा सांगा और दौलत खान लोदी के आमंत्रण ने शायद बाबर को उत्साहित किया होगा।

बाबर भीरा (1519-1520), सियालकोट (1520) और पंजाब में लाहौर (1524) को जीतने में कामयाब हुआ। अन्त में, इब्राहिम लोदी और बाबर की सेनाओं का सामना 1526 में पानीपत में हुआ। बाबर की सेना में कम संख्या में सैनिकों के बावजूद उनकी सैनिक व्यवस्था बहुत ही श्रेष्ठ थी। पानीपत की लड़ाई में बाबर की जीत उसकी सैनिक पद्धतियों की एक बड़ी जीत थी। बाबर की सेना में 12000 सैनिक थे जबकि इब्राहिम के पास औसतन 1,00,000 सैनिक बल था। युद्ध के मैदान में आमने सामने की लड़ाई में बाबर की युद्ध नीतियाँ बहुत ही अद्वितीय थीं। उसने युद्ध लड़ने के लिए रुमी (आटोमैन) युद्ध पद्धति को अपनाया। उसने इब्राहिम की सेना को दो पंक्तियों से घेर लिया। बीच में से उसके घुड़सवारों ने तीरों से और अनुभवी ओटोमैन तोपचियों ने तोपों से आक्रमण किया। खाइयों और राह में खड़ी की गई बाधाओं से सेना को दुश्मन के विरुद्ध आगे बढ़ने में बचाव का काम किया। इब्राहिम लोदी की अफ़गानी सेना के बहुत भारी संख्या में सैनिक मारे गए। इब्राहिम लोदी की युद्ध के मैदान में ही म त्यु हो गईं और इस प्रकार दिल्ली और आगरा पर बाबर का नियंत्रण हो गया और लोदी की अपार सम्पदा पर भी इसका कब्ज़ा हो गया। इस धन को बाबर के सेनापतियों और सैनिकों में बाँट दिया गया था।

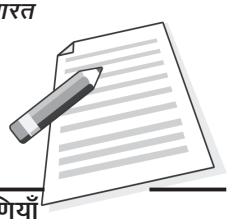
पानीपत की विजय ने बाबर को अपनी विजयों को संघटित करने के लिए एक द ढ़ आधार प्रदान किया। परन्तु इस समय उसको इन समस्याओं का सामना करना पड़ा :

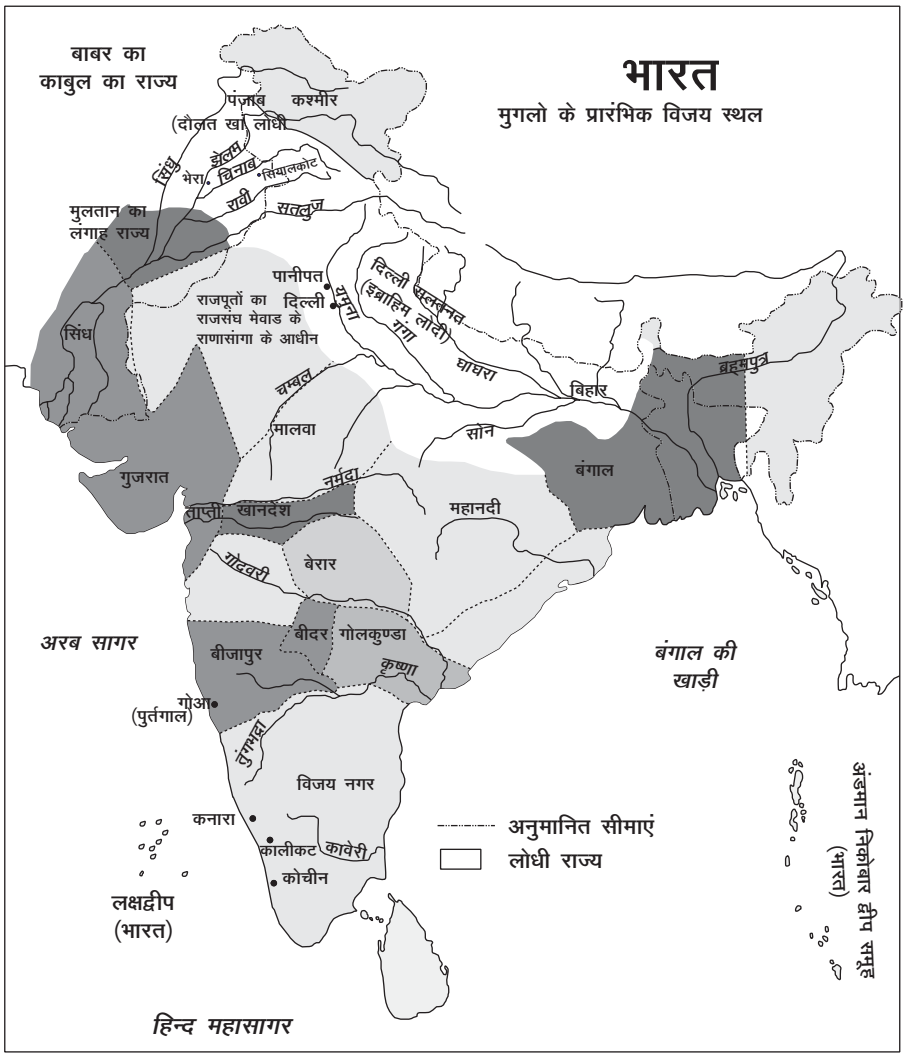
1. उसके कुलीन वर्ग के लोग और सेनापति मध्य एशिया में वापस लौटने के लिए उत्सुक थे क्योंकि उन्हें भारत का वातावरण पसंद नहीं था। सांस्क तिक द ष्टि से भी वे खुद को अजनबी महसूस करते थे।

2. राजपूत मेवाड़ के राजा राणा सांगा के नेत त्व के अधीन अपनी शक्ति को एकजुट करने में लगे हुए थे और मुगल सेनाओं को खदेड़ना चाहते थे।

3. अफ़गानियों को यद्यपि पानीपत में हार का मुँह देखना पड़ा परन्तु अभी भी उनकी सेनाएँ उत्तर प्रदेश के पूर्वी भागों, बिहार और बंगाल में शक्तिशाली बनी हुई थीं। वे अपनी खोई शक्ति को पुनः संगठित करने में लगे हुए थे।

प्रारम्भ में बाबर ने अपने साथियों और कुलीनों को वहीं रुके रहने के लिए और जीते गए प्रदेशों को संगठित करने में उसकी मदद करने के लिए राज़ी कर लिया। इस कठिन काम में सफलता हासिल करने के बाद उसने अपने पुत्र हुमायूँ को पूर्व में बसे अफगानियों का सामना करने के लिए भेजा। मेवाड़ के राणा सांगा बहुत बड़ी संख्या में राजपूत राजाओं का समर्थन एकत्रित करने में सफल हो गए थे। इनमें प्रमुख थे जालौर, सिरोही, डूंगरपुर, अम्बर, मेड़ता इत्यादि। चन्देरी के मेदिनी राय, मेवात के हसन खान और सिकंदर लोदी के छोटे बेटे महमूद लोदी भी अपनी सेनाओं सहित राणा सांगा के साथ आ मिले। शायद, राणा सांगा को आशा थी कि बाबर काबुल वापस चला जाएगा। बाबर के यहीं रुके रहने से राणा सांगा की महत्त्वाकांक्षाओं को गहरा झटका लगा। बाबर को भी पूरी तरह यह समझ आ गया था कि जब तक राणा की शक्ति को क्षीण नहीं किया जाएगा तब तक भारत में अपनी स्थिति को संगठित करना उसके लिए असंभव होगा। बाबर और राणा सांगा की सेनाओं का मुकाबला, फतेहपुर सिकरी के पास एक स्थान, खनवा में हुआ। सन् 1527 में राणा सांगा की हार हुई और एक बार फिर बाबर की

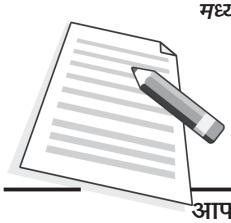




मानचित्र 10.1 मुगलों के प्रारंभिक विजय स्थल

बेहतरीन सैनिक युक्तियों के कारण उसे सफलता मिली। राणा की हार के साथ ही उत्तर भारत में उसे सबसे बड़ी चुनौती देने वाली ताकत बिखर गई।

यद्यपि मेवाड़ के राजपूतों को खनवा में गहरा आघात लगा, परन्तु मालवा में मेदिनी राय अभी भी बाबर को चुनौती दे रहा था। जिस बहादुरी से राजपूतों ने चंदेरी में (1528) युद्ध किया बाबर को मेदिनी राय पर विजय प्राप्त करने में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ा। इसकी हार के बाद राजपूतों की ओर से विरोध का स्वर बिल्कुल समाप्त हो गया था। पर अभी भी बाबर को अफ़गानियों को हराना था। अफ़गानियों ने दिल्ली पर अपना अधिकार छोड़ दिया था। परन्तु पूर्व (बिहार और जौनपुर के कुछ भाग) में वे अभी भी काफी शक्तिशाली थे। अ़फ़गानों और राजपूतों पर पानीपत और खनवा में जीत बहुत ही महत्त्वपूर्ण थी परन्तु विरोध के स्वर अभी भी मौजूद थे। परन्तु अब हम यह कह सकते हैं कि यह जीत मुगल साम्राज्य की स्थापना की दिशा में आगे बढ़ने के लिए महत्त्वपूर्ण कदम था। सन् 1530 में बाबर की म त्यु हो गई। अभी भी गुजरात, मालवा और बंगाल के शासकों के पास



आपकी टिप्पणियाँ

काफी सशक्त सैनिक बल था और उनका दमन नहीं हो सका था। इन प्रादेशिक शक्तियों का मुकाबला करने का काम हुमायूँ के सामने अभी बाकी था।

पाठगत प्रश्न 10.1

1. बाबर ने भारत पर आक्रमण क्यों किया?

   _____

2. पानीपत में बाबर की युद्ध रणनीति क्या थी?

   _____

3. पानीपत की लड़ाई के बाद बाबर को किन समस्याओं का सामना करना पड़ा?

   _____

4. राजपुताना के कौन से दो शासकों को बाबर ने हराया?

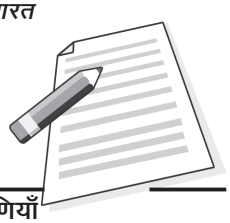
   _____

10.2 हुमायूँ का पीछे हटना और अफ़गानों का पुनर्जागरण (1530-1540)

सन् 1530 में बाबर की म त्यु के उपरान्त उसका पुत्र हुमायूँ उत्तराधिकारी बना। हुमायूँ के अधीन परिस्थितियाँ काफी निराशाजनक थीं। हुमायूँ ने जिन समस्याओं का सामना किया वे थीं :

1. नए जीए गए प्रदेशों का प्रशासन संगठित नहीं था।
2. बाबर की तरह हुमायूँ को उतना सम्मान और मुगलों के आभिजात्य वर्ग से इतनी इज़्ज़त नहीं मिल पाई।
3. चुगतई आभिजात्य वर्ग उसके पक्ष में नहीं था और भारतीय कुलीन, जिन्होंने बाबर की सेवाएँ ग्रहण की थीं, उन्होंने हुमायूँ को राजसिंहासन मिलने पर मुगलों का साथ छोड़ दिया था।
4. उसे अफगानियों की दुश्मनी का भी सामना करना पड़ा, मुख्यतः बिहार में एक तरफ थे शेर खान तो दूसरी तरफ था गुजरात का शासक बहादुरशाह।
5. तैमूरी परम्पराओं के अनुसार उसे अपने साथियों के साथ बाँट कर शक्तियों पर अधिकार पाना था। नवस्थापित मुगल साम्राज्य के दो केन्द्र थे–दिल्ली और आगरा मध्य भारत का नियन्त्रण हुमायूँ के हाथ में था तो अफगानिस्तान और पंजाब उसके भाई कामरान के अधीन था।

हुमायूँ ने महसूस किया कि अफगानी उसके लिए एक बड़ा खतरा थे। वह पूर्व और पश्चिम से अफगानियों के संयुक्त विरोध से बचना चाहता था। उस समय तक बहादुरशाह ने भीलसा, रायसेन, उज्जैन और जगरौन पर कब्जा कर लिया था और वह अपनी शक्ति का संयोजन कर रहा था। जबकि हुमायूँ पूर्व में चुनार में घेराबंदी कर रहा था, वहीं बहादुरशाह



मालवा और राजपूताना की तरफ पांव फैला रहा था। इन परिस्थितियों में हुमायूँ को आगरा वापस आना पड़ा (1532-33)। विस्तार की नीति को जारी रखते हुए बहादुरशाह ने 1534 में चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। युद्ध नीति की द ष्टि से चित्तौड़ एक मज़बूत आधार स्थल होने का फायदा उपलब्ध करवा सकता था। इससे उसे राजस्थान, विशेष रुप से अजमेर, नागौर और रणथम्भौर की ओर बढ़ने में मदद मिल सकती थी। हुमायूँ ने मांडू पर जीत हासिल कर ली और यहीं पर शिविर बना लिया क्योंकि उसने सोचा कि यहाँ रहकर वह बहादुरशाह की गुजरात वापसी के रास्ते में रुकावट बन सकता है। आगरा से लम्बी अवधि तक उसके अनुपस्थित रहने के कारण दोआब और आगरा में बगावत शुरु हो गई और उसे तुरंत वापस लौटना पड़ा। माण्डू का नियन्त्रण अब हुमायूँ के भाई मिर्ज़ा असकरी की सरपरस्ती में छोड़ा गया था। जिस अवधि के दौरान हुमायूँ गुजरात में बहादुरशाह की गतिविधियों की निगरानी रख रहा था, उस अवधि में शेरशाह ने बंगाल और बिहार में अपनी शक्ति का संगठन शुरु कर दिया था।

शेरशाह सूरी का उद्‌भव

फरीद, बाद में जिसे शेर खान और अंत में शेरशाह कहा जाने लगा था, जौनपुर साम्राज्य के अधीन एक जागीरदार का पुत्र था। उसके पिता हसन खान सूर, लोदी शासन के अधीन बिहार में सासाराम के जागीरदार थे। शेरशाह अपने पिता की जागीर के प्रशासकीय कार्यों में उसकी मदद करते थे। बाद में उसको अपने पिता से संबंधों में मतभेद हो गया और वह उनको छोड़कर चला गया। उसने अफगानी कुलीन के अधीन सेवा करनी शुरू कर दी। 1524 में उसके पिता की म त्यु के बाद इब्राहिम लोदी ने उसे उसके पिता की जागीर दे दी। जागीर का कब्ज़ा लेने के लिए उसे अपने परिवार के साथ लड़ाई करनी पड़ी। उसने अपने पिता की जागीर को बहुत ही प्रभावी ढंग से व्यवस्थित किया। उसने सैनिक और प्रशासकीय कौशल में बहुत दक्षता हासिल कर ली थी। उसकी योग्यता ने उसे अफगानियों का नेता बना दिया। धीरे–धीरे उसका प्रभाव बढ़ता गया और बंगाल के महमूद शाह को हरा दिया। पूर्वी प्रदेशों में वह बहुत ही शक्तिशाली सैनिक कमांडर बनकर उभरा। शेरशाह बिहार में अपनी स्थिति मजबूत करने का प्रयास करता रहा। उसे बिहार में कई प्रमुख अफगानी अभिजात्यों और बंगाल के शासक से अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ी। और अंत में वह पूर्वी भारत में खुद को अत्यन्त शक्तिशाली अफ़गानी प्रमुख के रूप में स्थापित करने में सफल हुआ।

शेरशाह खुद को एक निर्विवाद अफगानी नेता के रुप में स्थापित करना चाहता था। उसने बंगाली सेना पर आक्रमण किया और सूरजगढ़ की लड़ाई में उनको हरा दिया। शेरशाह ने बंगाल से बहुत बड़ी धन–सम्पदा हासिल की जिसने उसे एक बड़ा सैन्य बल खड़ा करने में मदद की। अब उसने बनारस और उससे परे के मुगल प्रदेशों पर आक्रमण करना शुरु कर दिया। हुमायूँ को शेरशाह की महत्त्वाकांक्षाओं पर संदेह तो था परन्तु वह उसकी क्षमताओं का अनुमान नहीं लगा पाया। उसने अपने जौनपुर के गवर्नर हिन्दु बेग से कहा कि वह शेरशाह की गतिविधियों पर नजर रखे। इस बीच शेरशाह ने (1538 में) बंगाल की राजधानी गौड़ पर जीत हासिल कर ली। जब हुमायूँ बंगाल की तरफ बढ़ रहा था तो शेरशाह ने आगरा के मार्ग पर नियंत्रण कर लिया और हुमायूँ के लिए संचार

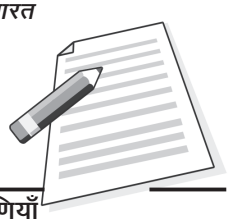


मानचित्र 10.2 शेरशाह का साम्राज्य

संबंधी कार्यों में बाधा उत्पन्न कर दी। दूसरी तरफ हुमायूँ के भाई हिंदल मिर्जा ने खुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया। अब हुमायूँ ने चुनार वापस लौटने का फैसला कर लिया जिसने उसकी सेना के लिए रसद की पूर्ति करनी थी। जब वह चौसा पहुँचा (1539), तो उसने कमनासा नदी के पश्चिमी किनारे पर शिविर बनाया। शेरशाह ने नदी के किनारे जाकर हुमायूँ पर आक्रमण करके उसे हरा दिया। शेरशाह ने खुद को स्वतन्त्र राजा घोषित कर दिया। हुमायूँ बच सकता था, परन्तु उसकी अधिकांश सेना नष्ट हो चुकी थी, बहुत मुश्किल से वह आगरा पहुँच पाया। उसका भाई कामरान आगरा से निकलकर लाहौर की तरफ बढ़ गया था और हुमायूँ बहुत थोड़ी–सी सेना के साथ अकेला रह गया। अब शेरशाह भी आगरा की तरफ बढ़ने लगा। हुमायूँ भी अपनी सेना को लेकर आगे बढ़ने लगा और दोनों सेनाओं का कन्नौज में टकराव हुआ। कन्नौज की लड़ाई में हुमायूँ की बुरी तरह हार हुई (1540)।

10.3 द्वितीय अफ़गानी साम्राज्य

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि लोदी वंश के अधीन पहले अफ़गानी साम्राज्य को बाबर के नेत त्व में मुगलों द्वारा 1526 में स्थापित किया गया था। 14 वर्ष



के अंतराल के पश्चात 1540 में शेरशाह भारत में दोबारा अफ़गानी शासन स्थापित करने में सफल हुआ। शेरशाह और उसके उत्तराधिकारियों ने 15 वर्ष तक राज किया। इस अवधि को द्वितीय अफ़गानी साम्राज्य काल के रुप में जाना जाता है। इस अफ़गानी शासन का संस्थापक शेरखान रण–कौशल में कुशल और योग्य सेना नायक था। हुमायूँ से उसकी लड़ाई के संबंध में हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं। हुमायूँ को हराने के बाद 1540 में शेरशाह सर्वप्रभुतासम्पन्न शासक बन गया और उसे शेरशाह का खिताब दिया गया।

शेरशाह ने उत्तर पश्चिम में सिंध तक की चढ़ाई में हुमायूँ का पीछा किया। हुमायूँ को खदेड़ने के बाद उसने उत्तरी और पूर्वी भारत में संघटन का काम शुरु कर दिया था। 1542 में उसने मालवा पर विजय प्राप्त की और तत्पश्चात चन्देरी को जीता। राजस्थान में उसने मारवाड़, रणथम्भौर, नागौर, अजमेर, मेड़ता, जोधपुर और बीकानेर के विरुद्ध लड़ाई लड़ी। उसने बंगाल में बागी अफगानियों को हराया। 1545 तक उसने सिंध और पंजाब से लेकर पश्चिम में लगभग पूरे राजपुताना पर और पूर्व में बंगाल तक के क्षेत्र में, खुद को सर्वोच्च शासक के रुप में स्थापित कर लिया था। अब वह बुंदेलखंड की ओर मुड़ा। यहाँ कालिंजर के किले की घेराबंदी के दौरान 1545 में एक बारुदी विस्फोट की दुर्घटना में उसकी म त्यु हो गई।

अपने संक्षिप्त शासन काल में शेरशाह ने बहुत महत्त्वपूर्ण प्रशासकीय और लगान पद्धतियों में परिवर्तन लागू किए। उनमें से कुछ प्रमुख हैं:

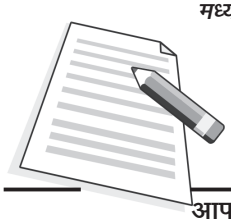
1. सरकारों और परगना स्तर पर स्थानीय प्रशासन को व्यवस्थित करना।
2. मुख्य मार्गों पर यात्रियों और व्यापारियों के लिए सड़कों और सरायों या विशाल स्थलों का निर्माण कराया जिनसे संचार स्थापित करने में भी सहायता मिली। उसने पेशावर से कोलकाता तक ग्रांड ट्रंक (जी.टी.) रोड का निर्माण कराया।
3. मुद्रा प्रणाली, भूमि के मापन और लगान के आकलन के उपायों का मानकीकरण।
4. सेना का पुनर्गठन और घोड़ों को दागने की प्रथा को पुनः शुरु करना, और
5. न्यायिक प्रणाली को व्यवस्थित करना।

शेरशाह का उत्तराधिकारी बना उसका पुत्र इस्लाम शाह। इस्लाम शाह को अपने भाई आदिल खान और कई अन्य अफगानी आभिजात्यों के साथ अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। 1553 में उसकी म त्यु हो गई। धीरे–धीरे अफगानी साम्राज्य शक्तिहीन होता गया। इसी मौके का फायदा उठाकर हुमायूँ ने फिर भारत की तरफ बढ़ना शुरु कर दिया। 1555 तक आते–आते उसने फिर से अपना खोया साम्राज्य वापिस छीन लिया और द्वितीय अफगानी साम्राज्य को समाप्त कर दिया।

1555 में हुमायूँ ने आगरा और दिल्ली पर विजय प्राप्त की और भारत में खुद को बादशाह के रुप में स्थापित कर लिया। अपनी स्थिति को वह पूरी तरह संगठित कर पाता उससे पहले ही 1556 में शेर मंडल पुस्तकालय (दिल्ली में) की सीढ़ियों से गिरकर उसकी म त्यु हो गई।

पाठगत प्रश्न 10.2

1. ¸शेरशाह को हराने में हुमायूँ असफल क्यों हुआ?



आपकी टिप्पणियाँ

2. अफगानियों के नेता के रुप में शेरखान कैसे उभरा?

3. शेरशाह के शासन के अधीन शामिल प्रदेशों की सूची बनाएँ।

4. शेरशाह की दो महत्त्वपूर्ण सफलताओं का नाम लिखें?

10.4 अकबर से औरंगजेब तक मुगल साम्राज्य

अकबर

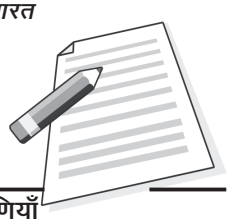
हुमायूँ की म त्यु के समय अकबर केवल तेरह वर्ष का था। जब उसके पिता की म त्यु हुई, अकबर पंजाब में कलानौर में था इसलिए 1556 में उसका राज्यभिषेक कलानौर में ही हुआ। उसके शिक्षक और हुमायूं के प्रिय और विश्वासपात्र बैरम खान ने 1556 से 1560 तक मुगल साम्राज्य के दरबारी प्रशासक की तरह काम किया। उसने खान–ए–खाना की उपाधि प्राप्त कर के राज्य में वकील का पद हासिल किया। उसकी दरबारी प्रशासन की अवधि के दौरान उसकी प्रमुख सफलताओं में से एक थी 1556 में पानीपत के दूसरे युद्ध में हेमू और अफ़गानी सेनाओं की हार, जो कि मुगल साम्राज्य के लिए एक बहुत गंभीर खतरा बनी हुई थी।

बैरम खान का दरबारी प्रशासन (रीजेन्सी) 1556-1560

बैरम ख़ान मुगल साम्राज्य के सभी मामलों में लगभग चार वर्षों तक सबसे ऊंचे स्थान पर रहा और इस अवधि को बैरम ख़ान की दरबारी प्रशासन के काल के रूप में जाना जाता है। इस काल खंड में उसने अपने प्रिय कुलीनों को महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया। बैरम ख़ान बहुत ही शक्तिशाली दरबारी प्रशासक के रूप में उभरा। वह बहुत ही घमंडी बन गया। आभिजात्यों का एक वर्ग उसका विरोधी हो गया था। उन्होंने अकबर को भी अपनी बातों से प्रभावित कर दिया था। इस समय तक अकबर भी सब कुछ अपने पूरे नियंत्रण में लेना चाहता था। उसने बैरम खान को हटा दिया। बैरम खान ने प्रतिरोध किया परन्तु हार गया। अकबर ने उसे माफ कर दिया और सेवानिव त्त होने का अनुरोध किया। उसने हज के लिए मक्का जाने का फैसला किया। अहमदाबाद के पास एक अफ़गानी द्वारा उसकी हत्या कर दी गई। उसका बेटा बाद में अकबर के दरबार में एक बहुत ही प्रभावशाली दरबारी बना और अब्दुर रहीम खान–ए–खाना के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

अपनी प्रारंभिक समस्याओं को हल करने और राज्य पर अपना पूरा नियंत्रण स्थापित करने के बाद अकबर ने विस्तार की नीति अपनाई। उस समय देशों में फैली कुछ मुख्य राजनीतिक शक्तियां थीं:

1. वे राजपूत जो पूरे देश में स्वतंत्र सूबेदारों और राजाओं के रुप में फैले हुए थे और मुख्य रुप से राजस्थान में केंद्रित थे।



2. अफगानियों ने मुख्यतः गुजरात, बिहार और बंगाल पर राजनीतिक नियंत्रण कर रखा था।
3. खानदेश, अहमदनगर, बीजापुर, गोलकुंडा और दक्षिण भारत के कुछ अन्य साम्राज्य और दक्कन बहुत ही शक्तिशाली थे।
4. काबुल और कंधार पर यद्यपि मुगल गुटों का शासन था पर वे अकबर से दुश्मनी रखते थे।

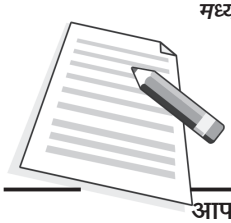
अकबर ने बहुत ही व्यवस्थित नीति से साम्राज्य को फैलाने का काम शुरु कर दिया। बैरम खान को बर्खास्त करने के बाद अकबर का पहला कदम था अपने अभिजात्य वर्ग से संघर्ष समाप्त करना। इसके नियंत्रण के लिए उसने अत्यंत कूटनीतिक कौशल और संगठनात्मक योग्यताओं का प्रदर्शन किया। अपनी विस्तार की नीति की शुरुआत उसने मध्य भारत से की। 1559-60 में अकबर ने, अपने पहले अभियान दल को मालवा की तरफ बढ़ने से पूर्व ग्वालियर को जीतने के लिए भेजा। मध्य भारत में मालवा पर उस समय बाज बहादुर का शासन था। इसके विरुद्ध लड़ाई के अभियान पर अकबर ने आधम खान को तैनात किया। बाज बहादुर हार गया और बुरहानपुर की तरफ भाग गया। गोंडवाना, दलपत शाह की विधवा रानी दुर्गावती द्वारा शासित मध्य भारत का स्वतंत्र प्रदेश था जिसे जीतने के बाद अकबर ने 1564 में मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया।

राजस्थान

ऐसा लगता है कि अकबर को राजपूत रजवाड़ों के महत्त्व की पूरी जानकारी थी और वह अपने राज्य का बड़े क्षेत्र में विस्तार करने की अपनी महत्तवाकांक्षा को पूरा करने के लिए उन्हें अपना मित्र बनाना चाहता था। जहाँ भी संभव हुआ उसने राजपूतों को जीतने का प्रयास किया और उन्हें मुगल सेवा में नियुक्त किया। उसने भारमल जैसे राजपूत राज–परिवारों के साथ वैवाहिक संबंध भी स्थापित किए। आमेर (अम्बर) का राजा भारमल अकबर के साथ ऐसे संबंध जोड़ने वाला पहला राजा था। मेड़ता और जोधपुर जैसे राजपूत साम्राज्यों पर भी उसने बहुत आसानी से जीत हासिल कर ली थी। परन्तु मेवाड़ शासक महाराणा प्रताप अभी भी मुगलों के लिए गंभीर चुनौती बने हुए थे और उन्होनें अकबर के सामने हथियार नहीं डाले थे। बहुत लंबे संघर्ष और चितौड़ के किले की घेराबंदी के बाद अकबर मेवाड़ की सेनाओं पर जीत हासिल करने में कामयाब हुआ। बहुत बड़ी संख्या में राजपूत सैनिक युद्ध में मारे गए। परन्तु अभी भी उसे पूरी तरह हराया नहीं जा सका था और कुछ न कुछ प्रतिरोध लंबे समय तक मेवाड़ की ओर से किया जाता रहा था। चितौड़ को हराने के बाद ही रणथम्भौर और कालिंजर को जीता जा सका था। मारवाड़, बीकानेर और जैसलमेर ने भी अकबर के सामने हार मान ली। 1570 तक अकबर ने लगभग पूरे राजस्थान को जीत लिया था। अकबर की सबसे महत्तवपूर्ण सफलता यह थी कि पूरे राजस्थान को अपने अधीन करने के बावजूद राजपूतों और मुगलों में कोई शत्रुता नहीं थी। इस सब कारणों के सबंध में हम इस पाठ में आगे चर्चा करेंगे।

अफगान (गुजरात, बिहार और बंगाल)

अफगानियों के खिलाफ जंग अकबर ने 1572 में शुरु की थी। वहां के राजकुमारों में से एक राजकुमार इत्तिमाद ख़ान ने अकबर को आमंत्रित किया था कि वह वहाँ आकर



आपकी टिप्पणियाँ

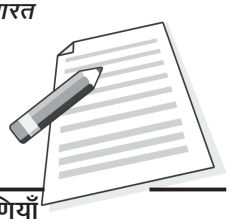
इसे जीत ले। अकबर खुद अहमदाबाद पहुँचां। किसी विशेष विरोध के बगैर ही अकबर ने नगर को जीत लिया। सूरत ने मजबूत किलेबंदी करके कुछ विरोध जताया परन्तु उस पर भी अकबर ने जीत हासिल कर ली। बहुत छोटी सी अवधि के दौरान अकबर ने गुजरात के अधिकांश रजवाड़ों पर कब्जा कर लिया। अकबर ने गुजरात को संगठित करके उसे एक प्रदेश बना दिया और इसे मिर्जा अजीज कोका के शासन के अधीन करके, खुद राजधानी वापस आ गया। छह महीने की अवधि में अनेक बागी गुटों ने एकता कर ली और मिलकर मुगल शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया और मुगल सूबेदार को कई प्रदेशीय क्षेत्रों से अपना कब्ज़ा छोड़ना पड़ा। बागियों के नेता थे, इख्तियार–उल–मुल्क और मोहम्मद हुसैन मिर्ज़ा। अकबर ने आगरा में विद्रोह की खबर सुनी, तो वह अहमदाबाद के लिए निकल पड़ा। अकबर बहुत तेज़ गति से आगे बढ़ा और दस दिन के अंदर अहमदाबाद पहुँच गया। बादशाह ने बहुत जल्दी ही विद्रोह को कुचल दिया।

गुजरात के अभियान के बाद बंगाल और बिहार की तरफ रुख किया गया जो अफ़गानियों के नियंत्रण मे थे। 1574 में, अकबर मुनीम खान खान–ए–खाना के साथ बिहार की तरफ बढ़ा। बहुत कम समय में ही हाजीपुर और पटना जीत लिए गए और गौड़ (बंगाल) को भी जीत लिया गया। इसके साथ ही 1576 तक बंगाल में स्वतंत्र शासन समाप्त हो गया था। 1592 तक मुगल मनसबदार राजा मान सिंह ने लगभग पूरे उड़ीसा को मुगल साम्राज्य के अधीन कर दिया था।

1581 में मुगल साम्राज्य के कुछ क्षेत्रों में सिलसिलेवार लड़ाइयाँ शुरु हो गईं। बंगाल, बिहार, गुजरात और उत्तर–पश्चिम असंतोष के मुख्य केन्द्र थे। इस समस्या के मूल में थे अफ़गानी, जिन्हें मुगलों ने हर जगह से बाहर निकाल दिया था। इसके अतिरिक्त, जागीरों के कठोर प्रशासन की अकबर की नीति भी इसके लिए ज़िम्मेदार थी। एक नई नीति अपनाई गई जिसके तहत जागीरदारों को अपनी जागीरों का लेखा प्रस्तुत करने के लिए कहा गया। इससे असंतोष पैदा हो गया और जागीरदार विरोध में खड़े हो गए। मासूम खान काबुली, रौशन बेग, मिर्ज़ा शराफुद्दीन और अरब बहादुर बागियों के मुख्य नेता थे। वहां तैनात शाही अधिकारियों ने इस बगावत को दबाने की कोशिश की मगर कामयाब नहीं हो सके। अकबर ने तत्काल राजा टोडरमल और शेख फरीद बख्शी के अधीन एक बड़ी फौज देकर उन्हें वहाँ भेजा। कुछ समय के बाद, अज़ीज़ कोका और शाहबाज खान को भी टोडरमल की सहायता के लिए भेजा गया। बागियों ने अकबर के भाई हकीम मिर्ज़ा को, जो उस वक्त काबुल में था, अपना राजा घोषित कर दिया। परन्तु शीघ्र ही मुगल सेनाओं ने बिहार, बंगाल और उसके आसपास के क्षेत्रों में विद्रोह को बहुत सफलतापूर्वक दबा दिया।

पंजाब और उत्तर पश्चिम

पंजाब में मिर्ज़ा हाकिम अकबर के लिए समस्या खड़ी कर रहा था और उसने लाहौर पर हमला कर दिया। हाकिम मिर्ज़ा को उम्मीद थी कि बहुत से मुगल अफसर उसका साथ देंगे परन्तु किसी बड़े समूह ने उसका साथ नहीं दिया। अकबर ने खुद लाहौर की तरफ बढ़ने का फैसला किया। हाकिम मिर्ज़ा तुरंत पीछे हट गया और अकबर ने पूरे क्षेत्र पर कब्ज़ा कर लिया। उसकी सबसे पहली प्राथमिकता रही उत्तर–पश्चिमी सीमांत क्षेत्रों की सुरक्षा व्यवस्थित करना। इसके बाद उसने काबुल की तरफ बढ़ना शुरु किया और उस प्रदेश पर विजय प्राप्त की। काबुल का कार्यभार उसने अपनी बहन बख्तूनिनसा बेगम को



सौपा। बाद में राजा मान सिंह को वहां का सूबेदार तैनात किया गया और उसे जागीर के रुप में इसे दे दिया गया।

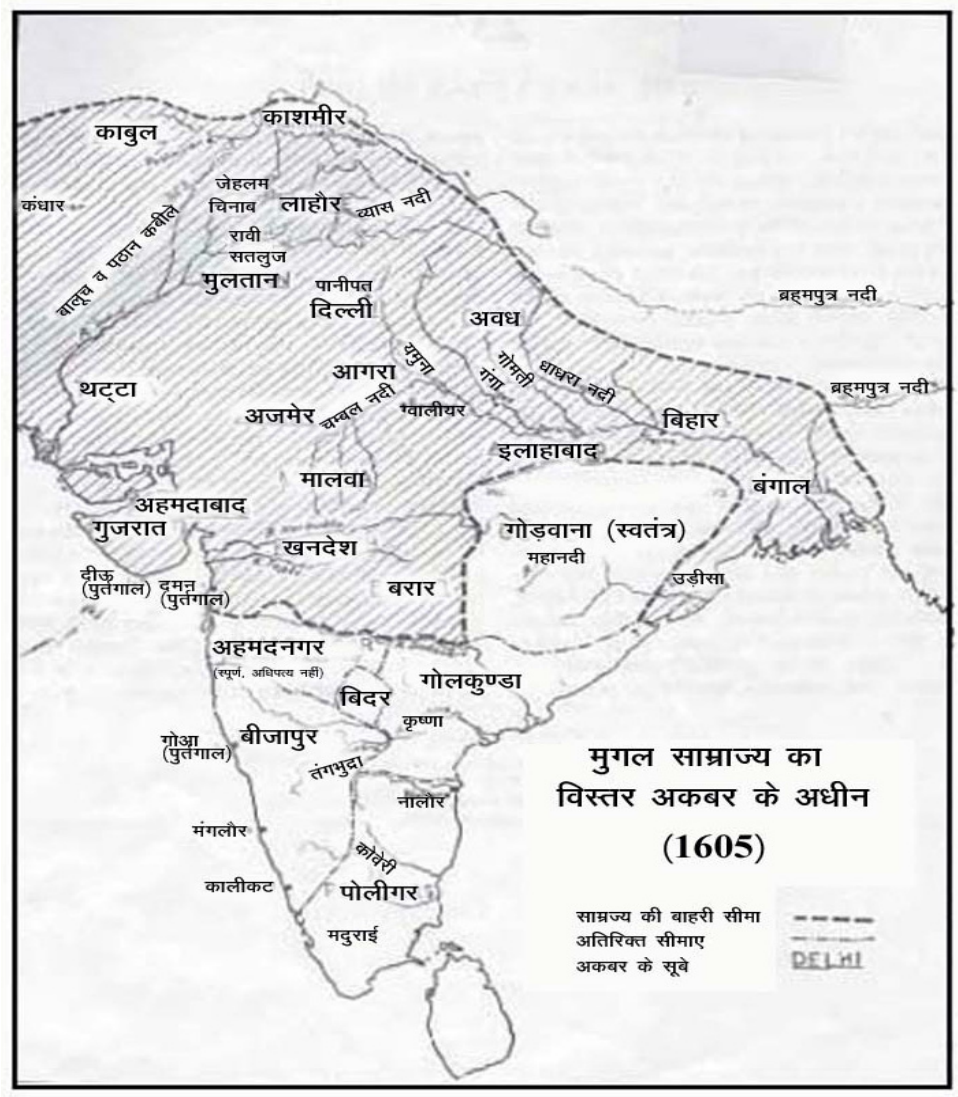
उत्तर पश्चिम क्षेत्र में जो अन्य गतिविधि विकसित हुई, वह थी रौशनाइयों की बगावत, जिसने काबुल और हिन्दुस्तान के बीच के मार्ग पर कब्जा कर लिया था। रौशनाई एक सैनिक सिपाही द्वारा स्थापित सम्प्रदाय था जिसे उस प्रदेश में पीर रौशनाई कहते थे। उसका पुत्र उस पंथ का सरदार था जिसके बहुत बड़ी संख्या में अनुयायी थे। अकबर ने, रौशनाइयों को दबाने और वहां मुगलों का नियंत्रण स्थापित करने के लिए बहुत बलशाली फौज का सेनापति बनाकर ज़ायेन ख़ान को वहाँ भेजा। ज़ायेन ख़ान की मदद करने के लिए सईद ख़ान गखड़ और राजा बीरबल को भी अलग–अलग सैनिक टुकड़ियों के साथ वहाँ भेजा गया। एक सैनिक कार्यवाही के दौरान अपने अधिकतर सैनिकों के साथ, बीरबल मारा गया। उसने बगावत को दबाने के लिए राजा टोडरमल और राजा मान सिंह को नियुक्त किया और वे दोनों रौशनाइयों को हराने में कामयाब रहे।

लंबे समय तक अकबर कश्मीर को जीतने के लिए उस पर आँखे गड़ाए रहा। 1586 में कश्मीर मुगल साम्राज्य में शामिल कर लिया गया था।

सिंध में उत्तर–पश्चिम में, अभी भी कुछ रिहायशी क्षेत्र स्वतंत्र थे। 1590 में अकबर ने खान–ए–खाना को मुल्तान का गवर्नर नियुक्त किया और उसे बिलोचियों को हराने के लिए कहा, जो उस क्षेत्र की एक जनजाति थी, और उस पूरे प्रदेशीय क्षेत्र को जीतने का आग्रह किया। सबसे पहले थट्टा पर अधिकार किया गया और 'मुल्तान' के सूबे में उसे सरकार के रुप में स्थापित किया गया। आसपास के क्षेत्रों में बिलूचियों के साथ झड़पें होती रहीं। अन्त में वर्ष 1595 में पूरे उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों पर मुगलों की संपूर्ण सर्वोच्चता स्थापित कर दी गई।

दक्कन

1590 के पश्चात् दक्कन के प्रदेशों को मुगलों के नियंत्रण के अधीन लाने के लिए दक्कन नीति को साकार रुप दिया। इस अवधि के दौरान दक्कन के प्रदेशों में आंतरिक तनाव और निरंतर युद्ध चल रहे थे। 1591 में अकबर ने दक्कन प्रदेशों को उपहार भेजकर यह संदेश भिजवाया कि वे मुगलों की प्रभुसत्ता को स्वीकार कर लें, परन्तु इसमें उसे कोई विशेष सफलता नहीं मिली। अब अकबर ने आक्रमण की नीति अपनाने का निर्णय किया। पहला अभियान अहमदनगर के लिए कूच किया जिसके सेना नायक थे राजकुमार मुराद और अब्दुल रहीम खान खाना। 1595 में मुगल सेनाओं ने अहमदनगर पर आक्रमण कर दिया। इसकी शासिका चांद बीबी ने मुगलों का मुकाबला करने का फैसला किया। उसने सहायता के लिए बीजापुर के इब्राहिम आदिल शाह और गोलकुंडा के कुतुब शाह से संपर्क किया परन्तु उसे कोई सफलता नहीं मिली। घमासान युद्ध हुआ। दोनों तरफ भारी नुकसान होने के बाद एक समझौता किया गया जिसके तहत चांदी बीबी ने बरार मुगलों के हवाले कर दिया। कुछ समय के बाद चांद बीबी ने बरार को वापस लेने के लिए फिर से हमला कर दिया। इस वक्त निज़ामशाही, कुतुबशाही और आदिलशाही टुकड़ियों ने मिलकर मोर्चा संभालने का निर्णय किया। मुगलों को भारी नुकसान हुआ, इसके बावजूद वे अपनी स्थिति बनाए रखने में कामयाब रहे। इस बीच मुराद और खान खाना में आपस में गंभीर मतभेद पैदा होने से मुगलों की ताकत घटने



मानचित्र 10.3 अकबर के अधीन मुगल साम्राज्य का विस्तार

लगी। इसीलिए अकबर ने खान खाना को वापिस बुला लिया और दक्कन में अबुल फजल को नियुक्त कर दिया। 1598 में राजकुमार मुराद की म त्यु के बाद, राजकुमार दानियाल और खान खाना को दक्कन भेजा गया। अहमदनगर जीत लिया गया। जल्दी ही मुगलों ने असीरगढ़ और उसके आसपास के क्षेत्रों को जीत लिया। बीजापुर के आदिलशाह ने भी मित्रता दर्शाई और राजकुमार दानियाल से अपनी पुत्री के विवाह का प्रस्ताव भेजा। इस बीच चांद बीबी का भी देहांत हो गया। अब दक्कन में मुगलों के प्रदेशों में असीरगढ़, बुरहानपुर, अहमदनगर और बरार शामिल थे।

प्रदेशीय विस्तार के साथ–साथ अकबर ने सेना नायकों को मुगल अभिजात्यों में मिलाने की नीति शुरु की। उसकी इस नीति से मुगल साम्राज्य को बहुत फायदा हुआ। मुगल शासक अपनी नई जीतों के लिए सेना नायकों और उनकी सेनाओं की सहायता हासिल करने में कामयाब हो गया। मुगल आभिजात्यों की भूमिका, इतने बड़े साम्राज्य के शासन कार्यों को चलाने के लिए भी मदद के रुप में उपलब्ध थी। इसके अतिरिक्त उनके साथ शांतिपूर्ण संबंधों की वजह से साम्राज्य में शांति भी सुनिश्चित हुई। सेना नायकों को भी

इस नीति से बहुत फायदा हुआ। अब वे अपने अपने क्षेत्रों को अपने पास रखकर अपनी इच्छानुसार शासन कर सकते थे। इसके अतिरिक्त उन्हें जागीर और मनसब भी दिए गए (इन प्रशासकीय उपायों के संबंध में आप पाठ 12, मॉड्यूल 2 में पढ़ेंगे)। उन्हें जागीर में जो प्रदेश दिए जाते थे, वे अकसर उनके अपने साम्राज्यों से बड़े होते थे। इससे उन्हें दुश्मनों और बागियों से भी सुरक्षा प्राप्त हुई। कई मनसबदारों को 'वतन जागीर' के रुप में उन्हें अपना प्रादेशिक क्षेत्र भी दिया गया, जो वंशानुगत था और उसे किसी को हस्तांतरित नहीं किया जा सकता था।

अकबर के अधीन हुए प्रादेशिक विस्तार ने मुगल साम्राज्य को निश्चित आकार दिया। प्रादेशिक विस्तार की बात करें, तो अकबर के बाद बहुत कम प्रदेश साम्राज्य में शामिल हो सके थे। शाहजहां और औरंगजेब के काल में दक्कन और उत्तर पूर्व भारत के कुछ प्रदेश साम्राज्य में शामिल जरुर हुए थे।

पाठगत प्रश्न 10.3

1. अकबर ने बैरम खान को क्यों बर्खास्त किया?

   _____

2. अकबर के राजसिंहासन के समय भारत में कौन–कौन सी राजनीतिक शक्तियां मौजूद थीं?

   _____

3. किन राजपूत शासकों ने अकबर को चुनौती दी थी और हथियार नहीं डाले?

   _____

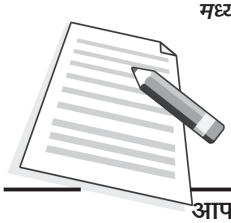
4. किस महिला शासक ने मुगलों से युद्ध किया? उसने किस प्रदेश पर राज किया?

   _____

जहाँगीर और शाहजहाँ

जहाँगीर ने दक्कन में अकबर की विस्तार नीति को अपनाया। परन्तु कुछ समस्याओं के कारण उसे इस काम में बहुत कम सफलता मिली। खुर्रम की बगावत की वजह से पैदा हुए संकट के कारण वह इस तरफ अधिक ध्यान नहीं दे पाया। दक्कन से कुछ फायदा उठाने के लिए मुगल आभिजात्य वर्ग भी अनेक षड्यंत्रों और लड़ाइयों में शामिल था।

पहले तीन वर्ष के दौरान, दक्कन ने बालाघाट और अहमदनगर के काफी जिलों को फिर से हासिल कर लिया था। मलिक अम्बर इनमें से प्रमुख शासक था जिसने मुगल सेनाओं को हराकर बरार, बालाघाट और अहमदनगर के कुछ भागों को वापस जीता। हारे हुए प्रदेशों पर मुगल फिर दोबारा कब्ज़ा हासिल नहीं कर सके। इस दौरान शाहजहाँ ने अपने पिता के खिलाफ बगावत कर दी और मलिक अम्बर से मित्रता स्थापित कर ली।



आपकी टिप्पणियाँ

मलिक अम्बर ने अहमदनगर पर कब्ज़ा करने की कोशिश की मगर असफल रहा; उसने आदिलशाह से शोलापुर छीन लिया और शाहजहाँ के साथ मिलकर बुरहानपुर पर कब्ज़ा करने की कोशिश की, परन्तु असफल रहा। एक बार तो जहाँगीर और शाहजहाँ के बीच शांति स्थापित हो गई। मलिक अम्बर भी शांत हो गया। सन 1627 में मलिक अम्बर की म त्यु हो गई और साम्राज्य के 'वकील' और 'पेशवा' के रुप में उसका उत्तराधिकारी बना उसका पुत्र फतेह खान;। फतेह खान बहुत आक्रामक प्रक ति का था और उसके शासन के दौरान दक्कनियों और आभिजात्यों के बीच परसपर लड़ाई शुरु हो गई। जहाँगीर के शासनकाल के दौरान मुगल साम्राज्य में दक्कन से कोई भी प्रदेश शामिल नहीं हो सका। असल में दक्कनी शासकों ने अपने प्रदेशों में मुगल साम्राज्य को बहुत कमज़ोर बना दिया था। मलिक अम्बर की अति महत्त्वाकांक्षा दक्कन प्रदेशों के संयुक्त मोर्चे की राह में एक बड़ी बाधा थी।

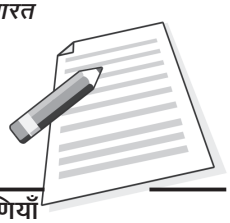
जहाँगीर की म त्यु होने और शाहजहाँ के राजसिंहासन पर बैठने की अवधि के दौरान, दक्कन के मुगल सूबेदार खान जहान लोदी ने, जरुरत के वक्त मदद लेने के इरादे से, बालाघाट, निजामशाह को दे दिया। सिंहासन पर बैठने के बाद शाहजहाँ ने खान जहान लोदी को, बालाघाट वापस लेने का आदेश दिया परन्तु वह इसमें असफल रहा, और इसके बाद शाहजहाँ ने उसे दरबार में वापस बुला लिया। इस पर ख़ान जहान उसका दुश्मन बन गया और उसने बगावत कर दी। उसने निज़ामशाह के पास जाकर आश्रय ले लिया। इसने शाहजहाँ को क्रोधित कर दिया और उसने दक्कन प्रदेशों के विरुद्ध आक्रामक रुख अपनाने का निर्णय कर लिया। शाहजहाँ का मुख्य उद्दश्ेय था दक्कन के खोए हुए प्रदेशों को वापस हासिल करना।

उसे विश्वास था कि दक्कन में अहमदनगर की स्वतंत्रता मुगल नियंत्रण के आड़े आ रही थी। उसने अहमदनगर को छोड़कर बीजापुर और मराठों को जीतने का निर्णय किया। इसमें उसे सफलता मिली। मलिक अम्बर के पुत्र फैथ ख़ान ने भी मुगलों से सुलह कर ली। अब महाबत ख़ान को दक्कन का सूबेदार नियुक्त किया गया। परन्तु दक्कन के राज्यों के साथ लड़ाई अभी भी जारी रही। अंत में सन् 1636 में बीजापुर और गोलकुंडा के बीच एक समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। बीजापुर के साथ समझौते की कुछ मुख्य शर्तें थीं:

1. आदिलशाह मुगलों की अधीनता स्वीकार करेगा।
2. उसे 20 लाख रुपए क्षतिपूर्ति के रुप में देने होंगे।
3. वह गोलकुंडा के मामलों में कोई दखलंदाजी नहीं करेगा।
4. बीजापुर और गोलकुंडा के बीच कोई विवाद होने पर मुगल शासक उनका बिचौलिया होगा।
5. शाहजी भौंसले के खिलाफ लड़ाई में आदिलशाह मुगलों की सहायता करेगा।

गोलकुंडा ने भी एक प थक संधि पत्र तैयार किया। इस संधि पत्र के अनुसार:

1. गोलकुंडा ने मुगल शासक के प्रति वफादारी की शपथ ली। उसने मुगल शासक के नाम को खुतबा में स्वीकार करने की सहमति दी और ईरान के शाह का नाम छोड़ दिया।
2. गोलकुंडा ने मुगलों को 2 लाख हूण प्रति वर्ष देने की सहमति दी।



इन समझौतों से दक्कन में लड़ाइयों का अंत हो गया। अब मुगल अपना अधिकार क्षेत्र दक्षिण भारत के अधिकांश क्षेत्र तक फैलाने में कामयाब हो सके। 1656-57 में जब इन समझौतों की अनदेखी की गई तो मुगल नीति में एक विशिष्ट तब्दीली आई। अब शाहजहाँ ने औरंगजेब से दक्कन के साम्राज्यों के सभी प्रदेशों को जीतकर मुगल साम्राज्य के साथ जोड़ने का आदेश दिया। कुछ इतिहासकार ने यह तर्क दिया कि इस नीति के बदलने का कारण था, दक्कन के प्रदेशों में उपलब्ध संसाधनों का दोहन करना। परन्तु, इस परिवर्तन से मुगल साम्राज्य को कोई खास लाभ नहीं मिला बल्कि इससे भविष्य के लिए और अधिक समस्याएँ पैदा हो गईं।

औरंगजेब

औरंगज़ेब दक्कन के प्रति बहुत आक्रामक नीति अपनाने में विश्वास रखता था। प्रो. सतीश चन्द्र दक्कन प्रदेशों के प्रति उसकी नीति के तीन विभिन्न चरणों को रेखांकित करते हैं:

1. 1658 से 1668 के दौरान मुख्य लक्ष्य था बीजापुर से कल्याणी, बिदर और परेन्डा प्रदेशों को छीनकर अपने कब्जे में करना। इस चरण के दौरान मराठों के विरुद्ध दक्कन प्रदेशों से सुरक्षा सहायता पाने की कोशिशें की गई। दक्कन के सूबेदार जय सिंह ने भी बीजापुर को जीतने के प्रयास किए परन्तु असफल रहा।

2. 1668 से 1684 के दौरान इस नीति में थोड़ी तब्दीली की गई। आदिलशाह की म त्यु, शिवाजी की बढ़ती शक्ति और गोलकुंडा प्रशासन के दो भाइयों अखन्ना और मदन्ना ने मुगल नीति को प्रभावित किया। गोलकुंडा ने शिवाजी और बीजापुर के साथ गुप्त समझौता करने की कोशिश की। मराठों को घेरने की औरंगज़ेब की कोशिशों को कोई बहुत ज़्यादा कामयाबी नहीं मिली। कुछ छोटी–छोटी तब्दीलियों और जल्दी–जल्दी पैदा होने वाले तनाव किसी न किसी रुप में जारी रहे।

3. तीसरे चरण में (1684-87) औरंगज़ेब ने दक्कन के प्रदेशों को खुल्लमखुला अपने राज्य में शामिल करने की नीति अपनाई। औरंगज़ेब ने बीजापुर की घेराबंदी की खुद निगरानी की। 1687 से 1707 तक मराठों के साथ लड़ाई जारी रही। औरंगज़ेब ज़्यादातर वक्त तक दक्कन में रहा और उसने इस क्षेत्र को मुगल नियंत्रण के अधीन कायम रखा। परन्तु 1707 में उसकी म त्यु के बाद (दक्कन में औरंगाबाद में) उन्होंने फिर से स्वतंत्रता पाने के लिए प्रयास किया और बहुत कम समय में ही इसमें सफल हो गए। दक्कन के अतिरिक्त औरंगज़ेब उत्तर पूर्व क्षेत्र में असम तक मुगल शक्ति का विस्तार करने मे कामयाब रहा। इस क्षेत्र में मुगलों की सबसे बड़ी सफलता थी, अहोम साम्राज्य (असम) के मीर जुमला को बंगाल के सूबेदार के अधीन लाकर अपने साथ जोड़ना। एक अन्य महत्वपूर्ण उत्तर पूर्व की विजय थी, बंगाल के नए गवर्नर शाइस्ता ख़ान के अधीन 1664 में चटगांव की जीत। अहोम साम्राज्य पर बहुत लंबे समय तक सीधा नियंत्रण नहीं रखा जा सका। वहां तैनात मुगल फौजदार को विरोध सहना पड़ा और वहां नियमित रुप से लड़ाइयाँ होती रहती थीं। 1680 तक अहोम के शासकों ने कामरुप पर जीत हासिल कर ली और वहाँ मुगल नियंत्रण समाप्त हो गया।

पाठगत प्रश्न 10.4

1. दक्कन से कौन से शासक ने जहाँगीर के समय में मुगल सेनाओं को हराया?

2. मुगलों ने 1636 में दक्कन के किन दो प्रदेशों के साथ संधि पत्र पर हस्ताक्षर किए?

3. कौन सा मुगल सेनापति अहोम साम्राज्य को मुगल साम्राज्य के अधीन लाया?

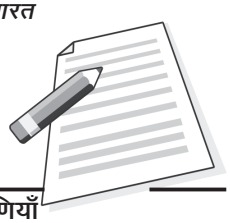
4. दक्कन की किस शक्ति के साथ औरंगज़ेब को लंबे समय तक उलझे रहना पड़ा?

10.5 मुगल शासन के लिए चुनौतियाँ: लड़ाइयाँ और संधि की बातचीत

औरंगज़ेब के अधीन मुगल साम्राज्य ने अधिकतम प्रादेशिक सीमाओं तक अपनी पहुँच बना ली थी और लगभग आधुनिक भारत कहे जाने वाले संपूर्ण क्षेत्र को जीत लिया था। परन्तु उसका शासन जाटों, सतनामियाँ, अफ़गानियों, सिखों और मराठों की आम बगावतों से परेशान था। अकबर के अधीन राजपूत मुगलों की सहायता के एक महत्त्वपूर्ण आधार की तरह उभरे और बाद में जहाँगीर और शाहजहाँ के अधीन भी। परन्तु औरंगज़ेब के अधीन उन्होंने खुद को पराया अनुभव करना शुरु कर दिया और धीरे–धीरे प्रशासनिक ढांचे में उन्होंने अपना स्थान भी खो दिया। औरंगजेब के अधीन मराठों ने मुगलों की सत्ता को बहुत बड़ी चुनौती दी थी। दक्कन के प्रदेशों ने मुगलों की विस्तार योजनाओं का कड़ा विरोध किया। उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रदेश में भी कुछ समस्या वाले स्थान थे और मुगलों को इन बाधाओं को दबाना पड़ा। इस प्रकार हम देखते हैं कि मुगल साम्राज्य की स्थापना और इसके विस्तार की प्रक्रिया के दौरान मुगलों को विरोध का सामना करना पड़ा और विविध उपायों और युद्ध नीतियों को अपनाकर अपने तरीके से समझौते करने पड़े। यहाँ हम उन सभी मामलों का संक्षिप्त विवरण देंगे।

राजपूत

राजपुताना में मेवाड़ एकमात्र ऐसा क्षेत्र था जो अकबर के शासन काल के दौरान मुगलों के अधीन नहीं आ सका। जहाँगीर ने इसे जीतने के लिए लगातार दबाव बनाए रखा। लड़ाइयों के एक लंबे सिलसिले के बाद राणा अमर सिंह ने अंत में मुगलों के आधिपत्य को मंजूर कर लिया। मेवाड़ से जीते गए सभी प्रदेश चितौड़ के किले सहित राणा अमर सिंह को लौटा दिये गए और इसके साथ ही उसके पुत्र कर्ण सिंह को एक बड़ी जागीर भी दी गई। जहाँगीद और शाहजहाँ के शासन के दौरान, राजपूतों ने आम तौर पर मुगलों के साथ मित्रता का व्यवहार किया और बहुत ऊँचे मनसबों तक काबिज़ रहे। शाहजहाँ को दक्कन और उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों की लड़ाइयों के लिए राजपूत सैनिकों पर अत्यधिक विश्वास था। औरंगजेब के शासन के दौरान, राजपूतों के साथ मुगलों के रिश्तों में दरार आ गई, खास तौर पर मारवाड़ के राजसिंहासन के उत्तराधिकारी के मामले में।



उत्तराधिकार को समर्थन देने के कारण राजपूत नाराज़ हो गए। जोधपुर पर उसका कब्जा भी मुगल राजपूत संबंधों के लिए एक और झटका साबित हुआ और धीरे–धीरे राजपूत मुगल शासन से अलग हो गए। असल में, आभिजात्य में शक्तिशाली राजपूत क्षेत्र के अभाव में मुगलों के लिए चारों तरफ के क्षेत्रों पर नियंत्रण रखने के काम में अंत में काफी नुकसान झेलना पड़ा, खास तौर पर तब, जबकि उन्हें मराठों से समझौता वार्ता करनी पड़ी।

दक्कन

अकबर के अंतिम दिनों में और जहाँगीर के प्रारंभिक दिनों में मलिक अम्बर के अधीन अहमदनगर ने मुगल ताकत को चुनौती देना शुरु कर दिया था। मलिक अम्बर बीजापुर का समर्थन पाने में भी कामयाब हो गया था। शाहजहाँ के शासन काल में अहमदनगर, बीजापुर और गोलकुंडा के दक्कन साम्राज्यों में फिर से मुगलों के साथ लड़ाई शुरु हो गई थी। सबसे पहले अहमदनगर को हराया गया और इसके अधिकांश प्रदेशों को मुगल साम्राज्य के साथ जोड़ दिया गया था। 1636 तक आते–आते बीजापुर और गोलकुंडा को भी हरा दिया गया था, परन्तु इन साम्राज्यों को मुगल साम्राज्य के साथ नहीं जोड़ा गया था। एक संधि पत्र बनाने के बाद यह निर्णय हुआ कि हराए गए शासक वार्षिक नज़राना देंगे और मुगलों की सत्ता को स्वीकार करेंगे। लगभग दस वर्ष के लिए शाहजहाँ ने अपने पुत्र औरंगज़ेब को इस क्षेत्र में नियुक्त किया। औरंगजेब के शासन काल में दक्कन प्रदेशों और मराठों के साथ संघर्ष और भी गंभीर हो गया। असल में औरंगज़ेब ने अपने शासन के अंतिम 20 वर्ष दक्कन में लगातार युद्ध करते हुए व्यतीत किए। 1687 तक बीजापुर और गोलकुंडा के दक्कनी साम्राज्यों को मुगल साम्राज्य के साथ जोड़ दिया गया था। परन्तु दक्कन में औरंगजेब द्वारा खर्च किया गया समय और धन, मुगल साम्राज्य के लिए एक बहुत बड़ा अपव्यय साबित हुआ।

मराठा

17वीं सदी के मध्य में शिवाजी के नेत त्व के अधीन मराठे, दक्कन में बहुत शक्तिशाली बल के रुप में उभरे और उन्होंने मुगलों के अधिकार को चुनौती देना शुरु कर दिया। शिवाजी ने 1656 में अपनी आक्रामक कार्रवाइयाँ शुरु कर दी और जावली का राज्य अपने आधिपत्य में कर लिया। कुछ समय के बाद शिवाजी ने बीजापुर प्रदेश पर आक्रमण कर दिया, और 1659 में, बीजापुर के सुल्तान ने अपने जनरल अफजल खान को शिवाजी पर विजय प्राप्त करने के लिए भेजा। परन्तु शिवाजी उसकी (अफजल खाँ) तुलना में बहुत चतुर निकले और उन्होंने उसकी हत्या कर दी। अन्त में, 1662 में बीजापुर के सुल्तान ने शिवाजी के साथ एक समझौता किया जिसके तहत उन्हें जीते गए प्रदेशों का स्वतंत्र शासक मान लिया गया। अब शिवाजी ने मुगल प्रदेशों को नुकसान पहुँचाना शुरु कर दिया। औरंगज़ेब ने दक्कन के सूबेदार शाइस्ता खान को एक बहुत बड़ी सेना देकर शिवाजी के पास भेजा और उन दोनों के बीच पुरंदर के (1665 में) संधि पत्र पर हस्ताक्षर किए गए, जिसके तहत शिवाजी द्वारा जीते गए 35 किलो में से 23 किले मुगलों को वापस करने के लिए वह तैयार हो गया। शेष बचे 12 किले (जिनकी वार्षिक आय एक लाख थी) शिवाजी के पास छोड़ दिए गए। शिवाजी को आगरा के मुगल दरबार में आने का आग्रह किया गया। परन्तु जब शिवाजी वहाँ पहुँचे तो उनसे दुर्व्यवहार किया गया और उन्हें बन्दी बना लिया गया। वे 1666

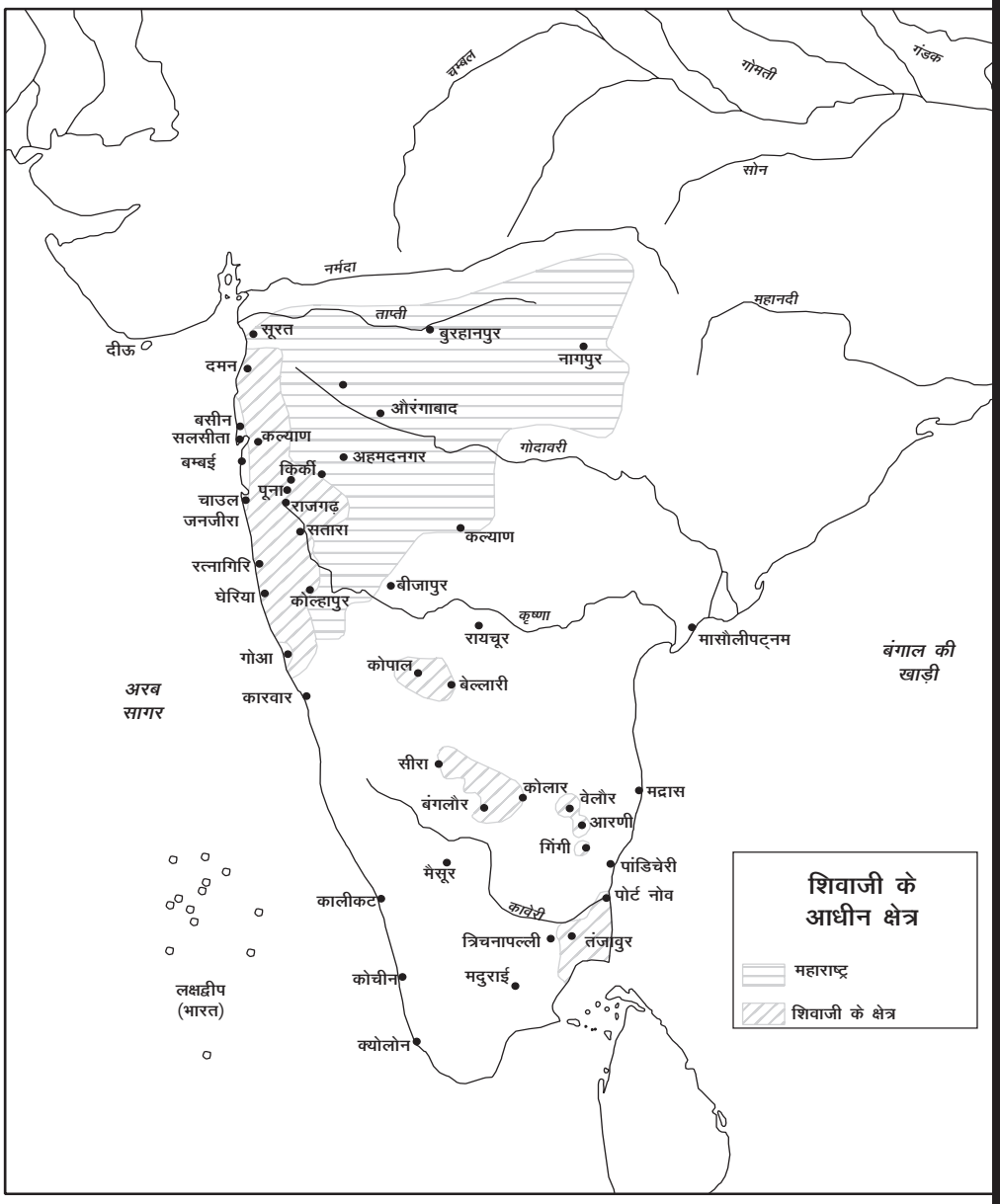
में बच कर निकल भागे और रायगढ़ पहुँच गए। तब से लेकर उन्होंने मुगलों के विरुद्ध लगातार युद्ध जारी रखा। बहुत शीघ्र ही उन्होंने उन सभी किलों को वापस जीत लिया जो उन्होंने मुगलों को वापस किए थे। 1670 में उन्होंने सूरत को दूसरी बार लूटा।

1674 में शिवाजी ने रायगढ़ को अपनी राजधानी बना लिया और राज्याभिषेक करवाने के बाद छत्रपति की उपाधि ग्रहण की। इसके कुछ ही समय बाद उन्होनें दक्षिण भारत में एक बड़ा अभियान चलाया और वेल्लौर में झिंजी और कर्नाटक में कई जिले जीत लिए। छह वर्ष तक शासन करने के बाद 1680 में उसकी म त्यु हो गई। इस छोटी सी अवधि में उसने मराठा साम्राज्य की नींव रखी जिसने लगभग डेढ़ शताब्दी तक पश्चिमी भारत में शासन किया। शिवाजी के उत्तराधिकारी थे उनके पुत्र सम्भाजी। बहुत से मराठा प्रमुखों ने सम्भाजी का समर्थन नहीं किया और शिवाजी के दूसरे पुत्र राजाराम की सहायता की। आंतरिक लड़ाई ने मराठा शक्ति को कमज़ोर कर दिया। अंत में औरंगज़ेब द्वारा सम्भाजी को पकड़ कर 1689 में मौत के घाट उतार दिया गया। सम्भाजी के उत्तराधिकारी बने राजाराम क्योंकि सम्भाजी के पुत्र बहुत छोटे थे। 1700 में राजाराम की म त्यु हो गई। उनके उत्तराधिकारी बने, उनकी माता तारा बाई के सिंहासन के अधीन, उनके छोटे पुत्र शिवाजी त तीय। मराठों के खिलाफ औरंग़ज़ेब की असफलता का मुख्य कारण था ताराबाई की उर्जा और उनकी प्रशासनिक प्रतिभा। परन्तु मुगल, मराठों को दो विरोधी गुटों में बाँटने में कामयाब हो गए एक तारा बाई के अधीन और दूसरा सम्भाजी के पुत्र, साहू के अधीन। साहू, जो बहुत लंबे समय तक मुगल दरबार में रहे थे, को छोड़ दिया गया। एक चितपावन ब्राह्मण, बालाजी विश्वनाथ की सहायता से उसने तारा बाई को शासन से हटाने में कामयाबी हासिल की।

उत्तर-पश्चिम

काबुल–गज़नी–कंधार को अकबर ने बहुत बिखरे हुए सीमांत प्रदेशों के रुप में समझा और इसीलिए 1595 में कंधार पर अपना कब्ज़ा कर लिया।

17वीं शताब्दी में उत्तर पश्चिमी सीमांत मुगलों की गतिविधियों का मुख्य क्षेत्र था। यहां 1625-26 तक रौशनाइयों को तो पूरी तरह हरा दिया गया था, परन्तु कंधार पारसियों और मुगलों के बीच आपसी लड़ाई का कारण बन गया। अकबर की म त्यु के बाद पारसियों ने सफावी शासक शाह अब्बास प्रथम के अधीन कंधार को जीतने की कोशिश की, परन्तु विफल रहे। इसके पश्चात 1620 में शाह अब्बास प्रथम ने जहांगीर को कंधार वापस उसे देने का अनुरोध किया, परन्तु उसने ऐसा करने से मना कर दिया। 1622 में, एक और आक्रमण करने के बाद, पारसियों ने कंधार को जीत लिया। शाहजहाँ के अधीन कंधार एक बार फिर मुगलों के हाथों में आ गया, परन्तु 1649 में पारसियों ने दोबारा इसे जीत लिया। कंधार को जीतने की जंग औरंगज़ेब के शासनकाल तक चलती रही परन्तु मुगलों को इसमें बहुत कम कामयाबी मिली। उज़्बेकों को अपने नियंत्रण में रखने के लिए शाहजहाँ को बलख की लड़ाई में बुरी तरह हार देखनी पड़ी और मुगलों को इस लड़ाई में धन और मानव–बल का भारी नुकसान उठाना पड़ा। औरंगज़ेब के शासन के अधीन कंधार के मामले को छोड़ दिया गया और पर्शिया के साथ राजनयिक संबंधों को दोबारा स्थापित किया गया।



मानचित्र 10.4 शिवाजी के अधीन मराठा साम्राज्य

स्पष्ट है कि अकबर के शासन के अधीन मुगल साम्राज्य के प्रादेशिक विस्तार की नीति साम्राज्य की प्रमुख नीति बनी रही। औरंगज़ेब के अधीन दक्कन में और उत्तर पूर्वी क्षेत्र में छोटे से पैमाने पर इसका और अधिक विस्तार किया गया। उसके शासनकाल के दौरान मुगल साम्राज्य के पास बहुत बड़ा क्षेत्र था। परन्तु मुगल शासन के पतन के चिह्न भी औरंगज़ेब के शासन में ही दिखाई देने लगे थे। राजपूतों जैसी संभावित प्रादेशिक ताकतों के साथ संबंध टूटने और दक्कनी प्रदेशों और मराठों के साथ संबंधों में आई खटास ने मुगल साम्राज्य की एकता और स्थिरता को हिलाकर रख दिया। उसके उत्तराधिकारियों के अधीन साम्राज्य में विघटन होता रहा था।

पाठगत प्रश्न 10.5

1. शाहजहाँ ने किन शर्तों पर बीजापुर और गोलकुंडा में शांति स्थापित की?

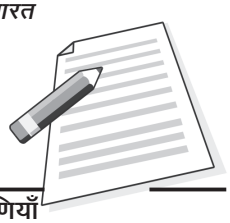
2. दक्कन के लिए औरंगज़ेब की नीति क्या थी?

3. शिवाजी का राज्याभिषेक किस स्थान पर हुआ था? उन्होंने कौन सी उपाधि ली?

4. किस मुगल शासक को उत्तर पश्चिमी सीमांत की लड़ाइयों में भारी मात्रा में धन की हानि हुई?

आपने क्या सीखा

दिल्ली सल्तनत के विघटन के बाद 1526 में बाबर भारत में मुगल साम्राज्य स्थापित कर सका। मध्य एशिया और भारत की परिस्थितियाँ, दोनों ने ही मुगल साम्राज्य की नींव रखने में बहुत बड़ी भूमिका निभाई। इससे पहले कि बाबर भारत में मुगल साम्राज्य की नींव रख पाता, उसे यहाँ के स्थानीय साम्राज्यों के शासकों से अनेक लड़ाइयाँ लड़नी पड़ीं। उसने 1526 में पानीपत में इब्राहिम लोदी को हराया। इसके पश्चात 1527 में उसने उत्तर भारत की सबसे बड़ी शक्ति, राणा सांगा को हराया। 1530 में बाबर की म त्यु के बाद उसका पुत्र हुमायूँ उसका उत्तराधिकारी बना। जब हुमायूँ गुजरात में व्यस्त था तो शेरशाह ने बिहार और बंगाल में खुद को संगठित करना शुरु कर दिया और आगरा की तरफ बढ़ने लगा। 1540 में कन्नौज की लड़ाई में हुमायूँ हार गया और शेरशाह के लिए दूसरा अफ़गानी शासन स्थापित करना संभव हो सका। उसका राज 1540 से 1555 तक चलता रहा। परन्तु, 1555 में हुमायूँ दोबारा आगरा और दिल्ली और कुछ अन्य प्रदेश अफगानियों के हाथों से जीतने में कामयाब हुआ और वहाँ दोबारा मुगल शासन स्थापित किया। हुमायूँ की अचानक म त्यु होने के बाद अकबर 13 वर्ष की छोटी उम्र में शासक बना और बैरम ख़ान को उसका सहायक शासक नियुक्त किया गया। राज्य पर अपना नियंत्रण स्थापित करने के बाद अकबर ने विस्तार की नीति अपनाई। उसने विवाह संबंधों द्वारा अथवा उनके प्रदेशों पर आक्रमण करके राजपूत साम्राज्यों को अपने पक्ष में किया। उसने गुजरात, बिहार, बंगाल, पंजाब और संपूर्ण उत्तर पश्चिम को अपने नियंत्रण के अधीन किया। उसने दक्कन में अहमदनगर, बरार, बुरहानपुर, असीसगढ़ इत्यादि को भी अपने साम्राज्य में जोड़ा। जहाँगीर ने भी दक्कन में विस्तार की नीति को अपनाया। परन्तु उसे बहुत अधिक कामयाबी नहीं मिली और उसने अपने कुछ प्रदेश यहाँ खो दिए। 1636 में शाहजहाँ बीजापुर और गोलकुंडा पर अपना नियंत्रण स्थापित कर सका, औरंगज़ेब ने



भी दक्कन में आक्रामक नीति को अपनाया और अपने शासन की अधिकांश अवधि के दौरान मराठों के साथ लड़ाइयों में उलझा रहा। औरंगज़ेब के अधीन मुगल साम्राज्य की सीमाएँ अधिकतम प्रदेशों तक फैली। विडंबना यह है कि औरंगज़ेब के शासनकाल में ही मुगल साम्राज्य का पतन होना शुरु हो गया था। राजपूतों और मराठों जैसी प्रादेशिक शक्तियों के साथ उसके संबंध टूटने लगे थे।

पाठांत प्रश्न

1. बाबर के अधीन, भारत में मुगल शासन की स्थापना की प्रारंभिक स्थिति का उल्लेख करें।
2. अकबर का सहायक शासक कौन था? अकबर के शासन के प्रारंभिक काल में भारत में कौन–कौन सी प्रमुख राजनीतिक शक्तियां थीं?
3. अकबर ने दक्कन में मुगलों की सर्वोच्चता कैसे स्थापित की?
4. राजपूतों के साथ औरंगज़ेब की नीति कैसे भिन्न थी?
5. औरंगजेब ने मराठों का मुकाबला कैसे किया?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

10.1

1. बाबर ने भारत पर इसलिए आक्रमण किया, क्योंकि मध्य एशिया में उसे कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ रहा था। भारत की अस्थिर राजनीतिक परिस्थितियों ने भी इसमें एक भूमिका निभाई।
2. बाबर ने बड़े प्रभावी तरीके से रुमी (ओटोमैन) युद्ध–नीति लागू की।
3. बाबर ने इन समस्याओं का सामना किया:

   क) उसके आभिजात्य और कमांडर मध्य एशिया में वापस जाना चाहते थे।

   ख) सभी राजपूत राणा सांगा के नेत त्व में संगठित हो रहे थे।
4. राणा सांगा और मेदिनी राय

10.2

1. हुमायूँ शेरशाह को हराने में असफल रहा क्योंकि उसके भाई हिंदल मिर्ज़ा, जिसने उसकी सेना के लिए सामान की आपूर्ति करनी थी, ने खुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया था।
2. शेरशाह एक महान रण कौशल युक्त योद्धा और योग्य सैनिक कमांडर था। हुमायूं को हराने के बाद वह अफगानियों का नायक बनकर सामने आया।
3. क) मालवा

ख) राजपुताना

ग) सिंध

घ) पंजाब

ड) बंगाल

4. (क) उसने सरकार और परगना स्तर पर स्थानीय प्रशासन को व्यवस्थित किया।

(ख) उसने ग्रांड ट्रंक मार्ग बनवाया।

10.3

1. अकबर ने बैरम ख़ान को इसलिए बर्खास्त किया क्योंकि उसने पूरा नियंत्रण अपने हाथ में ले लिया था और स्वतंत्र शासक के रुप में व्यवहार करने लगा था।
2. राजपूत, अफगानी, अहमदनगर, काबुल और कंधार
3. मेवाड़ के महाराणा प्रताप
4. चांद बीबी; अहमदनगर

10.4

1. मलिक अम्बर
2. बीजापुर ओर गोलकुंडा
3. मीर जुमला
4. मराठा

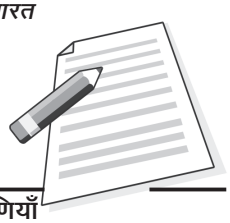
10.5

1. बीजापुर और गोलकुंडा ने मुगलों की अधीनता स्वीकार की और वार्षिक नज़राना देने की सहमति दी।
2. औरंगज़ेब ने आक्रामक नीति का अनुसरण किया और लगातार लड़ाइयों में ही उलझा रहा।
3. रायगढ़; छत्रपति
4. शाहजहाँ

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें अनुच्छेद 10.1 का पैरा 4 और 5
2. बैरम खान;

   देखें अनुच्छेद 10.4 अकबर के नीचे
3. देखें अनुच्छेद 10.4 (दक्कन)
4. देखें अनुच्छेद 10.5 (राजपूत)
5. देखें अनुच्छेद 10.5 (मराठा)



11

भारत में प्रादेशिक राज्यों का उदय

वर्तमान में भारत में अट्ठाइस प्रदेश हैं। इनमें से प्रत्येक प्रदेश की अपनी विशिष्ट भाषा, भूगोल, खान–पान और संस्क ति है, जो भारत की संस्क ति को सम द्ध और विविधतापूर्ण बनाते हैं। आपको आश्चर्य होगा कि इन विभिन्न प्रदेशों में यह प्रादेशिक संस्क ति कैसे विकसित हुई? क्या यह अनंत काल से इसी रूप में थी? जब हम इतिहास के पन्ने पलटते हैं तो हमें अनुभव होता है कि विभिन्न रूपों में ये प्रदेश मौजूद थे और इनमें विभिन्न कालावधियों में लगातार परिवर्तन की यह प्रक्रिया चलती रही।

इस पाठ में आप विभिन्न प्रादेशिक राज्यों के संबंध में बारहवीं से अठारहवीं सदी के बीच की ऐतिहासिक प ष्ठभूमि का अध्ययन करेंगे। इस अवधि के कुछ प्रादेशिक राज्य आजकल एक राज्य का हिस्सा हैं। उदाहरण के तौर पर, जयपुर, जोधपुर और उदयपुर, मध्यकाल में स्वतंत्र प्रादेशिक राज्य थे जो आज राजस्थान राज्य के जिले हैं। कुछ प्रादेशिक राज्य अब एक से अधिक राज्य के हिस्से हैं। उदाहरण के लिए विजयनगर साम्राज्य (1336–1565 ईस्वी) आजकल के आधुनिक राज्यों कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु का हिस्सा है। कुछ प्रादेशिक राज्य ऐसे हैं, जिनके वही प्राचीन नाम थे, जो आधुनिक काल के राज्य के हैं, परन्तु उनमें शामिल क्षेत्र उनसे भिन्न हैं। उदाहरण के लिए, गुजरात, बंगाल, कश्मीर और उड़ीसा के आधुनिक राज्यों का अस्तित्व बारहवीं से अठारहवीं सदी में इन्हीं नामों से था, परन्तु आज उनकी भौगोलिक स्थिति उससे अलग है, जो 12वीं से 18वीं सदी के मध्य में थी।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- बारहवीं से अठारहवीं सदी की अवधि के दौरान विभिन्न प्रादेशिक राज्यों के संबंध में संक्षिप्त विवरण दे सकेंगे;
- 'प्रादेशिक राज्य' शब्द का अर्थ समझा सकेंगे;
- प्रादेशिक राज्यों और दिल्ली सल्तनत तथा मुगल साम्राज्य के परस्पर संबंधों की प्रक ति समझा सकेंगे;
- विभिन्न प्रादेशिक राज्यों में परस्पर संबंध समझा सकेंगे;

- इन प्रादेशिक राज्यों की राजनीतिक विचारधाराओं और संगठनों को परिभाषित कर सकेंगे;
- प्रादेशिक राज्यों की आर्थिक और सांस्क तिक परिस्थितियों का वर्णन कर सकेंगे, और
- इन प्रादेशिक राज्यों के संबंध में सूचना देने वाले उस काल के मूल स्रोतों और दस्तावेज़ों की सूची बना सकेंगे।

11.1 'प्रादेशिक राज्य' और 'प्रादेशिकता' शब्दों को समझना

एक छोटे से पाठ में उन सभी प्रादेशिक राज्यों के संबंध में विवरण देना अत्यंत कठिन काम है। उनमें से सिर्फ कुछ को ही अध्ययन के लिए यहाँ चुना गया है। ये इस प्रकार हैं –

1. उत्तर भारत से हम दो प्रादेशिक राज्यों के इतिहास के संबंध में पढ़ेंगे, एक है 'जौनपुर', जो आज उत्तर प्रदेश में है और दूसरा है 'कश्मीर'।
2. दक्षिण भारत से हम विजय नगर और बहमनी साम्राज्य के इतिहास के बारे में पढ़ेंगे। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है कि विजय नगर साम्राज्य को वर्तमान कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और तमिलनाडु प्रदेशों में और बहमनी साम्राज्य को कर्नाटक, आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र में देखा जा सकता है।
3. पश्चिम भारत से हम गुजरात और मराठों का अध्ययन करेंगे। गुजरात को आज भी इसी नाम से जाना जाता है और मराठों का आजकल के महाराष्ट्र, तमिलनाडु और भारत के कुछ अन्य भागों पर नियंत्रण था।
4. और अंत में पूर्वी भारत में हम बंगाल के इतिहास का अध्ययन करेंगे।

भारत के इतिहास में प्रादेशिकता और प्रादेशिक राज्यों का लगातार उद्‌भव और विकास होता रहा है। प्रादेशिक राज्यों के उदय की व्याख्या कैसे की जाएगी? सातवीं सदी ईस्वी से लेकर, जिसे प्रारंभिक मध्यकाल माना जाता है, 17वीं और 18वीं सदी तक क षि और क षि संबंधी गतिविधियों ने प्रादेशिक राज्यों के विकास में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जहां भी अच्छी क षि संबंधी गतिविधियां मौजूद रही हैं, इसने न सिर्फ लोगों की भूख को शांत किया है, बल्कि इससे अधिक पैदावार भी हुई, जिसे बेचकर धन कमाया जा सका था। भू–मार्ग और जलमार्ग से होने वाले व्यापार और व्यापारिक गति–विधियों ने भी राजस्व कमाने के बहुत महत्त्वपूर्ण स्रोत प्रदान किए। उस समय के दौरान समाज में हम ऐसे शक्तिशाली वर्गों के उद्‌भव को रेखांकित कर सकते हैं, जो बढ़ती क षि उत्पादों की बढ़ोतरी को नियंत्रित करते थे। कई बार इस शक्तिशाली वर्ग के कुछ सदस्यों ने अपना अधिकार भी जताया और राजनीतिक शक्ति प्राप्त कर राजा बन गए और साम्राज्यों की स्थापना की। इसी ने ही राज्यों की स्थापना की नींव रखी। कई बार बाहर से भी कुछ समूहों ने प्रवेश किया और यहां पर कई इलाकों को जीता और वहां का प्रशासनिक नियंत्रण अपने हाथ में लेकर बहुत शक्तिशाली स्थान ग्रहण किया।

यह सच है कि बड़ी संख्या में तेरहवीं सदी के पश्चात् प्रादेशिक राज्यों का उदय दिल्ली सल्तनत की अंदरूनी कमजोरी की वजह से हुआ। इसी प्रकार मुगल शासन के पतन के पश्चात्, अठारहवीं सदी में महत्त्वपूर्ण प्रदेशों का उदय हुआ। परन्तु इन सभी प्रदेशों का

अपना निजी इतिहास था, जो दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य, दोनों से पहले भी मौजूद था। उदाहरण के लिए बंगाल, आठवीं और नवीं सदी में पालों के अधीन और उसके बाद बारहवीं सदी में सेनों के अधीन एक महत्त्वपूर्ण प्रादेशिक साम्राज्य था। यह तेरहवीं और पन्द्रहवीं सदी के दौरान स्वतंत्र प्रदेश था और अठारहवीं सदी में भी यह बहुत शक्तिशाली प्रादेशिक साम्राज्य रहा। जैसा कि हम सभी जानते हैं, दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य ने अनेक विभिन्न सांस्क तिक क्षेत्रों पर शासन किया। इसीलिए यह याद रखना चाहिए कि प्रादेशिक राजवंश शक्ति ग्रहण करते रहे या कभी हारते रहे या उन्होंने अपनी भौगोलिक सीमाओं को भी बदला, परन्तु प्रादेशिकता का अस्तित्व हमेशा मौजूद रहा।

प्रादेशिकता क्या है? राजनीतिक विशेषताओं, जैसे प्रादेशिक शासकीय राजवंशों के अतिरिक्त प्रादेशिकता की कुछ अन्य विशेषताएं भी हैं, जो इन प्रादेशिक राज्यों में विकसित और पल्लवित हुईं और समय के साथ बदलती गईं। प्रादेशिकता की कुछ विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. एक महत्त्वपूर्ण पक्ष है 'भाषा'। उदाहरण के तौर पर उड़िया, गुजराती, बँगला, तमिल, तेलुगू, कन्नड और मराठी आदि कई भाषाएं भारत के विभिन्न क्षेत्रों में बोली जाती हैं, जिन्हें प्रादेशिक भाषाएं कहते हैं। ये भाषाएं प्रारंभिक मध्य और मध्य युग में विकसित हुईं और विशिष्ट क्षेत्रों से सबंधित रहीं। यद्यपि ये भाषाएं किसी–न–किसी रूप में इससे पहले भी अस्तित्व में थीं, परन्तु ग्यारहवीं और बारहवीं सदियों में ही मूलतः इन प्रादेशिक भाषाओं को सरकारी दस्तावेजों में प्रयोग में लाया गया। साहित्यिक रचनाएं और स्थानीय साहित्य की रचनाएँ इन भाषाओं में लिखी जाने लगीं। मध्य युग में प्रादेशिक भाषाओं के प्रयोग के साथ–साथ, दार्शनिक ग्रन्थों में संस्क त का प्रयोग भी होता रहा। तथापि दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य के अधिकांश सरकारी दस्तावेज़ और कुछ प्रादेशिक राज्यों के दस्तावेज फारसी में लिखे जाते थे।

2. एक अन्य विशिष्टता है, स्थानीय प्रादेशिक उपासना पद्धति और धार्मिक जुड़ाव। उदाहरण के लिए उड़ीसा में जगन्नाथ की उपासना केवल उड़ीसा प्रदेश में ही सीमित थी। यह राज्य का पंथ या संप्रदाय बन गया और शासकों ने भी इसे अपना लिया, उनके लिए एक भव्य मंदिर बनवाया और हर वर्ष इसके साथ जुड़े उत्सव मनाए जाने लगे। इतिहासकारों का कहना है कि जगन्नाथ एक जनजातीय देवता थे, जिनकी लोकप्रियता ने शासकों को इसे राज्य के पंथ या संप्रदाय के रूप में अपनाने के लिए प्रेरित किया। अगले भाग में हम राज्य और धर्म के परस्पर संबंधों पर प्रकाश डालेंगे। प्रादेशिक क्षेत्रों में बहुत बड़ी संख्या में धार्मिक सम्प्रदाय और 'भक्ति' धर्म विकसित हो गए। उदाहरण के लिए नामदेव, रैदास, तुकाराम, गुरूनानक प्रादेशिक राज्यों में मौजूद थे। धर्मों की भी अपनी पौराणिक कथाएं, दंतकथाएं और परिभाषाएं तथा धार्मिक कर्मकांड होते हैं। क्या आप जानते हैं कि उत्तर भारत में शिव–पार्वती के पुत्र कार्तिकेय, अविवाहित माने जाते हैं और तमिल क्षेत्र में उनकी दो पत्नियां हैं देवयानी और वल्ली। प्रत्येक क्षेत्र के अपने स्थानीय देवी–देवता और विभिन्न मंदिर और मस्जिदों का वास्तुशिल्प था। दिलचस्प बात यह है कि इन प्रादेशिक भिन्नताओं के बावजूद जहाँ हर क्षेत्र की अपनी विशिष्ट परम्पराएं थीं, वहीं प्रादेशिक परम्पराओं में समानताएं भी थीं। संत और पुजारी एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में

स्थानांतरित हुए। उदाहरण के लिए सूफी संत, गेसू दराज़ (1321–1422), जो दिल्ली में स्थापित चिश्ती सिलसिले से संबंध रखते थे, दिल्ली से दक्कन क्षेत्र के दौलताबाद में 1328 में तब स्थानांतरित हुए थे, जब वे बच्चे थे। सात साल के बाद, 1335 ईस्वी में वे दिल्ली वापिस आ गए और 63 वर्ष तक यहां रहे। चौदहवीं सदी के अंत में, 1398 में, जब तुर्की आक्रमणकारी तैमूर ने मध्य एशिया से दिल्ली पर आक्रमण किया तो गेसू दराज़ ने स्वयं को दोबारा दक्कन में स्थानांतरित कर लिया।

3. प्रादेशिक राज्य एक–दूसरे से कटे हुए बिलकुल अलग–थलग क्षेत्र नहीं थे। राज्यों में परस्पर धार्मिक क्रिया–कलापों के अतिरिक्त व्यापार और वाणिज्य तथा कारीगरों के एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में स्थानांतरण के जरिये भी परस्पर लेन–देन का जाल बिछा हुआ था। उदाहरण के लिए, पन्द्रहवीं शताब्दी में रेशम के बुनकर, पट्टनुलकरों ने गुजरात क्षेत्र से विजय नगर राज्य में स्थानांतरण किया। विजय नगर और बहमनी साम्राज्यों में अफ्रीकियों और ईरानियों का स्थानांतरण भी देखने में आया।

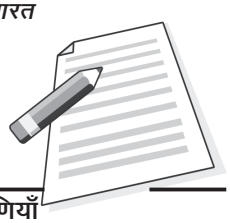
4. एक अन्य विशेषता बिहार, बंगाल, असम, मध्य भारत, राजस्थान व अन्य स्थानों पर प्रादेशिक कला शैलियों का स्थानीय और प्रादेशिक स्तर पर विकास होना है। इस प्रक्रिया के परिणामस्वरूप प्रादेशिक विशिष्ट पहचान बनीं और इनमें बदलाव आते गए, जो प्राचीन काल में अस्तित्व में नहीं थे। विविध प्रादेशिक राजवंशों ने कला, संस्क ति, साहित्य और वास्तुशिल्प को संरक्षण प्रदान किया। इस प्रकार अनेक प्रादेशिक राज्यों के अस्तित्व से किसी प्रकार की अव्यवस्था और भ्रम पैदा नहीं हुआ। इन राज्यों की आपस में लड़ाइयाँ भी हुईं, परन्तु उन्होंने अपने–अपने प्रदेशों को स्थिरता भी प्रदान की। जैसा कि ऊपर बताया गया है, उनकी अपनी एक निजी जीवन्त संस्क ति थी। प्रादेशिक राज्यों ने वास्तुशिल्प और राजनीतिक संस्क ति में एक दूसरे को बहुत प्रभावित किया। उदाहरण के लिए विजय नगर के प्राचीन शासक खुद को 'हिन्दू सुरतराणा' कहते थे, जिसका अर्थ है हिन्दू सुल्तान, यहां 'सुल्तान' शब्द दिल्ली सल्तनत से लिया गया है। इसी प्रकार दिल्ली सल्तनत की 'इकतादारी प्रणाली' का प्रभाव विजय नगर और बहमनी साम्राज्यों की प्रशासनिक पद्धति पर पड़ा।

प्रादेशिक राज्यों और दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य जैसे साम्राज्य में क्या अंतर है? ऊपर उल्लिखित की गई किसी विशेष क्षेत्र की विशिष्ट भाषा और संस्क ति के अतिरिक्त, इन राज्यों की राजनीतिक और सैनिक क्षमताओं को भी प्रादेशिक सीमाओं द्वारा सीमित किया गया था।

पाठगत प्रश्न 11.1

1. भारत में प्रादेशिकता की चार विशेषताओं की सूची बनाएं।

2. मध्य काल के दौरान भारत में विकसित प्रादेशिक कला शैलियों के नाम लिखें।



3. मध्य काल के दौरान भारत के विभिन्न क्षेत्रों में कौन–से भक्ति धर्मों का उदय हुआ ।

11.2 प्रादेशिक राज्यों का उद्भव : सामान्य इतिहास

पिछले अध्यायों में आपने सातवीं से तेरहवीं सदी तक की अवधि के प्रादेशिक राज्यों के संबंध में पढ़ा। इन राज्यों का क्या हुआ? क्या ये राज्य मध्यकालीन भारतीय राजनीतिक परिद श्य से पूरी तरह समाप्त हो गए? इनमें से बहुत बड़ी संख्या में ये प्रादेशिक राज्य तेरहवीं सदी के बाद भी अस्तित्व में बने रहे, परन्तु इन राज्यों पर शासन करने वाले राजवंशों और भूगोल में परिवर्तन आते रहे। इस खंड में आप तेरहवीं से अठारहवीं सदी की अवधि के दौरान प्रादेशिक राज्यों के संबंध में सामान्य जानकारी प्राप्त करेंगे।

दिल्ली सल्तनत का कई राज्यों जैसे–बंगाल, बिहार, गुजरात, मालवा, राजस्थान के अनेक राजपूत राज्य जैसे रणथम्भौर, जालौर, नागौर, अजमेर, दक्कन प्रदेश के वारंगल व तेलंगाना राज्य, देवगीर के यादव और दक्षिणी राज्यों में द्वारसमुद्र के हॉयसल, मदुरई के पाण्ड्य और इसी प्रकार के अनेक राज्यों के साथ जुड़ने के कारण विस्तार हुआ। अलाउद्दीन खिलजी की अनेक लड़ाइयों और मोहम्मद–बिन–तुगलक के काल में राजधानी को दिल्ली से दौलताबाद, दक्कन में स्थानांतरित होने के संबंध में हम पहले ही पढ़ चुके हैं। जिन प्रदेशों को सल्तनत के साथ जोड़ा गया था। वे विभिन्न प्रांत बने और उन्हें प्रांतीय सूबेदार के प्रशासन के अधीन रखा गया। तेरहवीं सदी में दिल्ली सल्तनत की स्थापना से लेकर पन्द्रहवीं सदी में इसके पतन की अवधि तक, प्रांतों, जो कि पहले स्वतंत्र राज्य थे, केन्द्र दिल्ली के साथ परस्पर अन्तःक्रिया होती रही। परन्तु इन क्षेत्रों से सिर उठाने वाले विद्रोहियों को कभी पकड़ा नहीं जा सका। हम सभी जानते हैं कि राजकुमार के रूप में मोहम्मद बिन तुगलक ने अपना संपूर्ण जीवन काल दक्कन, उड़ीसा और बंगाल के बागियों को दबाने में बिताया। यद्यपि अब यह क्षेत्र दिल्ली सल्तनत का भाग था, परन्तु भाषा, कला, साहित्य और धर्म जैसी प्रादेशिक विशेषताएं अभी भी इसमें मौजूद थीं। असल में जब इस्लाम यहां पहुंचा तो इसने यहां कि प्रादेशिक विशेषताओं को ग्रहण किया। इन प्रदेशों में पहले से ही मुस्लिम व्यापारियों और सेना में नियुक्त मुस्लिमों की संख्या मौजूद थीं। फिर भी सल्तनत के प्रांतीय सूबेदारों ने स्थानीय 'राजाओं' और 'ज़मींदारों' के साथ मित्रता की और उनकी स्वतंत्रता को स्वीकार किया। चौदहवीं सदी के पश्चात् जब दिल्ली सल्तनत का पतन हो रहा था, तो अधिकांशतः प्रादेशिक राज्य सूबेदारों की बगावत का परिणाम थे। विजय नगर और बहमनी की स्थापना क्रमशः हरिहर व बुक्का और अलाउद्दीन हसन बहमन शाह जैसे प्रांतीय अधिकारियों द्वारा अपना अधिकार जमाने के परिणामस्वरूप हुई थी। इसी अवधि के दौरान पूर्व में बंगाल और पश्चिम में मुल्तान और सिंध स्वतंत्र हो गए। फिरोज शाह तुगलक ने अपने खोये हुए प्रदेशों को फिर से हासिल करने की कोशिश की मगर कामयाब नहीं हुआ। उसने बंगाल को जीतने का भी एक असफल प्रयास किया। उसने जाजनगर (उड़ीसा) पर भी आक्रमण किया और वहाँ लूटपाट की मगर, उसे भी अपने राज्य में नहीं मिला सका। उसने कांगड़ा को लूटा और गुजरात और थाट्टा में विद्रोह को दबाया।

1338 में फिरोजशाह तुगलक की म त्यु के साथ ही सल्तनत का पतन शुरू हो गया था। जैसा कि हमने अभी उल्लेख किया है, बहुत बड़ी संख्या में स्थानीय सूबेदार शक्तिशाली बन गए थे और प्रदेशों में उन्होंने स्वतंत्र अधिकार की घोषणा कर दी। सुल्तान और कुलीनों के परस्पर संबंध बिगड़ने लगे। स्थानीय शासकों और जमींदारों के आपसी झगड़ों के साथ–साथ प्रादेशिक और भौगोलिक तनावों ने सल्तनत को और कमजोर बना दिया। पतन की ओर बढ़ती सल्तनत को एक बड़ा झटका 1398 ई. में तैमूर के आक्रमण से लगा। तैमूर एक तुर्की था और मध्य एशिया से भारत में यहाँ की सम्पदा लूटने के लिए आया था। तैमूर ने दिल्ली में प्रवेश किया और उसने बड़ी बेरहमी से हिन्दुओं, मुसलमानों, औरतों और बच्चों का कत्ल किया।

दिल्ली पर तैमूर के हमले के पन्द्रह वर्ष बाद दिल्ली सल्तनत का पतन हो गया। गुजरात, मालवा और वाराणसी के पास जौनपुर की सल्तनतें शक्तिशाली प्रादेशिक साम्राज्यों के रूप मे उभरीं। गुजरात और जौनपुर लगातार दिल्ली सल्तनत के लोधियों के साथ (1451 से 1526 ई. तक) तनाव में उलझे रहे। दिल्ली सल्तनत से स्वतंत्र, नए प्रादेशिक राज्य मध्य और दक्षिण भारत में भी उभर कर आए, जिनमें से प्रमुख थे उड़ीसा का गजपति, बहमनी और विजय नगर साम्राज्य। बहलोल लोधी (1451–1485) और सिकंदर लोधी (1489–1526) जैसे लोधी सुल्तानों ने इन प्रादेशिक राज्यों को अपने नियंत्रण में करने का प्रयास किया। अन्त में, इब्राहिम लोधी के शासन के दौरान (1517–1526) बिहार ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। पंजाब के सूबेदार दौलत खान ने बगावत कर दी और 1526 में बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया।

1526 ई. में मुगल साम्राज्य की स्थापना और बाद की अवधि में इसके विस्तार के बाद प्रादेशिक राज्यों में राज करने वाले राजवंशों की शक्ति धीरे–धीरे क्षीण होने लगी और कालान्तर में ये राज्य मुगल साम्राज्य का हिस्सा बन गए। परन्तु भाषा, कला, साहित्य और धर्म इत्यादि जैसी विशेषताएं कुछ परिवर्तनों के साथ मौजूद रहीं। अठारहवीं सदी में मुगलों के पतन के बाद प्रांतीय सूबेदारों ने बगावत भी की और कुछ राज्य जो मुगल साम्राज्य के साथ जोड़े गए थे, उन्होंने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी। इसके परिणामस्वरूप नए प्रादेशिक साम्राज्यों का उदय हुआ, जैसे पंजाब, बंगाल, अवध, हैदराबाद, मैसूर और मराठा।

पाठगत प्रश्न 11.2

1. सल्तनत का पतन कब शुरू हुआ?

2. इब्राहिम लोधी के शासन–काल में किन दो प्रदेशों ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा की?

प्रादेशिक राज्यों का इतिहास : कुछ विशेष अध्ययन

11.3 जौनपुर

वर्तमान में जौनपुर पूर्वी उत्तर प्रदेश में वाराणसी में, गोमती नदी के किनारे स्थित है। दिल्ली सल्तनत के पूर्वी भाग में यह एक सम द्ध प्रांत था। जौनपुर का सूबेदार मलिक

सरवर था, जो फिरोजशाह तुगलक के काल में महत्त्वपूर्ण कुलीन था। 1394 में, सुल्तान नसीरूद्दीन मोहम्मद शाह तुगलक ने उसे मंत्री बना कर उसे सुल्तानु–शर्क की उपाधि दी, जिसका अर्थ है पूर्व का स्वामी। इसके बाद उसे मलिक सरवर सुल्तानुस शर्क के नाम से जाना गया। तैमूर के आक्रमण और दिल्ली सल्तनत के शक्तिहीन होने पर मालिक सरवर ने कमज़ोर राजनीतिक परिस्थितियों का लाभ उठाकर खुद को स्वतंत्र शासक घोषित कर दिया। मलिक सरवर का उत्तराधिकारी बना उसका पुत्र मुबारक शाह शरकी। सुल्तान ने अपने नाम के सिक्के भी चलाए। उसके शासन काल में दिल्ली सल्तनत का शासक महमूद शाह तुगलक था, जिसने जौनपुर को जीतना चाहा, परंतु असफल रहा। इसके बाद जौनपुर के शासकों और दिल्ली सल्तनत के बीच लगातार तनावपूर्ण स्थिति रही। शरकी सुल्तानों ने दिल्ली को जीतने की कई बार कोशिशें की, परन्तु वे कभी सफल नहीं हो सके। 1402 में, मुबारक शाह का भाई, इब्राहिम शाह शरकी सुल्तान बना और उसने चौंतीस वर्ष तक जौनपुर पर शासन किया। इब्राहिम विद्वान था और इस्लाम धर्म, दर्शन और कानून, संगीत और ललित कलाओं का भी अच्छा ज्ञाता था। वह वास्तुशिल्प का महान संरक्षक था। उसने 'शरकी शैली' के नाम से जानी जाने वाली वास्तुशिल्प की विशिष्ट शैली का विकास किया, जिस पर हिन्दुओं का भी कुछ प्रभाव था। अपने शीर्ष पर शरकी सल्तनत का विस्तार पश्चिमी उत्तर प्रदेश में अलीगढ़ से, पूर्व में उत्तरी बिहार के दरभंगा तक और उत्तर में नेपाल से दक्षिण में बुंदेलखंड तक फैला हुआ था। हुसैन शाह शरकी के शासन काल के दौरान (1458–1505) बहलोल लोधी के साथ एक बहुत लंबी लड़ाई शुरू हुई। बहलोल लोधी ने 1484 में जौनपुर पर आक्रमण किया और हुसैन शाह को भागना पड़ा। अन्त में, बहलोल लोधी के उत्तराधिकारी सिकंदर लोधी ने जौनपुर को अपने राज्य के साथ जोड़ा। हुसैन शाह की म त्यु होने पर शरकी राजवंश का अन्त हो गया।

11.4 कश्मीर

कश्मीर भारत के उत्तरी भाग में स्थित है। ग्यारहवीं सदी में कश्मीर के शासक शैव धर्म के अनुमायी थे, इसलिए शैव धर्म कश्मीर का प्रमुख धर्म बन गया था। यह चारों तरफ से घिरा बंद साम्राज्य था। एक अरब यात्री अलबरूनी जिसने इस अवधि में भारत में यात्रा की, ने अपनी पुस्तक, अल–हिन्द में उल्लेख किया है कि यहाँ तक कि किसी बाहरी हिन्दू को भी कश्मीर में प्रवेश की इजाज़त नहीं थी। 1320 में, कश्मीर के शासक राजवंश मंगोलों के आक्रमण के विनाशक प्रभाव पर नियंत्रण नहीं रख पाए। इसीलिए उन्होंने पूरा जनसमर्थन खो दिया। 1339 में शम्सुद्दीन शाह ने शैव शासकों को राजसिंहासन से हटाया और खुद कश्मीर का शासक बन बैठा। इस अवधि के बाद से कश्मीरी समाज पर इस्लाम का प्रभाव पड़ने लगा। सूफी संतों का एक समूह, जिन्हें ऋषि कहते थे, ने एक ऐसे धर्म का प्रचार शुरू किया, जिसमें हिन्दू धर्म और इस्लाम दोनों की विशेषताएं थीं। सूफी संत और शरणार्थी, मध्य एशिया से आकर कश्मीर में स्थानांतरित हो गए और उन्होंने भी आगे जाकर समाज और धर्म को प्रभावित किया। धीरे–धीरे जनता के गरीब वर्ग ने इस्लाम धर्म को अपनाना शुरू कर दिया। राज्य की ओर से इस्लाम को प्रोत्साहन तब मिला जब कश्मीरी सुल्तान, सिकंदर शाह (1389-1413) ने एक हुकुमनामा जारी किया कि सभी हिन्दू, खास तौर पर ब्राह्मण, जो इस प्रदेश में निवास कर रहे हैं वे या तो इस्लाम धर्म को अपना लें अथवा साम्राज्य को छोड़कर चले जाएं। ऐसा कहा जाता

है कि यह हुकुमनामा राजा के मंत्री, सूहा भट्ट के कहने पर जारी किया गया था, जो एक हिन्दू था और जिसने हाल ही में इस्लाम धर्म कबूल किया था।

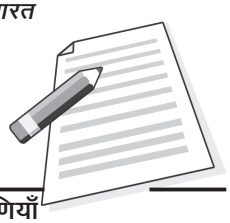
शायद जैनुल आबिदीन (1420-1470) कश्मीर का सबसे बड़ा शासक था। वह बहुत बुद्धिमान शासक था और उसने उन सभी हिन्दुओं को वापस बुला लिया, जो सिकंदर शाह के उत्पीड़न की वजह से राज्य को छोड़कर चले गए थे। उसने जज़िया और गौवध बंद करवा दिया और हिन्दुओं को राज्य के महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त किया। बड़ी संख्या में मंदिरों की मरम्मत कराई गई और नए मंदिर भी बनवाए गए। मुगल बादशाह अकबर के दरबारी इतिहासकार, अबुल फज़ल ने लिखा है कि कश्मीर में एक सौ पचास बड़े मंदिर हैं। सुलतान ज़ैनुल आबिदीन ने जम्मू के हिन्दू राजा की पुत्री से विवाह किया था। कुछ विद्वान जैनुल आबिदीन को कश्मीर का अकबर भी कहते थे। उसके शासन काल में कश्मीर बहुत सम द्ध हुआ और उसे बुड शाह या कश्मीरियों का महान राजा कहा गया।

सुल्तान ने बांध और नहरें बनाकर कश्मीर के क षि संबंधी विकास में बहुत योगदान किया। क षि संबंधी पैदावार का अभिलेख रखा जाता था। सूखा और अन्य प्राक तिक आपदाओं के दौरान, किसानों को ऋण और अनाज और चारे के रूप में सहायता दी जाती थी।

सुल्तान ने मुद्रा में भी सुधार शुरू किए। उसने बाज़ार पर नियंत्रण और उपभोक्ता वस्तुओं के निश्चित मूल्यों की भी शुरूआत की। जिन उपभोक्ता वस्तुओं की राज्य में कमी थी, सुल्तान ने उन चीजों के आयात पर भी मूल्यों में सहायता प्रदान की। नमक की कमी को पूरा करने के लिए, उसने लद्दाख से नमक मंगवाया और व्यापारियों की हरसंभव तरीके से मदद की। सुल्तान ने हस्तशिल्पों के विकास पर भी बहुत ध्यान दिया। उसने कागज़ बनाने और पुस्तकों की जिल्द बांधने के काम का प्रशिक्षण लेने के लिए कुछ लोगों को समर–कंद भेजा। सुल्तान ने पत्थरों को तराशने और उन्हें पॉलिश करने और कई अन्य दस्तकारियों को भी प्रोत्साहित किया। उसने कालीन और शॉल बनाने की कला की शुरूआत कराई, जिसके लिए कश्मीर आज भी प्रसिद्ध है। सुल्तान ने ज़ैनगीर, ज़ैनखेत और ज़ैनपुर शहरों की नींव रखी और उस झील पर एक टापू बसाया जिसे आज भी देखा जा सकता है। उसकी सबसे प्रमुख यांत्रिक सफलता वूलर झील पर 'जायना लंका', नाम से एक क त्रिम टापू बनाना था जिस पर उसने अपना महल और एक मस्जिद बनाई।

वह फारसी, संस्क त, तिब्बती और अरबी भाषाओं का बहुत बड़ा विद्वान था और उसने संस्क त और फारसी विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया। उसके संरक्षण में महाभारत और कल्हण की राजतरंगिणी का फारसी में अनुवाद हुआ और बहुत सी फारसी और अरबी रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद हुआ। वह खुद भी एक कवि था और उसने 'कुतुब' के नाम से अनेक कविताएं लिखीं।

उसके बाद कश्मीर के सिंहासन पर शक्तिहीन शासकों का राज हुआ, जिससे भ्रम पैदा हुआ। इस स्थिति का फायदा उठाकर बाबर के रिश्तेदार ने कश्मीर पर कब्जा कर लिया। 1586 में अकबर ने कश्मीर पर जीत हासिल की और इसे मुगल साम्राज्य का हिस्सा बनाया।

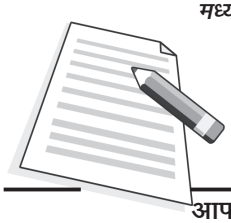


11.5 बंगाल

बंगाल आठवीं सदी में पालों के और बारहवीं सदी में सेनों के अधीन एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण प्रादेशिक साम्राज्य था। बंगाल दिल्ली सल्तनत का सुदूर पूर्वी प्रांत था। अत्यधिक दूरी, असहनीय वातावरण और परिवहन और संचार के कम साधनों की वजह से दिल्ली सल्तनत का इस प्रदेश पर नियंत्रण रख पाना बहुत कठिन था। इसलिए, बंगाल के लिए अपना स्वतंत्र अधिकार जताना बहुत आसान था। गयासुद्दीन तुगलक ने बंगाल को लखनौटी, सतगांव और सोनारगांव के तीन स्वतंत्र प्रशासकीय क्षेत्रों में बांटकर इस समस्या का समाधान करना चाहा। परन्तु इन समस्याओं का समाधान नहीं हो सका और अंत में बंगाल चौदहवीं सदी में, एक स्वतंत्र प्रादेशिक राज्य बनकर उभरा।

1342 में एक कुलीन हाजी इलियास खान ने बंगाल को संगठित किया और शम्सुद्दीन इलियास शाह की उपाधि हासिल करके वहाँ का शासक बन गया और उसने इलियास शाह राजवंश की नींव रखी। उसने बंगाल को अपने साथ जोड़ने की कोशिश की और उड़ीसा और तिरहुट पर धावा बोला और उन्हें नजराना देने के लिए मजबूर किया। इस प्रकार के विस्तारों ने दिल्ली सल्तनत के शासकों को सतर्क कर दिया, जिन्होंने बंगाल को जीतने के लिए अनेक बार कोशिशें कीं, परन्तु सफल नहीं हो सके। इलियास शाह राजवंश के महत्त्वपूर्ण शासकों में से एक था, गयासुद्दीन आज़म। वह विद्वान व्यक्ति था और उसने फारसी साहित्य को प्रोत्साहित किया। वह लोगों को स्वतंत्र और सही न्याय देने के लिए प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि एक बार उसने दुर्घटनावश एक विधवा के पुत्र की हत्या कर दी। विधवा ने काज़ी के पास इसकी शिकायत दर्ज करा दी, जिसने शासक को न्यायालय में बुलाया। जब इस मामले का निर्णय हुआ, आज़म ने काज़ी से कहा कि अगर उसने अपने कर्त्तव्य का ईमानदारी से पालन नहीं किया होता, तो उसने उसे मार दिया होता। आज़म के चीन के साथ बहुत मधुर संबंध थे। बंगाल और चीन के बीच बहुत सम द्ध व्यापारिक संबंध थे। चटगांव का बंदरगाह वस्तु–विनिमय का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण केंद्र था। चीन के बादशाह की मांग पर आज़म ने बंगाल से बौद्ध भिक्षु भी वहां भेजे थे। पांडुआ और गौड़, बंगाल की राजधानियां थीं।

1538 में शेरशाह सूरी ने बंगाल को अपने राज्य में मिला लिया। 1586 में अकबर ने बंगाल को जीत लिया और इसे एक 'सूबा' बना दिया। फारसी प्रशासन की भाषा थी, परन्तु बँगला प्रादेशिक भाषा के रूप में विकसित हुई। बंगाल पर मुगलों का नियंत्रण स्थापित होने के साथ–साथ बंगाल के दक्षिण–पूर्वी इलाके के वन–क्षेत्र में भारी संख्या में मछुआरों और किसानों के स्थानीय समुदायों की भारी संख्या में आबादी बढ़ी। मुगलों ने ढाका में, पूर्वी डेल्टा के बीचोंबीच अपनी राजधानी स्थापित की। सरकारी कर्मचारियों और अधिकारियों को अनुदान में भूमि दी गई और वे यहीं बस गए। अलाउद्दीन हुसैन शाह (1439 से 1519 तक), बंगाल का एक अन्य महत्त्वपूर्ण शासक था। वह बहुत ही कुशल शासक था और उसने हिन्दुओं को ऊंचे प्रशासकीय पदों पर नियुक्त किया और कहा जाता है कि उसने वैष्णव सम्प्रदाय के चैतन्य को बहुत सम्मान दिया। सिकंदर लोधी के साथ उसकी लड़ाई हो गई और इसके बाद उसे उसके साथ शांति समझौता करना पड़ा।



आपकी टिप्पणियाँ

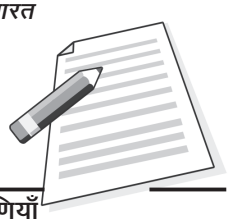
11.6 गुजरात

यह एक बहुत ही उपजाऊ और सम द्ध प्रांत था। यहां पर बहुत ही विकसित बंदरगाह थे और यह अपने हस्तशिल्पों के लिए भी बहुत प्रसिद्ध था। अलाउद्दीन खिलजी पहला ऐसा सुल्तान था, जिसने इसे दिल्ली सल्तनत के साथ जोड़ा और तब से यह सल्तनत के तुर्की सूबेदारों के अधीन रहा। 1407 में तैमूर के आक्रमण के बाद ज़फ़र ख़ान जो कि उस समय वहां का सूबेदार था, स्वतंत्र शासक बन गया और कुछ समय के बाद उसने मुजफ़्फर शाह की उपाधि स्वीकार कर ली। ज़फ़र खान के पिता राजपूत थे, जिसने अपनी बहन का विवाह फिरोज़ शाह तुगलक से कराया था।

अहमद शाह (1411-1441) गुजरात के प्रमुख शासकों में से एक था। इसने अहमदाबाद शहर की नींव रखी और 1413 में इसे राजधानी बनाया। इसने जामा मस्जिद और तीन दरवाज़ा जैसे खूबसूरत भवन बनवाए और उद्यानों, महलों और बाज़ारों का सौंदर्यीकरण करवाया। अहमद शाह गुजरात के जैन वास्तुशिल्प से बहुत प्रभावित था। वह एक बहुत कुशल प्रशासक था और उसने गुजरात के प्रादेशिक राज्य को संगठित किया। उसने झालावाड़, बूंदी और दुर्गापुर के राजपूत प्रदेशों को पराजित किया। उसे एक कट्टर मुस्लिम माना जाता था, जिसने हिन्दुओं पर जज़िया लगाया और अनेक मंदिरों का विनाश किया। इसके साथ ही उसने हिन्दुओं को महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर नियुक्त किया। अहमद शाह ने हिन्दुओं और मुसलमान दोनों शासकों के साथ घमासान युद्ध किया। उसका सबसे बड़ा शत्रु था, मालवा का मुस्लिम शासक। गुजरात और मालवा के बीच घोर दुश्मनी थी, जिसने इन दोनों प्रादेशिक राज्यों को उत्तर भारतीय राजनीति के बड़े राजनीतिक फायदों पर ध्यान केंद्रित नहीं करने दिया। वह अपनी न्यायप्रियता के लिए प्रसिद्ध था। उसने खुलेआम अपने दामाद का कत्ल कर दिया, जिसने एक मासूम की हत्या की थी। मीरात–ए–अहमदी के इस रचनाकार ने सही कहा था कि उसके न्याय का असर उसके संपूर्ण शासन के दौरान मौजूद रहा।

शायद गुजरात का सबसे महत्त्वपूर्ण शासक महमूद (बेगढ़) था। उसे महमूद बेगढ़ शायद इसीलिए कहा जाता था कि उसने दो शक्तिशाली किलों या गढ़ सौराष्ट्र में गिरनार (जूनागढ़) और दक्षिण गुजरात में राजपूतों से चांपानेर किलों को जीता था। इन दोनों किलों की युद्ध नीति की द ष्टि से बहुत महत्ता थी। गिरनार का किला सौराष्ट्र के बहुत सम द्ध क्षेत्र में स्थित था और इसने सिंध के खिलाफ अभियानों के लिए आधार स्थल उपलब्ध कराया। सुल्तान ने पहाड़ी ढलान पर मुस्तफाबाद नामक नया शहर बसाया। बहुत से खूबसूरत भवनों वाला यह शहर गुजरात की दूसरी राजधानी बना। इसी प्रकार चंपानेर का किला भी मालवा और खानदेश के नियंत्रण में बहुत महत्त्वपूर्ण था। महमूद ने चंपानेर के पास मोहम्मदाबाद के नाम से एक नया शहर बसाया।

कुछ लोगों का विचार था कि उसे बेगढ़ इस लिए कहते थे, क्योंकि उसकी मूछें गाय (बेगरहा) के सींगों से मिलती थीं। कहते हैं कि महमूद खुली दाढ़ी रखता था, जिसकी लंबाई उसकी कमर तक थी। उसकी मूछें इतनी लंबी थी कि वह इन्हें अपने सिर के ऊपर बांधता था। एक विदेशी यात्री, डॅयूआरटो बारबोसा के मुताबिक, महमूद को बचपन से ही भोजन में ज़हर खिलाया जाता था जिसने उसे इतना ज़हरीला बना दिया था कि अगर कोई मक्खी भी उसके सिर पर बैठ जाती तो तुरंत मर जाती थी। महमूद अपनी बेइंतहा भूख के



लिए भी प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि वह अपने नाश्ते में एक प्याला शहद, एक प्याला मक्खन और एक सौ से डेढ़ सौ तक केले खाता था। कुल मिलाकर वह एक दिन में दस से पन्द्रह किलो खाना खाता था।

महमूद बेगढ़ ने 52 वर्ष तक शासन किया। वह कला और साहित्य का भी बहुत बड़ा संरक्षक था। उसके दरबार में बहुत–सी फारसी और अरबी रचनाओं का अनुवाद किया गया। उसके दरबारी कवि थे 'उदयराज', जिन्होनें संस्क त में काव्य रचनाएं कीं।

1507 में महमूद ने उन पुर्तगालियों के खिलाफ अभियान की अगुवाई की, जो पश्चिमी समुद्र–तट पर बस गए थे और जिन्होंने वहां के व्यापार पर एकाधिकार हासिल कर लिया था और जिनकी वजह से मुस्लिम व्यापारियों को बहुत नुकसान पहुंच रहा था। पुर्तगालियों के व्यापारिक एकाधिकार को खत्म करने के लिए उसने तुर्की के सुल्तान की सहायता माँगी, परन्तु उसे बहुत ज़्यादा कामयाबी नहीं मिली और अंत में उसे पुर्तगालियों को कारखाना बनाने के लिए दीव में जगह देनी पड़ी। 1511 में उसकी म त्यु हो गई। उसके उत्तराधिकारियों के शासनकाल के दौरान अकबर ने 1572 ई. में गुजरात को जीत कर अपने साम्राज्य में मिला लिया।

पाठगत प्रश्न 11.3

1. शरक़ी सल्तनत का विस्तार किन क्षेत्रों में हुआ?

2. कश्मीर का अकबर किसे कहते थे?

3. इलियास शाह राजवंश की नींव किसने रखी?

4. अहमद शाह ने किस शहर की नींव रखी?

11.7 बहमनी सल्तनत

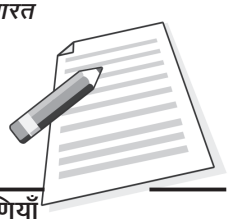
चौदहवीं सदी में दक्षिण भारत में दो बहुत शक्तिशाली साम्राज्यों का उद्भव हुआ। एक था बहमनी सल्तनत और दूसरा था विजयनगर साम्राज्य जिसने 300 वर्षों तक शासन किया। इस भाग में हम बहमनी सल्तनत के इतिहास और उसकी प्रशासनिक विशेषताओं पर चर्चा करेंगे।

दक्कन क्षेत्र दिल्ली सल्तनत के प्रांतीय प्रशासन का भाग था। दक्कन में स्थिर प्रशासन स्थापित करने के लिए, मोहम्मद बिन तुगलक ने अमीरन–ए–सद़ा/सद़ा अमीर, नियुक्त किए, जो एक सौ गांवों के मुखिया होते थे। 1337 के बाद से दक्कन के अधिकारियों और दक्कन की सल्तनत में संघर्ष बहुत बढ़ गए थे। इसके परिणामस्वरूप 1347 में दक्कन में, आंध्र प्रदेश की राजधानी गुलबर्गा के साथ एक स्वतंत्र राज्य स्थापित हुआ।

इसके संस्थापक हरन कांगु ने अलाउद्दीन हसन बहमन शाह की उपाधि ग्रहण की, क्योंकि वे अपने पूर्वज ईरान के पौराणिक नायक बहमन शाह को मानते थे और उसी के नाम पर अपने साम्राज्य का नाम उन्होंने बहमनी सल्तनत रखा। मोहम्मद बिन तुगलक के बाद दक्कन क्षेत्र को नियंत्रित करने के लिए दिल्ली सल्तनत द्वारा कोई भी कोशिश नहीं की गई, इसलिए बहमनी सुल्तानों ने बिना किसी की दखलअंदाजी के अपने साम्राज्य में नए क्षेत्र जोड़े। एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अधिग्रहण था दभोल पर नियंत्रण पाना, जो पश्चिमी समुद्र तट पर एक महत्त्वपूर्ण बंदरगाह है।

बहमन शाह और उसके पुत्र मोहम्मद शाह के अधीन प्रशासनिक पद्धति बहुत ही व्यवस्थित थी। साम्राज्य को चार प्रशासकीय इकाई में बांटा गया था, जिन्हें 'तरफ' या 'प्रांत कहते थे। ये प्रांत थे – दौलताबाद, बीदर, बरार और गुलबर्गा। मोहम्मद प्रथम ने विजयनगर साम्राज्य को हराया और उसके परिणामस्वरूप गोलकुंडा को बहमनी साम्राज्य में शामिल किया गया। हर प्रान्त एक 'तरफदार' के अधीन था, जिसे 'सूबेदार' कहते थे। तरफ़दारों के अधिकार में से ज़मीन के कुछ हिस्से को 'ख़ालिस जमीन' के रूप में तब्दील किया गया था। ख़ालिस ज़मीन, ज़मीन का वह टुकड़ा होता था, जिसका इस्तेमाल राजा या उसके शाही घर–बार के खर्चों को पूरा करने के लिए किया जाता था। इसके अतिरिक्त हर कुलीन के काम और वेतन निश्चित थे। जिन कुलीनों के पास 500 घोड़े होते थे, उन्हें 1,000,000 हूण वार्षिक दिए जाते थे। यदि निर्धारित टुकड़ियों से कम टुकड़ियां होती थीं, तो तरफ़दारों को केंद्रीय सरकार को इस धन की पूर्ति करनी पड़ती थी। कुलीनों को अपना वेतन 'नगद' या भूमि या 'जागीर' के रूप में मिलता था। बहमनी शासक सैनिक सहायता के लिए अपने 'अमीरों' पर निर्भर थे। 'अमीरों' की श्रेणियों में दो समूह होते थे। एक समूह था दक्कनी लोगों का जो अप्रवासी मुस्लिम थे और बहुत लम्बे समय से दक्कन प्रदेश में निवास कर रहे थे। दूसरा समूह 'अफक़ियों' या 'परदेसियों' का था, जो हाल ही में मध्य एशिया, ईरान और ईराक से आए थे और कुछ समय पहले ही दक्कन क्षेत्र में बसे थे। इन दोनों समूहों में हमेशा बेहतर प्रशासनिक स्थिति हासिल करने के लिए आपस में तनाव बना रहता था। इनके आपसी कलह का असर बहमनी सल्तनत की स्थिरता पर भी पड़ा। भारत में पहली बार इन दोनों साम्राज्यों ने युद्ध में बारूद का इस्तेमाल किया। बहमनी पहले से भी आग्नेय–अस्त्रों से वाकिफ़ थे। उन्होंनें सिपाहियों को आधुनिक अस्त्रों और युद्ध कौशल के प्रशिक्षण के लिए तुर्की और पुर्तगाली विशेषज्ञों को नियुक्त किया।

बहमनी साम्राज्य में एक महत्त्वपूर्ण व्यक्तित्व था महमूद गवां। महमूद गवां के प्रारंभिक जीवन के बारे में कुछ भी जानकारी उपलब्ध नहीं है। वह जन्म से ईरानी था और दक्कन में पहले एक व्यापारी के रूप में आया। बहमनी शासक हुमायूं शाह ने उसे 'सौदागरों के मुखिया' या 'मालिक–उत–तुज्जर' की उपाधि प्रदान की। हुमायूं की अचानक म त्यु की वज़ह से उसके छोटे पुत्र अहमद त तीय का राज्याभिषेक हुआ। प्रशासन के कार्यों के लिए एक दरबारी परिषद् गठित की गई और महमूद गवां उस परिषद का महत्त्वपूर्ण सदस्य था। उसे वजीर या प्रधानमंत्री बनाया गया और 'ख्वाजु–ए–जहान' की उपाधि दी गई। इस अवधि के बाद का बहमनी साम्राज्य का इतिहास असल में महमूद गवां की उपलब्धियों का दस्तावेज़ है। खुद एक अफाकी होने के बावजूद, वह बहुत उदार था और अफ़ाकियों और दक्कनियों में समझौता करवाना



चाहता था। उसने बहुत ही कुशलता से साम्राज्य को नियंत्रित किया और इसे स्थिरता प्रदान की। गवां ने कांची तक विजयनगर के सभी प्रदेशों को जीत लिया। पश्चिमी समुद्री तट पर गोआ और दभोल को भी जीत लिया। इन प्रमुख बंदरगाहों को खोना विजयनगर के लिए भारी नुकसानदेह साबित हुआ। गोआ और दभोल पर नियंत्रण पाने के बाद बहमनी ने ईरान और ईराक के साथ अपने व्यापारिक संबंध मजबूत बनाए।

गवां ने अनेक आंतरिक सुधार किए और कुलीनों में परस्पर हो रही लड़ाइयों को खत्म करने का प्रयास किया। गवां ने आदेश जारी किया कि प्रांतीय तरफ़दार के सीधे नियंत्रण के अधीन प्रत्येक प्रांत में केवल एक ही किला तरफ़दार के अधीन रहेगा ताकि उनकी सैनिक शक्ति को कम किया जा सके। प्रांत के बाकी किलों को किलों के 'किलादार' या कमांडर के अधीन रखा गया। 'किलादार' की नियुक्ति केन्द्रीय सरकार द्वारा की गई थी। परन्तु उसकी म त्यु के तुरंत बाद, सूबेदारों ने अपनी–अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी और बहमनी साम्राज्य बिखर गया। पन्द्रहवीं और सोलहवीं सदी में कुछ 'अमीरों' ने बीदर, अहमदनगर, गोलकुंडा और बीजापुर व बरार में अपनी निजी स्वतंत्र सल्तनत स्थापित कर ली और इस प्रकार नए प्रदेशों का उदय हुआ। यह सल्तनत थी अहमदनगर की निज़ाम शाही, बीजापुर की आदिल शाही, गोलकुंडा की कुतुबशाही, बरार की इमदशाही, और बीदर की बरीद शाही। इन सबने मिलकर प्रदेशों का संगठन बना लिया और वैवाहिक संबंधों के द्वारा इसे और मज़बूत बनाया। इन्होंने विजयनगर के साथ अपनी पुरानी दुश्मनी कायम रखी। गोलकुंडा और बीजापुर ने आपस में वैवाहिक संबंध बनाए और उन्होंने विजयनगर के खिलाफ़ तालीकोट की लड़ाई की अगुआई की। अन्त में इन्होंने मुगल सेनाओं के समक्ष हार मान ली।

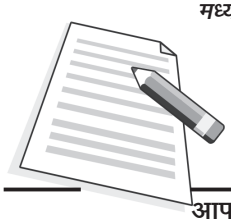
पाठगत प्रश्न 11.4

1. सदा अमीर को किसने और किस क्षेत्र के लिए नियुक्त किया?

2. महमूद गवां कौन था?

11.8 विजयनगर साम्राज्य

विजयनगर साम्राज्य की स्थापना 1336 हरिहर और बुक्का द्वारा की गई। ये दोनों भाई थे और इन्होंने मुहम्मद–बिन–तुगलक की सेना में नौकरी की थी। उन्होंने दिल्ली सल्तनत से संबंध तोड़कर कर्नाटक में एक स्वतंत्र राज्य की स्थापना की और 1336 में तुंगभद्रा नदी के किनारे राजधानी के रूप में विजयनगर नामक शहर की स्थापना की। इनके राजवंश को संगम राजवंश कहते थे। इस राजवंश के उद्‌भव के संबंध में अनेक विचारधाराएँ प्रचलित हैं। कुछ विद्वानों के मत में ये वारंगल के काकतिया के जागीरदार सामन्त थे और इनके पतन के बाद इन्होंने काम्पिलि प्रदेश में सेवा की। कुछ अन्य विद्वानों के मत में ये लोग होयसल के सामन्त थे और कर्नाटक से संबद्ध थे। हरिहर और बुक्का



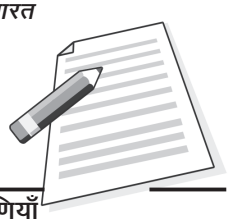
आपकी टिप्पणियाँ

द्वारा उनका साम्राज्य स्थापित करने के लिए, उन्हें उनके समकालीन विद्वान संत विद्यारण्य से सहायता और प्रेरणा मिली। विश्वास किया जाता है कि अपने गुरू की स्म ति बनाए रखने के लिए दोनों भाईयों ने तुंगभद्रा नदी के किनारे विद्यानगर या विजयनगर की स्थापना की। इनके साम्राज्य में विभिन्न सांस्क तिक क्षेत्रों के लोग थे जैसे तमिल, तेलुगू और कर्नाटक क्षेत्र, जो विभिन्न भाषाएँ बोलते थे और भिन्न–भिन्न संस्क तियों से संबंध रखते थे।

1336 से 1565 तक विजयनगर पर तीन भिन्न राजवंशों ने राज किया संगम, जो 1485 तक सत्ता में रहे; शल्व, जो कि 1503 तक सत्ता में रहे और तुलुवा राजवंश। अंतिम राजवंश अराविदु था, जिसने सत्रहवीं सदी तक शासन किया। विदेशी यात्रियों निकोलों कोंटी, फरनाओं न्यूनिज़, दोमिंगो पेस, डुआर्टो बरबोसा और अब्दुर रज्ज़ाक ने विजयनगर की भव्यता के बारे में लिखा है।

विजयनगर राज्यों के शासकों में से सबसे महत्त्वपूर्ण शासक क ष्णदेवराय थे, जो कि तुलुव राजवंश के संस्थापक थे। वे एक महान सेनापति और बहुत की कुशल प्रशासक थे। उन्होंने बहमनी साम्राज्य के विनाश पर खड़े किए गए स्वतंत्र साम्राज्यों के साथ सिलसिलेवार लंबी लड़ाइयां लड़ीं, कानून और व्यवस्था को व्यवस्थित किया और दक्कन में पुर्तगालियों के प्रभाव से भी निपटे। पहले उन्होंने बीजापुर की आदिलशाही फौजों को पूरी तरह तहस–नहस किया और गुलबर्गा पर आक्रमण करके वहां कैद में बंदी बना कर रखे गए तीन बहमनी राजकुमारों को आजाद कराया। उन्होंने गुलबर्गा के राज्य सिंहासन को दोबारा प्रतिस्थापित करने में उनकी मदद की और स्वयं 'यवनराज्य स्थापनाचार्य' की उपाधि अपनाई।

क ष्णदेवराय ने पत्थरों से कुछ मंदिर बनवाए और उन पर प्रभावशाली गोपुरम अथवा अनेक दक्षिण भारतीय मंदिरों के भव्य द्वार बनवाए। उन्होंने विजयनगर के पास अपनी मां के नाम पर नागलपुरम नाम का एक उपनगर बसाया। विजयनगर के संबंध में कुछ बहुत ही विस्त त विवरण उसी की शासनावधि के दौरान के मिलते हैं। तिरूपति का भव्य मंदिर उन्हीं की कालावधि में क्योंकि वहां की देवी उनकी आराध्य देवी थीं। क ष्णदेवराय के बाद उनके भाई अच्युत देवराय 1530 ई. में राजगद्दी पर बैठे, और वे भी बहुत महत्त्वपूर्ण शासक थे। उनके शासन काल में उनके विरोधी गुट सिर उठाने लगे थे। शक्ति हासिल करने के लिए संघर्ष मुख्यतया सलुवा वीर नरसिंह और अरविदु राम राय के बीच था, जिसमें अरविदु राम राय की जीत हुई। यद्यपि राम राय राजगद्दी पर नहीं बैठे, परन्तु फिर भी उन्होंने सदाशिव राम को सिंहासन पर बिठाया और वास्तव में शासन स्वयं किया। उसने पुराने आभिजात्यों को हटाकर उनके स्थान पर अपने विश्वासपात्र व्यक्तियों को रखा। राम राय ने दक्कन की शक्तियों को एक–दूसरे के खिलाफ लड़ाकर उनमें संतुलन पैदा करने की कोशिश की, परन्तु यह नीति बहुत लम्बे समय तक नहीं चल सकी। दक्कन राज्यों ने राज्यों का एक संघ बना लिया और तालीकोट के युद्ध में विजयनगर की सेनाओं को बहुत गहरा आघात पहुंचाया। राम राय इसमें मारा गया। दक्कनी सेनाओं ने विजय नगर में प्रवेश किया और इसे बिलकुल तबाह कर दिया। अब इसका लक्ष्य पूर्व की तरफ केंद्रित हुआ, जहां पर पेनुकोन्डा से और बाद में चन्द्रगिरि से (तिरूपति के पास) अरविदु राजवंश ने शासन किया।



विजयनगर साम्राज्य की सेना और सैन्य संगठन

लगातार युद्धों को जारी रखने के लिए एक विशाल सेना की जरूरत थी। तोपखाना का बहुत महत्त्व था और बहुत हृष्ट–पुष्ट घोड़े रखे गए थे। विजयनगर के शासकों ने अरब सागर के पार से अरब और अन्य खाड़ी देशों से उच्च गुणवत्ता वाले घोड़े आयात किए। मालाबार बंदरगाह इस व्यापार और अन्य विलास संबंधी वस्तुओं के व्यापार का केंद्र था। विजयनगर के शासकों ने हमेशा मालाबार बंदरगाह पर अपना नियंत्रण रखने का प्रयास किया।

बहमनियों की तरह, विजयनगर राज्य भी आग्नेय–अस्त्रों के प्रयोग से परिचित था और युद्ध कौशल में आधुनिक अस्त्रों का प्रशिक्षण सिपाहियों को दिलाने के लिए उन्होंने तुर्की और पुर्तगाली विशेषज्ञों को नियुक्त किया था। रायों में से एक, देव राय द्वितीय ने अपनी सशस्त्र सेनाओं में मुसलमानों को भर्ती किया और उन्हें जागीरें प्रदान कीं और उनके उपयोग के लिए शहर में एक मस्जिद का निर्माण कराया। युद्ध कौशल की इन नई तकनीकों ने रणकौशल में एक क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया था। आग्नेय अस्त्रों का मुकाबला करने के लिए अब किलों की दीवारों की मोटाई बढ़ाई गई और सामने की किलेबंदी करके मज़बूत दीवारों के साथ विशिष्ट प्रकार के दरवाजों का निर्माण कराया गया। किलों की दीवारों के अंदर, तोपों को रखने के लिए विशेष प्रकार के बड़े–बड़े झरोखे बनाए गए। किलों पर विशेष प्रकार की प्राचीरों का निर्माण कराया गया जिन पर तोपें रखी जा सकें। कुछ आग्नेय–अस्त्र छोटे थे और उनमें राइफल और पिस्तौलें शामिल थीं। कुछ तोपों की तरह भारी–भरकम थे और उन्हें बैलगाड़ियों या हाथियों पर रखा जाता था और युद्ध के मैदान में ढकेला जाता था।

विजयनगर प्रशासन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता वहां की अमरनायक प्रणाली थी। इस प्रणाली में, विजयनगर की सेना के सेनापति को नायक कहा जाता था। प्रत्येक नायक को एक–एक अलग प्रशासनिक क्षेत्र आबंटित किया जाता था। नायक की अपने अधिकार के प्रशासकीय क्षेत्र में खेती की गतिविधियों के विस्तार करने की ज़िम्मेदारी थी। वह अपने क्षेत्र से कर उगाही करता था और अपनी इस आय से सेना, घोड़े, हाथियों और युद्धों के लिए हथियारों का रख–रखाव करता था जिनकी आपूर्ति उसे अपने राय या विजय नगर के शासक को करनी पड़ती थी। नायक किलों का भी सेनापति होता था। लगान की कुछ राशि, मंदिरों के रखरखाव और सिंचाई के कामों के लिए भी खर्च की जाती थी। अमर–नायक वार्षिक रूप से राजा को नज़राना भेजता था और अपनी वफ़ादारी को प्रमाणित करने के लिए उपहार लेकर राजदरबार में खुद उपस्थित होता था। सत्रहवीं सदी में, इन नायकों में से अनेक नायकों ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी और प थक राज्यों की स्थापना की। सामंती नायकर अपने निजी सिपाही, सैनिक बल और हाथी रखते थे। यह एक बहुत ही शक्तिशाली वर्ग था, जिसने विजयनगर के प्राधिकार को चुनौती दी, इसकी आंतरिक संरचनाओं को कमज़ोर किया और तालीकोट की लड़ाई में विजयनगर की पराजय में अपना योगदान दिया।

विजय नगर और बहमनियों में संघर्ष

विजयनगर और बहमनी साम्राज्यों में रायचुर दोआब, जो कि क ष्णा और तुंगभद्रा नदियों के बीच की भूमि थी, पर नियंत्रण पाने के लिए परस्पर लगातार युद्ध होते रहते थे। यह

क्षेत्र बहुत ही उपजाऊ और खनिज संसाधनों से भरपूर था। गोलकुंडा की प्रसिद्ध हीरे की खदानें इसी दोआब क्षेत्र के पूर्वी भाग में स्थित थीं। दोनों साम्राज्यों की भौगोलिक स्थिति इस प्रकार की थी कि इनका विस्तार दक्कन में तुंगभद्रा के पार के क्षेत्र में ही संभव था। ऐसा लगता है कि लड़ाई का कोई परिणाम नहीं निकला और यथास्थिति को ही बनाए रखा गया। कभी बहमनियों का हाथ ऊपर हो जाता, तो कभी विजयनगर वालों की सरपरस्ती। उदाहरण के लिए, 1504 में बहमनियों ने रायचूर दोआब पर जीत हासिल कर ली परन्तु क ष्णदेवराय के सिंहासन पर बैठने के बाद बहमनी रायचूर, मुदकल, नालगोण्डा और कुछ अन्य अंदरूनी शहरों को हार गये। इन युद्धों का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम यह निकला कि दोनों शक्तियां आपस में युद्ध करने में इतनी डूबी हुई थीं कि उन्होंने भारत के दक्षिणी समुद्री तट पर पुर्तगालियों की बढ़ती ताकत को महसूस ही नहीं किया। इसके अतिरिक्त, लगातार युद्धों ने दोनों राज्यों के संसाधनों का पूरी तरह दोहन कर दिया और वे दोनों बहुत कमज़ोर हो गये।

युद्ध के अन्य क्षेत्र थे, मराठवाड़ा क्षेत्र और क ष्णा–गोदावरी का डेल्टा क्षेत्र। दोनों क्षेत्रों की ज़मीन बहुत उपजाऊ थी और इनमें बहुत महत्त्वपूर्ण बंदरगाह थे जहां से विदेशों से व्यापार को नियंत्रित किया जाता था। उदाहरण के लिए, मराठवाड़ा क्षेत्र के उपजाऊ क्षेत्र की कोंकण पट्टी जिसमें गोवा बंदरगाह स्थित था, जो व्यापार और निर्यात, खास तौर पर ईरान और इराक से घोड़े आयात करने के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण क्षेत्र था।

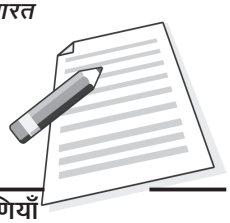
आम तौर पर विजयनगर और बहमनी प्रदेशों में होने वाले युद्धों को हिन्दू–मुस्लिम संघर्ष माना जाता था। ऊपर उल्लिखित कारणों से पता चलता है कि ये लड़ाइयां किसी धार्मिक भेदभाव की वजह से नहीं थी। युद्धों का मुख्य कारण प्रादेशिक जगहों को जीतना और आर्थिक उद्देश्य था। दोनों राज्यों में आपसी दुश्मनी के बावजूद, ऐसे वक्त भी आए जब दोनों ने एक–दूसरे की सहायता भी की। उदाहरण के लिए, क ष्णदेवराय ने सल्तनत में सत्ता के कुछ दावेदारों का समर्थन किया और यवन साम्राज्य के संस्थापक की उपाधि देते हुए गर्व अनुभव किया। इसी प्रकार क ष्णदेवराय की म त्यु के पश्चात् बीजापुर के सुल्तान ने विजयनगर के उत्तराधिकार की लड़ाइयों को सुलझाने में समझौता कराया। परस्पर विचारों के आदान–प्रदान, खास तौर से कला, साहित्य और वास्तुशिल्प के क्षेत्रों में भी दोनों ने भागीदारी दी।

पाठगत प्रश्न 11.5

1. किन्हीं चार विदेशी यात्रियों के नाम लिखें, जिन्होंने विजयनगर साम्राज्य की भव्यता के संबंध में लिखा है?

2. किस राजा के शासनकाल में तिरूपति मंदिर का निर्माण हुआ?

3. अमीर नायक प्रणाली का अस्तित्व कहां पर था?



4. विजयनगर और बहमनी साम्राज्यों का किन क्षेत्रों में संघर्ष था?

11.8 अठारहवीं सदी में प्रादेशिक राज्य

आपने पहले अवश्य पढ़ा है कि अठारहवीं सदी में मुगल साम्राज्य पर क्या संकट था और अंत में किस प्रकार मुगल साम्राज्य का पतन हुआ। जैसे ही मुगल साम्राज्य के अधिकारों के कमी आई, प्रांतों के सूबेदार और बड़े जमींदार शक्तिशाली बने और उन्होंने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर दी।

इस कालावधि के प्रादेशिक राज्यों को तीन वर्गों में बांटा जा सकता हैः

1. कुछ ऐसे राज्य थे जिनके संस्थापक महत्त्वपूर्ण मुगल कुलीन वर्ग के लोग थे और उन्होंने ऊंचे मनसब हासिल किए। यद्यपि वे सभी स्वतंत्र हो गए थे, परन्तु उन्होंने मुगल प्रदेशों के साथ अपने औपचारिक संबंध कभी भी नहीं तोड़े। इस वर्ग के कुछ प्रमुख राज्य हैं, अवध, बंगाल और हैदराबाद। अवध राज्य का संस्थापक था, सआदत ख़ान। बंगाल का संस्थापक था, मुशीद कुली ख़ान, और हैदराबाद का संस्थापक था, निज़ाम–उल–मुल्क आसफ जाह। तीनों ही मुगल अभिजात्य वर्ग के शक्तिशाली सदस्य थे और इन प्रांतों के सूबेदार थे। जैसे ही मुगल साम्राज्य शक्तिहीन हुआ, दिल्ली से बहुत बड़ी संख्या में सिपाहियों और सैनिकों ने इन नए राज्यों में अनेक भावी संभावनाओं को देखते हुए प्रवास किया।

   इन प्रदेशों के पुराने ज़मींदारों की स्थिति में बदलाव आ गया। उदाहरण के लिए सआदत ख़ान ने राजपूतों की अनेक ज़मींदारियां और रोहिलखंड के अफ़गानियों से उपजाऊ क षि भूमि छीन ली। इसी प्रकार बंगाल में मुगलों के प्रभाव को कम करने के लिए मुशीद कुली ख़ान ने सभी मुगल जागीरदारों को उड़ीसा में स्थानांतरित कर दिया और बंगाल में लगान के मुख्य स्रोतों का दोबारा से आकलन करने का हुक्म जारी कर दिया। सभी ज़मींदारों से बड़ी सख्ती से लगान इकट्ठा किया गया। इसके परिणामस्वरूप अनेक ज़मी़दारों को साहूकारों और ऋणदाताओं से कर्ज़ लेना पड़ा। जो लगान का भुगतान करने में असमर्थ थे, उन्हें अपनी ज़मीने बड़े ज़मींदारों को बेचनी पड़ीं।

   इन राज्यों में एक और परिवर्तन आया कि साहूकारों और ऋणदाताओं या महाजनों की संख्या में व द्धि हुई। राज्य और किसान ऋण के लिए इन पर निर्भर थे। इसके बदले में ये धनी लोग बहुत शक्तिशाली बन गए और इन्होंने प्रशासन को भी प्रभावित किया। राज्य ने कर संग्रह करने का अधिकार उन लोगों के पक्ष में नीलाम कर दिया, जिन्होंने सबसे ऊंची बोली लगाई और वे लोग प्रायः साहूकार और महाजन थे। इसके बदले में साहूकारों ने राज्यों को एक निर्धारित राशि देने का वचन दिया। इस प्रकार राज्य को एक निश्चित आय होने का आश्वासन मिला। इस प्रणाली को 'इजरदारी व्यवस्था' कहा जाता था और जिन लोगों ने कर संग्रह करने का अधिकार खरीदा, उन्हें 'इजरदार' कहते थे। मुगल साम्राज्य ने इस व्यवस्था को हमेशा से ही निरूत्साहित किया। हमेशा ऐसी संभावना बनी रहती थी कि जो लोग कर वसूल करते थे, वे निर्धारित कर से कहीं ज्यादा कर संग्रह करते और किसानों को पीड़ित

करते और राज्य को कम कर देते, जिससे राज्य को आम लगान में भारी नुकसान उठाना पड़ता।

2. अठारहवीं सदी में प्रादेशिक राज्यों का दूसरा वर्ग उन राज्यों का था, जो मुगल शासन के दौरान वतन जागीरों के रूप में पहले ही स्वतंत्र राज्य होने की स्थिति में थे। राजपूत राज्य इस वर्ग में आते थे।

3. प्रादेशिक राज्यों का तीसरा वर्ग वह था, जो मुगल साम्राज्य के विरूद्ध बगावत करने के बाद अस्तित्व में आया। सिख, मराठा और जाट इस वर्ग से संबद्ध थे। उदाहरण के लिए, मुगलों के विरूद्ध सिखों के विद्रोह के परिणामस्वरूप पंजाब में राज्यों की स्थापना हुई।

पाठगत प्रश्न 11.6

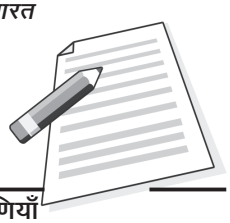
1. अठारहवीं सदी में प्रादेशिक राज्यों को किन वर्गों में बांटा गया है?

आपने क्या सीखा

तेरहवीं से अठारहवीं सदी के दौरान प्रादेशिक राज्यों का उद्भव, दिल्ली सल्तनत की कमजोरी और मुगल साम्राज्य के पतन के बाद हुआ। इन प्रादेशिक शक्तियों की प्रक ति की समझ आपको दिल्ली सल्तनत और मुगल साम्राज्य को स्पष्ट प ष्ठभूमि में देखने के लिए सही द ष्टिकोण प्रदान करेगी। यदि इस कालावधि के प्रादेशिक राज्यों को छठी से बारहवीं सदी से चले आ रहे प्रादेशिक राज्यों के साथ जोड़कर भी देखा जाएगा तो अधिक उपयोगी होगा। प्रादेशिक राज्यों को समझने के लिए पहले प्रादेशिकता की संकल्पना को समझना होगा, जैसे समय के साथ धीरे–धीरे विकसित होने वाली राजनीतिक विशेषताएं, भाषा, धार्मिक सरोकार, कला और संस्क ति, जिनके संबंध में इस पाठ में विचार किया गया है। ऐसे अनेक प्रदेश हैं, परन्तु यहां हमने केवल कुछ ही प्रदेशों के संबंध में विशेष अध्ययन किया है, जैसे–जौनपुर, कश्मीर, गुजरात, बंगाल, विजयनगर और बहमनी राज्यों पर विचार–विमर्श किया गया। याद रहे कि यद्यपि ये राज्य आपस में लड़ते रहे, लेकिन इन्होंने कला, वास्तुशिल्प और धर्म संबंधी क्षेत्रों में विचारों का परस्पर आदान–प्रदान भी किया। केंद्रीय अधिकारों और इनके आपसी संबंधों में, समय–समय पर बदलाव आते रहे।

पाठांत प्रश्न

1. भारत में 13वीं से 18वीं सदी के बीच प्रादेशिक राज्यों के विकास का उल्लेख करें।
2. प्रादेशिक राज्य केंद्रीय साम्राज्य से किस प्रकार भिन्न थे?



3. बंगाल इतनी आसानी से अपना स्वतंत्र अधिकार जताने में कैसे सफल हुआ?
4. महमूद बेगढ़ में क्या विशिष्टता थी और उसे गुजरात का महत्त्वपूर्ण शासक क्यों माना जाता है?
5. प्रशासन की 'अमर–नायक' पद्धति का विवरण दीजिए।
6. पड़ोसी होने के बावजूद विजयनगर और बहमनियों में परस्पर शांति नहीं थी, ऐसा क्यों था, चर्चा कीजिए?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

11.1

1. भाषा, धार्मिक सरोकार, व्यापार और वाणिज्य के ज़रिये परस्पर अंतःक्रिया, प्रादेशिक कला शैलियां।
2. बिहार, बंगाल, असम, मध्य भारत और राजस्थान।
3. नामदेव, रैदास, तुकाराम, गुरूनानक

11.2

1. 1338 में फ़िरोज शाह तुगलक की म त्यु के पश्चात्
2. बिहार और पंजाब

11.3

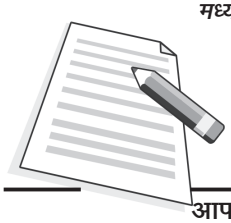
1. पश्चिम में अलीगढ़, पूर्व में दरभंगा, उत्तर में नेपाल और दक्षिण में बुंदेलखंड
2. ज़ैमिल आबिदीन
3. हाजी इलियास ख़ान
4. अहमदाबाद

11.4

1. मोहम्मद बिन तुगलक, दक्कन
2. दक्कन में एक व्यापारी के रूप में पहुंचा और उसे 'मालिक–उत–तुज्जर' की उपाधि दी गई और बाद में वजीर बनाया गया।

11.5

1. निकोलो कोन्टी, फरनाओ न्यूनिज़, डोमिंगो पेस, डुआरटो बरबोसा और अब्दुर रज्ज़ाक।
2. क ष्णदेवराय



आपकी टिप्पणियाँ

3. विजय नगर का प्रशासन
4. रायचूर दोआब; मराठवाड़ा क्षेत्र और क ष्णा–गोदावरी के डेल्टा क्षेत्र पर नियंत्रण

11.6

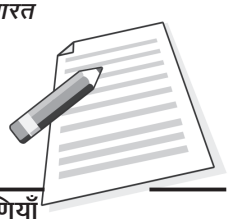
1. मुगल कुलीनों द्वारा स्थापित, वतन जागीरें, मुगल अधिकारियों से बगावत

पाठांत प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें अनुच्छेद 11.2
2. देखें अनुच्छेद 11.1 के अंतिम दो
3. देखें अनुच्छेद 11.5
4. देखें अनुच्छेद 11.6
5. देखें अनुच्छेद 11.8
6. देखें अनुच्छेद 11.8

शब्दावली

सिलसिला	-	सूफियों के प थक संघ।
ज़मींदार	-	निजी भूमि के स्वामी, जिस पर उनका वंशगत अधिकार हो।
सुल्तानु-शरक	-	पूर्व के मालिक।
जजिया	-	भूमि–कर के अतिरिक्त एक प्रकार का कर, जो उन गैर–मुस्लिमों पर लगाया जाता था, जो सैनिक सेवा में नहीं थे।
खलीसा	-	वह भूमि, जिस पर सीधे राजा का नियंत्रण होता था और उसे जमींदार या किसी अधिकारी के नियंत्रण में नहीं दिया जाता था।
तरफदार	-	किसी प्रांत का प्रमुख।
जागीर	-	भूमि का टुकड़ा, जो राज्य द्वारा किसी सरकारी अधिकारी को प्रदान किया जाता था।
अमीर	-	सेनापति, दिल्ली सल्तनत में अधिकारी वर्ग की श्रेणी में तीसरा उच्चतम पद।



12

प्रशासनिक प्रणाली और संस्थाएं

भारत में दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ ही एक नए शासक वर्ग का उदय हुआ। इस नए शासक वर्ग ने नई प्रशासनिक प्रणाली प्रारंभ की। कुछ नई संस्थाओं की स्थापना हुई। मुगलों के आगमन के बाद इन प्रणालियों में कुछ परिवर्तन हुए और कुछ नई प्रणालियां प्रारंभ की गई। कुछ प्रशासनिक संस्थाओं की जड़ें अरब और मध्य एशिया तक फैली थीं, जहाँ से यह नया शासक वर्ग आया था। जबकि अन्यों की उत्पत्ति भारत में ही हुई थी। भारत के परिवेश में इनका विकसित होना इनकी मुख्य विशेषता थी।

नई प्रशासनिक प्रणाली और संरचनाओं ने सल्तनत तथा मुगल साम्राज्य को सुद ढ़ बनाने में योगदान दिया। इस पाठ में 500 वर्षों से अधिक की अवधि के प्रशासन के सभी पहलुओं की चर्चा करना असंभव होगा। तथापि हम प्रशासनिक ढाँचे और कुछ महत्त्वपूर्ण संस्थाओं की मूल विशेषताओं, और परिवर्तनों का उल्लेख करने का प्रयास करेंगे।

इस काल के दौरान शासक वर्ग बदलता रहा। विभिन्न शासकों ने इन संस्थाओं का प्रयोग अन्य प्रयोजनों के लिए भी किया। शासकों ने समाज में सामंजस्य बनाए रखने के लिए समय–समय पर समाज के विभिन्न वर्गों के लोगों को इन प्रशासनिक तंत्रों में सम्मिलित किया। शासन प्रणाली में समाज के इन वर्गों का दावा करना स्वाभाविक था और विभिन्न शासक भी इनको शीघ्र ही इस प्रणाली में सम्मिलित कर लेते थे। इस अर्थ में ये संस्थाएँ समाज में व्याप्त किसी भी सामाजिक संघर्ष के साधन के रूप में भी उभरीं। यद्यपि इस उद्देश्य के लिए शासकों द्वारा अन्य विभिन्न उपाय भी उपयोग में लाए गए थे।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- सल्तनत और मुगल शासक वर्ग के स्वरूप और संरचना के बारे में बता सकेंगे;
- दिल्ली सल्तनत के प्रशासनिक ढांचे को समझा सकेंगे;
- सल्तनत काल के मुख्य प्रशासनिक विभागों का उल्लेख कर सकेंगे;
- सुल्तानों के अधीन प्रांतीय और स्थानीय प्रशासन का उल्लेख कर सकेंगे;

- इक्ता प्रणाली की मुख्य विशेषताओं की चर्चा कर सकेंगे;
- अलाउद्दीन खिलजी की बाजार नियंत्रण नीति का विश्लेषण कर सकेंगे;
- मुगलों के केंद्रीय और प्रांतीय प्रशासन के बारे में जान सकेंगे;
- जागीर प्रणाली की मुख्य विशेषताओं पर विचार कर सकेंगे;
- मनसबदारी प्रणाली के विकास की रूप–रेखा प्रस्तुत कर सकेंगे; और
- मराठों के अधीन प्रशासनिक ढाँचे को समझ सकेंगे।

12.1 दिल्ली सल्तनत के अंतर्गत प्रशासनिक ढांचे का विकास

जब कुतुबुद्दीन ऐबक ने स्वयं को लाहौर में स्वतंत्र सुल्तान के रूप में स्थापित किया तो उस समय मौजूद प्रशासनिक तंत्र प्रारंभिक अवस्था से गुजर रहा था। जब तक स्थानीय शासकों ने दिल्ली के सुल्तान की सर्वोच्चता को स्वीकार किया, तब तक मौजूदा ढांचे में न तो कोई परिवर्तन किया गया न ही उसे छेड़ा गया, उन्हें सिर्फ कर वसूल कर उसे खिराज के रूप में केंद्रीय खजाने में भेजने की अनुमति थी। इन क्षेत्रों में केंद्रीय कर्मचारियों का मुख्य कार्य स्थानीय शासकों का उनके प्रशासनिक कार्यों में सहायता देना था। दिल्ली सल्तनत के विस्तार और सुद ढ़ीकरण से नई प्रशासनिक संस्थाओं का भी उदय होने लगा। प्रशासनिक ढांचों और नए शासकों द्वारा भारत में प्रतिपादित संस्थाओं पर मंगोलों, सेल्जुकिड्स आदि का प्रभाव पड़ा। देश के विभिन्न भागों में मौजूद संस्थाओं ने भी नई प्रणाली का निर्माण करने में भी योगदान दिया।

सुल्तानों को इस बात की जानकारी थी कि उन्हें जिस प्रजा पर शासन करना था, उसमें गैर इस्लामिक लोगों की संख्या अधिक थी। इसलिए दिल्ली के सुल्तानों को सल्तनत की मौजूदा परिस्थितियों को अनुकूल बनाने के लिए खास उपाय करने पड़ते थे। प्रशासनिक द ष्टि से ऐसा महसूस होता है कि स्थानीय प्रशासन मुख्यतः गांव के प्रधानों आदि के हाथों में आ गया था। सल्तनत की सीमा को बढ़ाने के लिए केंद्र और प्रांतों के लिए प्रशासनिक ढांचे का अलग से विकास करना आवश्यक था। इस प्रकार सल्तनत काल के दौरान केंद्रीय, प्रांतीय और स्थानीय स्तरों पर प्रशासनिक संस्थाओं का विकास हुआ।

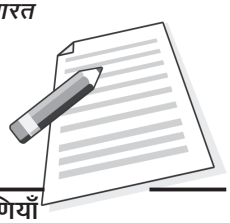
आइए, अब हम प्रशासनिक प्रणाली के विभिन्न घटकों को विस्तार से समझें।

12.2 प्रशासनिक प्रणाली

सल्तनत काल के दौरान प्रशासनिक तंत्रों का प्रमुख सुल्तान होता था। उच्च अधिकारी राज–काज में सुल्तान की सहायता करते थे। सुल्तान के कार्यालय के साथ अन्य कार्यालय भी थे। सैद्धांतिक रूप से सुल्तान की सहायता करने के लिए मंत्रिपरिषद मजलिस–ए–खलवात थी।

1. सुल्तान

सुल्तान प्रशासनिक व्यवस्था में केन्द्रीय स्थान पर होता था। वह नागरिक प्रशासन का प्रमुख और सेना का सर्वोच्च कमांडर था। सुल्तान सभी दरबारियों की नियुक्तियां करता और उनकी तरक्की करता था तथा वह किसी को भी अपने दरबार से निकाल सकता था। वह सर्वशक्तिमान था। इसलिए सभी शक्तियां उसके हाथों में थीं तथा वह न्यायिक



शक्ति का भी सर्वोच्च स्वामी था। सुल्तान लोगों को उपाधियां और सम्मान प्रदान करता था। सिद्धान्ततः सुल्तान का पद उच्च होता था, परन्तु व्यावहारिक रूप में उसकी शक्तियां घटती–बढ़ती रहती थीं। सुल्तान पर हमेशा अभिजात वर्ग और उलेमाओं का दबाव बना रहता था। दिल्ली के शक्तिशाली सुल्तानों ने इन वर्गों पर नियंत्रण रखने के लिए अलग–अलग रणनीतियां अपनाईं। बलबन ने अभिजात वर्ग को कड़े नियंत्रण में रखा। इस प्रकार सल्तनत के प्रशासनिक ढांचे में सुल्तान महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता था। योग्य और शक्तिशाली सुल्तानों के नेत त्व में प्रशासन और प्रशासनिक ढांचा बेहतर ढंग से कार्य करता था, लेकिन अयोग्य और कमजोर शासक अभिजात वर्गों के दबाव में कार्य करते थे।

2. अभिजात वर्ग

अभिजात वर्ग राज्य के सबसे महत्त्वपूर्ण अधिकारी थे तथा समाज में इनको उच्च स्थान प्राप्त था। प्रारंभ में ये सेना के ऐसे कमांडर थे, जिन्होंने युद्ध में विजय हासिल की थी। कुछ वर्षों से उनके उत्तराधिकारियों ने मुख्य शक्ति हासिल कर ली थी तथा कुछ भारतीय समूह भी इनमें विकसित हुए। अभिजात वर्ग की स्थिति और शक्तियों में समय–समय पर उतार–चढ़ाव होता रहा, जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। वे अभिजात वर्ग जो मूलतः दिल्ली में स्थापित थे, अत्यधिक शक्तिशाली समूह के रूप में उभरे तथा वे समय–समय पर सुल्तान का चयन करने में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते थे।

अभिजात वर्ग में समरूप श्रेणी नहीं थी। इसमें कई समूह सम्मिलित थे और उनमें अकसर लड़ाइयों के कारण आपस में दुश्मनी बनी रहती थी। इल्तुतमिश के समय में तुर्की और ताजिक कुलीनों के बीच लड़ाई प्रारंभ हुई और इसकी म त्यु के पश्चात् इन लड़ाइयों ने और अधिक जोर पकड़ लिया। चहलगान समूह (40 अभिजातों का समूह) शक्तिशाली समूह के रूप में उभरा था, जिसे इल्तुतमिश ने बनाया था।

बलबन पहला सुल्तान था, जिसने अभिजात वर्ग पर कड़ाई से नियंत्रण रखा। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि स्वयं बलबन भी चहलगान का ही एक हिस्सा था। कुतुबुद्दीन ऐबक तथा इल्तुतमिश अभिजात वर्ग को अपने बराबर का समझते थे। बलबन ने अभिजात वर्ग से दूरी बनाए रखी तथा स्वयं के लिए अभिजात वर्ग के लिए कड़ी आचरण संहिता लागू की थी। दरबार में कोई दुर्व्यवहार नहीं कर सकता था और न हीं हँस सकता था। उसने उत्क ष्टता पर बल दिया था और उच्च पद और उच्च कार्यालयों को प्राप्त करने वालों के लिए मानदंड निर्धारित कर दिया था।

दिल्ली सल्तनत का विस्तार होते ही समाज के विभिन्न समुदायों ने अभिजात वर्ग में सम्मिलित होने के प्रयास किए थे। प्रारंभ में इस वर्ग में तुर्कों को सम्मिलित किया गया। खिलजी और तुगलकों के शासन काल के दौरान विभिन्न प ष्ठभूमि के लोगों के लिए अभिजात वर्ग के दरवाजे खुले थे। विशेषतः मुहम्मद बिन तुगलक के शासन काल में हिन्दू और मुस्लिम दोनों के निम्न जाति के लोग अभिजात वर्ग में शामिल हो गए और उन्होंने बड़े–बड़े पद हासिल किए। लोधी काल में समानता की अफगान अवधारणा उस समय महत्त्वपूर्ण हो गई, जब सुलतान को 'समान शक्तिवालों में प्रमुख' माना गया। इस प्रकार अभिजात वर्ग सुल्तान के बराबर की हैसियत रखते थे। कुछेक लोदी सुलतानों, जैसे– शिक्दार लोदी और इब्राहिम लोदी को यह पसंद नहीं था। उन्होंने अभिजात वर्ग को अपने

नियंत्रण में रखने की कोशिश की। अभिजात वर्ग ने इसका विरोध किया। जिसके परिणामस्वरूप दोनों सुल्तान परेशानी में पड़ गए।

3. उलेमा

मुसलमानों के धार्मिक बुद्धिजीवियों के समूह को उलेमा कहते थे। इस समूह के लोगों का कार्य धार्मिक मामलों की व्यवस्था करना और सुल्तान के लिए धार्मिक नियमों की व्याख्या करना था। वे न्यायिक मामलों के प्रभारी भी होते थे। यह अत्यधिक प्रभावी समूह था और सुल्तान और अभिजात वर्ग की प्रशंसा करता था। उनका मुस्लिम जनता में भी प्रभाव था। यह समूह इस्लाम के धार्मिक नियमों के अनुसार सल्तनत को चलाने के लिए सुल्तान पर दबाव डालता था। सुल्तान और अभिजात वर्ग अकसर प्रशासनिक कार्य धार्मिक नियमों की बजाय राज्य की आवश्यकताओं के अनुसार करने की कोशिश करते थे। अलाउद्दीन खिलजी जैसे प्रभावशाली सुलतान ही उलेमाओं की सलाह के कई मुद्दों पर अनदेखी कर सकते थे, लेकिन कुछ सुल्तान उनकी सलाह को मानते थे।

पाठगत प्रश्न 12.1

1. चहलगान क्या था और इसको किसने स्थापित किया?

   _____

2. वह प्रथम सुलतान कौन था, जिसने अभिजात वर्ग पर पहली बार सख्ती से नियंत्रण रखने की कोशिश की थी?

   _____

3. प्रभुत्व सम्पन्नता की अफगान अवधारणा के अनुसार सुल्तान तथा अभिजात वर्ग का क्या स्थान था?

   _____

4. उलेमा कौन थे?

   _____

12.3 केंद्रीय प्रशासन

जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है कि प्रशासनिक प्रणाली का प्रधान सुल्तान होता था। अनेक विभाग थे, जिन्हें अलग–अलग दायित्व सौंपे गए थे। इन विभागों का प्रबंध प्रभावशाली अभिजात वर्गों द्वारा किया जाता था। हम कुछ विभागों का लेखा–जोखा संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करेंगे।

1. वज़ारत

सुल्तान के बाद, सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यालय दीवान–ए–वज़ारत था। जिसका प्रधान वजीर होता था। शाही दरबार में यह मुख्य पद होता था और इसकी भूमिका सभी विभागों के लिए प्रधान पर्यवेक्षक की होती थी, लेकिन यह चार महत्त्वपूर्ण भागों का प्रधान था। यह

सुल्तान का मुख्य सलाहकार था। वजीर का मुख्य कार्य राज्य के वित्तीय संगठन की देख–रेख करना, सुल्तान को सलाह देना और कभी–कभी सुल्तान के आदेश पर सैन्य अभियानों का नेत त्व करना था। सेना को किया जाने वाला भुगतान इसी की देख–रेख में होता था। वज़ारत या वज़ीर का कार्यालय भूमि के राजस्व वसूली पर निगरानी रखता था, राज्य के सभी आय और व्यय का लेखा–जोखा रखता था तथा इस प्रकार सभी शाही नौकरों की तनख्वाह पर नियंत्रण रखता था अथवा उनका लेखा–जोखा रखता था, तथा धर्मार्थ चंदों जैसे वक्फों और इनामों आदि पर नियंत्रण रखता था। इसके अतिरिक्त वज़ारत द्वारा टकसालों, खुफिया विभागों, शाही इमारतों और शाही दरबार से संबंधित निकायों का देख–रेख किया जाता था। वजीर की सुल्तान तक सीधी पहुंच थी और यह उसकी बुद्धिमत्ता, ईमानदारी और वफादारी का परिणाम था कि सुल्तान वजीर पर अत्यधिक निर्भर रहने लगता था।

वज़ारत के अंतर्गत कार्य करने वाले अन्य अनेक विभाग थे। उन्हें विशिष्ट कार्य सौंपे गए थे। इनमें मुस्तौफी–ए–मुमालिक (महालेखा परीक्षक), मुशरिफ–ए–मुमालिक (प्रधान लेखाकार), मजूमदार (खजाने से ऋणों और शेषों का लेखा–जोखा रखने वाला) सम्मिलित थे। कुछ समय बाद दीवान–ए–वकूफ (व्यय का हिसाब रखना), दीवान–ए–मुस्त खाराज (राजस्व भुगतानों में शेष रह गई राशि की जांच करना), दीवान–ए–अमीर कोही (राज्य की सहायता से खेती न की जा सकने वाली भूमि को खेती करने योग्य बनाना) जैसे कुछ अन्य कार्यालयों को वज़ारत की देख–रेख में लाया गया था।

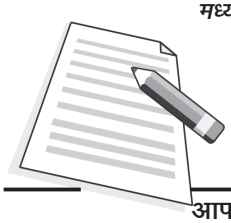
2. दीवान-ए-अर्ज

साम्राज्य के सैनिक संगठन की देखरेख करने के लिए इस विभाग की स्थापना की गई थी। इसका प्रधान अरिज–ए–मुमालिक होता था। यह सैन्य कार्यों की व्यवस्था के लिए उत्तरदायी था। यह शाही सेना की देख–रेख करता था, सैनिकों की भर्ती करता था, सेना में अनुशासन बनाए रखता था और उनके उपयुक्त रहने की क्षमता का ध्यान रखता था। इक्ताधारियों द्वारा रखी जा रही सेना का निरीक्षण करता था, घोड़ों की जांच करता और उनकी पीठ पर शाही निशान लगाता था। युद्ध के दौरान आरिज सेना को खाद्य सामग्री और परिवहन व्यवस्था तथा युद्ध में सेना की व्यवस्था करता था और आपूर्ति जारी रखता था तथा लूट के माल को अपनी निगरानी में रखता था। अलाउद्दीन खिलजी ने दाग (दाग लगाना) और हुलिया (चित्रण) प्रणाली तथा सेना पद अपनी पकड़ मजबूत करने के लिए सैनिकों को नगद भुगतान करना प्रारंभ किया था। दिल्ली में रहने वाला सैन्य दल '*हशम–ए–काल्ब*' कहलाता था। प्रांतों में रहने वाले सैन्य दल को '*हशम–ए–एतराफ*' कहते थे।

3. दीवान-ए-ईंशा

यह विभाग राज्य के पत्राचार की देखरेख करता था। इसका प्रधान दाबिर–ए–खास होता था। यह शाही फरमानों के मजमून तैयार करता और उन्हें भेजता था तथा विभिन्न अधिकारियों से रिपोर्ट प्राप्त करता था। दाबिर साम्राज्य के केंद्र और अन्य प्रदेश के बीच सरकारी पत्र व्यवहार करने का एक माध्यम था। यह एक किस्म से सुल्तान का निजी सचिव था और फरमान लिखता था।

बारीद–ए–मुमालिक राज्य के समाचार एकत्रित करने वाला और गुप्तचर कार्यों का प्रधान था। उसे सल्तनत में घटने वाली घटनाओं की जानकारी रखनी पड़ती थी। स्थानीय स्तर पर बारिद होते थे, जो राज्य के केंद्रीय कार्यालय से संबंधित नियमित



आपकी टिप्पणियाँ

समाचार भेजते थे। बारिद के अतिरिक्त मुनिहियान के नाम से जाने वाले रिपोर्टरों का एक अन्य समूह मौजूद था।

4. दीवान-ए-रिसालत

यह विभाग न्याय की व्यवस्था करता था। इसका प्रधान *'सद्र–उस–सद्र'* होता था, जो *'काजी–ए–मुमालिक'* भी था। यह सर्वोच्च धार्मिक अधिकारी था और वह पुरोहितों का कार्य भी देखता था। वह काजियों (जजों) की भी नियुक्ति करता था और विभिन्न धर्मार्थ अनुदानों, जैसे वक्फ, वजीफा, इदरार आदि को अनुमोदन प्रदान करता था।

दीवानी और फौजदारी दोनों मामलों में अपील की सर्वोच्च अदालत सुल्तान था। इससे अगला *'काजी–ए–मुमालिक'* था *'मुहतासिब्स'* (सार्वजनिक सेंसर) न्यायिक विभाग को सहायता प्रदान करते थे। इनका मुख्य कार्य यह देखना था कि कोई इस्लाम के सिद्धांतों का उल्लंघन तो नहीं कर रहा। वह नैतिक सिद्धांतों और आचरण की देख–रेख करता था और उसे लागू करता था।

5. अन्य विभाग

इसके अतिरिक्त केंद्र में अनेक छोटे–छोटे ऐसे विभाग थे, जो साम्राज्य के रोजमर्रा के प्रशासनिक कार्यों में सहायता देते थे। *'वकील–ए–दार'* शाही परिवार की देख–रेख करता और सुल्तान के निजी कार्य करता था। *'अमीर–ए–हाजिब'* शाही समारोह का काम देखता था। यह सुल्तान और सहायक कर्मचारियों तथा सुल्तान और जनता के बीच मध्यस्थ के रूप में कार्य करता। *'सर–ए–जानदार'* शाही अंगरक्षकों की देखरेख करता था। *'अमीर–ए–अखुर'* अस्तबल का रख–रखाव करता और *'शाहनाह–ए–फिल'* हाथियों की देखरेख करता था। *'अमीर–ए–मजलिस'* बैठकों और विशेष समारोह के आयोजनों की व्यवस्था करता था। सल्तनत की प्रशानिक प्रणाली में कारखाने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। शाही परिवार की आवश्यकताएँ कारखानों से पूरी की जाती थीं। ये कारखाने दो किस्म के होते थे; 1. उत्पादन करने वाले और 2. भंडार घर। फिरोज तुगलक के शासन काल में लगभग 36 कारखाने थे। प्रत्येक कारखाने की देख–रेख मलिक अथवा खान की श्रेणी के अभिजात वर्ग द्वारा की जाती थी। *'मुतासारिफ'* को लेखा–जोखा रखने की जिम्मेदारी सौंपी गई और वह विभिन्न विभागों के प्रत्यक्ष पर्यवेक्षक के रूप में कार्य करता था।



पाठगत प्रश्न 12.2

1. वज़ारत के अंतर्गत कार्य करने वाले दो विभागों का उल्लेख कीजिए?

2. अलाउद्दीन खिलजी ने सेना में कौन–कौन सी कार्य प्रणाली प्रारंभ की थी?

3. कौन–सा विभाग न्याय प्रशासन का कार्य करता था? इसका प्रमुख कौन था?

केन्द्रीय राजनीतिक क्षेत्र से बाहर के क्षेत्र में प्रशासन को अनेक प्रकार से चलाया जाता था। यह उस क्षेत्र पर राजनीति नियंत्रण के स्तर पर निर्भर करता था। सल्तनत की सीमा को बढ़ाने और उसे सुद ढ़ करने की प्रक्रिया 13वीं और 14वीं शती तक जारी रही थी। लड़ाई में जीते गए कुछ नए क्षेत्र सीधे सल्तनत के नियंत्रण में आ जाते थे, जबकि अन्य क्षेत्रों पर आंशिक नियंत्रण था। इस प्रकार इन क्षेत्रों पर नियंत्रण रखने के लिए सुल्तान ने अलग–अलग कार्य प्रणालियां अपनाईं। सल्तनत से स्वतंत्र रूप से सम्बद्ध क्षेत्रों के प्रतीक के रूप में केंद्र द्वारा कुछ अधिकारी नियुक्त किए जाते थे। परन्तु रोजमर्रा का प्रशासन स्थानीय हाथों में था। इन क्षेत्रों में केंद्र की रुचि ज्यादातर आर्थिक मामलों में अर्थात राजस्व एकत्रित करने में थी।

इन प्रांतों की देखरेख करने की जिम्मेदारी गवर्नरों (सूबेदार) पर थी और गवर्नर इस क्षेत्र के संपूर्ण प्रशासन के लिए जिम्मेदार थे। उनकी जिम्मेदारी में एकत्रित राजस्व को सुनिश्चित करना, कानून और व्यवस्था बनाए रखना और विद्रोहियों को नियंत्रण में रखना सम्मिलित था। वह अपने क्षेत्र में सुल्तान का प्रतिनिधि था। चूंकि अधिकारियों का अकसर हस्तांतरण होता रहता था और वे उन क्षेत्रों से परिचित नहीं थे, इसीलिए प्रायः उन्हें अपने कार्यों को करने के लिए स्थानीय अधिकारियों पर निर्भर रहना पड़ता था। स्थानीय अधिकारियों की सहायता के बिना राजस्व वसूल करना संभव नहीं था। इसीलिए गवर्नर और स्थानीय शक्तियाँ आपसी सहयोग से कार्य करते थे। कभी–कभी यह संगठन सुल्तान के लिए परेशानियां पैदा कर देता था। क्योंकि गवर्नर स्थानीय शासकों की सहायता से शक्तिशाली बन जाते थे और सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह कर देते थे। 14वीं सदी के दौरान प्रशासनिक सुविधा के लिए इन प्रांतों को *'शिक्स'* में विभाजित कर दिया था। इन *'शिक्स'* का प्रशासन *'शिक्दार'* द्वारा चलाया जाता था। तदुपरान्त अफगान काल के दौरान ये शिक्स सरकार में परिवर्तित हो गए। प्रांतीय स्तर पर शिक्दार के साथ–साथ फौजदार एक अन्य अधिकारी भी होता था। इनके कार्यों को स्पष्ट रूप से निर्धारित नहीं किया गया था और इन दोनों के कार्य मिले–जुले थे। शिक्दार कानून और व्यवस्था बनाए रखने में सुल्तान की सहायता करते थे और उसे सैन्य सहायता भी उपलब्ध कराते थे। वह छोटी–छोटी प्रशासनिक इकाइयों के कार्यों की भी निगरानी करता था। फौजदार और शिक्दार के कार्य समान थे। कोतवाल फौजदार के अधीन होते थे। प्रांतीय स्तर पर अन्य महत्त्वपूर्ण अधिकारी बारिद (खुफिया अधिकारी तथा रिपोर्टर) तथा साहिब–ए–दीवान (यह प्रांतीय आय और व्यय का वित्तीय लेखा–जोखा रखता था) थे।

12.5 इक्ता प्रणाली

इक्ता प्रणाली प्रारंभिक इस्लामिक देशों में लागू की गई थी। यह राज्य की सेवाओं के लिए पारिश्रमिक के रूप में दिया जाता था। खलीफ़ा के प्रशासन में यह नागरिक और सैन्य अधिकारियों को दिया जाता था। सल्तनत की स्थापना के बाद सुल्तानों द्वारा इक्ता प्रणाली प्रारंभ की गई थी। प्रारंभ में सैन्य कमांडरों तथा अभिजात वर्गों को प्रशासन चलाने तथा राजस्व की उगाही करने के लिए नए क्षेत्र सौंप दिए जाते थे। इस प्रकार सौंपे गए इन क्षेत्रों को इक्ता कहते थे और जिन्हें ये इक्ता सौंपे जाते थे, वे *'इक्तादार'* अथवा *'मुक्ती'* कहलाते थे।

संक्षेप में, यह अधिकारियों को भुगतान करने की एक प्रणाली थी जिससे वे सेना की देख–रेख करते थे। धीरे–धीरे सम्पूर्ण प्रणाली को संगठित करने के लिए नियम और

विनियम निर्धारित किए गए। वर्षों से यह सल्तनत का प्रशासन चलाने का मुख्य साधन बन गए। इसके अतिरिक्त इस प्रणाली के माध्यम से विशाल क्षेत्रों के विभिन्न भागों से सुल्तानों को अधिक उत्पादन का बड़ा भाग मिलने लगा।

14वीं शती से हम *'वालिस'* या *'मुक्तीस'* के बारे में सुनते आ रहे हैं। ये सेना और प्रशासनिक क्षेत्रों के कमांडर होते थे। इन्हें इक्ता कहते थे। इनकी यथार्थ शक्तियों में परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन होता रहता था। समय के अनुसार *'मुक्ती'* को इक्ता के प्रशासन का पूरा दायित्व सौंप दिया जाता था जिसमें सेना की देखरेख का कार्य सम्मिलित होता था। आवश्यकता पड़ने पर *'मुक्ती'* को अपनी सेना सहित सुल्तान की सहायता करनी पड़ती थी। उससे आशा की जाती थी कि वह वसूल किए गए राजस्व से सेना की देखरेख करे और अपना खर्च स्वयं करें।

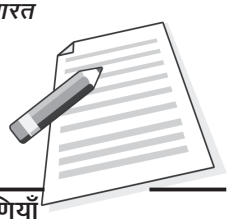
बलबन के शासनकाल से ही *'मुक़्ती'* से यह आशा की जाती थी कि वह अपने और सेना के खर्चों को पूरा करने के बाद शेष आय *(फवाज़िल)* केन्द्र को भेजे। इसका अर्थ है कि केन्द्रीय राजस्व विभाग इक्ता की संभावित आय, सेना के रखरखाव पर आने वाली लागत तथा मुक़्ती के अपने खर्चों का मूल्यांकन किया करता था। अलाऊद्दीन खिलजी के शासनकाल के दौरान इस प्रक्रिया के संबंध में और सख्ती बढ़ती गई। जैसे–जैसे केन्द्रीय नियंत्रण बढ़ता गया, *'मुक़्ती'* के प्रशासन पर भी नियंत्रण बढ़ता गया। *'ख्वाजा'* (संभवतः यह *'साहिब–ए–दीवान'* के बराबर था) को इक्ताओं की आय का लेखा–जोखा रखने के लिए नियुक्त किया गया था। बारिद या गुप्तचर अधिकारी की भी नियुक्ति की जाती थी ताकि वह सुल्तान को सूचना देता रहे। मुहम्मद–बिन–तुगलक के शासनकाल के दौरान राजस्व में भागीदारी शर्तों पर अनेक सूबेदारों की नियुक्ति की गई थी। इन्हें राज्य को निश्चित राशि देनी होती थी। फिरोजशाह के शासनकाल के दौरान इक्ताओं पर राज्य का नियंत्रण समाप्त हो गया था और ये इक्ता वंशानुगत हो गए थे।

12.6 स्थानीय प्रशासन

गाँव प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। गाँव की कार्यशैली और प्रशासन कमोबेश वैसा ही था जैसा तुर्की काल के पहले मौजूद था। गाँव के मुख्य अधिकारियों में खुत, मुकद्दम और पटवारी थे। वे राजस्व की उगाही करने और कानून और व्यवस्था बनाए रखने में मुक्ती के साथ समन्वय से कार्य करते थे। एक परगना में अनेक गाँव होते थे। परगना के महत्त्वपूर्ण अधिकारियों में चौधरी, आमिल (राजस्व एकत्र करने वाला) और कारकून (लेखाकार) होते थे। गांव और परगना प्रशासन की स्वतंत्र इकाइयाँ होती थीं और तब भी कुछ क्षेत्र आपस में जुड़े हुए होते थे। कई मामलों में इन प्रांतों के स्थानीय शासक राय, राणा, रावत, राजा होते थे जो गवर्नर को उसके कार्यों में सहायता देते थे। ऐसे मामलों में स्थानीय शासकों को सुल्तान के सहायकों के रूप में मान्यता मिली हुई थी।

पाठगत प्रश्न 12.3

1. परगना के स्तर के तीन अधिकारियों के नाम लिखें?



2. सल्तनत काल की कुछ प्रशासनिक इकाइयों का उल्लेख कीजिए?

3. गाँव के कुछ महत्त्वपूर्ण कार्यकर्ताओं के नामों का उल्लेख कीजिए?

4. *'फवाज़िल'* क्या था?

12.7 अलाऊद्दीन खिलजी के बाजार सुधार

अलाऊद्दीन खिलजी के बाजार सुधार प्रशासनिक और सैन्य आवश्यकताओं के अनुकूल थे। मध्यकालीन शासकों का मानना था कि जीवन की आवश्यकताओं, विशेष रूप से खाद्यान्न सभी देशवासियों को उचित कीमतों पर मुहैया कराए जाने चाहिए। परन्तु कुछ शासक कुछ समय तक ही कीमतों पर नियंत्रण रख सके। अलाऊद्दीन खिलजी कमोबेश ऐसा पहला शासक था जिसने कीमत नियंत्रण की समस्या पर सुव्यवस्थित ढंग से ध्यान दिया तथा लंबी अवधि तक कीमतों को स्थिर रखने में कामयाब रहा। यह बताया गया कि अलाऊद्दीन खिलजी ने बाजार नियंत्रण की परिपाटी चलाई थी क्योंकि दिल्ली पर मंगोलों की जीत के बाद वह विशाल सेना भर्ती करना चाहता था। यदि सेना पर बड़ी राशि खर्च करनी पड़ती तो उसका सारा खजाना जल्दी समाप्त हो जाता। सुल्तान कम खर्च पर विशाल सेना की भर्ती कर सका। बाजार सुधारों के चलते कम कीमतों के जो भी कारण रहे हों, विस्त त प्रशासनिक व्यवस्थाएँ यह सुनिश्चित करने के लिए की गई थी कि बाजार नियंत्रण का अनुपालन सख्ती से किया जा सके।

अलाऊद्दीन ने अनाजों से लेकर कपड़ा, दासों, मवेशियों आदि तक सभी वस्तुओं की कीमतें निर्धारित की थी। उसने दिल्ली में तीन बाजार स्थापित किए, पहला बाजार खाद्यान्नों के लिए था, दूसरा बाजार सभी प्रकार के कपड़ों तथा महँगी वस्तुओं, जैसे चीनी, घी, तेल, मेवे आदि के लिए था तथा तीसरा बाजार घोड़ों, दासों और मवेशियों के लिए था। खाने की वस्तुओं की कीमतों पर नियंत्रण रखने के लिए अलाउद्दीन ने न सिर्फ गांवों से अनाजों की आपूर्ति करने और अनाज व्यापारियों द्वारा शहरों तक इसको ले जाने बल्कि नागरिकों को इसके उचित वितरण करने पर भी नियंत्रण रखने की कोशिश की। सुल्तान द्वारा निर्धारित की गई कीमतों का सख्ती से पालन किया जाए, इसके लिए अनेक उपाय किए गए थे। एक अधिकारी *('शेहना')* बाजार का प्रभारी था, जिसका कार्य यह देखना था कि कोई शाही फरमानों का उल्लंघन तो नहीं कर रहा था। बारिदों (गुप्तचर अधिकारियों) और *'मुनहियान'* (जासूसों) की नियुक्ति भी की जाती थी; अलाउद्दीन ने यह सुनिश्चित करने की भी कोशिश की कि सरकार के पास खाद्यान्नों का उचित भंडार रहे ताकि व्यापारी बनावटी कमी बताकर कीमतों में व द्धि न कर दें अथवा लाभ कमा लें। दिल्ली और छैन (राजस्थान) मे अन्न भंडारों की स्थापना की गई। गांव से शहरों में खाद्यानों को लाने वाले *'बंजारों'* अथवा *'कारवानियों'* से अपना एक निकाय बनाने के लिए कहा गया था उन्हें अपने परिवारों के साथ यमुना नदी के तटों पर बसाना था। उनकी निगरानी करने के लिए एक अधिकारी ('शेहना') की नियुक्ति की गई थी। बंजारों को

नियमित रूप से खाद्यानों की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए कुछ नियम बनाए गए थे। सभी खाद्यानों को बाजार (मंडियों) में लाया जाता था और उन्हें सरकारी कीमतों पर ही बेचा जाता था।

कपड़े, मेवे, घी आदि वाले दूसरे बाजार को *'सराय–ए–अदल'* कहते थे। देश के कोने–कोने से और विदेश से लाए गए सभी कपड़े यहां लाए जाते थे। उन्हें एकत्रित किया जाता और इस बाजार में सरकारी दरों पर ही बेचा जाता था। सभी वस्तुओं की पर्याप्त आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए सभी व्यापारियों का पंजीकरण किया जाता था और उनसे इस बारे में दस्तावेज लिया जाता था कि वे वस्तुओं की निर्धारित मात्रा प्रत्येक वर्ष *'सराय–ए–अदल'* के रूप में लाया करेंगे। विदेशों सहित दूर–दूर से वस्तुओं को लाने वाले व्यापारियों को इस शर्त पर अग्रिम राशि दी गई कि वे मध्यस्थों को अपना माल नहीं बेचेंगे। महँगी वस्तुओं के लिए अधिकारी, अमीरों, मालिकों आदि को इनकी आय के अनुसार इन महँगी वस्तुओं को खरीदने के लिए परमिट (अनुमति) जारी करता था। यह इसलिए किया जाता था ताकि इन महंगे उत्पादों की काले बाज़ारी को रोका जा सके।

तीसरे बाजार में घोड़ों, मवेशियों और दासों की खरीद–फरोख्त होती थी। उचित कीमतों पर अच्छी किस्म के घोड़ों की आपूर्ति सेना के लिए महत्त्वपूर्ण थी। अलाउद्दीन ने शक्तिशाली मध्यस्थों अथवा दलालों को हटा दिया था। यह निर्णय लिया गया था कि सरकार घोड़ों की किस्में और कीमतें निर्धारित करेगी। इसी प्रकार दास लड़कों और लड़कियों तथा मवेशियों की कीमतें भी निर्धारित की गई थीं। लेकिन ये सुधार ज्यादा दिनों तक नहीं चल पाए और अलाउद्दीन की म त्यु के बाद समाप्त हो गए थे।

पाठगत प्रश्न 12.4

1. बाज़ार नियंत्रण के नियमों की देख–रेख करने वाले कौन–कौन से अधिकारी थे?

   _____

2. उन स्थानों के नाम लिखें, जहाँ पर अलाउद्दीन खिलजी द्वारा अन्न भंडार स्थापित किए गए थे?

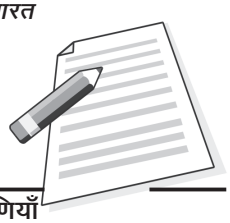
   _____

3. बंजारे कौन थे?

   _____

12.8 मुगलकालीन प्रशासनिक ढाँचा

मुगलों ने सल्तनत और शेरशाह की प्रशासनिक प्रणाली की कई विशेषताएँ बनाए रखीं। शेरशाह के शासनकाल में परगना (गांवों का समूह), सरकार (परगनों का समूह) और सरकारों के समूह (कुछ–कुछ सूबे अथवा प्रांतों जैसे) की प्रशासनिक इकाइयों को विशिष्ट अधिकारियों के नियंत्रण में रखा गया था। मुगलों ने एक नई क्षेत्रीय इकाई बनाई, जिसे सूबा कहा जाता था। जागीर और मनसब प्रणाली के संस्थानों को भी मुगलों द्वारा ही प्रारंभ



किया गया था। इस प्रकार परिवर्तन और निरंतरता दोनों मुगल प्रशासनिक ढांचे को चिह्नित करते थे, जिससे इस प्रणाली में उच्च दर्जे का केंद्रीयकरण किया गया था।

केंद्रीय प्रशासन

1. सम्राट

सम्राट प्रशासन का सर्वोच्च प्रधान था और उसके नियंत्रण में सभी सैन्य और न्यायिक शक्तियां थीं। मुगल प्रशासन में सभी अधिकारी अपनी शक्ति और स्थिति के लिए सम्राट के प्रति उत्तरदायी थे। सम्राट को यह अधिकार था कि वह अपनी इच्छाशक्ति से अधिकारियों की नियुक्ति करता था, उनकी पदोन्नति करता था और उन्हें हटा सकता था। सम्राट पर संस्थागत या अन्यथा कोई दबाव नहीं था। सम्राट अपने कार्य सुगमता से कर सके, इसके लिए कुछ विभाग बनाए गए थे।

2. वकील और वजीर

'वज़ारत' अथवा 'वकीलत' (दोनों शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता था) का स्थान दिल्ली सल्तनत के दौरान भी कुछ रूपों में मौजूद था। वजीर का पद दिल्ली सल्तनत में अफगान शासकों के काल में अपनी उत्क ष्ट स्थिति खो चुका था। वजीर के पद को मुगलों ने फिर चालू किया। बाबर और हुमायूं के वजीर अत्यधिक शक्तिशाली थे। अकबर के मंत्री बैरम खां (1556-60) के काल में वकील–वजीर को असीमित शक्तियां प्राप्त थीं। अकबर ने वजीर की शक्तियों को कम करने के लिए बाद में उससे वित्तीय शक्तियां छीन ली थी। इससे वजीर की शक्तियों को बड़ा झटका लगा था।

3. दीवान-ए-कुल

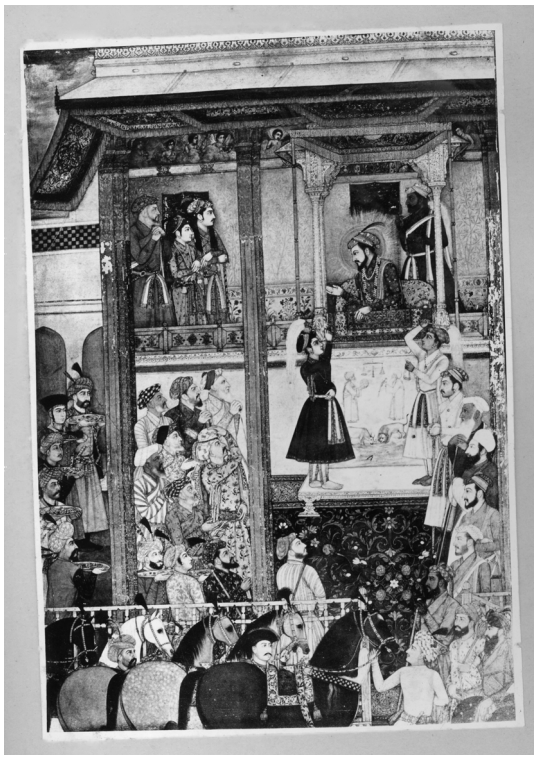
दीवान–ए–कुल मुख्य दीवान था। यह राजस्व और वित्त के लिए उत्तरदायी था। अकबर ने दीवान को राजस्व शक्तियां सौंप कर दीवान के कार्यालय को मजबूती प्रदान की। दीवान सभी विभागों के सभी लेन–देन तथा भुगतानों की जांच व निरीक्षण करता था और प्रांतीय दीवानों की देख–रेख करता था।

4. मीर बक्शी

'मीर बक्शी' सेना के प्रशासन से संबंधी सभी मामले देखता था। मनसबदारों की नियुक्ति के आदेश तथा उनके वेतन के कागजातों को समर्थन प्रदान करता और उन्हें स्वीक त करता था। वह इस बात पर सख्ती से निगरानी रखता था कि मनसबदारों द्वारा शस्त्रों का और युद्ध सामग्री का उचित रख–रखाव किया जा रहा है। सेवा मांगने वाले नए सदस्यों को सम्राट के सामने *'मीर बक्शी'* द्वारा प्रस्तुत किया जाता था।

5. सद्र-उस-सद्र

सद्र–उस–सद्र पुरोहित संबंधी विभाग का मुखिया था। उसका मुख्य कार्य शरियत के कानूनों की रक्षा करना था। सद्र का कार्यालय योग्य व्यक्तियों और धार्मिक संस्थाओं को भत्ते और वजीफे बांटा करता था। अकबर के शासन काल के पहले पच्चीस वर्षों के दौरान इसने इस कार्यालय को अत्यधिक आकर्षक बना लिया था। 1580 में महजर की घोषणा ने इसके अधिकार सीमित कर दिए थे। महजर के अुनसार धार्मिक विद्वानों के



चित्र 12.1 शाही अदालत

विचारों में मतभेद होने पर अकबर का विचार मान्य होता था। यह अधिकारी धार्मिक और धर्मार्थ उद्देश्यों के लिए दी जाने वाली राजस्व मुक्त अनुदानों के मामलों का भी निर्धारण करता था। बाद में राजस्व मुक्त अनुदान प्रदान करने के लिए भी सदर के अधिकारों पर अनेक प्रतिबंध लगा दिए गए थे।

'मुहतसिब' (लोक आचरण नियंत्रक) की नियुक्ति आचार संहिता नियमावली के सामान्य अनुपालन को सुनिश्चित करने के लिए की जाती थी। यह वजन और माप की जांच करता था और उचित कीमतें आदि लागू करता था।

6. मीर सामाँ

मीर सामाँ शाही कारखानों का प्रभारी अधिकारी था। उसकी शाही परिवार के लिए सभी प्रकार की खरीदारी करना और उनके भंडारण की जिम्मेवारी थी। वह शाही परिवार के उपयोग हेतु विभिन्न वस्तुओं के उत्पादन पर भी निगरानी रखता था।

प्रांतीय प्रशासन

अकबर ने मुगल साम्राज्य को 12 प्रांतों अथवा सूबों में विभाजित किया था। ये प्रांत थे – इलाहाबाद, आगरा, अवध, अजमेर, अहमदाबाद, बिहार, बंगाल, दिल्ली, काबुल, लाहौर, मालवा और मुल्तान। बाद में अहमदनगर, बरार और खानदेश को सम्मिलित कर लिया था। मुगल साम्राज्य के विस्तार के साथ ही प्रांतों की संख्या बढ़कर बीस हो गई थी।

प्रत्येक सूबा सूबेदार अथवा प्रांतीय गवर्नर के अधीन था। ये सम्राट द्वारा सीधे नियुक्त किए जाते थे। सूबेदार प्रांत का प्रधान होता था तथा वह सामान्य कानून और व्यवस्था

बनाए रखने के लिए जिम्मेदार था। वह क षि, व्यापार और वाणिज्य को बढ़ावा देता था तथा राज्य का राजस्व बढ़ाता था। वह विद्रोहियों का दमन करता और अभियानों के लिए सेना मुहैया कराता था।

सूबे में राजस्व विभाग का प्रमुख दीवान होता था। उसकी नियुक्ति सम्राट द्वारा की जाती थीं और वह स्वतंत्र अधिकारी था। उसे सूबे में राजस्व संग्रहण का कार्य देखना पड़ता था और वह सभी व्यय का लेखा–जोखा रखता था। उससे आशा की जाती थी कि वह खेती योग्य भूमि को बढ़ाएगा। कई बार उसके कार्यालय से किसानों को अग्रिम ऋण (तकवी) भी दिया जाता था।

प्रांत के बक्शी द्वारा भी वही कार्य किए जाते थे, जो केंद्र में मीर बक्शी द्वारा किए जाते थे। इसकी नियुक्ति मीर बक्शी की सिफारिशों पर शाही दरबार द्वारा की जाती थी। वह सूबे के मनसबदारों द्वारा देख–रेख किए जा रहे घोड़ों और सिपाहियों की जांच और निरीक्षण के लिए जिम्मेदार था। वह मनसबदारों तथा सिपाहियों दोनों के वेतन बिल जारी करता था। अकसर इसका कार्यालय *'वाक्यनिकार'* से जुड़ा होता था। इस हैसियत से उसका कार्य था कि वह अपने प्रांत की घटनाओं के बारे में सूचना दे।

प्रांतीय स्तर पर केंद्रीय सद्र (सद्र–अस–सुद्दर) के प्रतिनिधि को सद्र कहते थे। यह उन लोगों के कल्याण के लिए जिम्मेदार था, जो धार्मिक गतिविधियों और शिक्षा के कार्यालय में लगे हुए थे और वे न्याय विभाग का कार्य भी देखते थे। इस हैसियत से वे काज़ियों के कार्य की भी देख–रेख करते थे।

कुछ अन्य अधिकारी भी थे, जिनकी नियुक्ति प्रांतीय स्तर पर की जाती थी। *'दरोगाई–ए–डाक'* संचार माध्यम के रख–रखाव के लिए जिम्मेदार था। वह डाक वाहकों *('मेरवाड़')* के माध्यम से दरबार में पत्र पहुंचाता था। वाकयानवीस और वाकयानिगार की नियुक्ति सम्राट को सीधे रिपोर्टें भेजने के लिए की गई थी।

स्थानीय प्रशासन

प्रांत अथवा सूबे सरकारों में विभाजित थे। सरकारों को परगनों में बांटा गया था। गांव प्रशासन की लघुतम इकाई थे। सरकार स्तर पर दो महत्त्वपूर्ण अधिकारी थे *'फ़ौजदार'* और *'अमलगुजार'*। *'फ़ौजदार'* की नियुक्ति शाही आदेश द्वारा होती थी। कभी–कभी एक सरकार में कई फौजदार होते थे। कभी–कभी इनके क्षेत्राधिकार दो सरकारों में होते थे, जबकि ये दोनों अलग–अलग सूबों के होते थे। फौजदारी एक प्रशासनिक प्रभाग होता था, जहां सरकार का क्षेत्रीय और राजस्व प्रभाग होता था। फौजदार का मुख्य कार्य अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले क्षेत्रों के निवासियों के जीवन और सम्पत्ति की रक्षा करना था। वह अपने क्षेत्रों में कानून और व्यवस्था संबंधी समस्याओं का निवारण करता और आवश्यकता पड़ने पर सेना की तथा समय पर राजस्व एकत्र करने में सहायता देता था। अमलगुजार अथवा आमील राजस्व संग्राहक होता था। उसका कार्य राजस्व का मूल्यांकन करना और राजस्व संग्रहण की देखरेख करना था। उससे आशा की जाती थी कि वह खेती योग्य भूमि को बढ़ाएगा और किसानों को स्वेच्छा से राजस्व का भुगतान करने के लिए प्रेरित करेगा। वह सभी लेखा–जोखा रखता था और प्रांतीय दीवान को प्रतिदिन प्राप्ति और व्यय की रिपोर्ट भेजता था।

परगना स्तर पर शिक्दार कार्यपालक अधिकारी होता था। वह राजस्व संग्रहण के कार्य में *'अमिलों'* की सहायता करता था, *'आमिल'* परगना स्तर पर राजस्व संग्रह का कार्य देखते थे। कानूनगो परगना में भूमि संबंधी सभी रिकॉर्ड रखता था। मुख्यतः शहरों में कोतवालों की नियुक्ति शाही सरकार द्वारा की जाती थी तथा वह कानून और व्यवस्था का प्रभारी होता था। वह शहर में आने और शहर से बाहर जाने वाले लोगों का रिकॉर्ड रखने के लिए एक रजिस्टर रखता था। *'मुकद्दम'* गांव का मुखिया होता था और पटवारी गांव के राजस्व रिकॉर्ड रखता था। वे अपने क्षेत्रों में कानून और व्यवस्था बनाए रखने तथा राजस्व संग्रहण में जमींदारों की सेवाएं लेते थे। किलों की रखवाली *'किलेदार'* नामक अधिकारी करता था। वह किले के सामान्य प्रशासन तथा उसको जागीर में दिए गए क्षेत्रों का प्रभारी होता था।

पतन प्रशासन प्रांतीय अधिकारी से मुक्त था। पतन के गवर्नर को *'मुतासद्दी'* कहते थे, जिसकी नियुक्ति सीधे सम्राट द्वारा की जाती थी। मुतासद्दी माल पर कर एकत्र करता था और वह सीमा शुल्क कार्यालय की देखरेख करता था। वह पतन की टकसाल की देखरेख भी करता था।

पाठगत प्रश्न 12.5

1. अकबर ने वजीर की शक्ति क्यों कम की?

2. *'मीर सामाँ'* कौन था? उसके क्या कार्य थे?

3. *'मुतासद्दी'* कौन था? उसके क्या कार्य थे?

4. कौन से दो महत्त्वपूर्ण अधिकारी सरकार के स्तर पर थे?

12.9 मुगल प्रशासनिक संस्थान

(1) मनसब प्रणाली

भारत में मुगलों के शासनकाल में मनसब और जागीर प्रणाली प्रारंभ से अंत तक प्रचलित थी। भारत में मुगलों द्वारा तैयार की गई मनसबदारी अद्वितीय प्रणाली थी। कुछ हेरफेर से अकबर द्वारा चलाई गई मनसबदारी प्रणाली सैन्य व नागरिक प्रशासनों का आधार थी। मनसब शब्द का अर्थ हैसियत या पद से है। जिस व्यक्ति को मनसब प्रदान किया जाता था, उससे शाही तंत्र में उसकी हैसियत और वेतन दोनों का निर्धारण होता था। मनसबदार द्वारा रखे जाने वाले सैनिकों की संख्या का भी इससे निर्धारण होता था। यह प्रणाली अभिजात वर्गों के पद को कारगर और सरल बनाने, उनके वेतन का निर्धारण करने तथा उनके द्वारा रखे जाने वाले घुड़सवारों की संख्या का निर्धारण करने के लिए तैयार की गई थी।

मनसब प्रणाली में पदों को संख्याओं में व्यक्त किया जाता था। अबुल फजल बताता है कि अकबर ने मनसबदारों की 66 श्रेणियां स्थापित की थीं जिनकी सीमा 10 घुड़सवार कमांडरों से 10,000 घुड़सवारों तक थी, यद्यपि उसने 33 श्रेणियों का ही उल्लेख किया। प्रारंभ में, एक संख्या पद, वैयक्तिक वेतन और मनसबदार के सैन्य दल की संख्या का निरूपण करती थी। बाद में, मनसबदार का पद दो संख्याओं, जात और सवार को सूचित करने वाली बन गई। जात कर्मचारी के व्यक्तिगत पद को दर्शाता था। और सवार मनसबदारों द्वारा रखी जाने वाली सेना के आकार को दर्शाता था। सैन्य दल की संख्या के आधार पर मनसबदारों को तीन श्रेणियों मे रखा गया था। आइए एक मनसबदार का उदाहरण लें जिसके पास 7000 जात और 7000 सवार (7000/7000) के पद थे। प्रथम श्रेणी में जात और सवार के पद बराबर (7000/7000) थे। दूसरी श्रेणी में सवार के पद जात से कम थे लेकिन जात पद के आधे अथवा पचास प्रतिशत थे (7000/4000) तीसरी श्रेणी में सवार पद जात पद के पचास प्रतिशत (7000/3000) से कम थे। इस प्रकार सवार पद या तो जात के बराबर थे या उससे कम थे। सवार पद ज्यादा होने पर भी शाही तंत्र में मनसबदार की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। यह जात के पद से ही निर्धारित होती थी। उदाहरणार्थ, 4000 जात और 2000 सवार रखने वाले मनसबदार का पद 3000 जात और 3000 सवार रखने वाले मनसबदार के पद से ऊंचा होता था।

लेकिन इस नियम में कुछ अपवाद भी थे विशेष रूप से जब कोई मनसबदार विद्रोहियों के बीच समस्याओं वाले क्षेत्र में कार्य करता था। ऐसे मामलों में राज्य अकसर जात पद में परिवर्तन किए बिना सवार पद में व द्धि करता था। कभी–कभी आपातकालीन स्थितियों से निपटने के लिए अस्थायी अवधि के लिए सवार पद में व द्धि भी कर दी जाती थी।

जहाँगीर ने सवार पद में नई व्यवस्था प्रारम्भ की। इस प्रावधान के अनुसार चुने हुए मनसबदारों के मामले में सवार पद को दु–अस्पाह और सिह–अस्पाह कहा गया। इस भाग के लिए प्रतिसवार उसी दर पर 8000 दाम प्रति सवार के अतिरिक्त भुगतान की स्वीक ति प्रदान की गई थी। यदि सवार पद 4000 है जिसमें से 1000 दु–अस्पाह और सिह–अस्पाह होते थे। इस सवार का वेतन $3000 \times 8000 + (1000 \times 8000 \times 2)$ 40,000,000 दाम परिकलित किया जाता था। दु–अस्पाह और सिह–अस्पाह के बिना 4000 सवार का वेतन ($4000 \times 8000 = 32,000,000$) होता था। इस प्रकार मनसबदार को दु–अस्पाह सिह–अस्पाह श्रेणी के दुगुने सवार रखने पड़ते थे और इसके लिए भुगतान किया जाता था। जहांगीर ने शायद यह व्यवस्था अपने विश्वास पात्र अभिजात वर्ग को बढ़ावा देने और उनका सैन्य रूप से शक्तिशाली बनाने के लिए की थी। इस व्यवस्था से वह अपने जात पद में कोई परिवर्तन किए बिना अपने अभिजात वर्गों की सेना में बढ़ोतरी कर सका। अपने जात पद में कोई व द्धि करने से न सिर्फ अन्य अभिजात वर्गों को ईर्ष्या होगी, बल्कि राजकोष पर इसका भार भी बढ़ेगा।

शाहजहां ने *'जमा'* (अनुमानित आय) और *'हासिल'* (वास्तविक प्राप्ति) के बीच के अंतर को पूरा करने के लिए मनसबदारी प्रणाली में मासिक वेतनमान प्रारंभ किया। अकसर मनसबदारों को सौंपी गई राजस्व उगाने वाली जागीरों के रूप में भुगतान किया जाता था। इसमें सबसे बड़ी समस्या यह थी कि एक वर्ष के दौरान जागीर से होने वाली संभावित आय (जमा) के आधार पर परिकलन किया जाता था। यह देखा गया था कि वास्तविक राजस्व

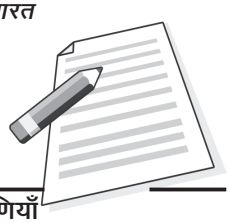
संग्रहण (हासिल) अनुमानित आय से हमेशा कम होता था। ऐसी स्थिति में मनसबदारों के वेतन का निर्धारण मासिक वेतनमान विधि से किया जाता था। यदि किसी जागीर से सिर्फ आधा राजस्व हासिल होता था तो यह 'शशमाह' (छमाही) कहलाता था। यदि इससे केवल एक चौथाई प्राप्त होता है तो इसे सीमाहा तिमाही कहते थे। मासिक वेतनमान नकद वेतनों पर भी लागू होता था। स्वीक त वेतन में से भी कटौती की जाती थी। शाहजहां के शासनकाल के दौरान मनसबदारों को बिना उनके दावे की राशि में कमी किए, सवार पद की स्वीक त संख्या के $^{1}/_{5}$ से $^{1}/_{3}$ रखने की मंजूरी दे दी गई।

औरंगजेब ने इन सभी परिवर्तनों को जारी रखा तथा 'मशरूत' (शर्तबंद) नामक नया पद सजित किया। यह मनसबदार के सवार पद में अस्थायी रूप से वद्धि करने का प्रयास था। औरंगजेब ने शाही अस्तबलों में पशुओं के चारे पर आने वाली लागत को पूरा करने के लिए 'खुराक–ए–दवाब' नामक एक और कटौती की।

(2) जागीर प्रणाली

मुगलों के शासनकाल में राज्य को अपनी सेवाएं देने वाले अभिजात वर्गों को किसी विशेष क्षेत्र का राजस्व सौंपने की प्रणाली को जारी रखा गया। मुगलकाल में जो क्षेत्र सौंपा जाता था वह 'जागीर' और जिस व्यक्ति को यह क्षेत्र सौंपा जाता था वह 'जागीरदार' कहलाता था। अकबर के शासनकाल में विकसित मनसबदारी प्रणाली में जागीर अभिन्न हिस्सा थी और अकबर के उत्तराधिकारियों ने अपने–अपने शासनकाल के दौरान इस प्रणाली में अनेक परिवर्तन किए। अकबर के शासनकाल में समग्र क्षेत्र को दो भागों में बांटा गयाः 'खालिस' और 'जागीर'। इस पहले भाग से प्राप्त होने वाला राजस्व शाही खजाने में जमा होता था और जागीरदारों को नकद वेतन के बदले उन्हें जागीरें सौंपी गई थी। मनसबदारों के वेतन की हकदारी उनके जात और सवार के पदों के आधार पर आँकी जाती थी। वेतन का भुगतान नकद अथवा जागीर के रूप में किया जाता था। जागीर के रूप में किए जाने वाले भुगतान को प्राथमिकता दी जाती थी। यदि भुगतान जागीर देकर किया जाता, तो केन्द्रीय दीवान का कार्यालय उन परगनों का पता लगाता था जिनकी 'जमा' का कुल जोड़ मनसबदारों के वेतन के दावे के बराबर था। यदि रिकॉर्ड की गई 'जमा' जागीरदार के वेतन दावे से अधिक होती, तो जागीरदार को शेष राशि केन्द्रीय खजाने में जमा करानी पड़ती थी। दूसरी ओर, यह वेतन दावे से कम होता तो कम होने वाली राशि खजाने से पूरी की जाती थी।

हालांकि, कोई भी सौंपी जाने वाली जागीर स्थायी अथवा वंशानुगत नहीं थी। सम्राट किसी भी समय जागीर के एक भाग अथवा संपूर्ण जागीर को अपने क्षेत्राधिकार के एक भाग से दूसरे भाग में स्थानांतरित कर सकता था। मुगल शासनकाल के दौरान जागीर और खालिस के बीच का अनुपात घटता–बढ़ता रहता था। अकबर के शासनकाल के दौरान 'खालिस' कुल राजस्व का मात्र 5 प्रतिशत था। जहांगीर के शासनकाल में यह 10 प्रतिशत और शाहजहां के शासन में यह 9 से 15 प्रतिशत के बीच घटता–बढ़ता रहा। औरंगजेब के शासनकाल के अंतिम समय में 'खालिस' पर बहुत दबाव बढ़ गया था। क्योंकि मनसबदारों की संख्या में व द्धि होने से जागीर के दावेदारों की संख्या में भी वद्धि हुई। जागीरदारों का स्थानांतरण एक जागीर से दूसरी जागीर पर किया जाता था (परन्तु कुछ मामलों में उन्हें अपनी जागीर लंबी अवधि के लिए एक स्थान पर रखने की अनुमति दे दी जाती थी)। स्थानांतरण प्रणाली जागीरदारों पर अंकुश लगााने का काम करती थी



ताकि वे स्थानीय जड़ें न बना लें। इसका नुकसान यह रहा कि इससे जागीरदार अपने क्षेत्रों के विकास हेतु लंबी अवधि के उपाय करने के लिए निरुत्साहित होते थे।

यहां अनेक प्रकार की 'जागीरें' थीं। 'तनख्वाह जागीरें' वेतन के बदले दी जाती थीं। मशरूत जागीरें निश्चित शर्तों पर दी जाती थीं। 'वेतन जागीरे' जमींदार और राजाओं को उनकी स्थानीय रियासतों के लिए सौंपी जाती थीं। 'अल्तमघा जागीरें' मुस्लिम कुलीन (अभिजात) को उनके पारिवारिक नगर अथवा जन्म स्थान में दी जाती थीं। 'तनख्वाह जागीरें' प्रत्येक तीसरे से चौथे वर्ष हस्तांतरित कर दी जाती थीं। 'वतन जागीरें' वंशानुगत थी और अहंस्तारणीय थीं। जब किसी जमींदार को मनसबदार बनाया जाता था, तो उसे उसकी तनख्वाह ज़ागीर के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान की वतन ज़ागीर भी दी जाती थी, यदि उसके पद का वेतन उसकी 'वतन जागीर' की आय से अधिक होता था।

जागीरदार को शाही नियमों के अनुसार ही राजस्व एकत्रित करने की अनुमति थी। जागीरदार अपने स्वयं के कर्मचारी जैसे आमील आदि नियुक्त करते थे। शाही कार्यालय जागीरदारों पर निगरानी रखता था। सूबे के दीवान से आशा की जाती थी कि वह जागीरदार द्वारा किसानों पर हो रहे अत्याचारों को रोके। प्रत्येक सूबे में 'आमीन' की नियुक्ति यह देखने के लिए की जाती थी कि जागीरदार शाही नियमों का पालन करे। यदि जागीरदारों को राजस्व एकत्रित करने में कोई कठिनाई आती, तो 'फौजदार' जागीरदारों की मदद करते थे।

पाठगत प्रश्न 12.6

1. मनसबदारी प्रणाली किसने प्रारंभ की थी? यह प्रणाली क्यों बनाई गई थी?

   _____

2. 'जात' और 'सवार' क्या थे?

   _____

3. औरगंजेब ने मनसब प्रणाली में क्या परिवर्तन किए थे?

   _____

4. 'जागीर' प्रणाली क्या थी?

   _____

12.10 मराठों का प्रशासनिक ढांचा

दक्कन के इतिहास में मराठा शक्ति का उदय एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। मराठों की प्रशासनिक व्यवस्था मुगलों और दक्कनी राज्यों की प्रशासनिक व्यवस्था से बहुत अधिक प्रभावित थी।

(1) केन्द्रीय प्रशासन

राजा सभी कार्यों का कर्णधार था। प्रशासन को आठ विभागों में विभाजित किया गया, जिनके मुखिया मंत्री होते थे। कभी–कभी इन्हें अष्ट–प्रधान कहा जाता था। ये आठ मंत्री

थे–(1) पेशवा (वित्तीय और सामान्य प्रशासन की देखभाल करते थे) (2) सरी–ए–नौबत (सेनापति था) (3) मजूमदार लेखा–जोखा रखता था (4) बकायानवीस गुप्तचर और घरेलू मामलों की देखभाल करता था। (5) सुरुनवीस या चिट्निस शाही पत्राचार का कार्य करता था। (6) दाबिर विदेशी मामले देखता था। (7) न्यायाधीश न्यायिक और (8) पंडित राव धार्मिक अनुदान संबंधी मामले देखते थे।

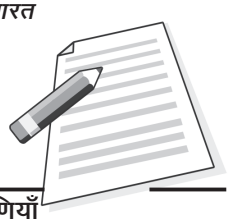
अष्ट प्रधान की रचना शिवाजी द्वारा नहीं की गई। इनमें बहुत से अधिकारी जैसे पेशवा, मजूमदार, बकायानवीस, दाबिर और सुरुनवीस दक्कनी शासकों के समय भी विद्यमान थे। पंडितराव और नयायाधीश को छोड़कर अष्टप्रधान के सभी सदस्यों को सैन्य नेत त्व करने के लिए कहा जाता था। ये कार्यालय शिवाजी के शासनकाल के दौरान न तो वंशानुगत और न ही स्थायी थे। वे राजा की इच्छा पर ही पद पर रह सकते थे। अक्सर उनका स्थानांतरण भी होता रहता था। प्रत्येक अष्ट–प्रधान की सहायता आठ सहायकों, दीवान, मजमूदार फडनीश, सबनीश, कारखानीस, छिटनिश, जमादार, और पोटनीश द्वारा की जाती थी। छिटनिश सभी राजनयिक पत्र व्यवहार करते थे और सभी शाही–पत्र लिखते थे। फडनीश किलों के कमांडरों के पत्रों के उत्तर देते थे। पोटनीश शाही खजाने की आय का लेखा–जोखा रखते थे।

(2) प्रांतीय और स्थानीय प्रशासन

प्रांतीय प्रशासन दक्कनी और मुगल प्रणाली के आधार पर संगठित किया गया था। सभी प्रांतीय इकाइयाँ दक्कनी शासकों के अधीन पहले से ही मौजूद थी। शिवाजी ने इन्हें मान्यता प्रदान की और कुछ का दोबारा नामकरण किया गया। प्रांतों को प्रांत के रूप में जाना जाता था। प्रांत सूबेदार के अधीन होते थे। एक से अधिक सूबेदारों को सरसूबेदार नियंत्रित करता था तथा यह सूबेदारों के कार्यों का निरीक्षण भी करता था। प्रांतों से छोटे 'तार्फस' थे, जिनका मुखिया हवलदार होता था। उसके बाद मौजास अथवा गांव थे जो प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थे। गांव के स्तर पर कुलकरणी खाते लिखता और व्यवस्थित रखता था जबकि पाटिल के पास न्यायिक और पुलिस शक्ति थी। परगना के स्तर पर देशपांडे खातों को लिखता और उन्हें व्यवस्थित करता था। जबकि देशमुख के पास न्यायिक और पुलिस शक्ति थी। पुलिस अधिकारी को ग्रामीण इलाकों में फौजदार कहा जाता था और शहरी इलाकों में कोतवाल कहा जाता था। मराठा राजनीति में नागरिक और सैन्य पदों का एकीकरण नहीं था। मराठों के शासनकाल में संभ्रात ब्राह्मण वर्ग केन्द्रीय नौकरशाही व स्थानीय प्रशासन में कार्यरत थे। इस हैसियत से उन्हें कामवीसदार कहा जाता था, जिनके पास कर लगाने और उसे एकत्रित करने की व्यापक शक्तियां थीं। वे मुकदमों का निर्णय करते थे और स्थानीय परिस्थितियों के बारे में जानकारी उपलब्ध कराते थे और उनका रिकॉर्ड रखते थे। बाद में ब्रिटिश जिला कलेक्टर का पद इस मराठा अधिकारी के नमूने के अनुसार बनाया गया।

पाठगत प्रश्न 12.7

1. अष्टप्रधान के पदों को सूचीबद्ध कीजिए?



2. मराठों की प्रशासनिक प्रणाली को किसने प्रभावित किया?

_____

3. मराठा प्रशासन के अंतर्गत प्रशासन की सबसे छोटी इकाई कौन–सी थी?

_____

आपने क्या सीखा

आपने देखा कि दिल्ली सल्तनत की स्थापना के साथ ही नए शासक वर्ग और कुछ नई प्रशासनिक संस्थाओं का उदय हुआ। प्रशासनिक संस्थाएँ मूल रूप से मिश्रित थीं जिनकी जड़ें अरब और मध्य एशिया और भारतीय मूल से थीं। मुगल काल के दौरान सल्तनत–काल की कुछ संस्थाओं में कुछ बदलाव किया गया और कुछ नई बनाई गईं। प्रशासनिक प्रणाली और संस्थाओं ने सल्तनत और मुगल साम्राज्य को सुद ढ़ करने में योगदान किया। प्रशासनिक प्रणाली को शासकों द्वारा समाज में सद्भाव बनाए रखने के लिए भी प्रयुक्त किया जाता था। इसे प्रशासनिक उपकरण के रूप में समाज के ज्यादा से ज्यादा समुदायों को शामिल करके प्रयुक्त किया जाता था। विस्त त क्षेत्र में फैले मुगल साम्राज्य के कारण प्रशासन को सुव्यवस्थित ढंग से संचालन करने के लिए इसे तीन स्तरों में बांटा गया; केन्द्रीय, प्रान्तीय और स्थानीय। स्थानीय स्तर के प्रशासन को गांव के मुखिया के हाथों में सौंपा गया। प्रान्तीय स्तर पर सल्तनत काल के दौरान इक्ता की संस्थाओं तथा मुगल काल में मनसब व जागीर संस्थाओं के माध्यम से प्रशासन चलाया जाता था और केन्द्रीय स्तर पर सुल्तान या सम्राट की अपनी प्रशासन प्रणाली होती थी जिसमें उसकी सहायता के लिए बहुत सारे अधिकारी होते थे। अन्य कार्यों की देखरेख के लिए भी कई अन्य विभाग थे। कभी–कभी शासक को अभिजांत चुनौती देते थे तथा उलेम दबाव डालते थे। शक्तिशाली और योग्य शासक के अधीन प्रशासनिक प्रणाली और संस्थाएँ बेहतर ढंग से कार्य करती थी परन्तु कमजोर शासक इनके दबाव में रहते थे। मराठा प्रशासनिक प्रणाली का विकास मुगल और दक्कनी राज्यों का अनुसरण करते हुआ।

पाठान्त प्रश्न

1. दिल्ली सल्तनत काल के दौरान प्रशासनिक ढांचे का विकास किस प्रकार हुआ?
2. दिल्ली सल्तनत काल के दौरान अभिजातों की संरचना पर चर्चा कीजिए?
3. दिल्ली सल्तनत काल के दौरान वज़ारत के कार्यों का उल्लेख करें?
4. सल्तनत के अधीन इक्ता प्रणाली के उद्भव का उल्लेख करें।
5. सल्तनत के अधीन स्थानीय प्रशासन के कार्यों की चर्चा करें।
6. अलाऊद्दीन खिलजी के बाजार सुधारों की चर्चा करें। किन उपायों को अपनाकर उसने इन्हें लागू किया?

7. मुगल काल के दौरान 'दीवाने–ए–कुल' और 'मीर–बक्शी' के कार्यों की चर्चा कीजिए।
8. मुगलों के अधीन स्थानीय प्रशासन के कार्यों की चर्चा करें।
9. अकबर से औरंगजेब तक मनसबदारी प्रणाली के विकास का उल्लेख करें।
10. जागीरदारी प्रणाली की मुख्य विशेषताओं का वर्णन करें?
11. मराठा प्रशासन की मुख्य विशेषताओं की चर्चा करें?

पाठगत प्रश्नों के उतर

12.1

1. चहलगान 40 अभिजातों का समूह था। इसे इल्तुतमिश द्वारा बनाया गया।
2. बलबन।
3. सुल्तान का स्थान समान शक्तिवालों में प्रमुख था।
4. उलेमा धार्मिक विद्वानों का समूह था जो धार्मिक मामलों और धार्मिक विवादों को नियंत्रित करते थे।

12.2

1. मुशतौफ़ी–ए–मुमालिक, मुशरीफ़–ए–मुमालिक।
2. दाग और हुलिया।
3. दीवान–ए–रिसालत, सदर–उस सद्र।

12.3

1. शिक्दार, फौज़दार, कोतवाल इत्यादि।
2. परगना, शिक, सरकार इत्यादि।
3. खुत मुकद्दम, पटवारी।
4. फवाज़ित राजस्व की वह शेष राशि होती थी जिसे मुक्तीं अपने तथा सेना का खर्च पूरा करने के बाद सुलतान को भेजता था।

12.4

1. सिहना, बदरीस, मुनीहीयान इत्यादि।
2. दिल्ली और छैन (राजस्थान)।
3. बंजारे खाद्य अनाजों को देहातों से ढोकर शहर ले जाया करते थे। अलाऊद्दीन खिलजी के समय के दौरान उन्होंने अपने आपको संगठित किया और यमुना के किनारे बस गए।,

12.5

1. अकबर वज़ीर की शक्ति को नियंत्रित करना चाहता था, क्योंकि उसका वज़ीर बैरम खाँ शक्तिशाली बन चुका था। अकबर ने वजीर से सभी वित्तीय शक्तियां छीन ली।
2. मीर सामाँ शाही कारखाने का पदाधिकारी था। उस पर शाही घर की सभी प्रकार की खरीदारी और उनके गोदाम की जिम्मेदारी थी तथा साथ ही विभिन्न निर्मित वस्तुओं का निरीक्षण भी करता था।
3. मुतासद्दी बंदरगाहों (पतन) का गवर्नर था। वह माल का कर इकट्ठा करता और सीमा शुल्क कार्यालय की देखरेख करता था।
4. फौजदार और अमलगुजार

12.6

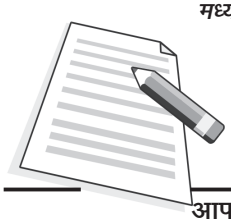
1. अकबर ने मनसबदारी प्रणाली स्थापित की थी। यह अभिजातों को पदानुसार सुव्यवस्थित करने और उनकी तनख्वाह निश्चित करने तथा घुड़सवारों की कितनी संख्या का रखरखाव उन्हें करना है, के लिए निर्मित की गई थी।
2. जात किसी अधिकारी की व्यक्तिगत श्रेणी की ओर संकेत करता तथा सवार किसी मनसबदार के द्वारा किए गए सैन्य दल के आकार को दर्शाता था।
3. औरंगजेब ने मनसब प्रणाली में एक अन्य पद जोड़ा जिसे मशरूत कहा गया (सर्शत)। उसने एक अन्य कटौती की जिसे खुराक–ए–दव्वाब कहा गया, जो साम्राज्य के अस्तबल के पशुओं के चारे के लिए थी।
4. देखिए भाग 12.9 (2)

12.7

1. देखिए मराठों के अधीन केन्द्रीय प्रशासन
2. मराठों की प्रशासनिक प्रणाली मुगल और दक्कनी राज्यों से प्रभावित थी।
3. मराठा प्रशासन के अधीन मौजा या गांव सबसे छोटी प्रशासनिक इकाई थी।

पाठान्त प्रश्नों के लिए संकेत

1. देखें अनुच्छेद 12.1- 1 और 2 का
2. देखें अनुच्छेद, 12.2 (2)
3. देखें अनुच्छेद 12.3 (1)
4. देखें अनुच्छेद 12.5
5. देखें अनुच्छेद 12.6
6. देखें अनुच्छेद 12.7
7. देखें अनुच्छेद 12.8 (3) और (4)

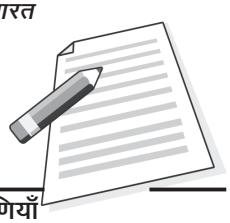


आपकी टिप्पणियाँ

8. देखें अनुच्छेद 12.8.3
9. देखें अनुच्छेद 12.9 (1)
10. देखें अनुच्छेद 12.9 (2)
11. देखें अनुच्छेद 12.10

शब्दावली

उलेमा	–	धार्मिक शिक्षाओं के विशेषज्ञ मुस्लिम विद्वान, आलिम शब्द का बहुवचन
चहलगान	–	इल्तूतमिश द्वारा बनाया गया 40 अभिजातों (कुलीनों) वर्ग समूह।
दीवान-ए-वज़ारत	–	सल्तनत काल का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्यालय, जिसका मुखिया वज़ीर होता था।
दीवान-ए-अर्ज़	–	सैन्य संगठन की देखरेख करने वाला विभाग जिसका मुखिया अरिज़–ए–मुमालिक था।
दाग	–	पशुओं और घोड़ों पर चिह्न लगाने की प्रणाली।
हुलिया	–	सैनिकों की पहचान का वर्णन।
दीवान-ए-इंशा	–	राज्य के पत्राचार की देखभाल करने वाला विभाग, जिसका मुखिया दबीर–ए–खास था।
दीवान-ए-रिसालत	–	न्याय प्रशासन से संबंधित विभाग, जिसका मुखिया सद्र–उस–सद्र था।
मुहतासिब्स	–	नियमों को बनाए रखने के लिए नियुक्त किया गया अधिकारी।
कारखाने	–	राज्य के लिए आवश्यक वस्तुओं का उत्पादन करने के लिए शाही कारखाने तथा उपक्रम।
इक्ता	–	गांव अथवा क्षेत्र के राजस्व का अनुदान।
मुकद्दम	–	गांव का मुखिया मुख्यतयः प्रथम अथवा वरिष्ठ व्यक्ति।
राय	–	हिन्दू मूखिया जिसके पास प्रायः भूमि और सेनाएं थी।
मनसब	–	मुगल शासक द्वारा दिया गया सैन्य पद, जो व्यक्तिगत स्थिति और वेतन निर्धारित करता था।
जागीर	–	राज्य द्वारा सरकारी अधिकारियों को दिया गया भूमि का टुकड़ा।
बंजारा	–	अनाज और मवेशियों के व्यापारी; एक जनजाति का नाम।
दलाल	–	बिचौलिया, दलाल।
आमील, अमालगुजर	–	राजस्व एकत्रित करने वाला।
खालिसा भूमि	–	वह भूमि जिसका नियंत्रण व प्रबंध सीधा राज्य द्वारा किया जाता था।
महजर	–	धार्मिक विद्वानों के चलते मतभेदों में उलेमाओं द्वारा जारी आदेश, जिसमें अकबर के विचारों को प्राथमिकता दी जाती।



फवाजिल – अधिशेष राशि
इदरार – राजस्व मुक्त भूमि अनुदान
मुक्ती अथवा वली – इक्तादार या गवर्नर
मुशरिफ – राजस्व अधिकारी
मुताशर्रीफ – लेखा परीक्षक
वक्फ – धार्मिक संस्थाओं के लिए दिया जाने वाला अनुदान
वजीफा – वजीफा या व त्ति



13

अर्थव्यवस्था

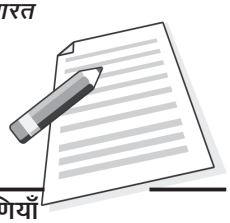
मध्यकालीन भारत में अपने बुनियादी जीविकोपार्जन के लिए लोग अनेक प्रकार के आर्थिक क्रियाकलाप करते थे। उनके कामों का दायरा खेती–बाड़ी से लेकर कारीगरी के उत्पादनों, व्यापार और वाणिज्य और इनसे संबंधित वित्तीय सेवाओं तक विस्त त था। इस अवधि के दौरान इन कार्यकलापों में लगातार परिवर्तन होते रहे। राज्य अपने अस्तित्व और विस्तार के लिए संसाधनों की पूर्ति विभिन्न प्रकार के करों के संग्रहण से करता था।

इस पाठ में, आप राज्य द्वारा संसाधनों के उत्पादन और उनके संचालन के विविध उपायों और व्यापार तथा वाणिज्य संबंधी गतिविधियों के बारे में पढ़ेंगे। क षि उत्पादन के खंड में हम खेतों की जुताई की सीमा, फसल के पैटर्न (नमूने) और सिंचाई के साधनों और तरीकों के संबंध में चर्चा करेंगे। कराधान पद्धति के अधीन भूमि लगान तथा प्रशासन में मध्यस्थ जागीरदारों और किसानों पर बोझ के संबंध में विश्लेषण करेंगे। गैर–क षि उत्पादों के खंड में आप विविध प्रकार के मध्यकालीन भारतीय शिल्पों, और उनके निर्माण से जुड़ी तकनीक और उत्पादन की व्यवस्था इत्यादि के संबंध में जानकारी प्राप्त करेंगे। इसमें आप मध्यकालीन भारतीय व्यापार और वाणिज्य के विविध पहलुओं के बारे में भी जानेंगे, जैसे व्यापारिक वर्ग – सर्राफ़, व्यापारी, दलाल इत्यादि और व्यापारिक कार्य–व्यवहार, लेन–देन के बिल (हुंडी), दलाली और बीमा इत्यादि।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- भारत में खेतीबाड़ी की सीमा, उगाई जाने वाली मुख्य फ़सलों; और सिंचाई के साधनों और तरीकों के बारे में बता सकेंगे;
- मध्यकालीन भारत की लगान पद्धति का विश्लेषण कर सकेंगे;
- लगान इकट्ठा करने में जागीरदार मध्यस्थों की भूमिका की जानकारी दे सकेंगे;
- शिल्पकारी की विविध वस्तुओं के निर्माण के संबंध में चर्चा कर सकेंगे ;
- गैर–क षि उत्पादनों की व्यवस्था और महत्त्व के बारे में बता सकेंगे;
- अन्तर्देशीय और विदेश व्यापार का वर्णन कर सकेंगे;



- मुख्य वाणिज्य संबंधी कार्य व्यापार और व्यापार से जुड़े कार्मिकों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे और;
- इस अवधि की मुद्रा प्रणाली के बारे में विस्त त जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

13.1 क षि संबंधी उत्पादन

मध्यकाल के दौरान उत्पादित कुल मात्रा में क षि उत्पादन का हिस्सा सर्वाधिक था। क षि से होने वाली आय राज्य की आय का मुख्य स्रोत थी।

1. खेती-बाड़ी की सीमा

खेती–बाड़ी की सीमा को इस संदर्भ में समझा जा सकता है कि इस संबंध में जाना जा सके कि कुल खेती योग्य उपलब्ध भूमि में से कितनी भूमि पर वास्तव में जुताई हो रही थी। गौर करने की बात यह है कि व्यक्ति के पास पर्याप्त भूमि थी, यानी जितनी भूमि पर किसान असल में जुताई कर रहे थे उससे कहीं ज़्यादा भूमि उपलब्ध थी। ऐसी स्थिति में खेती के विस्तार से उत्पादन को बढ़ाया जा सकता था, यानी नए–नए क्षेत्रों को क षि भूमि के अधीन लाया जा सकता था।

उदाहरण के लिए, समकालीन संसाधनों से हमें सूचना मिली है कि मुगल सल्तनत की अवधि के दौरान गंगा–यमुना दोआब की उपजाऊ भूमि के विशाल भूमि–क्षेत्र, वनों और घास के मैदानों से ढके हुए थे। मुग़ल काल में भी पर्याप्त भूमि लोगों के पास उपलब्ध थी।

इसलिए इस कालावधि के शासक इस नीति पर डटे रहे कि अब तक जिन क्षेत्रों को खेती की भूमि के अधीन नहीं लाया गया है, उन क्षेत्रों तक क षि भूमि का विस्तार किए जाए। जनजातीय, पिछड़े और दूर–दराज के क्षेत्रों में भी खेती–बाड़ी शुरू की गई। वनों की कटाई की गई और क षि योग्य व्यर्थ पड़ी (परती) भूमि को खेती योग्य भूमि में परिवर्तित किए गया। सल्तनत से मुग़लकाल की अवधि के दौरान बहुत अधिक मात्रा में क षि की सीमा का विस्तार हुआ। मुग़ल काल तक आते–आते उनके साम्राज्य के लगभग सम्पूर्ण भाग में खेती–बाड़ी होने लगी थी, यद्यपि मुग़लों के क षि कार्यों से जुड़ी आबादी (किसानों) की वास्तविक जरूरतों से अभी भी काफी ज़्यादा भूमि उपलब्ध थी। अकबर की तुलना में औरंगज़ेब के शासनकाल में क षि उत्पादनों में अत्यधिक व द्धि हुई। बिहार, अवध और बंगाल के कुछ क्षेत्रों में क षि विस्तार का श्रेय वनों की कटाई को जाता है जबकि पंजाब और सिंध में इसका कारण था नहरों का जाल बिछाना।

2. फसलों का स्वरूप

मध्यकालीन भारतीय किसान कई प्रकार की खाद्य फ़सलें, नकदी फ़सलें/(तुरंत बिकने वाली फ़सलें), सब्ज़ियों और मसालों की फ़सलें उगाते थे। वे अपने समय की फ़सल उगाने की प्रचलित उच्च स्तरीय तकनीकों से परिचित थे, जैसे – दोहरी फ़सल लेना, वर्ष में तीन फसलों की कटाई, फसल चक्र, खाद का उपयोग और सिंचाई के लिए विभिन्न प्रकार की प्रणालियाँ।

(क) **खाद्य फ़सलें:** मुख्य खाद्य फ़सलें, जिनका उत्पादन किए जाता था, थीं – चावल, गेहूं, जौ (जई), ज्वार, बाजरा और अनेक प्रकार की दालें, जैसे – चना, अरहर, मूंग, मोठ, उड़द और खिसारी इत्यादि।

(ख) **नकदी फ़सलें:** गन्ना, कपास, नील (रंगाई का नीला रंग निकालने के लिए प्रयुक्त) अफ़ीम, रेशम इत्यादि फ़सलें मध्यकालीन भारत की कुछ प्रमुख नकदी फ़सलें थीं। गन्ने से शराब बनाना, चौदहवीं सदी तक बहुत फैल चुका था। मुग़ल काल में, गन्ना सर्वाधिक उगाई जाने वाली नकदी फ़सलों में शामिल था और बंगाल में सर्वोत्तम गुणवत्ता के गन्ने की फसल उगाई जाती थी।

मुग़ल काल के दौरान, बयाना (आगरा के पास) और सरखेज (अहमदाबाद के पास) में सर्वश्रेष्ठ गुणवत्ता के नील का उत्पादन होता था। सेरीकल्चर (शहतूत के पत्तों पर रेशम के कीड़े पालना), जो सल्तनत काल में छोटे स्तर पर था, मुगल काल तक आते–आते बहुत बड़े पैमाने पर फैल चुका था। बंगाल, रेशम उत्पादन के लिए एक मुख्य क्षेत्र बनकर उभरा। बिहार और मालवा के मुगल प्रान्तों में सर्वोत्तम गुणवत्ता की अफ़ीम पैदा की जाती थी। तम्बाकू का उत्पादन भारत में, सोलहवीं सदी के दौरान पुर्तगालियों द्वारा प्रारंभ किए गया था और इसके बाद की अवधि में इसका बहुत व्यापक पैमाने पर उत्पादन होने लगा। सूरत और बिहार मुख्य तम्बाकू उत्पादक केन्द्रों के रूप में उभरे। इसी प्रकार, सत्रहवीं सदी से, बहुत बड़े पैमाने पर कॉफ़ी का उत्पादन होने लगा था।

(ग) **फल और सब्ज़ियाँ:** मध्यकाल में फलों की फ़सलें उगाने के खेती के कामों में बहुत तेजी से विकास हुआ। दिल्ली के कुछ सुल्तानों ने फलों को उगाने के काम को बहुत सक्रियता से बढ़ावा दिया। उदाहरण के लिए, फिरोज़शाह तुग़लक ने दिल्ली के आस–पास फलों के 1200 बाग़ लगाए। मुग़ल बादशाहों और उनके कुलीनों ने भी फलों के बहुत बड़े–बड़े वैभवशाली बाग़ बनवाए।

सोलहवीं और सत्रहवीं सदियों के दौरान, बाहरी एजेंसियों के माध्यम से, भारत का बहुत से नए फलों से परिचय हुआ। उदाहरण के तौर पर, पुर्तगालियों ने अनानास, पपीता और काजू के सूखे मेवे इत्यादि से परिचित कराया, तो चेरी का आयात काबुल से हुआ। लीची और अमरूद की शुरूआत भी इसी अवधि में भारत में हुई। मध्यकालीन भारतीय किसान अनेक प्रकार की सब्ज़ियों की फ़सलें उगाते थे। अबुल फ़ज़ल ने, अपने आईना–ए–अकबरी में उन सब्ज़ियों की सूची दी है जो उस समय उपयोग में लाई जाती थीं। आलू, मिर्च और टमाटर से परिचय उत्तर मध्यकाल के दौरान हुआ।

(घ) **मसाले:** काली मिर्च, लौंग, इलायची, केसर, पान का पत्ता इत्यादि कुछ मुख्य मसालों की खेती मध्यकालीन भारतीय किसान करते थे। मुग़ल काल के आने तक भारत के दक्षिणी समुद्री तट से भारी मात्रा में विविध प्रकार के मसालों का निर्यात, एशिया और यूरोप के विभिन्न क्षेत्रों में किए जाने लगा था।

3. सिंचाई के साधन और उपाय

भारतीय क षि, अपनी सिंचाई संबंधी आवश्यकताओं के लिए हमेशा से ही प्राक तिक और क त्रिम, दोनों प्रकार के विविध संसाधनों पर निर्भर रही है। जैसे वर्षा, कुएँ, नदियाँ, तालाब, नहरें, झीलें इत्यादि। बाँध, झीलें और जल भंडारक, सिंचाई के कुछ प्रमुख साधन थे। दक्षिण भारत में, राज्य स्तर पर, स्थानीय शासकों (चीफ़ों) में और मंदिर के प्रबंधकों ने इस उद्देश्य के लिए नदियों पर अनेक बांधों का निर्माण करवाया। उदाहरण के लिए,

विजयनगर के शासकों द्वारा वहाँ के आसपास के क्षेत्रों की सिंचाई संबंधी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए तुंगभद्रा नदी पर मडग झील का निर्माण कराया था। ढेबर, उदयसागर, राजसमंद और जयसमंद (सभी मेवाड़ में); बालसन (मारवाड़) और मानसागर (अम्बर) इत्यादि झीलें और जल भंडारक मध्यकालीन राजस्थान में सिंचाई के प्रमुख स्रोतों के रूप में काम में आते थे।

सिंचाई के सामान्य साधन के रूप में कुओं का जाल, देश के विभिन्न भागों में एक समान रूप में फैला हुआ था। कुओं से पानी बाहर निकालने के लिए कई प्रकार के क त्रिम यंत्रों (युक्तियों) का उपयोग किए जाता था। इस प्रयोजन के लिए कुओं पर पुलियां (चरखियाँ) लगाई जाती थीं जो एक अन्य यंत्र लीवर के सिद्धान्त पर काम करती थी। इस तरीके में एक खड़े बीम के काँटे को झूलती हुई स्थिति में रखा जाता था जिसके एक सिरे को एक रस्सी से बांधा जाता था और दूसरे सिरे पर भरी हुई बाल्टी के वज़न से ज्यादा वज़न बंधा रहता था। तथापि, सल्तनत शासन काल की अवधि के दौरान भारत में 'पर्शियन व्हील' (रहट) के उपयोग की शुरूआत, इस अवधि के दौरान उपयोग में लाई जाने वाली जल उठाने की सभी युक्तियों (यंत्रों) में से, सबसे उच्च स्तरीय थी। इस पद्धति में एक पहिए के रिम के चारों ओर छोटे–छोटे डिब्बों की शक्ल के बर्तनों की लड़ी जुड़ी होती थी, गियर की एक यांत्रिकी भी इसके साथ जुड़ी होती थी और पशु शक्ति के बल पर इस पहिये को घुमाया जाता था।

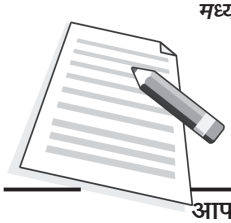
दिल्ली की सल्तनतों ने नहरों से सिंचाई को, विशेष रूप में प्रोत्साहित किए। गयासुद्दीन तुग़लक (1320–1325 ईस्वी) ने इस प्रयोजन के लिए अनेक नहरों का निर्माण करवाया। परन्तु, फ़िरोज़शाह तुग़लक ने नहरों का सबसे बड़ा जाल बिछाया। चार ऐसी नहरों का उल्लेख समसामयिक संसाधनों में आम तौर पर मिलता है। ये थीं—(i) सतलुज से घग्गर, (ii) नांदवी और सिमूर पहाड़ियों से प्रारंभ होकर अरासानी तक (iii) घग्गर से, गाँव की पहुँच से हिरान्सी खेड़ा तक, और (iv) यमुना से खुदाई शुरू करके, फ़िरोज़ाबाद तक बढ़ाई गई। दिल्ली सल्तनत की नहरों के निर्माण की परंपरा को मुग़ल शासकों ने भी जारी रखा। उदाहरण के लिए, शाहजहाँ के राज्य के दौरान निर्मित कराई गई 'नहर फ़ैज', यमुना से जल पूर्ति करके एक बहुत बड़े क्षेत्र की सिंचाई करती थी।

पाठगत प्रश्न 13.1

1. क षि के लिए भूमि की क्या उपलब्धता थी?

2. मध्यकालीन भारत की चार खाद्य फ़सलों और चार नकदी फ़सलों की सूची बनाए।

3. मध्यकाल के दौरान भारत में जिन फसलों का आगमन हुआ, उनमें से चार के नाम लिखें।



आपकी टिप्पणियाँ

4. पर्शियन व्हील (रहट) क्या था?

13.2 भू-राजस्व का मूल्यांकन और भू–राजस्व की मांग का परिमाण

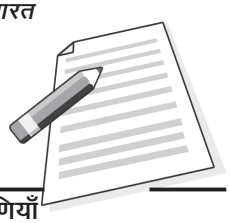
मध्यकालीन राज्य अपनी आय का अधिकतम भाग भू–राजस्व से प्राप्त करते थे। अलाउद्दीन ख़िलजी, शेरशाह सूरी और अकबर जैसे मध्यकालीन शासकों के प्रयासों से धीरे–धीरे भू–राजस्व प्रशासन की एक व्यापक कार्य व्यवस्था का विकास हुआ। अपने पूर्ण विकसित रूप में भू–राजस्व प्रशासन में बेहतर नीतियाँ शामिल थीं। वे थीं : (i) भू–राजस्व के मूल्यांकन के प्रयोजन से क षि योग्य भूमि का वास्तविक परिमापन (ii) मिट्टी की उपजाऊ शक्ति के आधार पर भूमि का वर्गीकरण (iii) भू–राजस्व मांग के अनुरूप भूमि की राजस्व की दर निर्धारित करना (iv) इसके संग्रहण के लिए व्यापक कार्य प्रणाली स्थापित करना, और (v) नकद रूप में भू–राजस्व के मूल्यांकन और संग्रहण के लिए रूपरेखा तैयार करना।

मध्यकाल में लगान के मूल्यांकन और संग्रह करने के लिए अनेक प्रकार के तरीकों का उपयोग किए जाता था। सबसे सरल और मौलिक तरीका था, फ़सलों में भागीदारी या बँटाई। कुल उत्पादन का कुछ भाग राज्य के भाग के रूप में निर्धारित किए जाता था। इस तरीके में कुल उत्पादन में से राज्य का हिस्सा निर्धारित कार्मिकों द्वारा एकत्रित किए जाता था। इस तरीके में लगान संग्रह करने में भूमि के माप की कोई भूमिका नहीं थी। ध्यान का मुख्य केन्द्र था वास्तविक उत्पादन।

फसल में भागीदारी – तीन प्रकार की फसल में भागीदारी प्रचलित थी –पहली, अनाज प्राप्त होने के बाद छँटाई की जगह पर ही फसल का विभाजन; दूसरी, 'खेत बटाई' यानी खड़ी फसल पर खेत का विभाजन; और तीसरी, लंगबटाई जिसमें फसल काटने के बाद इसे अनाज अलग किए बगैर ढेरों में बांटा जाता था। राज्य के हिस्से को इसी तरीके से निर्धारित किया जाता था।

दूसरे तरीके में, जिसे 'कानकुट' कहते थे, भूमि का माप महत्त्वपूर्ण था। इस तरीके में भूमि को पहले नापा जाता था – मापने के बाद भूमि की उत्पादकता का आकलन किए जाता था, नापे गए भू–क्षेत्र की प्रति इकाई के अनुसार लगान की माँग निर्धारित करने के लिए शेरशाह सूरी ने आकलन के तरीके को सुधारा। उत्पादकता का आकलन करने के लिए तीन प्रकार की भूमि, यानी अच्छी, मध्यम और खराब भूमि से, नमूने के रूप में कटाई की जाती थी और एक औसत फसल हासिल की जाती थी। राज्य की मांग, औसत फसल का एक तिहाई ($^1/_3$) हिस्सा निर्धारित किए गया था।

प्रत्येक फसल के लिए प्रति बीघा के अनुसार लगान की मांग घोषित की गई थी जिसे शेरशाह की 'राई' कहते थे। अकबर के प्रारंभिक वर्षों में सम्पूर्ण साम्राज्य के लिए यही दरें अपनाई गई थीं। यहाँ राज्य की मांग को एक प्रकार से नकार दिया गया था, परन्तु



उस वक्त उन पर लागू मूल्यों के हिसाब से इसे नकद रूप में भी एकत्रित/भुगतान किए जा सकता था।

इस तीसरे तरीके को ज़ब्त कहते थे, क्योंकि इसमें मूल्यांकन माप के आधार पर किए जाता था। प्राप्त फसल के आधार पर राज्य का हिस्सा निर्धारित किए गया था। अकबर के अधीन इस तरीके में और सुधार किए गया था। सभी प्रदेशों को लगान मंडलों (सर्किल्स) या 'दस्तूरों' में बांटा गया था। प्रत्येक 'दस्तूर' (सर्कल) के लिए, विभिन्न फ़सलों के उत्पादन के आधार पर प्रति बीघा के अनुसार, उनकी नकद दरें और मूल्य आकलित किए गए थे।

भूमि का वर्गीकरण

क षि योग्य भूमि को नापने के बाद, भूमि की उपजाऊ शक्ति के आधार पर इसे तीन वर्गों में बांटा गया था–अच्छी, मध्यम और खराब भूमि। खेती करते रहने के आधार पर भूमि को आगे और चार वर्गों में बांटा गया था जैसे–पोलाज, परती, चच्चर और बंजर। पोलाज भूमि वह थी जिससे हर वर्ष दो फ़सलें ली जाती थीं, परती भूमि को दो फ़सलों के बाद उसकी उपजाऊ शक्ति की पुनः पूर्ति करने के लिए, कुछ समय के लिए खाली (बग़ैर खेती किए हुए) छोड़ना पड़ता था। चच्चर भूमि वह अनुउपजाऊ भूमि का टुकड़ा होता था, जिस पर हर तीसरे या चौथे वर्ष के अंतराल पर फ़सल उगाई जाती थी, और बंजर भूमि खेती के लिए उपयुक्त नहीं थी और इस पर शायद ही कभी खेती की जाती थी।

विभिन्न स्थानों के लिए हर वर्ष नई दरें समन्वित करने की समस्या का हल आईना–ए–दहसाला या दस वर्ष के लिए उगाने की दरें अपनाने के जरिए किया गया था। इसके अनुसार किसी विशिष्ट फ़सल के लिए पिछले दस वर्ष की दरों के औसत को, किसी खास फसल के लिए लगान दर के रूप में माना जाता था। फिर भी, इन दरों को कुछ अनियमित वर्षों के अन्तराल पर बदल दिया जाता था और हर वर्ष अद्यतन नहीं किए जाता था। प्रारम्भ में इसे आगरा, इलाहाबाद, अवध, दिल्ली, लाहौर और मालवा प्रान्तों में लागू किए गया था। तथापि किसी भी एक वक्त पर किसी विशिष्ट क्षेत्र की सारी भूमि को नापा नहीं गया था। इससे यही संकेत मिलता है कि जिन क्षेत्रों में भूमि का माप लिया गया था वहाँ भी कुछ क्षेत्र ऐसे बच गए थे, जिसकी भूमि का नाप नहीं लिया गया था। ऐसी स्थिति में, यहाँ तक कि ज़ब्ती क्षेत्रों में भी, पूरे देश के लगभग सभी हिस्सों में लगान के मूल्यांकन और एकत्र करने के अन्य तरीके भी अपनाए जाते थे।

राज्य की आय का अधिकांश भाग भू–राजस्व से ही आता था। इसलिए, राज्य लगातार इस कोशिश में लगा रहता था कि ज़्यादा से ज़्यादा भू–क्षेत्र को क षि भूमि के रूप में इस्तेमाल किए जाए, ताकि लगान की आय में व द्धि की जा सके। राज्य के सभी प्रयास इस बात पर भी केन्द्रित होते थे कि किसानों से अधिक से अधिक लगान की वसूली की जा सके।

मुगलकालीन भू–राजस्व प्रशासन की व्यवस्था परगना स्तर पर की जाती थी। भूमि के सर्वेक्षण और लगान एकत्रित करने का काम विभिन्न कर्मचारियों को सौंपा जाता था।

'अमीन' सर्वेक्षण समूह का मुखिया होता था तो 'आमिल' लगान संग्रह का प्रभारी होता था। 'अमीन' के कामों में सहायता करता था 'कानूनगो' जो लगान संबंधी सभी अभिलेख रखने का जिम्मेदार था। लगान एकत्र करने के काम में 'आमिल' की सहायता करता था, 'चौधरी'। गांव के स्तर पर, अभिलेख रखने का काम 'पटवारी' करता था और संग्रहण का काम करता था, 'मुक्कदम' अथवा ग्राम का मुखिया। कुछ अन्य अधिकारी भी थे, जैसे 'पोतदार' या 'खजाँची' और 'कारकुन' या 'क्लर्क'। अभिलेखन का कार्य फ़ारसी और संबद्ध क्षेत्र की भाषा सहित, दोनों भाषाओं में होता था।

पट्टा और कबूलियत

प्रत्येक किसान को राज्य द्वारा एक दस्तावेज दिया जाता था, जिसे पट्टा (स्वामित्व/अधिकार–पत्र) कहते थे जिसमें किसान के कब्ज़े में दी गई भूमि के विभिन्न वर्गों और विभिन्न फ़सलों पर उसके द्वारा देय भू–राजस्व की दर का विवरण लिखा होता था। किसान से एक सहमति–पत्र लिया जाता था जिसे 'कबूलियत' कहते थे, जिसके अनुसार किसान, राज्य को भू–राजस्व की एक विशिष्ट राशि देने का वचन देता था। भूमि के लगान के अतिरिक्त किसानों को राजस्व के मूल्यांकन और इसे एकत्र करने पर आने वाले खर्च को पूरा करने के लिए कुछ अतिरिक्त कर भी देने पड़ते थे।

पाठगत प्रश्न 13.2

1. 'खेत बटाई' और 'लेंग बटाई' में क्या अन्तर था?

2. मध्यकालीन भारत के तीन शासकों के नाम लिखें, जिनकी भू–राजस्व नीतियों ने भू–राजस्व प्रशासन की व्यापक व्यवस्था के विकास में योगदान किया था।

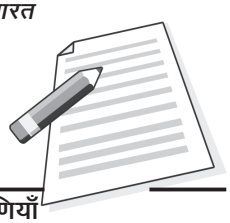
3. पोलाज, परती और चच्चर भूमि क्या थीं?

4. 'पट्टा' और 'कबूलियत' क्या हैं?

13.3 लगान संग्रहण में जमींदार मध्यस्थों की भूमिका

सरकारी कर्मचारियों के अतिरिक्त किसानों और राज्य के बीच में विभिन्न वर्गों के मध्यस्थ भी होते थे। भूमि का लगान वसूल करने में इन मध्यस्थों ने बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये अपनी सेवाओं के बदले में अपनी भूमि पर लगान में छूट अथवा भू–राजस्व में से अपना हिस्सा मांगते थे।

दिल्ली की सल्तनत की स्थापना से पहले, हमारे अनेक स्रोतों से ये संकेत मिले हैं कि राजा, राजपुत्र, राणका, महासामन्त इत्यादि शब्द उपयोग में थे। ये सभी भूमि के वंशानुगत



अधिकार प्राप्त करने वाले उत्तराधिकारियों से संबंधित थे। वे अपने–अपने क्षेत्रों के किसानों से भूमि का लगान एकत्र करते थे, इसका एक भाग राज्य को भेजते थे और एक भाग जीवनयापन के लिए अपने पास रखते थे। इसके अतिरिक्त, जैसा कि हमने देखा है, राज्य ब्राहमणों और मंदिरों को कर–मुक्त भूमि प्रदान करता था। इन प्रदाताओं के द्वारा ऐसे क्षेत्रों से भूमि का लगान एकत्र किए जाता था।

सल्तनत के शासनकाल में, जमींदार मध्यस्थ लगान एकत्र करने में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे थे। खुत्स (छोटे जमींदार), मुक़्कदम (ग्राम के मुखिया) और मध्यस्थों के समूह जैसे राय, राणा, रावत इत्यादि को औसत साधारण किसान से अधिक श्रेष्ठ होने के अधिकार प्राप्त थे। अलाउद्दीन ख़िलजी ने इन समूहों की शक्तियों और भागीदारी को कम करने के प्रयास किए थे। बाद में गयासुद्दीन और फ़िरोज़शाह तुग़लक जैसे दिल्ली के सुलतानों ने इनको कुछ रियायतें दी थीं।

मुग़लकाल के दौरान रायों, राणाओं, रावतों और अन्य मध्यस्थों को जमींदार कहा जाता था। ये वे लोग थे, जिन्हें भूमि पर पैदा होने वाली फ़सल पर वंशानुगत उत्तराधिकार होता था।

जमींदार, किसानों की फ़सल पर सीधे ही अपनी हिस्सेदारी का दावा करते थे। देश के विभिन्न भागों में इनकी भागीदारी 10 प्रतिशत से 25 प्रतिशत तक होती थी। ये दावे राज्य की मांग के साथ गौण रूप में उसके साथ–साथ ही चलते थे। ज़मींदार, राज्य और जागीरदार को लगान एकत्र करने के काम में भी उनकी सहायता करते थे। सल्तनत काल का 'इक़ता', मुग़ल काल तक आते–आते संशोधित रूप में जागीर का रूप ले चुका था। इसके धारकों (जागीरदारों) को लगान से जुड़े कार्यों के जरिये भुगतान किए जाता था। इस संबंध में हम पहले ही पाठ 12 में चर्चा कर चुके हैं। मुक़्क़दम (उत्तर भारत में) और पटेल (दक्कन में), ग्राम प्रमुख के रूप में कार्य करते थे और यह गांव में लगान एकत्र करने और वहां कानून और व्यवस्था बनाए रखने के लिए ज़िम्मेदार होते थे। इनकी सेवाओं के बदले में इन्हें राजस्व–मुक्त गांव की भूमि प्रदान की जाती थी। पटवारी (उत्तर भारत में) और कुलकर्णी (दक्कन में), जो गांव के लेखाकारों के रूप में काम करते थे, को भी इसी प्रकार भुगतान किए जाता था।

13.4 किसानों पर बोझ

मध्यकालीन भारत में सर्वाधिक जनसंख्या किसानों की थी। परन्तु सभी सजातीय समूह के नहीं थे। एक तरफ का प्रतिनिधित्व बहुत धनी किसान ('खुत' और 'मुक़्क़दम' दिल्ली सलतनत के दौरान और 'खुदकाश्त'–मुग़ल काल के दौरान), थे जिनके पास बहुत अधिक ज़मीनें थीं और वे किराए के मजदूरों की सहायता से ज़मीनों की खेती करवाते थे। दूसरी ओर का प्रतिनिधित्व करने वाले थे, छोटे किसान या गांव के निचले स्तर के लोग (भारत के विभिन्न भागों में जिन्हें बलहार, रेज़ा रियाया, पाल्टी, कुनबी, पाही काश्त, उपारी इत्यादि कहते थे)। किसानों के अधिकांश लोगों के लिए एक सामान्य शब्द 'रैयत' का उपयोग किए जाता था। कुल मिलाकर किसानों को अपनी फ़सल का एक बहुत बड़ा भाग भूमि के लगान के रूप में भुगतान करना पड़ता था। इसके अतिरिक्त बहुत बड़ी संख्या में ज़मींदार मध्यस्थ बढ़ती फ़सल के उत्पादन में से अपना हिस्सा समायोजित कर लेते थे। इसके अतिरिक्त मध्यकालीन भारतीय किसानों को बाढ़, अकाल, महामारी जैसी प्राक तिक आपदाओं का भी सामना करना पड़ता था। एक आम किसान को करों के दबाव,

लिए गए ऋणों के लेन–देन, बार–बार पड़ने वाले अकाल और महामारी के कारण, बची–खुची बहुत कम आमदनी में जीवनयापन करना पड़ता था।

किसानों की कठिनाइयाँ और गुस्सा कई बार विरोध और विद्रोह बनकर फूटता था। सल्तनत काल के दौरान, मोहम्मद बिन तुग़लक़ द्वारा दोआब क्षेत्र में लगान बढ़ाए जाने के प्रयासों की वजह से किसान वर्ग में बहुत गंभीर विद्रोह पैदा हो गया था। सम्राट औरंगज़ेब के शासनकाल के दौरान जाटों, सिखों, मराठों और सतनामियों में बहुत बड़े स्तर पर विद्रोह पैदा हो गया था। इन बगावत की घटनाओं के पीछे क षकों की असंतुष्टि भी एक बहुत बड़ा कारण था।

पाठगत प्रश्न 13.3

1. राजपुत्र, राणका और महासामन्त कौन थे?

2. मुक़्क़दम और पटेल कौन थे?

3. मुग़ल काल के दौरान हुए कुछ महत्त्वपूर्ण किसान विद्रोहों की सूची बनाएं।

13.5 दस्तकारी से संबद्ध (ग़ैर-क षि) उत्पादन

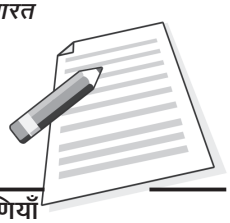
यद्यपि अधिकांश लोगों का व्यवसाय क षि था, परन्तु देश के ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रों में काफ़ी बड़े स्तर पर अनेक प्रकार के शिल्प कार्य भी अस्तित्व में थे। इन शिल्प कार्यों में शामिल थे, कपड़ा बुनना, मिट्टी के बर्तन बनाना, रंगाई, खांडसारी (चीनी बनाना), धातु कार्य, काग़ज़ बनाना, लकड़ी का काम, शस्त्र और कवच का निर्माण, पोत–निर्माण, रसायनों से जुड़े कार्य इत्यादि।

प्रमुख शिल्प कार्य

बुने हुए कपड़ों का उत्पादन, मध्यकालीन भारत में बहुत व्यापक रूप से किए जाने वाला कारीगरी का काम था। भारतीय बुनकर चार प्रकार के कपड़ों का निर्माण करते थे – सूती, रेशमी, ऊनी और मिश्रित मोटा सूती कपड़ा। बंगाल, लाहौर, आगरा, अवध, पटना, फतेहपुर सीकरी और गुजरात इत्यादि सूती कपड़ा उत्पादन के प्रमुख केन्द्र थे। कपड़ों के निर्माण के अतिरिक्त बंगाल और गुजरात बुने गए कपड़ों की वस्तुओं के बहुत प्रसिद्ध निर्यातक थे।

इस अवधि के दौरान रंगाई और ब्लीचिंग (विरंजन) की कला, प थक रूप में एक विशिष्ट कारीगरी के रूप में उभर कर आई। भड़ूच, अहमदाबाद, सूरत, पटना, सोनारगांव, ढाका, मसोलीपट्टम इत्यादि प्रमुख रंगाई और ब्लीचिंग (विरंजन) के केन्द्र थे।

चीनी का उत्पादन पूरे देश में होता था। खांडसारी के विविध रूपों में जैसे गुड़, बूरा, शक्कर इत्यादि का उत्पादन बंगाल, उड़ीसा, अहमदाबाद, लाहौर, मुल्तान और अन्य अनेक स्थानों पर होता था।



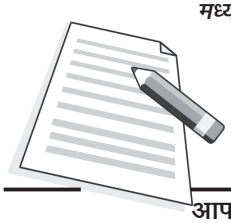
धातु निष्कर्षण एक अन्य मुख्य उद्योग था। नमक, कलमी शोरा, फ़िटकरी, अबरक इत्यादि का बहुत बड़े स्तर पर उत्पादन होता था। राजस्थान की साम्भर झील, पंजाब की रॉक साल्ट की खानें और समुद्र का पानी नमक उत्पादन के कुछ प्रमुख स्रोत थे। समुद्री नमक का उत्पादन मुख्यतया बंगाल, सिंध, मालाबार, मैसूर और कच्छ के रण में होता था। कमली शोर, जिसका उपयोग बुनियादी रूप से बारूदी चूर्ण (पाउडर) बनाने में एक मुख्य घटक के रूप में होता था, बहुत ही महत्त्वपूर्ण खनिज उत्पाद था। प्रारंभ में यह अहमदाबाद, बड़ौदा और पटना इत्यादि में निकाला जाता था। तथापि सत्रहवीं सदी के द्वितीय अर्ध काल के दौरान, पटना इस खनिज के संसाधन का एक बहुत महत्तवपूर्ण केन्द्र बन गया था।

धातुओं में, भारत में सोना और चांदी की खानों की कमी थी। इसलिए, इन धातुओं को प्रायः आयात किए जाता था। हीरों का खनन मुख्यतया गोलकुंडा में देखने में आया था। हीरों के उत्पादन के कुछ अन्य केन्द्र थे बीरगढ़ (बरार), पन्ना (मध्य प्रदेश), और खोखरा (छोटा नागपुर) इत्यादि। खेतड़ी (राजस्थान) तांबा उत्पादन का मुख्य केन्द्र था। लोहा बहुतायत में पाई जाने वाली आम धातु थी। मध्यकाल में बंगाल, इलाहाबाद, आगरा, बिहार, गुजरात, दिल्ली, कश्मीर, छोटा नागपुर और उड़ीसा के आसपास के क्षेत्र लोहा उत्पादन के प्रमुख केन्द्र थे।

काग़ज़ बनाने की कारीगरी का प्रारंभ, भारत में सल्तनत काल के दौरान हुआ। पहली बार इसका उत्पादन, प्रथम शताब्दी ई. के आसपास चीन में हुआ था। इसके पश्चात इस शिल्प में बहुत तेज़ी से विकास हुआ। काग़ज़ निर्माता, मुग़ल काल में लगभग प्रत्येक क्षेत्र में (उपलब्ध) थे। मध्यकाल के दौरान अनेक नई तकनीकों और विविध क्षेत्रों में उनके उपयोग का उद्‌भव देखने को मिला। कपड़ा बुनाई (टेक्सटाइल) के क्षेत्र में, तेरहवीं–चौदहवीं सदियों के दौरान, चरखे (स्पिनिंग व्हील) की शुरूआत बहुत ही महत्त्वपूर्ण खोज थी। तकली से धागा निर्माण करने की तुलना में चरखे से धागे के उत्पादन में छह गुना व द्धि हुई। इसी प्रकार पन्द्रहवीं शताब्दी में भारत में खड्‌डी (पिट–लूम) की शुरूआत हुई, जिससे कपड़े की बुनाई के काम को बहुत गति मिली। ड्रॉलूम बुनाई की एक और महत्त्वपूर्ण युक्ति (डिवाइस) थी, जिसका उपयोग विविध रंगों के धागों की बुनाई के पैटर्न बनाने के लिए साथ–साथ किए जाता था। इसी प्रकार कुछ विद्वान, ठप्पों (सांचों) से छपाई (ब्लॉक प्रिंटिंग) के काम का श्रेय भी भारत के मध्यकालीन काल को ही देते हैं।

धातु विज्ञान और धातु–कार्य के क्षेत्र में इनके निर्माण की प्रक्रिया में अनेक प्रकार की नई प्रौद्योगिकी का प्रारंभ हुआ। जिनमें कुछ प्रमुख थीं – सीधी खड़ी खुदाई के खड्‌डे खोदना (वर्टिकल बोर पिट्‌स), अंडाकार नाल (ओवल शॉफ्ट) से गहरी खानों की खुदाई, पुली इत्यादि का उपयोग। उच्च गुणवत्ता के स्टील और तांबा और जस्ता (जिंक) की मिश्रधातु बिदरी का उत्पादन इस काल के नए धातु–कर्म थे।

शस्त्रों और कवच निर्माण के क्षेत्र में, बारूद, तोप, आग्नेय–अस्त्र इत्यादि मध्यकालीन काल की नवीन महत्त्वपूर्ण खोजें थीं। भारत में आधुनिक तोपखाना एक ओर तो बाबर लेकर आया (जिसने इसे फ़ारस से प्राप्त किए था) और दूसरी ओर इसे पुर्तगालियों द्वारा भी लाया गया। इसके अतिरिक्त, फ़तुल्लाह शिराज़ी ने, जो अकबर के शासन काल में अत्यन्त मेधावी और दक्ष इंजीनियर था, इस क्षेत्र में अमूल्य नई खोजें कीं।



आपकी टिप्पणियाँ

कागज़ बनाने की कला, जैसा कि उल्लेख किए गया हैं, भारत में इसी अवधि के दौरान आई। इसके साथ ही किताबों पर जिल्द बांधने की कला का विकास भी इसके साथ–साथ हुआ।

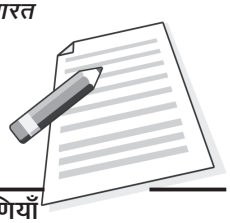
यद्यपि काँच बनाने की कला से भारतीय प्राचीन काल के दौरान ही परिचित थे परन्तु इसका उपयोग मोती और चूड़ियाँ बनाने तक ही सीमित था। मध्यकाल में काँच की विभिन्न वस्तुएँ, जैसे–औषधीय शीशियाँ (फार्मास्यूटिकल फॉयल्स), बर्तनों आदि का निर्माण भी होने लगा था। तुर्कों के भारत में आने के साथ ही रांगा की परत (कलई करने) चढ़ाने (टिन–कोटिंग) का काम भी यहाँ शुरू हो गया था। इस तकनीक में तेजाब के ज़हरीले प्रभाव से बचने के लिए तांबे और पीतल के बर्तनों के अन्दर टिन की एक परत चढ़ाई जाती थी (कलई की जाती थी)।

उत्पादन की व्यवस्था

गाँव और क़स्बे दोनों स्थानों पर शिल्पों के उत्पादन की व्यवस्था होती थी। वहाँ शाही कारखाने भी होते थे। ग्रामीण क्षेत्रों में कारीगर दैनिक उपयोग की वस्तुएँ बनाते थे। ये कारीगर गाँव के सामाजिक तंत्र का हिस्सा होते थे, जिसे 'जजमानी' प्रथा कहते थे। दक्कन और महाराष्ट्र में यह प्रथा ज़्यादा व्यवस्थित थी। गाँव के दस्तकारों और सेवकों को इस क्षेत्र में 'बलूतेदार' कहा जाता था।

शहरों में रहने वाले कारीगर ऐसी उपयोगी वस्तुओं के केन्द्र में होते थे, जिनका उत्पादन बाजारों के लिए किए जाता था। लगभग प्रत्येक शिल्प के लिए एक विशिष्ट कारीगर होता था, जो बाज़ार के लिए चीज़ें निर्मित करता था। शिल्पकारी उत्पादन की व्यवस्था के इस स्तर पर, कारीगर व्यक्तिगत रूप में आवश्यक कच्चे माल और औज़ारों की व्यवस्था करता था, माल तैयार करता था और इसे बाज़ार में बेचता था। परन्तु इस प्रकार कारीगरों की वस्तुएँ निर्मित करने में एक बहुत बड़ी कमी थी। क्योंकि उत्पादन की व्यवस्था खुद व्यक्ति अपने आप करता था इसलिए उत्पादन प्रक्रिया में बड़ी पूंजी लगाने में कारीगर असमर्थ रहता था। इस समस्या के समाधान के लिए धीरे–धीरे उत्पादन की एक संशोधित प्रथा का विकास हुआ जिसे 'दादनी प्रथा' कहते थे। इस प्रथा में जो व्यापारी उस कारीगर द्वारा बनाई गई वस्तुओं का व्यापार करता था वही उसे कच्चा माल और अग्रिम धनराशि प्रदान करता था। निर्धारित अवधि बीतने के बाद वह व्यापारी तैयार वस्तुओं को इकट्ठा करके बाज़ार में बेचता था।

शाही कार्यशाला (कारखाना) शिल्पकारी उत्पादन का एक अन्य हिस्सा होता था। ये कारखाने शाही स्थापना के अंग थे। ये शाही घराने और दरबार के उपयोग के लिए वस्तुओं का निर्माण करते थे, प्रायः यहाँ पर बहुत महँगी और विलासिता की वस्तुओं का निर्माण होता था। कारखानों में बहुत ही कुशल कारीगरों को नियुक्त किए जाता था और जो एक ही छत के नीचे काम करते थे और राज्य के अधिकारियों द्वारा इन पर निगरानी रखी जाती थीं। स्पष्ट है कि दो बिल्कुल भिन्न प्रकार के कारखाने होते थे। पहले–पारंपरिक किस्म के कारखाने, जिनमें बहुत कम मात्रा में विलासितापूर्ण वस्तु का निर्माण होता था परन्तु वे बहुत उच्च गुणवत्ता की शिल्पकारी वस्तुएँ होती थीं और दूसरी टकसालें या शस्त्र निर्माण के एकक, जहाँ पर मानकों की द ष्टि से तकनीकी उच्चता की वस्तुओं का बड़े पैमाने पर उत्पादन होता था।



पाठगत प्रश्न 13.4

1. भारत के पाँच मध्यकालीन मुख्य शिल्पों के नाम लिखें?

2. कलमी शोरा उत्पादन के तीन मुख्य केन्द्रों के नाम लिखें?

3. हीरा उत्पादन के चार मुख्य केन्द्रों के नाम लिखें?

4. कपड़ों की बुनाई में प्रयुक्त होने वाली तीन महत्त्वपूर्ण तकनीकी युक्तियों के नाम लिखें?

13.6 व्यापार और वाणिज्य

मध्यकालीन काल में भारत में बहुत विकसित बाह्य और आंतरिक व्यापार था। आन्तरिक व्यापार का विकास स्थानीय, प्रादेशिक और अन्तर–प्रादेशिक स्तर पर हुआ। सड़क मार्गों से चीन, अरब, मिस्र, मध्य एशिया और अफ़गानिस्तान जैसे क्षेत्रों के साथ व्यापारिक संबंध रखे जाते थे। समुद्र के उस पार व्यापार फ़ारस की खाड़ी, दक्षिण चीन सागर, भूमध्य सागर और लाल सागर से होता था। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के आने से भारतीय उप–महाद्वीप में पुर्तगालियों, ब्रिटिश, डच और फ्रांसिसियों के साथ व्यापारिक गतिविधियों में तेज़ी आई। एशियन नौवहन (मैरिटाइम) व्यापार में भी इस दौरान काफी व द्धि हुई। इस कालावधि में अनेक नई व्यापारिक गतिविधियों, जैसे – ऋण देना, दलाली, बीमा इत्यादि में भी काफी व द्धि देखने में आई थी। बहुत बड़ी संख्या में व्यापारियों, सर्राफा दलालों इत्यादि को भी व्यापारिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाते देखा गया।

1. आंतरिक व्यापार

मुग़ल काल तक आन्तरिक व्यापार बहुत विकसित हो चुका था। हरेक स्थानीय आबादी में नज़दीक के कस्बों में नियमित बाज़ार थे जहाँ पर आसपास के इलाकों के लोग, सामान बेच और ख़रीद सकते थे। स्थानीय स्तर पर व्यापार के अतिरिक्त आवधिक बाज़ारों के ज़रिए भी व्यापार होता था, जिन्हें 'हाट' या 'पैंठ' कहते थे और ये सप्ताह के निश्चित दिन पर किसी स्थान पर लगते थे। इन स्थानीय बाज़ारों में, खाद्य–अनाज, नमक, लकड़ी और लोहे के उपकरण, खादी इत्यादि दैनिक उपभोग की वस्तुएँ उपलब्ध होती थीं।

यह स्थानीय बाज़ार, उस विशिष्ट प्रदेश के बड़े व्यापारिक केन्द्रों से जुड़े होते थे। ये केन्द्र उस विशिष्ट क्षेत्र के उत्पादों के बाज़ार के रूप में कार्य नहीं करते थे बल्कि अन्य क्षेत्रों से भी सेवा सामान उपलब्ध कराते थे। दिल्ली, आगरा, लाहौर, मुल्तान, बीजापुर, हैदराबाद, कालीकट, कोचीन, पटना इत्यादि मुग़लकाल के दौरान कुछ ऐसे व्यापारिक क्षेत्र थे।

विलासितापूर्ण उपभोक्ता वस्तुओं के संबंध में भी बहुत सक्रिय व्यापार होता था। ज़ियाऊद्दीन बरानी ने अपनी किताब तारीख़–ए–फिरोज़शाही में उल्लेख किए है कि सल्तनत काल के दौरान दिल्ली, कोल (अलीगढ़) से अर्क से निकाली गई शराब, देवगिरी से मलमल, लखनौटी से धारीदार कपड़ा और अवध से साधारण कपड़ा प्राप्त करते थे। बंगाल के, अपने मुख्य व्यापारिक केन्द्रों जैसे – हुगली, ढाका, मुर्शिदाबाद, सतगाँव और पटना इत्यादि के माध्यम से, भारत के सभी भागों के साथ बहुत विकसित अन्तर–प्रादेशिक व्यापारिक संबंध थे। इसी प्रकार, पश्चिम भारत में सूरत और अहमदाबाद और उत्तर–भारत में आगरा ऐसे प्रमुख केन्द्र थे, जिनके बहुत विकसित अन्तर–प्रदेशीय व्यापारिक संबंध थे।

2. विदेश व्यापार

भारत में हमेशा से अन्य देशों के साथ व्यापारिक संबंध रखने की परंपरा रही है। प्रारंभिक मध्य काल के दौरान (अर्थात दसवीं शताब्दी के बाद से), भारत में, समकालीन चीन, अरब और मिस्र के साथ व्यापार होता था। भारत की, फ़ारस की खाड़ी और दक्षिण चीन सागर के बीच भी, समुद्र मार्ग से व्यापार की काफी अच्छी हिस्सेदारी थी। भारत, चीन और दक्षिण एशिया से रेशम, चीनी मिट्टी के बर्तन, कपूर, लौंग, मोम और चंदन की लकड़ी और बहरीन, मस्कट, अदन और फ़ारस इत्यादि स्थानों से घोड़े आयात करता था। भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुएँ थीं, सुगंधियाँ (इतर) और मसाले, सूती कपड़ा, हाथी दांत की वस्तुएँ और बहुमूल्य रत्नों और कीमती पत्थर की मणियाँ इत्यादि। सल्तनत काल के दौरान भारत के मध्य एशिया, अफ़गानिस्तान, फ़ारस की खाड़ी और लाल सागर के साथ व्यापारिक संबंध थे। भारत मुख्य रूप से खाद्यान्न, बुना हुआ कपड़ा, नील, बहुमूल्य रत्न इत्यादि निर्यात करता था और सोना और चांदी जैसी बहुमूल्य धातुए, घोड़े, जरी (ब्रोकेड) और रेशम का सामान इत्यादि आयात करता था।

मुग़ल काल के दौरान, यूरोपीय व्यापारिक कंपनियों के भारत में आने और उनके यूरो–एशियन और अन्तर–एशिया व्यापार में प्रत्यक्ष भागीदारी के कारण, विदेश व्यापार में और अधिक तेज़ी आई। मध्य एशिया, फ़ारस (पर्शिया) और यूरोप से भारत के व्यापारिक संबंध थे। इसके निर्यात में प्रमुख चीज़ें थीं, कपड़े, कलमी शोरा, चीनी (खांड), अफ़ीम और मसाले। अपनी निर्यात की गई वस्तुओं की तुलना में भारत में आयात की जाने वाली उपभोक्ता वस्तुएँ बहुत चुनिंदा थीं, जैसे चांदी, रेशम, चीनी मिट्टी के बर्तन, अच्छी गुणवता की शराब, कालीन (गलीचे), इत्र, कांच, घड़ियाँ, चांदी के बर्तन और घोड़े इत्यादि।

3. व्यापारिक समुदाय

मध्यकालीन भारत की संपूर्ण कालावधि के दौरान भारत में, व्यापारिक समुदाय ने समकालीन अर्थव्यवस्था और समाज में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

सल्तनत काल के दौरान, 'कारवांनी' या 'नायक' व्यापारी होते थे, जो ग्रामीण क्षेत्रों से अनाज ढोने के विशेषज्ञ थे। फ़ारसी में 'कारवांनी' शब्द का अर्थ है वे लोग जो बहुत बड़ी संख्या में समूह में चलते हैं। बाद की सदियों में इन लोगों को 'बंजारे' कहा जाता था। हमें भी ऐसे मुल्तानी व्यापारियों के उल्लेख मिले हैं, जो दूर–दराज के स्थानों में व्यापार करने के काम में दक्ष थे। ये अधिकतर हिन्दू व्यापारी थे।

मुग़ल काल में भी हमें अनेक व्यापारिक वर्गों के संबंध में सूचनाएँ मिली हैं। समकालीन साहित्य में बंजारों के संबंध में अनेक उल्लेख मिले हैं जिनमें उन्हें ऐसे व्यापारिक वर्ग के रूप में दर्शाया गया है जो गांवों और शहरों के बीच व्यापार करते थे। वे अपने परिवारों और घरेलू–सामान साथ लेकर समूहों में चलते थे। ये मुल्तानी व्यापारी इस काल के दौरान, दिल्ली, 'पंजाब' और 'सिंध' के कुछ भागों में बहुत फलते–फूलते रहे। उत्तर भारत और दक्कन में 'बनिया' एक और प्रमुख व्यापारिक समुदाय था। इन्हीं के समकक्ष थे पंजाब में 'खतरी' और गोलकुंडा में 'कोमाती'। व्यापारिक गतिविधियों में लिप्त होने के साथ–साथ ये लोग ऋण देने का काम भी करते थे। मुग़ल काल के दौरान 'बोहरा' एक अन्य कौम थी जो प्रमुखतः व्यापार से जुड़ी थी। गुजरात, उज्जैन और बुरहानपुर में इनकी काफ़ी ज़्यादा संख्या देखने को मिली। कुछ अन्य प्रमुख व्यापारिक समूह थे 'चैती' (दक्षिण भारत), 'कलिंग' (कोरोमंडल के समुद्र तट से लेकर उड़ीसा तक), 'कोमाती' (तेलुगू बोलने वाला व्यापारिक समूह) इत्यादि।

(क) सर्राफ़: यह एक अन्य समुदाय था जो पैसे के लेन–देन के काम में लगा था। इस समुदाय के उल्लेख, सल्तनत काल से मिलने शुरू हो गए थे। तथापि, मुग़ल काल तक आते–आते इन्होंने तीन भिन्न–भिन्न कार्य विकसित किए।

1. धन (सिक्के) बदलने वाले – इस भूमिका में, सर्राफ़ को सिक्के की धातु संबंधी शुद्धता और उसके वज़न की जाँच के काम में विशेषज्ञ समझा जाता था। वे विशिष्ट सिक्कों की चालू विनिमय दर भी निर्धारित करते थे।
2. साहूकार/(महाजन), इस रूप में वे धनराशि अपने पास जमा करते थे और ब्याज पर ऋण भी देते थे।
3. व्यापारियों के रूप में ये लोग सोना, चांदी और गहनों का व्यापार करते थे। इसके अतिरिक्त वे 'हुंडियाँ' या 'विनिमय–पत्र' भी जारी करते थे।

(ख) दलाल: 'दलालों के रूप में पुकारे जाने वाला यह एक प्रमुख व्यापारिक वर्ग था। इसका उद्भव सल्तनत काल के दौरान हुआ। तथापि मुग़ल काल के दौरान 'दलाली' एक बहुत ही व्यापक व्यापारिक गतिविधि बन गई थी। ये लोग दो व्यापारिक गतिविधियों या लेन–देन में मध्यस्थ की तरह काम करते थे। विदेशी व्यापारी, जो उत्पादन केन्द्रों से अनभिज्ञ थे बाजार के तौर – तरीकों और भाषा से अपरिचित होते थे, वे अपने व्यापार के लिए मुख्य रूप से इन दलालों पर ही निर्भर होते थे। ये दलाल अलग–अलग हैसियतों में काम करते थे। कुछ को व्यापारियों या कंपनियों द्वारा नियुक्त किए जाता था। कुछ स्वतंत्र दलाल के रूप में काम करते थे, जो एक ही समय में कई ग्राहकों के लिए काम करते थे। इनमें से कुछ व्यापारिक केन्द्रों पर राज्य द्वारा नियुक्त दलाल के रूप में काम करते थे तथा जो वस्तुओं के क्रय–विक्रय का लेखा–जोखा रखते थे। दलालों का कोई निर्धारित शुल्क नहीं होता था। यह शुल्क उपभोक्ता वस्तु और दलाल द्वारा उस सौदे को पूरा करवाने में निभाए गए प्रयास पर निर्भर होता था।

4. व्यापारिक गतिविधियाँ

व्यापार और व्यापारिक वर्ग के विकसित होने के साथ–साथ, मध्य युग की अवधि के दौरान कुछ नई व्यापारिक गतिविधियाँ भी विकसित हो गई थीं।

(क) हुंडी: 'हुंडी' या 'विनिमय–पत्र' एक मध्यकालीन व्यापारिक गतिविधि थी। 'हुंडी' काग़ज़ पर बना एक दस्तावेज़ होता था जिसके अनुसार एक निश्चित समय की अवधि के बाद किसी विशिष्ट स्थान पर उसमें लिखी धनराशि के भुगतान का वचन देना होता था। इस प्रथा की शुरूआत की वजह थी, भारी मात्रा में नकद धनराशि को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की समस्या। सर्राफ़, जो 'हुंडी' के लेन–देन में मुख्य भूमिका निभाते थे, की विभिन्न कस्बों और शहरों में अनेक स्थापनाएँ होती थीं। ये लोग स्थानांतरित की जाने वाली नकद राशि स्वीकार करने के बाद, व्यापारियों को हुंडियाँ जारी करते थे। हुंडियों में धनराशि, और उसके नकदीकरण के स्थान के बारे में उल्लेख किए जाता था। इन हुंडियों को इनके निर्धारित गंतव्य स्थान तक ले जाने वाले व्यक्ति इन हुंडियों को जारी करने वाले सर्राफ़ों के एजेंटों के समक्ष प्रस्तुत करते थे और इनमें लिखी राशि के मुताबिक नकद राशि उससे प्राप्त कर लेते थे। व्यापारियों के अतिरिक्त राज्य के अधिकारी और अन्य अभिजात्य लोग भी धनराशि स्थानान्तरण के लिए इनका उपयोग करते थे।'हुंडी' प्रथा, धन स्थानांतरित करने की बहुत सुरक्षित और सुविधाजनक पद्धति के रूप में स्थापित हो गई थी। सर्राफ़ जो भी हुंडी जारी करते थे, उसके लिए दलाली वसूल करते थे।

(ख) बीमा: यह प्रथा बहुत व्यापक रूप में व्याप्त हो गई थी, विशेष रूप से मुग़ल काल में। कुछ बीमा फर्में विकसित हो गई थीं (अधिकांश सर्राफ़ों के स्वामित्व में), जो व्यापारिक माल के सुरक्षित वहन और वितरण की खुद जिम्मेदारी लेती थीं। यदि किसी मामले में पारगमन में माल को कोई नुकसान पहुंचता था, तो इन फर्मों को उस माल की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती थी। ऐसे माल के लिए बीमे के रूप में कुछ दलाली की राशि भी ली जाती थी। विभिन्न क्षेत्रों और माल के अनुसार दलाली की राशि की दर अलग–अलग होती थी। समुद्र पार माल भेजे जाने की दर, स्वदेश में भेजे जाने वाले माल से ऊँची होती थी।

13.7 मुद्रा प्रणाली

नकद लेन–देन के लिए मुख्य तौर पर चांदी और तांबे के सिक्के चलन में थे। सल्तनत काल में चांदी के अलग–अलग अनुपातों वाले चांदी के सिक्के मुख्य मुद्रा थे, जिसे 'टंका' कहते थे। 'जितल' और 'डाँग' तांबे के सिक्के थे। धातुओं के मूल्य में परिवर्तन के साथ ही सिक्कों के मूल्य में भी अन्तर आ जाता था। शेरशाह के शासनकाल में पहली बार सोने, चांदी और तांबे के सिक्कों में धातुओं की शुद्धता स्थापित की गई थी। चांदी का 'रूपया' लेन–देन कारोबार के लिए उपयोग किए जाने वाला आधारभूत सिक्का था। इसका वज़न 178 दानों के बराबर था। अकबर के शासन काल में भी यही जारी रहा परन्तु उसके उत्तराधिकारियों के आने पर उसमें उतार–चढ़ाव होते रहे। मुग़लों के तांबे के 'दाम' का वजन 323 दानों के बराबर था। चांदी के 'रूपए' और तांबे के 'दाम' के मूल्य में चांदी की उपलब्धता और अभाव के अनुसार उतार–चढ़ाव होता रहता था। अकबर के काल में 1 चांदी के रूपये का मूल्य 40 तांबे के दामों के बराबर था। सोना या अशर्फ़ी का वज़न 169 दानों के बराबर होता था।

सिक्कों की ढलाई, साम्राज्य के सभी भागों में फैली शाही टकसालों में होती थी। अकबर के शासन काल में सोने के सिक्के 4 टकसालों से, चांदी के सिक्के 14 और तांबे के सिक्के 42 टकसालों से जारी किए जाते थे। औरंगज़ेब के काल तक रूपयों की टकसालों की संख्या बढ़कर 40 हो गई थी।



चित्र 13.1 सिक्के

पाठगत प्रश्न 13.5

1. ऐसे पाँच देशों के नाम लिखें, जिनके साथ मध्यकाल के दौरान भारत में सड़क मार्ग से व्यापारिक संबंध थे।

2. 'हाट' क्या थी?

3. मध्यकालीन बंगाल के कुछ प्रमुख व्यापार केन्द्रों के नाम लिखें?

4. निम्नलिखित शब्दों की संक्षिप्त व्याख्या करें :
   कारवांनी, खत्री, कोमाती, बोहरा, चैत्ती

आपने क्या सीखा

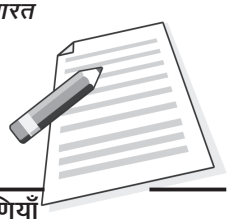
आइए इस पाठ के कुछ मुख्य मुद्दों को संक्षेप में दोहराते हैं। अधिकांश लोगों का व्यवसाय क षि से जुड़ा था। नये – नये क्षेत्रों में क षि के विस्तार के द्वारा क षि उत्पादन में व द्धि करना, राज्य की नीतियों का भाग था। किसान लोग अनेक प्रकार की खाद्य फ़सलें, नकद फ़सलें, फल, सब्जियाँ और मसाले उगाते थे। वे उच्च क षि तकनीकों को उपयोग में लाते थे, जैसे फसलों को बदल–बदल कर बोना (फसल–चक्र), दो फ़सलें बोना, एक वर्ष में तीन फसलों की बुआई, फलों की कलम लगाना इत्यादि। इस प्रयोजन के लिए जल को ऊँचाई तक उठाने के लिए जल उठाने की क त्रिम यांत्रिकी (आर्टिफिशियल वाटर लिफ्टिंग डिवाइस) का उपयोग करते थे। राज्य की आय का सर्वाधिक भाग भू–राजस्व से आता था। अलाउद्दीन ख़िलजी, शेरशाह सूरी और अकबर जैसे शासकों द्वारा इस क्षेत्र में किए गए कुछ अग्रणी प्रयासों के परिणामस्वरूप भू–राजस्व प्रशासन को बहुत व्यवस्थित और व्यापक रूप से विकसित किए गया था।

राज्य और किसानों के मध्य लगान से संबद्ध मध्यस्थों का एक बहुत ही शक्तिशाली समूह मौजूद था। इनको निर्धारित क्षेत्रों से भूमि का लगान हासिल करने के कुछ वंशानुगत या राज्य द्वारा प्रदत्त अधिकार, (धर्म के आधार पर दान में प्राप्त अथवा उनकी सेवाओं के बदले में प्राप्त अधिकार) प्राप्त थे। ये मध्यस्थ भू–लगान एकत्र करने भी प्रक्रिया में राज्य की सहायता करते थे। मध्यकालीन भारतीय किसानों को बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। भूमि कर की शोषक प्रक ति, मध्यस्थों द्वारा लगान में हिस्सा मांगना और बार–बार आने वाली प्राक तिक आपदाओं ने साधारण किसान के जीवन को बहुत ही निराशाजनक और कष्टकारी बना दिया था। इसीलिए, किसानों के विद्रोह भी इस अवधि के दौरान होते रहते थे। कपड़ों की बुनाई (टेक्सटाइल), खनन और धातु–कर्म, पोत–निर्माण, निर्माण कार्य, शस्त्रों और कवच का निर्माण इस कालावधि के दौरान कार्यशालाओं (शाही कारखानों) में, शासक अभिजात्यों के उपयोग के लिए उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण होता था।

वाणिज्य के क्षेत्र में भारत के संबंध समकालीन मध्य एशिया, चीन, दक्षिण–पूर्व एशिया और यूरोप इत्यादि से थे। यूरोपीय व्यापारिक कंपनियाँ, जैसे पुर्तगाली, अंग्रेज़, डच और फ्रांसीसी थी। अन्तर–एशिया और यूरो–एशियन व्यापार में उनकी भागीदारी ने भारतीय वाणिज्य को अत्यन्त प्रभावित किए।

पाठान्त प्रश्न

1. मध्यकालीन भारत में खेती–बाड़ी की सीमा क्या थी?
2. 'पर्शियन व्हील' (रहट) से आप क्या समझते हैं? यह कैसे काम करता था?
3. फिरोज़शाह तुग़लक द्वारा सिंचाई के लिए बनवाई गई कुछ नहरों के नाम लिखें?
4. भू–राजस्व मूल्यांकन के विविध चरणों की व्याख्या करें।



5. 'आइना–ए–दहसाला' क्या था? यह कैसे कार्य करता था?
6. कुछ प्रमुख भूमि–राजस्व कार्मिकों के नामों और परगना और ग्रामीण स्तर पर उनके विशिष्ट कार्यों का उल्लेख करें।
7. 'कारखाना' क्या था? यह कैसे कार्य करता था?
8. मध्यकालीन भारत के पांच प्रमुख व्यापारिक समुदायों के नाम लिखें।
9. 'सर्राफ' कौन था? उसकी क्या भूमिका थी?
10. 'हुंडी' शब्द से आप क्या समझते हैं? व्यापार और वाणिज्य को इसने कैसे सरल बनाया?
11. लगान एकत्र करने में जमींदार मध्यस्थों की भूमिका पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
12. मध्यकालीन भारत के दौरान सिंचाई के साधनों पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
13. मध्यकाल के दौरान कारीगरों के उत्पादन की व्यवस्था पद्धति पर संक्षिप्त टिप्पणी करें।
14. मध्यकालीन भारत के स्थानीय प्रादेशिक और अन्तर प्रदेशीय व्यापार के संबंध में संक्षिप्त विवेचन करें।
15. मध्यकालीन भारत की मुद्रा प्रणाली पर टिप्पणी लिखें।

पाठगत प्रश्नों के उतर

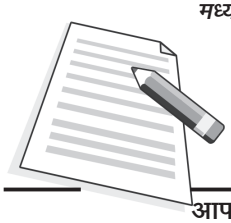
13.1

1. मध्यकालीन भारतीय इतिहास के सम्पूर्ण काल के दौरान किसानों द्वारा खेती की जाने वाली वास्तविक ज़मीन से बहुत अधिक फालतू ज़मीन मौजूद थी। नए–नए क्षेत्रों को खेती के अधीन लाकर क षि उत्पादों में व द्धि के प्रयास किए जाते थे।
2. खाद्य फ़सलें – चावल, गेहूँ, जौ और ज्वार, चना, मूंग;

   नकदी फ़सलें – गन्ना, अफ़ीम, नील, रेशम
3. तम्बाकू, अनानास, चैरी, पपीता
4. पर्शियन व्हील (रहट) इस युग की सबसे उच्च वाटर लिफ्टिंग डिवाइस (जल उठाने की युक्ति) थी। एक गियर की यांत्रिकी सहित, एक पहिये के रिम पर, हार की तरह चारों ओर बर्तनों की एक लड़ी जोड़ दी जाती है। पशु–शक्ति के बल से इस पहिये को घुमाया जाता था, जिससे एक के पीछे एक बँधे डिब्बों से पानी ऊपर चढ़ता रहता था।

13.2

1. फ़सल बांटने के तरीके के रूप में, 'खेत बटाई' – किसानों और राज्य के बीच खेत में खड़ी फ़सल के बंटवारे को कहते हैं; 'लेंग बटाई' यानी फ़सल की कटाई के बाद फ़सल की छंटाई किए बग़ैर उसके ढेर बनाना।



आपकी टिप्पणियाँ

2. अलाउद्दीन ख़िलजी, शेरशाह सूरी और अकबर।

3. ये भूमि–राजस्व से जुड़े दो दस्तावेज़ थे। 'पट्टा' किसी व्यक्तिगत किसान को दिया जाने वाला वह दस्तावेज़ था, जिसमें उसकी भूमि की श्रेणी और विभिन्न फ़सलों पर लगने वाले भूमि के लगान का पूरा विवरण उल्लिखित होता था। 'क़बूलियत' एक सहमति पत्र था, जिसके द्वारा किसान अपनी भूमि पर देय भूमि लगान, राज्य को भुगतान करने का वचन देता था।

13.3

1. यह शब्द, दिल्ली सलतनत की स्थापना से पहले, वंशानुगत भूमि पर अधिकार प्राप्त करने वाले वर्ग पर लागू होता था। ये लोग भू–राजस्व एकत्र करने की प्रक्रिया में, राजस्व प्राप्त करने में राज्य की सहायता करते थे।

2. 'मुक़्क़दम' और 'पटेल' क्रमशः उत्तर और दक्षिण भारत में गांव के मुखिया होते थे, जो अपने संबंधित गांव में भूमि का लगान एकत्र करने और गांव में क़ानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए ज़िम्मेदार थे।

3. यह विद्रोह जाटों, सिक्खों, मराठों और सतनामियों में था।

13.4

1. मध्यकालीन भारत के पाँच प्रमुख शिल्प थे – कपड़ा बुनाई (टेक्सटाइल), रंगाई और ब्लीचिंग, चीनी का निर्माण, खनिज निकालना और धातुविज्ञान (धातु कर्म)

2. अहमदाबाद, बड़ौदा और पटना

3. गोलकुंडा, बैरागढ़, पन्ना और खोखरा

4. स्पिनिंग व्हील (चरखा), पिट लूम और ड्रॉलूम

13.5

1. भारत ने सड़क मार्ग से, चीन, अरब, मिस्र, फ़ारस और अफ़गानिस्तान से व्यापार किए।

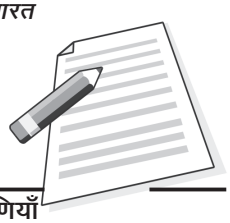
2. **'हाट'** आवधिक स्थानीय बाज़ार था, जो कि सप्ताह के निर्धारित दिनों को लगता था। इन बाज़ारों से स्थानीय लोग अपनी दैनिक इस्तेमाल की चीज़ें खरीदते थे।

3. बंगाल के कुछ प्रमुख व्यापार केन्द्र थे, हुगली, ढाका, मुर्शिदाबाद, सतगांव और पटना।

4. **'कारवांनीस'** एक फ़ारसी (पर्शियन) शब्द है, जिसे उन व्यापारियों के लिए उपयोग किए जाता था, जो समूहों में चलते थे और एक से दूसरे स्थान पर अनाज वहन करते थे।

खत्री - खत्री, पंजाब में अनाज के व्यापारियों (आढ़तियों) का एक प्रमुख व्यापारिक समुदाय था।

कोमाती - कोमाती, गोलकुंडा का एक प्रमुख व्यापारी समूह था (तेलुगू बोलने वाला)



बोहरा - बोहरा, प्रमुख व्यापारिक समुदाय था, जिनकी गुजरात, उज्जैन और बुरहानपुर में काफ़ी संख्या में उपस्थिति थी।

चैत्ती - दक्षिण भारत का प्रमुख व्यापारिक समूह।

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. देखें खंड 13.1,(1)
2. देखें खंड 13.1, (3) अनुच्छेद 3
3. देखें खंड 13.1, (3) अनुच्छेद 4
4. देखें खंड 13.2, अनुच्छेद 1 से 4
5. देखें खंड 13.2, अनुच्छेद 5
6. देखें 13.3
7. देखें 13.5, उत्पादन की व्यवस्था के नीचे
8. देखें 13.6, बिन्दु 3
9. देखें खंड 13.6, बिन्दु (3) (क)
10. देखें 13.6, बिन्दु 4 (क)
11. देखें 13.3
12. देखें खंड 13.1, बिन्दु (3)
13. देखें 13.5, उत्पादन की व्यवस्था के नीचे
14. देखें खंड 13.6, बिन्दु (3)
15. देखें खंड 13.7

शब्दावली

आमिल - लगान कार्मिक, परगना स्तर पर लगान एकत्र करने वाला प्रभारी अधिकारी।

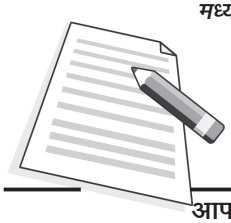
अमीन - भूमि का पर्यवेक्षक, लगान मूल्यांकन के प्रयोजन से भूमि का पर्यवेक्षण करता था।

बंजर - अनुपजाऊ भूमि, खेती के लिए अयोग्य

चच्चर - काम उपजाऊ भूमि, इस पर तीन से चार वर्षों में एक बार खेती की जाती है।

चैत्ती - दक्षिण भारत का एक प्रमुख व्यापारी समूह।

दादनी - शिल्पकारी वस्तुओं के निर्माण का एक रूप, जिसमें कारीगर को उस व्यापारी द्वारा कच्चा माल और अग्रिम



आपकी टिप्पणियाँ

धन दिया जाता है, जो इन चीज़ों का व्यापार करता था। एक निर्धारित समय के बाद, व्यापारी तैयार वस्तुओं को ले जाते थे और इन्हें बाजार में बेचते थे।

दाम - मुग़लकाल के दौरान चलने वाले तांबे के सिक्के।

दस्तूर - लगान मंडल; भू–राजस्व मूल्यांकन के प्रयोजन से क्षेत्र का विभाजन, राजस्व मंडलों में करना, हरेक मंडल को दस्तूर कहते थे।

जागीरदार - मुगल राज्य के लिए की गई अपनी सेवाओं के बदले में लगान एकत्र करने का कार्य हासिल वाले लोग (जागीर)

जीतल - दिल्ली सल्तनत की तांबे की मुद्रा (सिक्के) 148 जीतल एक टंका के बराबर थे।

हुंडियाँ - विनिमय पत्र।

कानकुट - लगान मूल्यांकन की एक पद्धति। पहले भूमि को मापा जाता था, इसके बाद उसकी उत्पादकता निर्धारित की जाती थी और मापे गए क्षेत्र के प्रति एकक के अनुसार लगान की मांग निर्धारित की जाती थी।

कारकून - गांव का लिपिक (क्लर्क)

कारख़ाना - शाही कार्यशाला, शाही परिवारों के लिए उपभोक्ता वस्तुओं का निर्माण होता था, और जहाँ पर भाड़े पर लिए गए मज़दूरों की सहायता से इसका काम चलाया जाता था।

खुदकाश्त - धनी/सम द्ध किसान, जो एक बहुत बड़े भूभाग के और क षि संबंधी औज़ारों के स्वामी होते थे।

कुलकर्णी - दक्कन में गांव का लेखाकार।

ख़ुत - सल्तनत काल के धनी किसान।

कारवानीस् - ऐसे व्यापारी जो समूहों में चलते थे और ग्रामीण क्षेत्र से अनाज को ढोने में विशेषज्ञ थे।

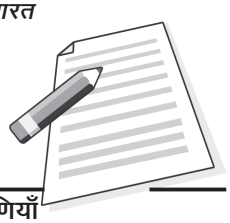
खेत बटाई - फ़सल में हिस्सेदारी का एक तरीका जिसमें खेतों की खड़ी फ़सल को, किसान और राज्य के राजस्व एजेंटों के बीच विभाजित किए जाता था।

लंग बटाई - फ़सल में भागीदारी का एक अन्य तरीका; फ़सल की कटाई के बाद इसको छँटाई किए बग़ैर ही इसके ढेर बनाए जाते थे और इनमें राज्य के हिस्से को निर्धारित किए जाता था।

मुक़्क़दम - गांव का मुखिया।

पोलाज - एक श्रेणी की भूमि, जो इस प्रकार की खेती के लिए उपयुक्त थी, जहाँ से वर्ष में दो फ़सलों का उत्पादन लिया जाता था।

परती - एक अन्य वर्ग की भूमि, जिसकी उपजाऊ शक्ति की पूर्ति के लिए, दो फ़सलों के बाद इसे खाली छोड़ना पड़ता था।



पट्टा - स्वामित्व–पत्र (टाइटल डीड), राज्य द्वारा प्रत्येक किसान को दिया जाने वाला एक दस्तावेज़ जिसमें किसान क कब्ज़े में दी गई भूमि और उस पर लागू होने वाले लगान की दरें उल्लिखित होती थीं।

पटवारी - उत्तर भारत में गांव का लेखाकार।

काबुलियत - किसानों से लिया जाने वाला एक सहमति–पत्र, जिसके अनुसार पट्टे की विशिष्टताओं के अनुसार उसे भू–राजस्व देने का वचन देना होता था।

क़ानूनगा - परगना स्तर पर लगान एकत्र करने के लिए अधिक त उप–अधिकारी।

रैयत - साधारण किसान।

राय - फसल के मूल्यों की केंद्रीय सूची।

सर्राफ़ - मूल रूप से धन के लेन–देन से जुड़ा एक समुदाय; जो धन के विनिमय, बैंकर और हुंडियाँ जारी करने का काम करता था।

टंका - दिल्ली सल्तनत का चांदी का मानक सिक्का।

जमींदार - जमींदार मध्यस्थों का एक वर्ग, जिन्हें मुग़ल काल में वंशानुगत भूमि स्वामित्व का अधिकार मिलता था।



14

मध्यकालीन भारत में सांस्क तिक विकास

भारत में मध्यकाल को महान सांस्क तिक के युग के रूप में जाना जाता है। इस काल में सांस्क तिक विकासों के एक नए चरण की शुरुआत हुई। तुर्क और मुगलों ने नए विचारों को पेश किया तथा धर्म, दर्शन और विचार, भाषा और साहित्य, स्थापत्य कला की शैलियां और इमारत निर्माण सामग्री का प्रयोग, चित्रकला और ललित कला के क्षेत्र में नई विशेषताओं का जन्म हुआ।

भारत हर क्षेत्र में पहले ही सांस्क तिक रूप से काफी सम द्ध था। विभिन्न संस्क तियों के संश्लेषण ने नई दार्शनिक तथा धार्मिक परम्पराओं, विचारों और संस्क ति के नए रूपों और शैलियों को जन्म दिया। इस अध्याय में आप कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में हुए विभिन्न सांस्क तिक विकासों का अध्ययन करेंगे।

हम मुख्यतः अध्ययन करेंगेः

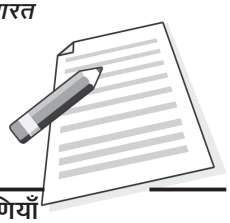
- नए धार्मिक आंदोलन जैसे सूफी तथा भक्ति
- सिक्ख धर्म का नए धर्म के रूप में उदय
- विभिन्न भारतीय भाषाओं के साहित्यिक कार्यों का विकास
- उर्दू तथा फारसी भाषाओं तथा साहित्यिक कार्यों का विकास
- क्षेत्रीय विभिन्नताओं के साथ सल्तनत तथा मुगल काल कीस्थापत्य कला
- संगीत के नए प्रकार
- मुगल कला तथा भारत में जन्मीं अन्य नई शैलियाँ

हम उम्मीद करते हैं कि इस पाठ को पढ़ने के उपरांत इस काल के दौरान संस्क ति के आप के ज्ञान में व द्धि होगी।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- भारत में सूफियों की विभिन्न कार्यप्रणाली तथा दर्शन बता सकेंगे;
- भारत में भक्ति संतों के विभिन्न वर्गों की कार्यप्रणाली तथा दर्शन की चर्चा कर सकेंगे;



- सिक्ख धर्म के उदय, इसकी कार्य प्रणाली, खालसा पंथ तथा गुरु की संस्था के विषय में बता सकेंगे;
- मध्यकालीन भारत में चित्रकला की विभिन्न शैलियों का वर्णन कर सकेंगे;
- मध्यकालीन भारत में नई भाषाओं और साहित्य के उदय पर चर्चा कर सकेंगे;
- मध्यकालीन भारत में संगीत और न त्य की नई शैलियों का वर्णन कर सकेंगे; और
- मध्यकालीन स्थापत्य कला की प्रमुख शैलियों के निर्माण संबंधी नई तकनीकों और प्रयुक्त सामग्री की विस्तार से चर्चा कर सकेंगे।

14.1 सूफीवाद

'सूफी' शब्द इस्लाम के रहस्यमय धार्मिक विचारों को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त होता है। यह 11वीं शताब्दी तक एक पूर्ण विकसित आंदोलन का रूप ले चुका था। सूफी संत, सूफियों द्वारा कठिन मार्ग को अपनाकर ईश्वर के साथ प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित करने पर जोर देते थे। सूफीवाद अथवा रहस्यवाद 8वीं शताब्दी में उदय हुआ तथा शुरुआती सूफियों में राबिया–अल–अदवई, अलजुनैद तथा बयाजिद बस्तमी का नाम उभर कर आता है। सूफीवाद का मूल आधार ईश्वर, मनुष्य तथा उन दोनों के मध्य जो संबंध, है, वह है प्रेम। उनका मानना है कि इंसान का उदय रुह (आत्मा) कुरबत (दैवी निकटता) तथा हलूल (दैवी रूप में मिलाप) के सिद्धांतों से हुआ है और इंसान और खुदा के रिश्तों से ही प्रेम (पवित्र प्रेम) तथा फना (खुद का समर्पण) अस्तित्व में आए। ऐसे लोगों को सूफी कहा जाता था जिनका ह्रदय पवित्र होता था; तथा जो अपनी तपस्या तथा खुदा को पाने के लिए प्रेम के सिद्धान्तों के द्वारा खुदा से वार्तालाप करते थे। मुरीद (शिष्य) को ईश्वर के साथ यह वार्तालाप करने के लिए प्रक्रिया के लिए मकामात (विभिन्न चरणों) से होकर गुजरना पड़ता था।

खानकाह (धर्मशाला) सूफियों के विभिन्न वर्गों की गतिविधियों का केन्द्र होती थीं। खानकाह शेख, पीर, या मुरशिद (शिक्षक) द्वारा संचालित होती थी जो अपने मुरीदों के साथ रहा करते थे। समय के साथ खानकाह शिक्षा के महत्त्वपूर्ण केन्द्रों में तब्दील होती चली गई। बारहवीं शताब्दी तक सूफी विभिन्न रूपों में संगठित हो गए। इन रूपों (सिलसिला) का मतलब कड़ी था तथा यह पीर तथा मुरीद की निरंतर कड़ियों को बतलाता था। पीर की म त्यु के पश्चात गुम्बद या मकबरा, दरगाह उसके मुरीदों तथा अनुयायियों के लिए केन्द्र बन जाता था।

10वीं शताब्दी में इस्लामी साम्राज्य के सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में सूफी पंथ का विस्तार हुआ। ईरान, खुरासान, ट्रांसोक्सियाना, मिस्र, सीरिया तथा बगदाद प्रमुख सूफी केन्द्र थे। अल–गज़ली (1059-1111 ई.) सर्वाधिक सम्मानित सूफी संतों में से एक माने जाते हैं। उन्होंने सूफी रहस्यवाद को इस्लाम में उचित जगह दिलाने के लिए सूफी रहस्यवाद को इस्लामी परम्परा के अनुकूल बनाया। उन्होंने शिष्यों के लिए आध्यात्मिक गुरु के मार्ग दर्शन को अपनाने पर ज़ोर दिया। साथ ही सर्वोच्च सत्ता पैगम्बर साहब के महत्त्व और उनके नियमों के पालन पर बल दिया।

भारत में सूफी पंथ की शुरुआत 11वीं शताब्दी में हुई। अल हुजवीरी, जिन्होंने उत्तरी भारत में स्वयं को स्थापित किया उन्हें लाहौर में दफनाया गया तथा उन्हें उपमहाद्वीप का सबसे पुराना सूफी संत होने का गौरव प्राप्त हुआ। भारतीय मध्यकालीन इतिहास में प्रमुख सूफी सिलसिले हैं – चिश्ती, सोहरावर्दिया, कादरिया तथा नक्शबंदिया।

सल्तनत काल में चिश्ती तथा सोहरावर्दी सिलसिले लोकप्रिय थे। पंजाब तथा सिंध में जहां सोहरावर्दी सक्रिय थे, वहीं चिश्ती दिल्ली, राजस्थान तथा गंगा के पश्चिमी क्षेत्रों में प्रेम का संदेश फैला रहे थे। सल्तनत काल के अंत तक वे गंगा क्षेत्र के पूर्वी क्षेत्रों (बिहार तथा बंगाल) और दक्कन तक फैल चुके थे। मध्यकाल में सूफियों ने इस्लामी धर्मतत्व विषयक सिद्धान्तों, जैसे वहादुत–उल–वजूद (जीवन की एकता) का प्रचार–प्रसार करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की तथा ज़ियारत (दरगाहों पर जाने की क्रिया) जैसी आदतों को विकसित करने को भी प्रोत्साहन दिया।

भारत में शुरू हुए सूफी मत की निम्न विशेषताएँ थीं:

- सूफी विभिन्न सिलसिलों (क्रमों) में व्यवस्थित थे।
- इनमें से अधिकतर सिलसिलों की शुरुआत प्रसिद्ध सूफी संतों या पीरों ने की थी। उनके नाम पर ये चलते थे तथा शिष्य उनका अनुसरण किया करते थे।
- सूफियों का मानना था कि खुदा की प्राप्ति के लिए आध्यात्मिक गुरु या पीर की आवश्यकता होती है।
- पीर अपने शिष्यों के साथ खानकाह में रहते थे।
- खानकाह (धर्मशाला) सूफी गतिविधियों का केन्द्र हुआ करती थी।
- खानकाह ज्ञान का एक प्रमुख केन्द्र बनकर उभरे, जो कि मदरसों से सर्वथा भिन्न थे।
- बहुत से सूफी संतों ने संगीतमय धार्मिक सभा अर्थात 'सम' का अपनी खानकाह में आनंद उठाया। इस काल के दौरान संगीत की नई विधा कव्वाली का विकास हुआ।
- जियारत या सूफी संतों की दरगाहों की तीर्थयात्रा भी एक महत्त्वपूर्ण रस्म बनकर उभरी।
- सभी सूफी संत चमत्कार में विश्वास करते थे। लगभग सभी पीर खुद के द्वारा किए गए चमत्कारों से जुड़े हुए थे।
- राजतंत्र तथा शासन के बारे में हर सूफी सिलसिले के मत अलग–अलग थे।

चिश्ती सिलसिला

भारत में चिश्ती विचारधारा की स्थापना मुईनुद्दीन चिश्ती ने की थी। प्रतीत होता है कि भारत में वह मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय आए तथा इसके बाद 1206 में अजमेर चले गए। ख्वाजा मुईनुद्दीन की प्रसिद्धि में व द्धि सन 1235 में उनकी म त्यु के पश्चात् हुई। मुहम्मद तुगलक ने उनकी कब्र की यात्रा की तथा उसके पश्चात 15वीं शताब्दी में मालवा के महमूद खिलजी द्वारा मस्जिद तथा गुम्बद का निर्माण करवाया गया। मुगल बादशाह अकबर के शासन के पश्चात् इस दरगाह का संरक्षण अपनी ऊंचाई पर पहुंचा।



चित्र 14.1 अजमेर दरगाह

चिश्तियों का मानना था:

- प्रेम इंसान तथा खुदा के बीच में एक बंधन है।
- विभिन्न पंथों को मानने वालों के बीच सहनशीलता हो।
- विभिन्न धार्मिक विश्वासों के अनुसरण के बावजूद शिष्यों की स्वीकार्यता हो।
- सबकी भलाई का रवैया हो।
- हिन्दू तथा जैन योगियों के संपर्क में रहना। तथा
- सामान्य भाषा का प्रयोग करना।

दिल्ली में चिश्तियों की उपस्थिति कुतुबुद्दीन बख्तियार काकी के द्वारा जानी जाती है जो अपने ग हक्षेत्र ट्रांसोक्सियाना से 1221 ई. में दिल्ली में बस गए थे। यह मंगोल आक्रमण का वह काल था जब मंगोलों से बचकर मध्य एशिया के लोग भाग रहे थे। दिल्ली में उनकी मौजूदगी सोहरावर्दियों के लिए चुनौती बन गई थी तथा उन्होंने उन पर विभिन्न प्रकार के आरोप लगाकर दिल्ली छोड़ने को विवश कर दिया। दिल्ली के सुल्तान इल्तुतमिश ने हाँलाकि इन आरोपों को खारिज कर दिया, जिससे सोहरावर्दियों के विरोध को हल्का कर दिया गया। चिश्ती पीरों ने ज़िंदगी की सादगी, गरीबी, विनम्रता तथा खुदा के प्रति निस्वार्थ समर्पण पर बल दिया। भौतिक वस्तुओं के परित्याग को उन्होंने इन्द्रियों पर नियंत्रण के लिए आवश्यक बताया, जो एक आध्यात्मिक जीवन जीने के लिए जरूरी है। ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती ने ज़ोर दिया कि खुदा को पाने का सर्वोच्च तरीका मुसीबत में पड़े व्यक्ति की मदद करना, असहाय लोगों की जरूरतों को पूरा करना तथा भूखे को भोजन देना है। वे सुल्तानों से किसी भी प्रकार की मदद से इंकार करते थे।

एक अन्य महत्त्वपूर्ण चिश्ती बाबा फरीदुद्दीन गंज–ए–शकर ने मुल्तान तथा लाहौर के बीच रास्ते में हांसी (हरियाणा) में पड़ाव डाला। सल्तनत काल के सबसे विख्यात सूफी

संत निज़ामुद्दीन औलिया थे। उनका समय 14वीं शताब्दी माना जाता है जो राजनीतिक परिवर्तनों तथा उथल–पुथल का काल था। अपने जीवन काल में उन्होंने बलबन की म त्यु के पश्चात् खिलजी तथा खिलजी के पश्चात् तुगलकों का शासन देखा। निज़ामुद्दीन औलिया के जीवन के विषय में कई कहानियां प्रचलित हैं। कहा जाता है कि ख्वाजा ने सुल्तान के दरबार में विभिन्न संघों तथा पक्षों में से किसी से भी मतलब न रखने की कड़ी नीति अपनाई थी, जिससे वे लोगों की नजरों में आदर के पात्र थे। नसीरुद्दीन चिराग, दिल्ली के अन्य लोकप्रिय संत थे। उन्होंने तत्कालीन राजनीतिक गतिविधियों में सक्रिय भूमिका निभाई थी।

इन सब खूबियों ने सूफ़िओं को एक वफादार तथा समर्पित शिष्य समुदाय बनाने के योग्य किया।

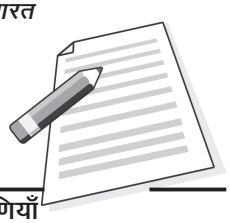
दक्कन में 13वीं शताब्दी में चिश्ती सिलसिला शेख बुरहानुद्दीन गरीब द्वारा स्थापित हुआ। 14 से 16वीं शताब्दी के बीच कई सूफी संत गुलबर्ग प्रस्थान कर गए। यहाँ एक परिवर्तन दिखाई देता है कि इस समय तक कुछ चिश्ती संत शासन से दान तथा संरक्षण प्राप्त करने लगे थे। मुहम्मद बंदा नवाज उस क्षेत्र के लोकप्रिय संतों में से एक थे। दक्कन क्षेत्र में बीजापुर शहर सूफी गतिविधियों का महत्त्वपूर्ण केन्द्र बनकर उभरा।

सोहरावर्दी सिलसिला

इस सिलसिले (पंथ) की स्थापना बगदाद में शियाबुद्दीन सोहरावर्दी ने की थी। यह भारत में बहाउद्दीन जकरिया द्वारा स्थापित हुआ। उसने मुल्तान में आधार बनाकर सोहरावर्दी वर्ग की नींव डाली, जो उस समय कुबाचा के अधीन था। वह कुबाचा के खिलाफ था तथा खुलेआम उसके विरोधी इल्तुतमिश की अच्छाइयों के गुण गाता था। उसके तरीके चिश्तियों से सर्वथा भिन्न थे। चिश्तियों के उलट सोहरावर्दी सुलतान शासकों से दान लेने में परहेज़ नहीं करते थे। उनका मानना था कि सूफियों को संपत्ति तथा ज्ञान, रहस्यात्मक ज्ञान को हासिल करना चाहिए। सोहरावर्दी संत मानते थे कि गरीबों की सेवा बेहतर ढंग से करने के लिए यह आवश्यक है। उन्होंने धार्मिक विश्वासों के बाहरी प्रकार के अनुसरण करने पर ज़ोर दिया और इल्म (बुद्धि) तथा रहस्यवाद के समन्वय की वकालत की। शेखों के सामने सिर झुकाना, आगन्तुकों को पानी पेश करना तथा पंथ में दीक्षा के समय सिर का मुंडन करवाना जैसी प्रथाएं नकार दी गईं जिनका अनुसरण चिश्ती किया करते थे, उनकी म त्यु के पश्चात भी इन सिलसिलों ने पंजाब तथा सिंध में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाना जारी रखा।

नक़्शबंदी सिलसिला

भारत में इस वर्ग की शुरुआत ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबंदी ने की। इस सिलसिले के रहस्यवादियों ने प्रारम्भ में शरीयत के पालन पर ज़ोर दिया तथा हर नवपरिवर्तन अर्थात बिद्दत दर्शन के सार की सार्वजनिक निंदा की। ख्वाजा बहाऊद्दीन नक्शबंदी का उत्तराधिकारी शेख बरकी बिल्लाह दिल्ली के नज़दीक ही रहे तथा उनके उत्तराधिकारी शेख अहमद सिरहिन्दी ने इस्लाम को सभी उदार तथा उनके अनुसार गैर इस्लामी पद्धतियों से परिष्क त करने का प्रयत्न किया। उसने सम (धार्मिक संगीत) सुनने का तथा संतों की दरगाहों पर जाने का भी पुरज़ोर विरोध किया। उसने हिन्दुओं तथा शियाओं के साथ संबंधों का भी जमकर विरोध किया। उसने अकबर द्वारा कई गैर मुस्लिमों को नया



दर्जा देने की तथा जज़िया हटाने और गौवध पर प्रतिबंध की जमकर निंदा की। उसके अनुसार वह इस्लाम के स्वर्ण युग का मुजादि्द है। उसने इस सिद्धांत को बनाए रखा कि खुदा और इंसान के बीच मालिक तथा गुलाम का संबंध है न कि प्रेमी और प्रेमिका का। उसने ज़ोर दिया कि इंसान का खुदा के प्रति एकमात्र रिश्ता विश्वास तथा खुदा को स जन–कर्ता मानने की ज़िम्मेदारी का है। उसने रहस्यवादी सिद्धांत तथा रुढ़िवादी इस्लाम की शिक्षाओं में समन्वय लाने का प्रयत्न किया।

कादिरी सिलसिला

कादरिया सिलसिला पंजाब में लोकप्रिय था। शेख अब्दुल कादिर तथा उनके पुत्र अकबर के समय में मुगलों के समर्थक थे। इस वर्ग के पीरों ने वहादत–अल–वजूद की संकल्पना का समर्थन किया। इस वर्ग के प्रसिद्ध सूफी संत मियां मीर थे जिनके शिष्य राजकुमारी जहांआरा तथा उसका भाई दारा थे। शेख की शिक्षाओं का प्रभाव राजकुमार के कामों में मिलता। शाह बदक्शनी इस सिलसिले के एक और प्रसिद्ध संत है जिन्होंने कट्टरवादी तत्वों को नकारते हुए घोषणा की थी कि एक नास्तिक जिसने सच्चाई को समझ लिया है तथा सत्य का ज्ञान पा लिया है वह एक आस्तिक है, तथा एक आस्तिक जिसे सच्चाई का भाव नहीं है वह नास्तिक है।

मध्यकाल में इस्लाम के कट्टर पंथी विचार तथा उदारवादी विचारों में लगातार संघर्ष देखने को मिलता है। सूफियों में दोनों ही प्रकार की विशेषता मिलती है। एक ओर जहाँ चिश्ती हैं जो उदार द ष्टिकोण वाले हैं तथा स्थानीय परम्पराओं के समावेश की बात करते हैं, और दूसरी ओर कादिरी पंथ के शेख अब्दुल हक जैसे भी लोग थे जो मानते थे कि इस्लाम की शुद्धता कमजोर हो रही है। इस्लाम के कट्टरपंथी विचार उलेमाओं द्वारा व्यक्त किए गए थे जिन्होंने शरीयत के अनुसार ही जीवन जीने पर ज़ोर दिया। सूफिओं की उदारवादी विचारधारा ने कई समर्थक बनाए, जिन्होंने उलेमाओं द्वारा इस्लाम के नियमों की संकीर्ण व्याख्या के विरुद्ध कई तर्क दिए।

पाठगत प्रश्न 14.1

1. पीर कौन थे?

2. अल–गज़ली कौन थे?

3. 'सम' शब्द से आप क्या समझते हैं?

4. खिलजी और तुगलकों के समय में कौन से प्रसिद्ध चिश्ती सूफी संत थे?

5. शेख अब्दुल कादिर कौन थे?

14.2 भक्ति आंदोलन

भारतीय इतिहास में भक्ति आंदोलन का अर्थ ऐसे आंदोलन से है जिसमें व्यक्तिगत कल्पना वाले सर्वशक्तिमान ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव लोकप्रिय हुआ। इसका उद्‌गम हमें प्राचीन भारत के ब्राह्मण तथा बौद्ध परम्पराओं में मिलता है। यह दक्षिण भारत में एक धार्मिक प्रथा से प्रारंभ हुआ तथा धार्मिक समानता और व्यापक स्तर पर सामाजिक प्रतिभागिता से यह एक लोकप्रिय आंदोलन के रूप में परिवर्तित हो गया। प्रख्यात संतों के नेत त्व में यह आंदोलन 10वीं शताब्दी ई. में अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुंच गया। भक्ति के सिद्धांत के प्रचार–प्रसार के लिए यह आंदोलन विभिन्न परम्पराओं से बना तथा उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में इसने विभिन्न रूप धारण किए।

भक्ति आंदोलन ने रूढ़िवादी ब्राह्मणवादी परम्पराओं पर प्रहार करने का प्रयत्न किया। आरंभिक मध्यकाल में इस आंदोलन में कमी आई। इतिहासकार भक्ति आंदोलन के उदय के लिए इस्लाम के आगमन तथा सूफियों के प्रचार को उत्तरदायी मानते हैं। उनका तर्क है कि तुर्कों की विजय ने परम्परावादी राजपूत–ब्राह्मण वर्चस्व के विरुद्ध प्रतिक्रिया के लिए राह बनाई। कुछ इतिहासकारों के अनुसार भक्ति आंदोलन का उदय सामन्ती अत्याचार के खिलाफ एक प्रतिक्रिया थी। इस तथ्य के पक्ष में हमें भक्ति आंदोलन के संतों की सामन्तवाद विरोधी कविताएं मिलती हैं जैसे, कबीर, नानक, चैतन्य और तुलसीदास की। भक्ति आंदोलन के उद्‌भव संबंधी एक भी विचार ऐसा नहीं है जो कि कायम रह सके। यह तत्कालीन संतों की विचारधारा तथा कविताओं से स्पष्ट है कि वे रुढ़िवादी ब्राह्मण का विद्रोह कर रहे थे। वे धार्मिक समानता में विश्वास करते थे तथा स्वयं को सामान्य जनता की दुख–तकलीफों में शामिल करते थे।

कुछ विद्वानों का मानना है कि आरंभिक मध्यकाल में हुए सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों ने भक्ति आंदोलन के उद्‌भव के लिए आवश्यक माहौल बनाया। 13वीं तथा 14वीं शताब्दी में निर्मित वस्तुओं, विलासिता संबंधी तथा अन्य कलात्मक वस्तुओं की मांग ने शहरों में शिल्पियों का प्रवेश कराया। ये शिल्पी समानता के विचारों से प्रभावित होकर भक्ति आंदोलन के प्रति आकर्षित हुए। इन समूहों ने उन्हें ब्राहमणों द्वारा दिए निम्न स्तर को मानने से इंकार कर दिया। इस आंदोलन को समाज के इस वर्ग से पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ। पंजाब में कई ऐसे स्थान थे जहां मात्र स्त्री ही नहीं, बल्कि जाट किसान भी इस आंदोलन में सम्मिलित हुए।

मध्यकाल के आरम्भिक वर्षो में भक्ति आंदोलन सुधार व परिवर्तन का एक महत्त्वपूर्ण आंदोलन बन गया। ईसा पूर्व छठी शताब्दी में असनातनी आंदोलनों के उदय के बाद भारतीय इतिहास में भक्ति आंदोलन नए विचारों व प्रथाओं के उद्‌गम को प्रस्तुत करता है, जिसने सम्पूर्ण देश को प्रभावित किया तथा सुधार आंदोलनों को प्रारम्भ किया।

उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन

उत्तर भारत में भक्ति आंदोलन में सामाजिक–आर्थिक आंदोलन सम्मिलित थे जो दक्षिण के किसी आचार्य से संबंधित थे तथा दक्षिण में प्रारंभ हुए आंदोलन की ही निरन्तरता लगभग इस आंदोलन में दिखाई देती है। हालाँकि इन दोनों क्षेत्रों की परम्पराओं में समानता मिलती है किंतु प्रत्येक संत की शिक्षाओं में भक्ति की धारणा भिन्न ही दिखती है। कबीर जैसे निर्गुण संतों ने वर्णाश्रम की पूरी व्यवस्था तथा इस पर

आधारित जाति व्यवस्था को नकार कर नए मूल्यों की स्थापना की जिसने एक नए तथा उदार वर्ग के उदय में मदद की। सगुण भक्ति धारा वाले सतों, जैसे–तुलसीदास ने वर्ण व्यवस्था को कायम रखते हुए ब्राह्मणों की सर्वोच्चता को बनाए रखा। उन्होंने भगवान में समर्पण तथा विश्वास पर बल दिया तथा वे मूर्ति पूजा के प्रति विशेष रूप से कटिबद्ध थे।

एकेश्वरवादी भक्ति

उत्तर भारत में कबीर (1440-1578 ई.) सबसे पुराने तथा सर्वाधिक प्रभावशाली सन्त थे। वे एक जुलाहे थे। उन्होंने अपनी जिन्दगी का एक लम्बा समय बनारस में गुज़ारा था। उनकी कविताएँ सिक्खों के पवित्र ग्रंथ गुरु ग्रन्थ साहिब में भी सम्मिलित की गई है। कबीर से प्रेरित होने वाले मुख्य सन्त रैदास थे। गुरुनानक पंजाब में खत्री वर्ग से थे तथा धन्ना राजस्थान के जाट किसान थे। उत्तर भारत के एकेश्वरवादी सन्तों की शिक्षाओं में निम्न समानताएँ हमें देखने को मिलती हैं–

- अधिकतर एकेश्वरवादी सन्त निम्न जातियों से सम्बन्धित थे, तथा इस बात के प्रति जागरूक थे कि उनके विचारों में समानता है। वे एक दूसरे की शिक्षाओं तथा प्रभाव के प्रति भी सजग थे। अपनी–अपनी रचनाओं में उन्होंने अपने पूर्ववर्तियों का तथा एक दूसरे का वर्णन विचारधाराओं में एकता को दर्शाते हुए किया है।
- सभी वैष्णव भक्ति के सिद्धान्त से तथा नाथपंथी आन्दोलन और सूफी से भी प्रभावित थे। उनके विचार इन तीनों परम्पराओं का संयोजन प्रतीत होते हैं।
- खुदा के प्रति व्यक्तिगत अनुभव को दी गई महत्ता भी निर्गुण भक्ति सन्तों की एक अन्य विशेषता है। वे निर्गुण भक्ति में विश्वास करते थे न कि सगुण भक्ति में। उन्होंने भक्ति का सिद्धान्त तो वैष्णववाद से लिया था, किन्तु उसे निर्गुण रूप दिया था। हालाँकि उन्होंने खुदा को कई नामों से पुकारा किन्तु उनके खुदा अरूपी, अनवतरित, सर्वव्यापी तथा अवर्णनीय हैं।
- भक्ति सन्तों ने तत्कालीन वर्चस्व वाले धर्मों (हिन्दू तथा इस्लाम) दोनों को नकार दिया तथा इन धर्मों के नकारात्मक पहलुओं की निन्दा की। उन्होंने ब्राहमणों की सर्वोच्चता को चुनौती दी तथा जाति व्यवस्था और मूर्तिपूजा पर प्रहार किया।
- उन्होंने पूरे उत्तर भारत में प्रचलित तथा लोकप्रिय भाषा में कविताओं का स जन किया। इससे उन्हें सर्वसामान्य में अपने विचारों का प्रचार करने में मदद मिली। इससे विभिन्न निम्न वर्गों के बीच उनके विचार द्रुत गति से फैले।

वैष्णव भक्ति

14वीं शताब्दी तथा 15वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में उत्तर भारत में रामानन्द लोकप्रिय वैष्णव भक्ति सन्त बनकर उभरे। हालाँकि वे दक्षिण भारत मूल के थे, किन्तु बनारस में निवास करते थे। क्योंकि उनके अनुसार यह दक्षिण भारत के भक्ति आन्दोलन तथा उत्तर भारत के वैष्णव भक्ति आन्दोलन के बीच का सूत्र था। उन्होंने अपनी भक्ति का विषय विष्णु के बजाय राम को बना लिया। उन्होंने राम तथा सीता की उपासना की

और उत्तर भारत में राम की उपासना के जनक कहलाए। एकेश्वरवादी सन्तों की ही भाँति उन्होंने जाति व्यवस्था का विरोध किया तथा उपासना पद्धति को लोकप्रिय बनाने के लिए सामान्य भाषा में शिक्षाओं का प्रचार किया। उनके अनुयायियों को रामानन्दी कहा गया। भक्ति आन्दोलन के महत्त्वपूर्ण सन्त तुलसीदास भी हैं। 16वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में प्रख्यात भक्ति संत वल्लभाचार्य ने क ष्ण भक्ति को लोकप्रिय बनाया। उनका अनुसरण करने वालों में मुख्य सन्त सूरदास (1483-1563) तथा मीरांबाई (1503-1573) थे।

बंगाल के भक्ति आन्दोलन का स्वरूप उत्तर और दक्षिण भारत में चल रहे भक्ति आंदोलन से सर्वथा भिन्न था। यह भागवत पुराण की वैष्णव भक्ति परम्परा, सहज बौद्ध तथा नाथपंथी परम्परा से प्रभावित था। ये परम्पराएँ समर्पण के गूढ़ तथा भावना पर आधारित थीं। 12वीं शताब्दी में जयदेव इस परम्परा के मुख्य कवि थे। उन्होंने क ष्ण और राधा के संदर्भों द्वारा प्रेम के रहस्यात्मक पहलुओं को दर्शाया। इस क्षेत्र के लोकप्रिय भक्ति सन्त चैतन्य हुए। उन्हें क ष्ण के ही एक अवतार के रूप में देखा गया। उन्होने ब्राहमण व धर्म ग्रंथों के वर्चस्व पर कोई प्रश्न चिह्न तो नहीं लगाए। उन्होंने संकीर्तन (पवित्र न त्य के साथ समूह गान) को भी लोकप्रिय बनाया। उनके समय में बंगाल में भक्ति आन्दोलन एक सुधार आन्दोलन में बदल गया, क्योंकि इसने जाति–व्यवस्था को कटघरे में खड़ा कर दिया।

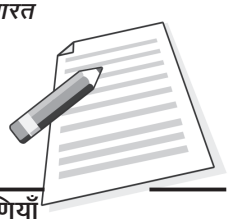
महाराष्ट्र में भक्ति आन्दोलन भागवत पुराण तथा शिव नाथपंथी से प्रेरित हुआ। महाराष्ट्र का सबसे उल्लेखनीय भक्ति सन्त ज्ञानेश्वर थे। भागवत गीता पर उनकी टीका ज्ञानेश्वरी ने महाराष्ट्र में भक्ति दर्शन की नींव डाली। जाति व्यवस्था का पुरजोर विरोध करते हुए उन्होंने भक्ति के द्वारा प्रभु को पाने पर बल दिया। उस क्षेत्र के देव विठोबा थे तथा उनके अनुयायी उनके मन्दिर में वर्ष में दो बार तीर्थ यात्रा किया करते थे। महाराष्ट्र के अन्य महत्त्वपूर्ण भक्ति धारा के संत, सन्त नामदेव (1270-1350) थे। एक ओर उत्तर भारत में उन्हें एकेश्वरवादी तथा निर्गुण धारा का संत मानते हैं वहीं महाराष्ट्र में वह वरकरी (वैष्णव भक्ति परम्परा) परम्परा के ही अंग माने जाते है। महाराष्ट्र के अन्य भक्ति संतों में मुख्य थे चोका, सोनार, तुकाराम तथा एकनाथ। तुकाराम की शिक्षाएं दोहों के रूप में संग्रहीत हैं जो गाथा का निर्माण करती हैं जबकि मराठी में एकनाथ की शिक्षा मराठी भाषा में आध्यात्मिक रचनाएं हैं।

पाठगत प्रश्न 14.2

1. भक्ति आंदोलन ने ––––– से प थक हाने का प्रयास किया?

2. किन्ही तीन महत्त्वपूर्ण भक्ति संतों के नाम लिखें।

3. चैतन्य कौन थे?



सिक्ख धर्म

गुरुनानक की शिक्षाएँ तथा दर्शन भारत के दर्शनवादी विचारों के एक महत्त्वपूर्ण अंग का निर्माण करते है। उनके दर्शन में तीन मुख्य तत्त्व थे – चमत्कारी नेत त्व (गुरु), विचारधारा (सबद,) तथा संगठन (संगत)। नानक ने तत्कालीन धार्मिक विश्वासों का मूल्यांकन किया तथा एक नए धर्म की नींव डाली जो मुक्ति को ओर ले जा सके। उन्होंने मूर्तिपूजा का पुरजोर खंडन किया, तीर्थयात्राओं का समर्थन नहीं किया तथा अवतारों के सिद्धात को भी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने कर्मकांडों की कड़ी निंदा की। मोक्ष की प्राप्ति के लिए उन्होंने सच्चे गुरु को पाने पर बल दिया। उन्होंने लोगों को इन सिद्धातों का अनुसरण करने तथा उपासना करने को कहा–सच, हलाल (ईमानदारी की कमाई), खैर (दूसरों की सलामती की दुआ), नियत (अच्छे भाव) तथा खुदा की सेवा। उन्होंने जाति तथा उसके द्वारा होनी वाली असमानता को पूर्णतः नकारा। उन्होंने कहा कि व्यक्ति की



चित्र 14.2 गुरूनानक

जाति तथा इज्जत उसके द्वारा किए गए कार्यों के द्वारा निर्धारित होनी चाहिए। उनके गीतों में दो मुख्य सिद्धांत हैं – सच तथा नाम। खुदा के प्रति आदर भाव उन्होंने गुरु तथा हुकुम द्वारा दर्शाया गया है। उन्होंने लंगर (सामूहिक रसोई घर) के सिद्धान्त की शुरुआत की। गुरु नानक ने खुद को जनता के साथ ही जोड़ा। हालांकि गुरु नानक ने समानता पर बल दिया, किन्तु शिष्यों के बीच असमानताएं व्याप्त रहीं। गुरु गोबिंन्द सिंह ने 17वीं शताब्दी में समानता के विचार को पुनः स्थापित किया। सन् 1699 में गुरु गोबिंद सिंह ने विभिन्न सिक्ख समूहों के मध्य व्याप्त मतभेदों को दूर किया तथा खालसा पंथ की स्थापना की। इस संस्था ने मसंदों को मध्यस्थ की भूमिका से हटा दिया। इसके पश्चात् हर सिख गुरु के साथ प्रत्यक्ष संबंध रख सकता था। सिक्खों के बीच एकता बनाए रखने के लिए गुरु ने कुछ नई परम्पराओं का पालन अनिवार्य किया। ये थे, धर्म में प्रवेश

के लिए खंडे (दोधारी तलवार) द्वारा अम त छकना, केश रखना और उन्हें न कटवाना, शस्त्र धारण करना तथा अपने नाम में 'सिंह' उपनाम रखना।

इस काल के दौरान उदय होने वाला एक अन्य संस्थागत विचार गुरु पंथ था। इसने खालसा पंथ के सामूहिक अधिकार को पवित्रता प्रदान की, जिसने पंथ को गुरु के साथ संयुक्त किया। गुरु नानक ने अपने अंतिम दिनों में अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और उसे श्रद्धा व आदर प्रदान किया, जिसने यह संदेश दिया कि गुरु तथा सिख एक दूसरे का स्थान ले सकते हैं। इसने संगत (सिखों की सामूहिक संस्था) के लिए समस्याएं उत्पन्न कर दी, जिसमें कहा गया था कि संगत में खुद खुदा उपस्थित होते हैं। जब गुरु गोबिंद सिंह ने खालसा बनाया, तब उन्होंने पंज प्यारों का चयन किया तथा उनसे खुद के लिए पहुल (अम त छकाने) का प्रबंध करने को कहा। इस व्यवस्था ने गुरु तथा खालसा के बीच के अंतर को सांकेतिक रूप से समाप्त कर दिया। कहा जाता है कि गुरु गोबिंद सिंह ने कहा कि खालसा उन्हीं का रूप है।

गुरु नानक व्यापारी खत्री जाति से थे, जबकि उनके अनुयायी अधिकतर देहाती जाट थे। ये गुरु गोबिंद सिंह थे, जिसने सिखों के बीच खालसा पंथ चलाया। गुरु अर्जुन सिंह ने गुरु ग्रंथ साहब का संकलन किया था। गुरु गोबिंद सिंह की म त्यु के पश्चात गुरु परम्परा समाप्त हो गई। यह माना गया कि गुरु की आत्मा किसी उत्तराधिकारी के पास नहीं गई बल्कि वह गुरु ग्रंथ साहिब में समा गई।

पाठागत प्रश्न 14.3

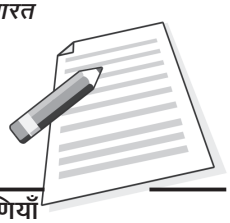
1. 'खालसा' शब्द से आप क्या समझते है?

2. खत्री कौन थे?

14.4 साहित्य और भाषाएं

मध्यकालीन भारत में सम द्ध साहित्य तथा नई भाषाओं का विकास को देखने को मिलता है। इतिहासकारों के बीच रुढ़िगत विचार यह है कि दिल्ली सल्तनत द्वारा फारसी को संरक्षण प्रदान करने की वजह से संस्क त के शाही संरक्षण में गिरावट आई। किन्तु इस काल में संस्क त साहित्य में भी काफी रचना हुई। इस काल में काव्यात्मक रचनाओं 'काव्य' (काव्यात्मक विवरण) की रचना उल्लेखनीय रही तथा ऐसे ग्रंथों की रचना हुई जिनमें कानून का वर्णन था, जो धर्मशास्त्र कहलाए।

मध्यकालीन युग के पूर्वार्द्ध में उत्तर और दक्षिण भारत में कई छोटे शासकों द्वारा संस्क त को संरक्षण प्राप्त था। पश्चिम भारत में एक प्रमुख जैन विद्वान हेमचन्द्र सूरी था, जिसने संस्क त में रचनाओं का स जन किया तथा चैतन्य ने भी संस्क त भाषा में स जन किया। इस काल में लिखे गए काफी नाटक हमें प्राप्त होते हैं। लेखन की एक नई शैली 'चम्पू' का उदय भी हम इस काल में पाते हैं। यह एक विधा थी जिसमें पद्य तथा गद्य का मिश्रण था। संस्क त की तत्कालीन रचनाओं में जो राजपूतों के शाही संरक्षण में लिखी गई थी,



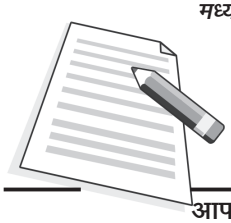
राजपूतों के पारिवारिक इतिहास के वर्णन थे जैसे प थ्वीराज विजय तथा हम्मीर महाकाव्य। इस काल की ऐतिहासिक काव्य रचनाओं में गुजरात के सुल्तान महमूद बेग्रा के दरबारी कवि उदयराज द्वारा लिखी गई जीवनी राजविनोद है। अन्य महत्त्वपूर्ण रचना कल्हण की राजतरंगिणी है, जिसमे कश्मीर के इतिहास का वर्णन है। यह 12वीं सदी में लिखी गई थी। राजतरंगिणी द्वितीय जोनाराजा द्वारा लिखी गई जिसमें जयसिम्हा से सुल्तान जैनुल अबिदिन तक के कश्मीर के शासकों का विवरण है। त तीय भाग श्रीवर द्वारा लिखा गया जिसने 1486 तक क्षेत्र के इतिहास को समेटा। इनके अतिरिक्त अर्द्ध ऐतिहासिक गद्य 'प्रबन्ध' का भी उल्लेख उस काल में मिलता है।

15वीं शताब्दी के पश्चात संस्क त को दक्षिण में विजयनगर शासकों के, तंजौर के नायक तथा त्रावणकोर और कोचीन के शासकों के दरबारों में संरक्षण प्राप्त होता रहा। संस्क त साहित्य की प्रमुख विद्याएं, जैसे – महाकाव्य, श्लेष काव्य, चम्पू काव्य, नाटक तथा ऐतिहासिक काव्यों का स जन चलता रहा। उस काल के प्रमुख लेखकों में गोविन्द दीक्षित (साहित्य सुधा और संगीतसुधानिधि–महत्त्वपूर्ण रचनाएं), अप्पय दीक्षित (वेलौर के नायक वंश के दरबारी कवि), नीलनाथ दीक्षित (मदुरई के नायक साम्राज्य में मंत्री), चक्रकवि (कोजिकोड के शासकों का संरक्षण प्राप्त था) थे।

ऐतिहासिक काव्य न सिर्फ शासकों द्वारा किए गए शोषण पर प्रकाश डालते हैं, बल्कि लेखकों की सामाजिक स्थिति को भी दर्शाते हैं। कुछ मुगल जैसे दारा शिकोह इत्यादि का भी इन काव्यों में वर्णन है। मुगल राजकुमार को बनारस के न सिंह सरस्वती के सम्मान में प्रशास्ति की रचना करने का श्रेय जाता है। बीजापुर तथा गोलकुंडा के शासकों के दरबार में हम कुछ रचनाएं पाते हैं, परन्तु इस काल में संस्क त साहित्य पतन की ओर बढ़ रहा था।

फारसी साहित्य

दिल्ली सल्तनत की स्थापना के पश्चात उपमहाद्वीप में नई भाषा तथा साहित्यिक शैली का जन्म हुआ। उपमहाद्वीप में फारसी साहित्य के विकास ने अमीर खुसरो के साथ नए युग में कदम रखा। उनका जन्म तुर्क विस्थापितों के परिवार में हुआ था तथा बलबन के काल में उन्होंने कवि के रूप में रचनाओं का स जन प्रारम्भ किया। वे निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे तथा उन्हें जलालुद्दीन खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी तथा गयासुद्दीन तुगलक के दरबार में संरक्षण प्राप्त था। कहा जाता है कि उन्होंने विभिन्न शैलियों में 99 रचनाओं की रचना की जिनमें विविध विषयवस्तु थी। उनकी कविताएं गीत, वीरगाथा, महाकाव्य तथा शोकगीत हर विधा में लिखी गई थी। उनकी लेखन शैली में भारतीय संदर्भ में फारसी शैली का प्रतिनिधित्व पहली बार हम पाते हैं। इसे सबक–ए–हिन्दी भारतीय शैली के रूप में जाना गया। उनकी प्रमुख रचनाओं में मुल्ला–उल–अनवर, शिरिन खुसरो, लैला मजनूँ तथा आइना–ए–सिकन्दरी है। ये सभी रचनाएं अलाउद्दीन खिलजी को समर्पित थीं। उनके पांच मुख्य दीवान गज़ल हैं – तुफ्त–उस–सिगार, बकिया–नकिया तथा निहायत–उल–कमाल। उन्होंने मसनवी (व्याख्यात्मक कविताएं) भी लिखीं जिनका कि ऐतिहासिक तथा साहित्यिक मूल्य हैं। इनमें मुख्य है – किरान–उस–सदैन, मिफ्ता–उल–फतेह (जलालुद्दीन खिलज़ी की सैन्य सफलताओं पर आधारित), तुगलक–नामा (गयासुद्दीन तुगलक का सत्ता तक पहुँचना) तथा



आपकी टिप्पणियाँ

खजाएन–उल–फतेह (अलाउद्दीन खिलजी की दक्षिण विजय)। अन्य फारसी कवियों में शेख नजमुद्दीन हसन थे, जो अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में थे। उनकी गज़लों ने उन्हें हिन्दुस्तान के सैद की उपाधि दिलवाई।

सल्तनत काल के साहित्य की मुख्य विशेषता दरबार का ऐतिहासिक लिखित वर्णन है। इनमें से मुख्य हैं– मिनाज–उस–सिराज द्वारा तबाकत–ए–नसिरी, ईसामी द्वारा फतेह–उस–सलातीन, तथा फिरोजशाह तुगलक द्वारा फतेहत–ए–फिरोज़शाही। इस काल में ज़ियाउद्दीन बरानी ने फारसी साहित्य में उल्लेखनीय योगदान दिया। उसकी महत्त्वपूर्ण रचनाओं में तारीख–ए–फिरोजशाही तथा फतवा–ए–जहांदिरी मुख्य हैं। इस काल में सूफी साहित्य के नए रूप 'मलफुज़त' का भी उदय हुआ जिसमें सूफी संतों तथा खुदा के बीच वार्तालाप है। इन रचनाओं में प्रमुख हैं शेख निज़ामुद्दीन औलिया के किस्सों से भरपूर अमीर हसन सिज़ी द्वारा लिखित फवैद उल फुआद तथा शेख नसीरुद्दीन महमूद के किस्सों सहित खैर–उल–मज़लिस। इस काल में कई रचनाओं का फारसी भाषा में अनुवाद किया गया था। महाभारत तथा राजतरंगिणी का भी इसी दौरान फारसी भाषा में अनुवाद हुआ। संस्क त से फारसी भाषा में अनुवाद फिरोज तुगलक तथा सिकन्दर लोदी के शासन काल में काफी किए गए थे।

सल्तनत काल की ही भाँति मुगल काल में भी दरबार की भाषा फारसी ही रही। मुगल शासकों और राजकुमारों ने भी लेखन की परम्परा को जीवित रखा। प्रथम मुगल बादशाह बाबर ने, जो एक विद्वान था, अपनी यादों को तुर्की में लिखा जिसे बाद में अब्दुल रहीम खान खानखाना ने फारसी में अनुवाद किया। हुमायूँ ने फारसी दीवान की रचना की। राजकुमार दारा शुकोह ने सूफी सन्त मिया मीर तथा उनके शिष्यों का जीवन परिचय सकी नतुल औलिया में दिया। उसने मज़मौल बहरैन (दो महासागरों का मिलन) की भी रचना की। इस काल में हम फारसी शैली के नए प्रारूप सबक–ए–हिन्दी (भारतीय शैली) को पाते है जिसे इस युग में यहाँ घूमने आए तथा यहीं बस गए फारसी कवियों ने लिखा। फैज़ी, उर्फी, घनी तालिब कश्मीरी तथा बेदिल ऐसे रचनाकार थे, जिन्हें मुगलों से सरंक्षण प्राप्त हुआ।

फैज़ी की मुख्य रचनाओं में तबाशिर अल सबह थी। उसने हिन्दू धर्म की कई पुस्तकों का भी अनुवाद किया। अब्दुर रहीम खान खाना अकबर तथा जहाँगीर के समय का प्रख्यात रचनाकार था। अकबर ने महान विद्वान इतिहासकार अबुल फज़ल को सरंक्षण प्रदान किया था। कहा जाता है कि उसके पुस्तकालय में 4000 से अधिक पुस्तकें थी। अपने शासनकाल के दौरान अकबर ने कई लेखकों को सरंक्षण प्रदान किया था। अली–कुली सलेम तथा अबू तालिब कलीम शाहजहाँ के समय के मुख्य कवि थे। अबू तालिब कलीम ने बादशाहनामा की रचना की थी। दक्षिण में फारसी साहित्य को बीजापुर के शासक आदिल शाही से संरक्षण प्राप्त हुआ, जिनके दरबार में मलिक कौमी तथा मुल्ला जुहुरी मुख्य फारसी कवि थे। गोलकंडा के कुतुबशाही ने मुहम्मद हुसैन तबरेज़ी जैसे कवियों को संरक्षण प्रदान किया। मुगल काल में फारसी साहित्य ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा क्षेत्रीय भाषाओं के विकास और प्रगति को प्रभावित किया। पंजाबी, पश्तो सिंधी तथा कश्मीरी भाषाएँ फारसी भाषा से प्रभावित हुईं।

क्षेत्रीय भाषाओं की प्रगति तथा विकास

मुगल काल के दौरान हिन्दी, बंगाली, असमिया, उड़िया, मराठी तथा गुजराती भाषाओं की प्रगति इस काल का महत्त्वपूर्ण चरण था। इन भाषाओं का अस्तित्व 7वीं तथा 8वीं शताब्दी से मिलना प्रारम्भ होता है, जब प्राक त भाषा से दूरी प्रारम्भ हुई। दक्षिण में 14वीं शताब्दी में मलयालम एक स्वतंत्र भाषा के रूप में उभरी। क्षेत्रीय भाषाओं की प्रगति को क्षेत्रीय भावनाओं तथा प्रान्तीय राजनीति के उदय के संदर्भ में देखा जा सकता है। इन सबने संस्क त के पतन का मार्ग प्रशस्त कर दिया जिसके कारण फारसी तथा अन्य क्षेत्रीय भाषाओं में प्रशासनिक कार्यों होने लगा। भक्ति आंदोलन तथा उसके प्रचार में इन भाषाओं के प्रयोग ने इन भाषाओं के विकास और प्रगति में योगदान किया।

हिन्दी और उर्दू

क्षेत्रीय बोलियों, जैसे–ब्रजभाषा, हरियाणवी तथा दिल्ली और पंजाब के आस–पास बोली जाने वाली क्षेत्रीय भाषाओं ने उर्दू को विकासकालीन अवस्था में प्रभावित किया। इस भाषा का मूल ढांचा खड़ी बोली (सभी क्षेत्रीय भाषाओं का मिश्रण) बना है। इस भाषा ने फारसी भाषा की लिपि तथा साहित्यक शैली को अपनाया। उर्दू शब्द मूल रूप से तुर्की भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ है सेना अथवा शिविर। ऐसा प्रतीत होता है कि उर्दू भाषा का विस्तार तुर्की शिविरों में अधिकारियों तथा सैनिकों के बीच बोली जाने वाली भाषा के रूप में हुआ। हिन्दवी भाषा से क्रमशः उर्दू तथा हिन्दी भाषाओं ने आकार ग्रहण किया। अमीर खुसरो की रचनाओं ने इस भाषा की नींव डाली। दक्कन में 14वीं शताब्दी से इस भाषा के प्रयोग ने नई बोली को जन्म दिया जिसे दक्किनी कहा गया। इस भाषा के मुख्य केन्द्र थे, गुजरात, बीजापुर, गोलकुंडा, बीदर तथा औरंगाबाद। इस परम्परा के सबसे पुराने लेखक सैयद् बंदा नवाज़ गेसुदराज़ थे जो कि बहमनी साम्राज्य के प्रमुख सूफी संत थे। बीजापुर का सुल्तान, इब्राहिम आदिल शाह द्वितीय स्वयं कला का महान संरक्षक तथा दक्किनी भाषा में संगीत पर लिखी किताब का लेखक था।

7वीं तथा 8वी शताब्दियों के मध्य तथा 14वीं शताब्दी में हिन्दी अपभ्रंश अवस्था से विकसित हुई। इसे वीरगाथा काल या आदिकाल के नाम से जाना जाता हैं। विभिन्न राजपूत शासकों ने हिन्दी की राजपूतानी भाषा में लिखी गई रचनाओं को संरक्षित किया तथा वे उनकी वीरता तथा बहादुरी के गुणों का बखान करती थी। प्रमुख रचनाओं में चंद बरदाई द्वारा रचित प थ्वीराज रासो तथा अन्य रचनाएं जैसे बीसलदेव रासो और हम्मीर रासो थीं। इन कई रचनाओं की प्रामाणिकता में संदेह है, क्योंकि मूल रचना में विभिन्न तथ्य बीच में डाले गए हैं। जैन तथा बौद्ध साहित्य के भी अन्य स जन कार्य भी मिलते हैं, जिनसे इस काल की जानकारी प्राप्त होती है।

हिन्दी भाषा का विकास अन्य परिवर्तन के दौर से गुजरा जब 14वीं और 15वीं शताब्दी में भक्ति आंदोलन में भक्ति परंपराओं और विचारों से परिपूर्ण भाषा का अत्यधिक प्रयोग हुआ। कबीर ने एक नई शैली 'उलटबांसी' का उपयोग किया, जिसमें विरोधाभास तथा गूढ़ार्थ का वर्चस्व था। भक्तिकालीन संत तुलसीदास ने हिन्दी की अवधी शैली का प्रयोग किया, मीरांबाई ने जहां राजस्थान की मारवाड़ी बोली में रचनाओं का स जन किया, वहीं सूरदास ने ब्रज भाषा में। सूफी सन्तों ने भी बड़ी मात्रा में जनता तक अपने विचार पहुंचाने के लिए इन भाषाओं को माध्यम बनाया। वहीं चिश्ती संतों ने अपने आध्यात्मिक संगीत के संपादन तथा गायन के लिए हिन्दी का प्रयोग किया।

बंगला

10वीं तथा 12वीं शताब्दी में लिखे गए लोकगीत चार्यपद बंगाली साहित्य के सबसे पुराने उदाहरण मिलते हैं। कवीन्द्र तथा श्रीकरनन्दी की रचनाएं बंगाली साहित्य की आरंभिक रचनाओं में प्रमुख मानी गई हैं। भक्ति आंदोलन के विकास तथा चैतन्य द्वारा लिखे भजनों ने इस भाषा की प्रगति में सार्थक भूमिका निभाई। ब न्दाबनदास द्वारा रचित चैतन्य भागवत या चैतन्य मंगल बंगाली भाषा की महान रचना मानी जाती है, जिसने संत की म त्यु के दस वर्ष पश्चात् न सिर्फ उनके महत्व को दर्शाया, बल्कि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था का भी यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया। क ष्णदास कविराज द्वारा रचित चैतन्य–चरिताम त अन्य महत्त्वपूर्ण रचना है। लोचनदास को लोकगीत की नई शैली धमाली के उद्भव के लिए जाना जाता है। इस युग के दौरान लिखी गई वर्णनात्मक कविताएं मंगलकाव्य भी लोकप्रिय रहे। इन्होंने स्थानीय देवी चंडी का महिमामण्डन किया तथा शिव और विष्णु जैसे पौराणिक देवों को घर–घर के मंदिर में पहुंचाया। मंगल काव्यों ने अपना वर्णनात्मक स्वरूप पुराणों से लिया।

असमिया और उड़िया

13वीं शताब्दी में हेमाशसरस्वती, प्रह्लादचरित तथा हर गौरी साम्यद की रचनाएं असम भाषा की प्रथम रचनाएं मानी जाती हैं। असम में साहित्य का विकास भक्ति आंदोलन का ही परिणाम था। असम में वैष्णववाद को प्रोत्साहित करने वाले शंकराचार्य ने असमिया कविताओं के विकास में भी सार्थक योगदान किया। उनके शिष्य माधव ने भक्ति के आयामों का वर्णन करते हुए भक्ति रत्नावली तथा व ंदावन में क ष्ण के जीवन का विवरण करती बारागीता की रचना की थी। पुराणों के भी असमिया भाषा में अनुवाद मिलते हैं। उड़ीसा में सरलदास की रचनाएं उड़िया भाषा की प्रथम रचना मानी जाती है। मधुसूदन, भीम तथा सशिव द्वारा पुराणों पर आधारित कई काव्यों की रचना हुई। राधा और क ष्ण के संबंधों पर आधारित रस–कलोल भी उस युग की उल्लेखनीय रचना थी। अन्य महत्त्वपूर्ण रचनाओं में शिशु शंकर दास द्वारा रचित उषाभिलाषा तथा कार्तिक दास द्वारा रचित रुक्मणी विवाह मुख्य है। उपेन्द्र भांजा (1672-1720) की रचनाएं महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है, क्योंकि आने वाले समय में इन्होंने उड़िया साहित्य में एक नए युग का सूत्रपात किया।

दक्षिण भारत में साहित्य

दक्षिण में महत्त्वपूर्ण साहित्यिक व्यक्तित्वों में विल्लीपुतुरर महत्त्वपूर्ण व्यक्ति थे। संस्क त शब्दों के प्रयोग की परंपरा तथा साहित्यिक अभिव्यक्ति का श्रेय उन्हीं को जाता है। तमिल में अन्य महत्त्वपूर्ण साहित्यिक रचनाओं में हम वैष्णव विद्वानों द्वारा लिखे गए भाष्य पाते हैं तथा संगम युग पर लिखे गए भाष्य जैसे तोलकपियम तथा कुराल भी हमें मिलते हैं। तमिल साहित्य की अधिकतर रचनाएं शैववाद तथा वैष्णववाद से संबंधित हैं। मध्यकालीन युग की मुख्य रचनाएं हैं – हरिदास द्वारा इरुसाम्यविलक्कम, मरेन्नरबंदर क त शिवदरुमोतरम तथा शैव समयनेरी। दर्शन के क्षेत्र में उल्लेखनीय रचनाएं थी – पुराण तिरुमलेन्थम क त चिदम्बरपुराणन (1508) तथा बालसुब्रह्मण्य कविरयर क त पालनिट्टलपुराणम।

इस युग में सर्वाधिक प्रसिद्ध तेलुगू कवि एराप्रगद थे, जिन्होंने साहित्य लेखन की चम्पू शैली को लोकप्रिय बनाया (गद्य तथा पद्य का मिश्रण)। उन्होंने भागवतपुराण का भी तेलुगू में अनुवाद किया। विजयनगर के शासक क ष्णदेव राय ने अमुकतमलयद की रचना तेलुगू में की। उनके दरबार के प्रख्यात कवि अल्लारानी पेद्दना तथा नन्दी तिम्माहा थे, जिन्होंने

परिजटपहरण का स जन किया। भट्टुमूर्ति अर्थात् राम राज भूषण वासुचरित्र तथा हरिश्चन्द्र नालोपरव्यणम (नल तथा राजा हरिश्चन्द्र की कहानी का वर्णन) के लिए प्रसिद्ध हैं। कन्नड भाषी क्षेत्रों में जैन साहित्यकारों ने साहित्यिक रचनाओं में वर्चस्व बनाया। वीरसैव आंदोलन को लोकप्रिय बनाने वाले बसव तथा उनके अनुयायियों ने कन्नड साहित्य के महत्त्वपूर्ण पहलू का निर्माण किया। होयसल शासकों के संरक्षण ने इस भाषा के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। जैरोप्पा का 'वादी–विद्यानन्द' कन्नड कवियों का एक साहित्य संग्रह है। जैन विद्वान 'साल्व' ने त्रिलोकरार (ब्रह्मांड विज्ञान पर), अपराजियस्तक (दर्शन शास्त्र पर) तथा भारतेश्वरचरित (प्रसिद्ध राजा भरत का जीवन) की रचना की। इस काल में मलयालम एक स्वतंत्र भाषा के रूप में उभरी। प्रारंभ रचना में भाषा मौखिक रूप में ही थी तथा 14वीं शताब्दी में हम 'रामचरितम्' नाम की प्रथम रचना पाते हैं। रामपणिक्कर जिन्होंने भारत गाथा, सावित्री माहात्म्य तथा भगवतम् लिखी, वे मलयालम भाषा की प्रमुख रचनाएँ मानी जाती हैं।

पाठगत प्रश्न 14.4

1. संस्क त में लिखे गए 2 प्रमुख ग्रंथों के नाम लिखें?

2. काव्य क्या है?

3. अमीर खुसरो कौन थे?

4. जियाउद्दीन वरानी द्वारा रचित दो प्रमुख रचनाओं का नाम लिखें।

5. सबक–ए–हिन्दी से आप क्या समझते हैं?

6. मध्यकालीन युग में विकसित हुई चार क्षेत्रीय भाषाओं का नाम लिखें।

14.5 संगीत

सलतनत काल के दौरान संगीत की जानकारी बहुत सीमित है। संगीत के विकास का सबसे महत्त्वपूर्ण चरण हमें खुसरो के समय पर मिलता है। कहा जाता है कि इसी युग में कव्वाली विधा का उदय विकास हुआ। कई आधुनिक राग जैसे ऐमान, गोरा तथा सनम के विकास का श्रेय भी उन्हें जाता है। उन्होंने संगीत में नए वाद्ययंत्रों का भी आविष्कार किया जैसे सितार, जो भारतीय वीणा तथा फारसी तम्बूरा का मिश्रित रूप है। दक्षिण एशिया में नए वाद्ययंत्र रबाब तथा सारंगी तुर्कों के साथ मध्य एशिया में आए। व ंदावन में स्वामी हरिदास ने संगीत को प्रोत्साहन दिया तथा मुगल बादशाह के दरबार के रत्नों में से एक तानसेन को दीक्षित किया था। तानसेन भारतीय शास्त्रीय संगीत के मुख्य रत्न माने जाते हैं तथा उन्हें नए राग जैसे मियां की मल्हार, मियां की टोड़ी तथा दरबारी के स जन का श्रेय भी दिया जाता है। उत्तर भारतीय संगीत शैली की द्रुपद शैली की

प्रवीणता में राजा मान सिंह ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। दक्षिण में जनक तथा जन्य रागों की नई शैली इस युग में मिलती है। कोंडाविदु के रामामात्य द्वारा (1550 में) रचित स्वर्ण मेला कलानिधि में 20 जनन तथा 64 जन्य रागों का विवरण प्राप्त होता है। 18वीं शताब्दी तक संगीत की नई विधाओं तराणा, दादर तथा गज़ल का अस्तित्व भी हम देखते हैं।

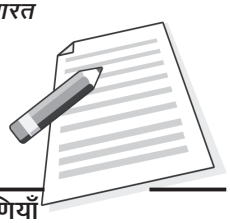
14.6 चित्रकला

सीमित प्रतिरूपों की वजह से सल्तनत युग में चित्रकला के विकास का अध्ययन हो नहीं सका है। सबसे नज़दीकी दष्टिकोण सल्तनत काल के साहित्यिक प्रसंगों से प्राप्त भित्ति चित्र में मिलता है। भित्ति चित्र का आरम्भिक संदर्भ इल्तुतमिश की प्रशंसा में क़सीदा से प्राप्त होता है जो खलीफा के राजदूत का स्वागत करने के लिए बनाए गए मुख्य मेहराब के दीवार पर वर्णित आकतियों का वर्णन करता है। अन्य संदर्भों में तारीख–ए–फिरोज़शाही में भी मिलता है, जिसमें दिल्ली के महलों की दीवारों पर उभरी चित्रकारों पर प्रतिबंध लगाने की अनुशंसा की गई है। इस काल में दक्षिण एशिया में कुरानी सुलेखन बहुत ही लोकप्रिय हो चला था। कुरान की प्रथम प्रतिलिपि (1399 में) ग्वालियर में लिखी गई थी। पांडुलिपि विविध आलंकारिक नमूनों द्वारा सुसज्जित थी। 15वीं शताब्दी तक गुजरात, मालवा तथा जौनपुर के राज्य कला के प्रमुख केन्द्र बनकर उभरे।

मुगलों के काल में भारत में चित्रकला ने नए युग में प्रवेश किया। उन्होंने पूरे उत्तर भारत में चित्रकला के चरित्रों को पूरी तरह बदल दिया। मुगल चित्रकला शाही दरबार में प्रचलित विषयों तथा शैलियों द्वारा परिभाषित होती है। मुगल चित्रकला की आरंभिक शैली



चित्र 14.3 मुगल चित्रकला



हमें काबुल में मिलती है। हुमायूं के शासनकाल में दो प्रमुख फारसी चित्रकारों मीर सैय्यद अली और अब्दुस समद को राजसी संरक्षण प्राप्त था।

अकबर ने उन्हें हमज़नामा की पांडुलिपि की व्याख्या करने के लिए नियुक्त किया था। 1400 प ष्ठ वाली पांडुलिपि ग्वालियर, गुजरात, लाहौर, तथा कश्मीर के कलाकारों द्वारा रचित है। इसी काल के दौरान मुगल कला की नए विशेषताएं विकसित हुईं। इस युग में एक ही चित्र पर दो या यहां तक कि चार चित्रकारों द्वारा बनाए गए कई चित्र सामूहिक कार्य हैं। इस चित्रकला की प्रमुख विशेषताओं में से मुख्य हैं — आक तियों की सीमित गतिविधियां, चित्रकारी की रेखाओं की परिष्क तता तथा वास्तुशिल्पी स्तम्भों का समतल चित्रांकन। मुगल चित्रकला अपनी स्वाभाविकता तथा लय, भारतीय वस्त्रों में पात्रों का चित्रण तथा प ष्ठभूमि में पूरक द श्यों के प्रयोग के लिए भी विख्यात है। मुगल चित्रकला की दो प्रमुख विषयवस्तु दरबार की मुख्य घटनाओं का चित्रण तथा विख्यात व्यक्तियों के रूपचित्र थे।

जहांगीर के शासनकाल में मुगल चित्रकला में और परिवर्तन परिलक्षित होते है। जहांगीर कालीन चित्रकला रूपवादी शैली पर ज़ोर देती है तथा व हद हाशिये वाले चित्र मिलते हैं जो वनस्पतियों तथा मानवाक तियों के चेहरों के चित्रण द्वारा सुसज्जित हैं। यह स्वाभाविक



चित्र 14.4 राजपूत चित्रकला

चित्रण जहांगीर के शासन काल में फला–फूला। चित्रों की प ष्ठभूमि में व क्षों, नदियों, पक्षियों तथा नहरों का प्रयोग बहुत ही लोकप्रिय हुआ।

शाहजहां के शासनकाल में बने चित्रों में शाही दरबार से सम्बधित स्त्रियों का चित्रण तथा प्रेम के रोचक द श्य परिलक्षित होते हैं जबकि औरंगज़ेब के शासनकाल में बने चित्र मुगल शासक के सैन्य अभियानों की झलक दिखलाते हैं। स्थापत्य कला में भी मुगल चित्रकारी ने क्षेत्रीय शैलियों के विकास तथा प्रगति के लिए मार्ग प्रशस्त किया, जिसने समान विशेषताओं वाली अलंक ति को दोहराने का प्रयत्न किया।

इसी काल की राजपूत चित्रकारी में विभिन्न राजपूत शासकों के विविध राजदरबारों का चित्रण था। 16वीं तथा 17वीं शताब्दी में राजपूत चित्रकला में कई प्रणालियों तथा दरबार के द श्यों का चित्रण हमें मिलता है। राजपूत काल की चित्रकला बहुत ही विस्त त भूभाग पर फैली थी, हर क्षेत्र में कलात्मक विषय में भिन्न उप विषय का निर्माण हुआ। अन्य लोकप्रिय क्षेत्रीय शैलियों में दक्किनी शैली मुख्य थी तथा बंगाल, गुजरात और उड़ीसा में भी कला की क्षेत्रीय शैली का विस्तार देखने को मिलता है। राजपूत चित्रकला पुनः 18वीं शताब्दी में फली–फूली जब कई कलाकार अपने नए संरक्षकों की शरण में आए। इसी समय कला की कई क्षेत्रीय शैलियों का उदय भी देखने को मिलता है। ये चित्र अपने रंगों की चटखता के लिए विख्यात हैं तथा आखेट के द श्य, व्यक्ति का रेखाचित्र तथा संगीत सत्र का वर्णन इनमें मिलता है। इस चित्रकला की मुख्य शैलियां मेवाड़, बूंदी तथा किशनगढ़ शैलियां है।

पाठगत प्रश्न 14.5

1. अमीर खुसरो द्वारा स जित संगीत वाद्य यंत्रों के नाम लिखें?

2. ध्रुपद शैली के विकास में महत्त्वपूर्ण भूमिका किसने निभाई?

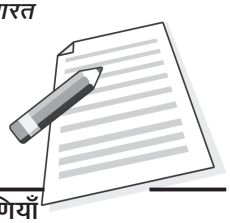
3. जहांगीर के काल में चित्रकला में क्या शैलीगत परिवर्तन आए?

4. मुगल चित्रकला की मुख्य विषय वस्तु का उल्लेख करें।

14.7 वास्तुशिल्प

दिल्ली सल्तनत का वास्तुशिल्प

मध्यकाल में वास्तुशिल्प की नई शैलियों तथा रूपों ने जन्म लिया। इस काल में मेहराब तथा गुम्बद नए स्थापत्य संयोजन बने। चूने–सीमेंट, पानी और रेत के मिश्रण के भवन तथा मकान निर्माण में प्रयोग ने भवन तकनीक को एकदम बदल दिया। मेहराबों का विकास इस युग की स्थापत्य कला की मुख्य विशेषता थी। मेहराबों के निर्माण के लिए



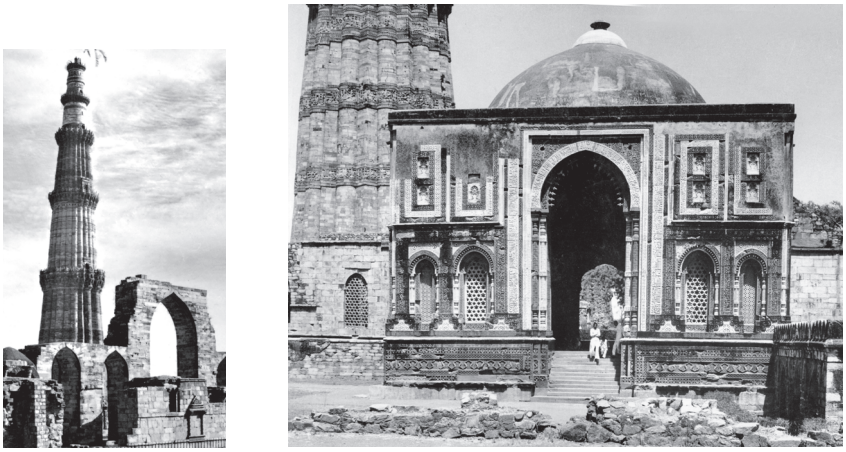
पत्थर तथा ईंटे टेढ़ी रेखा के आकार में रखे जाते थे तथा बांधने वाली उत्क ष्ट सामग्री द्वारा परस्पर गुंथे होते थे। मेहराबों का निर्माण विभिन्न रूपों में हुआ किंतु सबसे विशिष्ट नुकीले प्रकार के थे। 14वीं शताब्दी में एक भिन्न प्रकार के मेहराब चतुर्केन्द्री मेहराब, तुगलकों द्वारा निर्मित भवनों में प्रयुक्त हुए।

उपमहाद्वीप में तुर्क कालीन आरंभिक कुछ ही भवनों में भवन निर्माण की नई सामग्री का उपयोग दिखता है। इस युग की अधिकतर इमारतों में उत्क ष्ट तराशी हुई भवन सामग्री, स्तंभ तथा पुराने भवनों के कूपक का ही पुनः प्रयोग हुआ है। इस काल में राजगीरी के कार्य में पत्थरों का प्रयोग व हद रूप से मिला है। भवन में प्लास्टर करने के लिए सर्व प्रचलित सामग्री खड़िया मिट्टी अत्यन्त लोकप्रिय थी। साथ ही ऐसे स्थानों पर जहां पानी के रिसाव की संभावना थी, जैसे छत, सुरंग तथा नाले, वहां पर चूने–प्लास्टर का प्रयोग किया गया। इस काल के उत्तरार्ध में खड़िया मसाले का प्रयोग सर्वत्र लोकप्रिय हो चला था।

यहां हम स्थापत्य कला की सल्तनत, मुगल तथा राजपूत शैली में भारत में हुई प्रगति का अध्ययन करेंगे।

सल्तनत काल

कुत्वातुल इस्लाम मस्जिद (1198), कुतुब मीनार (1199-1235), अढाई दिन का झोपड़ा (1200) तथा इल्तुतमिश का मकबरा जैसे स्मारक भारतीय–इस्लामिक शैली के आरम्भिक रूप को दर्शाते हैं। आरम्भिक इमारतों जैसे स्मारक की शैली जहां एक ओर स्थानीय कलाकारों के काम को प्रदर्शित करती हैं, वहीं बाद की इमारतें में भारतीय–इस्लामिक शैली का विकास दिखाई देता है। इन स्मारकों में गुम्बदों तथा मेहराबों का क्रमबद्ध विकास द ष्टिगोचर होता है। इस शैली के उत्क ष्ट नमूने इल्तुतमिश (1233-34) तथा बलबन का मकबरा (1287-88) हैं। कुतुब परिसर में अलाई दरवाजा (1305) तथा निजामुद्दीन में जगत खाना मस्जिद (1325) खिलजी काल के उत्क ष्ट उदाहरण हैं। यहां पर सेलजक स्थापत्य परम्परा का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। घोड़े



चित्र 14.5 कुतुबमीनार और अलाई दरवाजा

के नुकीले जूतों के आकार के मेहराबों का निर्माण गुम्बदों का प्रस्फुटन, अलंक त संगमरमर नक्काशी तथा लाल पत्थरों का उपयोग, मेहराबों के भीतरी भिन्न पर कमल पंखुडी जैसी किनारियों का आविर्भाव तथा नई राजगीरी इस शैली की प्रमुख विशेषताएं थीं। तुगलक काल की नई शैली में मुख्य भवन निर्माण सामग्री के रूप में छोटे–बड़े अनगढ़े पत्थरों का प्रयोग, दीवारों तथा छावनियों का चतुर्कोणीय मेहराबों का निर्माण, नोकदार गुम्बदों का निर्माण तथा अष्टकोणीय गुम्बद योजना का प्रारंभ हम मुख्य विशेषताओं के रूप में पाते हैं। तुगलक वास्तुशिल्प की अन्य मुख्य विशेषता टूटी हुई अथवा ढलाव वाली दीवारें थीं। इसने भवनों को मजबूती प्रदान की। आगे चलकर कई गुम्बद अष्टकोणीय योजना के अंतर्गत बने वहीं कई गुम्बदों ने समकोणीय योजना के अंतर्गत अपना आकार ग्रहण किया। सूरी के स्थापत्य स्मारकों को हम दो काल खंडों में विभाजित कर सकते हैं – पहला शेरशाह सूरी के पिता तथा खुद शेरशाह के मकबरे जैसी सासाराम (1530-40) के स्मारक। दूसरा चरण (1590-1545) हमें दिल्ली में पुराना किला तथा किले के भीतर किलाई कुन्हा मस्जिद के स्मारकों के रूप में मिलता है। मुगल काल में चतुर्कोणीय मेहराबों के विकास से पूर्व ताज के वक्रों में हल्की समतलता अंत्तिम अवस्था की ओर संकेत करती है।

क्षेत्रीय विविधताएँ

इस काल के दौरान हमें क्षेत्रीय स्तर पर स्थापत्य कला की विभिन्न शैलियों का विकास भी देखने को मिलता है। पूर्वी भारत में बंगाल तथा जौनपुर में दो विशिष्ट शैलियों का उदय पाते हैं। बंगाल शैली के मुख्य भवन मालदा तथा गौर और पंडुआ नगरों में देखने को मिलते है। इसमें दो मुख्य विशेषताओं की शुरुआत भी हुई। पहली विशेषता है – लटकी हुई मेहराब जिसकी चौड़ाई तथा केन्द्र अपने मुख्य समतल केन्द्र से अधिक है। दूसरी विशेषता मेहराब के कक्षों की छत को इस तरह से ऊंचा करना जहां छोटे गुंबद व्यवस्थित तिरछी ईंटों की सहायता से निर्मित हों कि वह चौकोर से व त्तीय नींव के निर्माण में मदद दे। इस काल की अन्य उपलब्धि बांस के भवनों के स्थान पर ईंटों से निर्मित भवन थे, जिसके दौरान व त्तीय छतों का रूप विकसित हुआ। जौनपुर शैली की व्याख्या वहां की बनी मस्जिदें कर देती हैं। जौनपुर की शैली तुगलक शैली के जैसी ही है। मेहराब तथा तराजू के डंडे का प्रयोग इस शैली की उल्लेखनीय विशेषताएं थीं।

पश्चिमी भारत में स्थापत्य कला में उल्लेखनीय कार्य 14वीं शताब्दी में गुजरात में देखने को मिलता है। 14वीं और 15वीं शताब्दी में कला के क्षेत्र में परिवर्तन भी दिखाई देता है। 14वीं शताब्दी में विध्वंस किए मन्दिरों के अवशेषों से मस्जिद का निर्माण मिलता है तथा 15वीं शताब्दी में नई शैली विकसित हुई जिसमें मस्ज़िदों के खाके मंदिर के स्थापत्य छापों की तर्ज पर बनाए गए। मध्य भारत में गालवा क्षेत्र में स्थापत्य कला का विकास उल्लेखनीय रहा। धार तथा मांडु के शहर इस शैली के प्रमुख उदाहरण हैं।

एक अन्य क्षेत्र जिसने स्थापत्य कला में अपनी विशिष्ट शैली विकसित की, वह दक्कन क्षेत्र था, जहाँ उत्तर भारत की स्थापत्य कला की तुलना में बहमनी राज्य एकदम भिन्न रूप से विकसित हुआ। दक्कन शैली में उत्तर भारत की तुगलक शैली तथा फारसी शैली का मिश्रण मिलता है। यहाँ के वास्तुशिल्प की शैली की राजधानी गुलबर्ग (1347) से बिदर (1425) और अंत में गोलकुंडा (1512) में स्थानांतरित होने के दौरान की कालावधि से मेल खाती है। क्रमशः प्रथम चरण में गुलबर्ग की स्थापत्य शैली इस्लामिक

वास्तुशिल्प तथा तुगलक शैली का प्रतिनिधित्व करती है। दूसरे चरण में फारसी वास्तुशिल्प की शैलियों की नकल मिलती है, जो रंगबिरंगी टाइलो और गुम्बदों के स्वरूप में परिवर्तन से भी स्पष्ट होता है।

विजयनगर कला दक्किन क्षेत्र की अन्य विशेष उपलब्धि थी। इस विशिष्ट कला का अनुपम उदाहरण हम्पी शहर की इमारतों से मिलता है। महलों तथा मन्दिरों के अतिरिक्त शहर में जल सम्बन्धित कार्यों का जाल तथा जन भवनों का निर्माण भी बहुतायत से दिखाई पड़ता है जैसे हाथी अश्वशाला तथा कमल महल। इस शैली की अनुपम विशेषता वास्तुशिल्पी तथा अलंक त उद्देश्यों के लिए स्तंभों का प्रयोग है। मन्दिर स्थापत्य की यह शैली तुलुव शासकों के समय में सर्वोच्च शिखर पर पहुँची। स्थापत्य कला की इस परम्परा की आकर्षक मूर्तिकला की परम्परा का साथ मिला जिसने कई पौराणिक आक तियों तथा घटनाओं की व्याख्या की। हेमाकुट पहाड़ी पर स्थित मन्दिर, विरूपक्ष मन्दिर तथा हजारा राम मन्दिर विजयनगर मंदिर की वास्तुशिल्प के उत्क ष्ट उदाहरण हैं।

मुगलकालीन स्थापत्य कला

इस काल में व्यापक स्तर पर स्थापत्य कला में कार्य हुए जिससे कला भारत में अपने चरम पर पहुँची। यह विचारों तथा शैलियों के परस्पर आदान–प्रदान का भी युग था, जिसने सल्तनत काल से सर्वथा भिन्न स्थापत्य कला को जन्म दिया तथा जिसमें स्थानीय



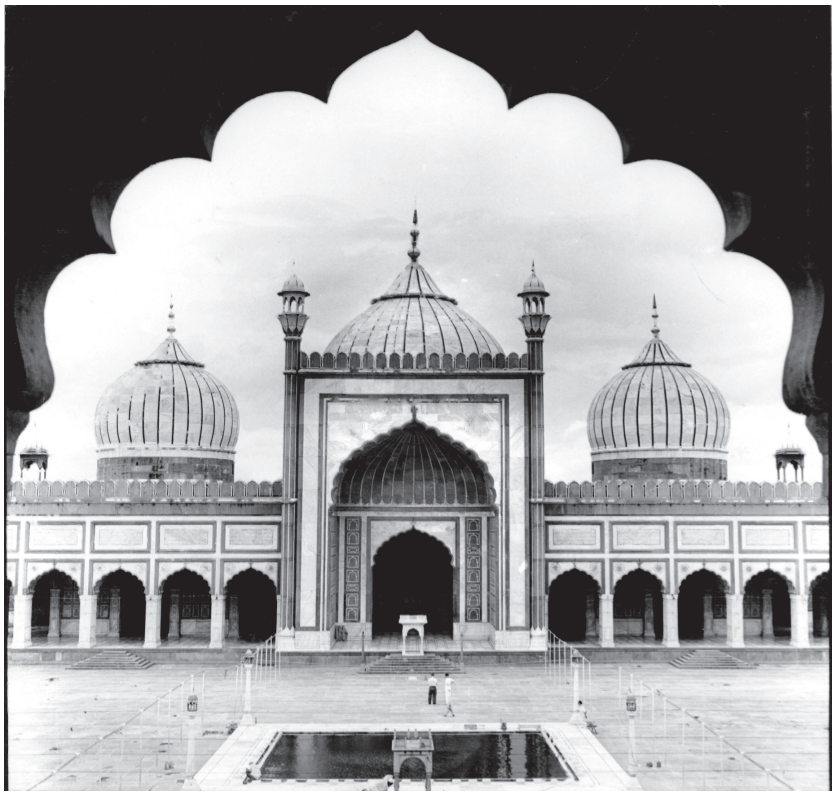
चित्र 14.6 हुमायूँ का मकबरा

तथा क्षेत्रीय विशेषताओं का भी समन्वय था। मुगल बादशाह अकबर ने शानदार परियोजनाओं की शुरुआत की जो इस युग का प्रतीक है।

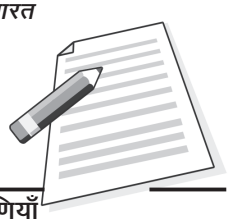
इस युग की आरम्भिक इमारतों में बाबर द्वारा 1526 में पानीपत तथा सम्भल में निर्मित 2 मस्जिदें हैं। बाबर को ही ढोलपुर, रामबाग तथा आगरा में ज़हराबाग का खाका तैयार करने का श्रेय जाता है। आगरा तथा हिसार में स्थित 2 मस्जिदें, द्वितीय मुगल बादशाह हुमायूँ के समय की हैं। मुगल वास्तुशिल्प की भव्यता का युग हुमायूँ के मकबरे के निर्माण

से प्रारम्भ होता है जिसका खाका ईरान के मिराक मिर्जा ग्यास ने बनाया था। वह मकबरे पर कार्य करने के लिए अपने साथ ईरान से मजदूर लाया था। यह मकबरा बागों से घिरा हुआ तथा बलुआ पत्थर के आच्छादित आधार पर बने स्मारकों का सबसे पहला उदाहरण है। यह मकबरा अष्टकोणीय है तथा ऊपर ऊँचा गुम्बज है। यह गुम्बद दोहरा गुंबद है जो दो परतों में बना है। एक परत इमारत के अन्दर की भीतरी छत प्रस्तुत करती है तथा बाहरी परत जो शिखर पर है, वह मुख्य इमारत को प्रस्तुत करती है।

अकबर के काल में बहुत सी देशी शैलियों का विस्तार हुआ, जिसने बलुआ पत्थर का सामान्य प्रयोग, मेहराबों का प्रयोग (मुख्यतः अलंक त रूपों में) तथा सजावट को जन्म दिया जिसमें मुख्यतः मजबूत नक्काशी या जटित प्रतिरूप है तथा अन्दर की दीवारों पर चटकीले रंगों का प्रयोग हुआ है। महत्त्वपूर्ण स्मारक परियोजनाओं में आगरा के किले का निर्माण था, किले के अन्दर कई ढाँचों के निर्माण में गुजराती तथा बंगाली शैली का प्रयोग हुआ जो शाहजहाँ द्वारा किले को नया रूप देने के लिए नष्ट कर दी गई थी। जहाँगीर महल, लाल पत्थरों की सुद ढ़ इमारत हिन्दू तथा इस्लामिक शैली के प्रयोग के लिए जानी जाती है। कोष्ठ तथा डंड के समायोजन ने मुख्य स्थापत्य पद्धति का निर्माण किया। इसकी झलक लाहौर तथा इलाहाबाद के दुर्गों के महलों में मिलती है। फतेहपुर सीकरी के निर्माण के साथ ही अकबर कालीन स्थापत्य कला ने नए युग में कदम रखा। 1571-1585 के दौरान बने इस महल में लाल पत्थरों



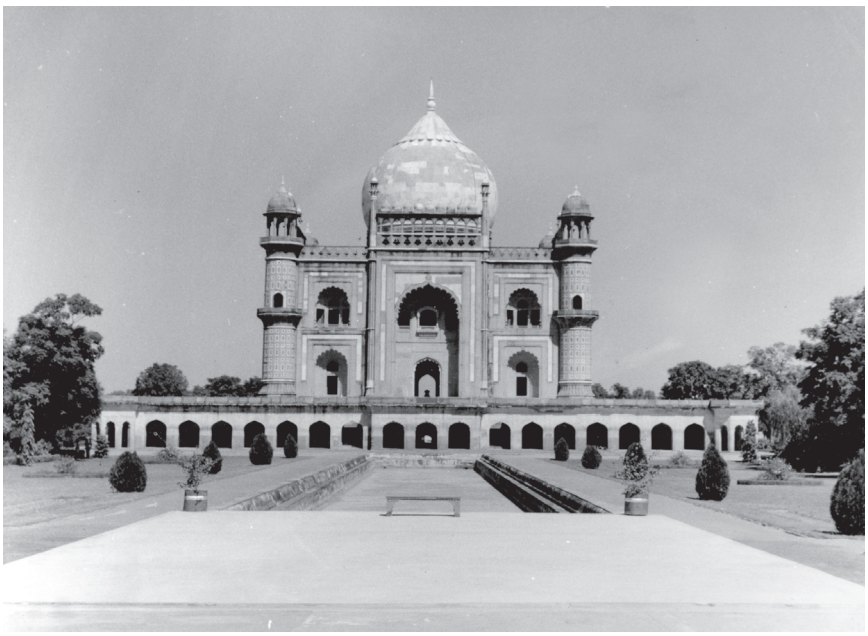
चित्र 14.7 जामा मस्जिद दिल्ली



का उपयोग किया गया है। इस इमारत को दो भागों में अध्ययन किया जा सकता है, धार्मिक तथा धर्मनिरपेक्ष। धार्मिक इमारतों में मुख्य है – जामा मस्जिद, बुलन्द दरवाजा तथा शेख सलीम चिश्ती का मकबरा। धर्मनिरपेक्ष इमारतों में महल, प्रशासनिक इमारतें तथा अन्य इमारतें हैं। जामा मस्जिद में मस्जिद की आदर्श योजना है, जिसमें केंद्रीय आंगन है जो तीन तरफ से आच्छादित है तथा गुम्बदाकार छत है। इसके आंगन में सलीम चिश्ती का मकबरा है। इसकी अन्य प्रमुख इमारतों में जोधाबाई महल, पंचमहल, (पांच मंज़िला भवन जिसकी हर बढ़ती मंजिल आकार में घटती जाती है), दीवान–ए–खास (आयताकार रूप में तथा बाहर से दो मंज़िला) तथा दीवान–ए–आम है। अन्य इमारतों में हाथी पोल तथा कारखाना इमारतें हैं।

जहांगीर के काल की मुख्य स्मारकों में सिकंदरा स्थित अकबर का मकबरा तथा इत्माद–उद–दौला मकबरा है। सिकन्दरा स्थित मकबरा बाग से घिरा हुआ है। मकबरा तीन मंजिलों में बना है। पहली मंजिल एक आच्छादित मंच का आधार है तथा तीन मंज़िलों में बीच की मंजिल लाल पत्थरों से तथा सबसे ऊपर वाली मंजिल सफेद संगमरमर से बनी है, जो ऊपर से खुली है और पर्दे से घिरी है। 1622-28 में बना इत्माद–उद–दौला का मकबरा अकबर की शैली से एकदम अलग है। गुम्बदाकार छत से घिरा हुआ यह मकबरा संगमरमर की खूबसूरत नक्काशी से बना हुआ है। जहांगीर ही कश्मीर में प्रसिद्ध मुगल गार्डन की नींव डालने वाला माना जाता है।

शाहजहां के काल के महत्त्वपूर्ण स्मारकों में दिल्ली का लाल किला, आगरा की मोती मस्जिद, दिल्ली की जामा मस्जिद तथा आगरा का लाल किला है। लाल किला यमुना नदी के किनारे आयत के रूप में बना हुआ है। इसमें दो द्वार हैं दिल्ली तथा लाहौर दरवाजा। नदी के किनारे को छोड़कर किले के आसपास खाई है, जो पूरे किले को घेरती है। किले के अंदर की मुख्य इमारत दीवान–ए–आम, दीवान–ए–खास तथा रंग महल



चित्र 14.8 सफदरजंग का मकबरा

है। आगरा में बनी मोती मस्जिद एक वैकल्पिक योजना के साथ किया गया प्रयोग है, जिसमें खुला प्रार्थनास्थल है तथा मीनारों के स्थान पर प्रार्थना स्थल के चारों ओर छतरियों का निर्माण किया गया है। दिल्ली की जामा मस्जिद, फतेहपुर सीकरी की जामा मस्जिद का ही व हद रूप है। यह एक बड़े मंच पर बनी है। मस्जिद के अंदर तीन ओर स्तंभवालियां हैं तथा चौथी ओर शरणस्थल है। शरणस्थल पर संगमरमर से बने तीन गुंबद हैं। ताजमहल शाहजहां की भव्य परियोजना है। ताजमहल का निर्माण 1632 में प्रारंभ हुआ तथा यह 1643 में बनकर पूरा हुआ। भवन में ऊंची अंतःक्षेत्रीय दीवारों के साथ मध्य में भव्य द्वार मार्ग आयताकार है। ताज की मुख्य इमारत संगमरमर के एक बड़े चबूतरे पर, परिसर के उत्तरी किनारे पर स्थित है। इस इमारत में एक बहुत विशाल गुम्बद है, जो ढांचे को ढँकता है तथा भवन की अलंक त विशेषताओं में मुख्यतः बाहरी हिस्से पर सुलेखन तथा जड़ाऊ कार्य है तथा अंदर पैट्रा डयूरा है।

दिल्ली के लाल किले की मोती मस्जिद, लाहौर की बादशाही मस्जिद तथा अपनी पत्नी रबिया उद दौरान की याद में औरंगाबाद में बनाया स्मारक औरंगजेब के समय की मुख्य इमारतें हैं। औरंगाबाद का स्मारक ताजमहल से प्रेरणा लेकर बनाया था। औरंगजेब के पश्चात् के स्मारकों में दिल्ली में सफदरजंग का मकबरा क्षेत्रीय शासकों द्वारा मुगलों की परम्परा को आगे बढ़ाता प्रतीत होता है।

अलंक त शैली

इस युग की कला की एक अन्य विशेषता इस्लामी इमारतों में अलंक त कला थी, जो उपमहाद्वीप में पहली बार प्रयुक्त हुई थी। अलंक त शैलियों में सुलेखन, रेखाचित्र तथा पत्तियों का चित्रण था। कुरानी सुलेखन शिक्षाएं इमारतों में कोणीय, सादे तथा ब हत लिपि कुफी द्वारा वर्णित थी। सुलेखन इमारत के विभिन्न भागों जैसे छत, दरवाजों की चौखट, दीवारों इत्यादि पर मिली है। दूसरी ओर रेखाचित्रों का उपयोग विभिन्न प्रकार के संयोजन में मिलता है। इन डिज़ाइनों के मुख्य स्रोत व त्त थे, जो कालान्तर में वर्ग, आयत, त्रिकोण तथा बहुकोणी हो गए। फिर इन्हें विविध रूपों तथा उप प्रभागों द्वारा घूर्णन पद्धति से अलंक त किया गया। पीछे देखें, तो सल्तनत कालीन इमारतों में अरब शैली की सजावट मिलती है। इसमें एक निरंतर तना चित्रित था जो लगातार टूट कर पत्तियों की श्रंखला तथा दूसरे तने का निर्माण कर रहा था और वह तना पुनः मुख्य तना होकर वही चक्र पुनः संचालित करता था।

पाठगत प्रश्न 14.7

1. वास्तुशिल्प में मध्यकालीन युग में हुए दो मुख्य परिवर्तनों को लिखें।

2. सही मेहराब क्या हैं?

3. भारतीय इस्लामिक स्थापत्य कला के आरम्भिक प्रकार के कुछ स्मारकों के नाम लिखें।

4. फतेहपुर सीकरी में किस प्रकार के पत्थरों का प्रयोग हुआ है?

5. मध्यकालीन युग में प्रयुक्त कुछ अलक ंत शैलियों के नाम लिखें।

आपने क्या सीखा

मध्यकालीन भारतीय सभ्यता भारतीय तथा फारसी दर्शन, साहित्य, कला तथा स्थापत्य कला को प्रस्तुत करती है। धार्मिक क्षेत्र में सूफी वाद तथा भक्ति परंपरा ने एक दूसरे को प्रभावित किया इसने हिन्दू तथा मुसलमानों को एक दूसरे की परम्पराओं को समझने का अवसर दिया।

उर्दू का उदय व्यवहार तथा संश्लेषण का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। संगीत तथा चित्रकला के क्षेत्र में भी यह दिखाई देता है। वास्तुशिल्प के क्षेत्र में प्रकार, रूप, शैली तथा सजावट ने भी एक दूसरे से बहुत कुछ लिया।

इस प्रकार मध्यकालीन युग में दक्षिण एशिया ने धर्म तथा कला के क्षेत्र में कई प्रभावशाली रिवर्तन देखे। सूफी वाद की बढ़ती लोकप्रियता ने इस्लाम की लोकप्रिय स्वीकार्यता को स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई वहीं इस्लामी परम्पराओं को उपमहाद्वीप में लोकप्रिय करने में भी आगे रहे। हिन्दू धर्म के विकास के लिए भक्ति आंदोलन ने भी समान भूमिका निभाई। एक तरफ जहां इन्होंने स्थापित धार्मिक कर्मकांडों तथा आडम्बरों को चुनौती दी, वहीं हिंदू धर्म की मुख्यधारा में एकेश्वरवाद जैसे सिद्धांतों को भी मान्यता दिलाई। सूफी तथा भक्ति दोनों ही आंदोलनों ने स्थापित धार्मिक गुरुओं की वैधता पर प्रश्न उठाए तथा स्थापित धार्मिक परम्पराओं को भी चुनौती दी। सबसे मुख्य बात तो यह है कि दोनों ही पंथ स्थापित आडम्बरों के विरोध में बने, किंतु कालान्तर में इन्हें इन्हीं ध ार्मिक पद्धति का अभिन्न अंग बना दिया गया।

मध्यकालीन युग की एक और अन्य विशेषता क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्य की उन्नति रही। बढ़ती क्षेत्रीय पहचान ने कला तथा साहित्य में नए रूपों का निर्माण किया। बंगाली, गुजराती, मराठी और तेलुगू जैसी क्षेत्रीय भाषाओं का विस्तार एक मुख्य चरण है। अनुवाद की लोकप्रियता ने पाठकों की संख्या में व द्धि की तथा विचारों के आदान–प्रदान में भी काफी उन्नति देखी गई। विचारों के आदान–प्रदान ने संगीत में नए विचारों को जन्म लिया। सितार के प्रयोग तथा संगीत की नई शैलियों ने इस युग में संगीत को और सम द्ध किया।

कला के क्षेत्र में मुगल तथा राजपूतों से संरक्षण प्राप्त चित्रकला में नए–नए विकास हुए। शैली, चरित्र तथा अच्छे ढंग से प्रस्तुति की वजह से भारत में अपने पूववर्ती काल में थोड़ा परिवर्तन भी हुआ। मध्यकालीन सामंजस्य की झलक मुगल वास्तुशिल्प में मिलती है। बड़ी संख्या में किले, महल, मंदिर तथा मस्जिदों का निर्माण इस शैली के प्रमुख उदाहरण हैं। भव्य अलंकरण तथा गुम्बदों का निर्माण इस युग की वास्तुशिल्प के मुख्य उदाहरण हैं।

पाठान्त प्रश्न

1. सूफी शिक्षाओं के मुख्य पहलुओं पर चर्चा करें।
2. ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शबंदी ने कौन से सूफी सिलसिले की स्थापना की? उनके सिलसिले की मुख्य शिक्षाएँ क्या थीं?
3. विभिन्न भक्ति संतों की शिक्षाओं में क्या समानताएं थीं?
4. भक्ति आंदोलन ने बंगाल तथा महाराष्ट्र में क्या मुख्य विकास किए।
5. गुरुनानक की शिक्षाओं के महत्त्वपूर्ण पहलू पर प्रकाश डालें।
6. मध्यकाल में संस्क त भाषा के साहित्य में हुए नए प्रयोगों के विकास का उल्लेख करें।
7. अमीर खुसरो कौन था? फारसी साहित्य में उनकी देन का उल्लेख करें।
8. मुगलकाल में प्रस्फुटित चित्रकला शैली की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?
9. सल्तनत कालीन स्थापत्य कला की मुख्य विशेषताओं तथा शैली का मूल्यांकन करें।
10. अकबर तथा जहांगीर के काल की स्थापत्य कला में नई शैलियों के उद्भव का वर्णन करें।

पाठगत प्रश्नों के उतर

14.1

1. पीर सूफी शिक्षक को कहते हैं।
2. एक महत्त्वपूर्ण सूफी, जिन्होंने इस्लामी रहस्यवाद को इस्लामी परम्परा से जोड़ा।
3. भक्ति संगीत के लिए प्रयुक्त शब्द।
4. निजामुद्दीन औलिया।
5. वह पंजाब में कादरिया सिलसिला के नेता तथा अकबर के समर्थक थे।

14.2

1. रुढ़िवादी ब्राहमण विचारधारा
2. कबीर, तुकाराम, चैतन्य
3. बंगाल के प्रमुख भक्ति संत

14.3

1. गुरु के साथ प्रत्यक्ष संपर्क रखने वाला सिक्ख
2. पंजाब की प्रमुख व्यावसायिक जाति

14.4

1. राजतरंगिणी, प थ्वीराजविजय
2. यह एक काव्यात्मक विवरण है।
3. वे एक फारसी के कवि थे तथा निज़ामुद्दीन औलिया के शिष्य थे और उन्हें सल्तनत काल में संरक्षण प्राप्त था।
4. फतवा–ए–जहांगीरी/तारीख–ए–फिरोज़शाही
5. भारत में फारसी साहित्य का नया प्रकार
6. मराठी, बंगाली, गुजराती, उड़िया।

14.5

1. सितार
2. राजा मानसिंह
3. रूपवादी शैली का उदय और प्राक तिक चित्रण का उपयोग
4. दरबार की कुछ घटनाओं तथा प्रमुख व्यक्तियों का चित्रण

14.6

1. मेहराब तथा गुम्बद
2. मेहराब निर्माण की नई शैली जो मध्यकाल में पनपी। केन्द्र का पत्थर इसके लिए आवश्यक था।
3. कुव्वत–उल–इस्लाम मस्जिद, कुतुब मीनार, अढ़ाई दिन का झोपड़ा
4. लाल बलुआ पत्थर
5. सुलेखन/भौगोलिक आकार

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

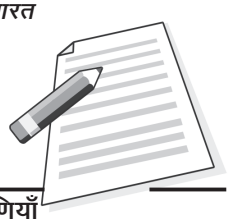
1. देखे खंड 14.1 अनुच्छेद 1, 3, 6
2. देखें 14.1 नक्शबंदी सिलसिला
3. देखें 14.2 अनुच्छेद 1 से 4
4. देखें 14.2, वैष्णव भक्ति
5. देखें खंड 14.3 अनुच्छेद 1 और 2
6. देखें खंड 14.4 संस्क त साहित्य में आया अनुच्छेद
7. देखे 14.4 फारसी साहित्य
8. देखें 14.6

9. देखें 14.7 दिल्ली सल्तनत

10. देखें 14.7 मुगल साम्राज्य

शब्दावली

खानकाह	–	सूफी फिरके का गतिविधि केन्द्र
सिलसिला	–	सूफीओ के फिरके
एकेश्वरवादी	–	एक ईश्वर में विश्वास करने वाले
पेट्रा डयूरा	–	फारसी सजावट का ढंग जिसमें सफेद संगमरमर/पत्थरों पर रंगीन पत्थर इस प्रकार रखे जाते है मानो एक ही टुकड़ा हो।
रूह	–	आत्मा
हुलूल	–	पवित्र आत्मा से मिलन
जियारत	–	मकबरों की यात्रा करना, एक प्रकार की तीर्थयात्रा
सम	–	सूफियों का समूह में गाना, बजाना



15

18वीं शताब्दी में भारत की स्थिति

18वीं शताब्दी में भारत में दो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए, जिन्होंने सता के ढांचे को पूरी तरह बदल दिया तथा बहुत से महत्त्वपूर्ण सामाजिक तथा आर्थिक परिवर्तनों की शुरूआत की। पहला शताब्दी के पूर्वार्द्ध में मुगल साम्राज्य से क्षेत्रीय शक्तियों में सत्ता हस्तांतरण तथा दूसरा राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्र में आए परिवर्तन। 18वीं शताब्दी में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी अपनी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा के लिए मौके की तलाश में थी। मुगल सत्ता के पतन ने कई क्षेत्रीय शक्तियों को जन्म दिया। इस अध्याय में हम देश में इन्हीं क्षेत्रीय शक्तियों के उदय का अध्ययन करेंगे। आक्रामक ब्रिटिश नीतियों ने आर्थिक स्थिति को प्रभावित किया। क षि तथा गैर क षि उत्पादन में भी बदलाव आया। वाणिज्यिक गतिविधियां भी अछूती न रह सकीं। 18वीं शताब्दी की सामाजिक तथा आर्थिक स्थितियों की चर्चा भी की जाएगी।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- मुगल साम्राज्य के पतन के कारण तथा क्षेत्रीय शक्तियों को उदय की व्याख्या कर सकेंगे;
- इस अवधि के दौरान उदय हुई मुख्य राजनीतिक शक्तियां का ब्यौरा दे सकेंगे;
- इस अवधि के दौरान भारतीय अर्थव्यवस्था में क्षेत्रीय भिन्नताओं का अन्तर स्पष्ट कर सकेंगे;
- समाज और संस्क ति की मुख्य विशेषताओं को पहचान सकेंगे; और
- 18वीं शताब्दी के भारत के मुख्य मुद्दों का आकलन कर सकेंगे।

15.1 मुगल साम्राज्य का पतन

भूमिका

मुगल साम्राज्य की एकता तथा सुदढ़ता औरंगजेब के लंबे तथा मजबूत शासन के दौरान ही विखंडित होने लगी थी। हालांकि कुछ झटकों तथा विकट स्थितियों के

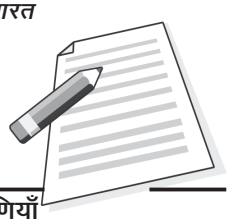
बावजूद मुगल प्रशासन काफी सक्षम था तथा उसकी मत्यु के समय 1707 ई० तक मुगल सेना भी काफी मजबूत स्थिति में थी। इस वर्ष को आम तौर पर महान मुगल तथा लघु मुगलों के काल में अंतर स्पष्ट करने के लिए किया जाता है। औरंगजेब की मत्यु के पश्चात मुगल सत्ता कमजोर हो गई तथा अपने विशाल साम्राज्य के हर हिस्से पर नियंत्रण स्थापित करने की शक्ति अब उसमें न रही। फलतः कई क्षेत्रीय सूबेदारों ने अपनी सत्ता का दावा करना प्रारंभ कर दिया। नतीजतन कई मुगल सुबेदारों ने खुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया। कुछ नए क्षेत्रीय समूह भी उभरे तथा संगठित हुए तथा इन्हीं घटनाओं के बीच राजनीतिक शक्ति बनकर उभरे। 1707 से लेकर पानीपत के ततीय युद्ध 1761 ई. (जिसमें अहमद शाह अब्दाली ने मराठा शासकों को पराजित किया) तक की अवधि क्षेत्रीय शक्तियों के पुनः उदय की साक्षी बनी, जिसने राजनीतिक तथा आर्थिक विकेन्द्रीकरण व्यवस्था को जन्म दिया। इसी समय तमाम राजनीतिक तथा सैन्य उठापठक के बावजूद स्थानीय कच्चा माल, हस्तशिल्प तथा अनाजों के क्षेत्रीय तथा अंतर्क्षेत्रीय व्यापार ने राजनीतिक व सैन्य संबंधों पर गौर किए बिना आर्थिक परस्पर निर्भरता के प्रगाढ़ रिश्तों का निर्माण किया।

मुगल साम्राज्य का समापन

सन 1707 ई. में जब औरंगजेब की म त्यु हुई, तब क्षेत्रीय शक्तियों से गंभीर चुनौतियां मिलना प्रारंभ हो गया था, जिसने समस्याओं को साम्राज्य के ठीक केन्द्र में बलपूर्वक प्रकट करना शुरू किया। नए शासक बहादुर शाह प्रथम (उर्फ शाह आलम, 1707–12) ने समझौते की नीति अपनाई, उसने उन सभी दरबारियों को माफ कर दिया, जिन्होंने उसके विद्रोहियों का साथ दिया था। उसने उन्हें समुचित क्षेत्र तथा पद प्रदान किए। उसने ज़जिया हालाँकि नहीं हटाया परंतु एकत्र करने का अधिक प्रयत्न भी नहीं किया। आरंभ मे उसने राजस्व राजपूत क्षेत्र के आमेर (वर्तमान जयपुर) तथा जोधपुर के राजा पर नियंत्रण स्थापित करने का प्रयास किया था। जब उसके प्रयासों का विरोध होने लगा तो उसने उनके साथ समझौते की आवश्यकता का अनुभव किया। हालांकि यह समझौता भी उन्हें मुगलों के प्रति कटिबद्ध योद्धा न बना सका। मुगल बादशाह की मराठों के प्रति नीति भी आधी–अधूरी समझौतावादी ही थी। मराठा आपस में तथा मुगलों से संघर्ष करने में ही उलझे रहे। बहादुरशाह हालांकि दक्कन में बुंदेला प्रमुख छत्रसाल तथा जाट सरदार चूड़ामन के साथ समझौता करने में सफल रहा, जिसमें जाट प्रमुख ने सिक्खों के विरुद्ध अभियान में उसकी सहायता की थी।

जहाँदार शाह (1712-1713) बेहद ही कमजोर तथा अयोग्य शासक था। उसके वजीर जुल्फकार खान ने साम्राज्य चलाने की शक्तियां हथिया लीं। जुल्फकार ने महसूस किया कि शासन संचालन के लिए राजपूतों तथा मराठों के साथ मित्रतापूर्ण संबंध बनाए रखने में ही भलाई है शासन की सलामती के लिए हिन्दू प्रमुखों के साथ समझौता अनिवार्य है। उसने औरंगजेब की नीतियों को उलट दिया। घ णास्पद ज़जिया कर हटा दिया गया, उसने सिक्खों के खिलाफ दबाव वाली नीति का ही अनुसरण किया। उसका लक्ष्य उन सभी शक्तियों के साथ सुलह करना था, जो मुगल संस्थागत ढांचे में सत्ता बांटना चाहती थी। जुल्फिकार ने आर्थिक व्यवस्था में सुधार के भी कई प्रयास किए।

वह राज्य में राजस्व संचरण में व द्धि करने के प्रयास में असफल रहा। जब कत्ल किए गए राजकुमार अजीमुशशान के पुत्र फारुख/सियार ने जहांदार शाह तथा जुल्फिकार



खान को बंगाल तथा बिहार से लाए अपार धन तथा विशाल सेना के साथ ललकारा तो मुगल शासकों ने अपनी तिज़ोरी को एकदम खाली पाया। निराशा में उन्होंने अपने ही महल की लूटपाट की, यहां तक कि छत दीवारों से सोने चांदी को नोच लिया जिससे विशाल सेना का खर्च वहन कर सकें। फारुख/सियार (1713-19) ने विजय हासिल की तथा सैय्यद बंधुओं अब्दुल्लाखान हुसैन अली खान बरहा को उच्च पद प्रदान किए। सैय्यद बंधुओं ने वजीर तथा मुख्य बक्शी की उपाधि धारण की तथा शासन के कामकाज पर नियंत्रण स्थापित किया। उन्होंने जुल्फकार की नीतियों को ही आगे बढ़ाया। ज़जिया तथा अन्य अलोकप्रिय कर तत्काल हटा दिए गए। सैय्यद बंधुओं ने सिक्ख विद्रोह को निर्णायक रूप से दबा दिया वही राजपूत, मराठों तथा जाटों के साथ सुलह समझौते का प्रयत्न किया गया। हालांकि सम्राट एवं वजीर के बीच मतभेदों की वजह से यह नीति लागू नहीं हो पाई क्योंकि गुटबाजी प्रारंभ हो गई थी। जाट एक बार फिर आगरा दिल्ली मार्ग पर छापामारी के कामों में संलग्न हो गए। फारुक/सियार ने राजा जय सिंह को आक्रामक अभियान चलाने को कहा, किंतु वजीर ने राजा की जान का ही सौदा करने का समझौता किया। इसका परिणाम यह हुआ कि संपूर्ण उत्तर भारत में या तो जमींदारों ने विद्रोह कर दिया या फिर जमा किए राजस्व को राजकोष में देने से इंकार कर दिया। इधर फरुखसियर ने मराठी सरदारों को दक्कन के सूबेदार की सेनाओं का विरोध करने का गुजारिशी पत्र लिख दक्कन की समस्याओं को और जटिल बना दिया, क्योंकि दक्कन का सूबेदार सैय्यद हुसैन अली खान का प्रतिनिधि तथा सहयोगी था। अंततः 1719 में सैय्यद बंधु जोधपुर से अजीत सिंह तथा मराठा सेनाओं को बादशाह को पदच्युत करने के लिए ले आए।

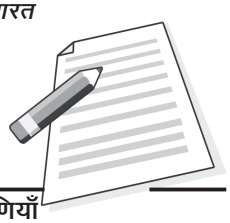
फखरुर्सियार के कत्ल ने सैय्यद बंधुओं के खिलाफ संभ्रात कुलों में विद्रोह की आग जला दी। ये वर्ग सैय्यद बंधुओं की बढ़ती शक्ति से भी ईर्ष्या रखते थे। इनमें से कई अमीरों, मुख्यतः औरंगजेब के समय के पुराने अमीरों ने राजस्व क षि को वजीर के प्रोत्साहन के प्रति गुस्सा किया, जो उनके अनुसार मुगल शासन कला की धारणा का खुलेआम उल्लंघन था। फखरुर्सियर के स्थान पर सैय्यद बंधुओं ने 8 माह में तीन युवा राजकुमारों को एक के बाद एक गद्दी सौंपी। दो राजकुमार तो रफी–उर–दरजात तथा रफी–उद–दवताह क्षयरोग की वजह से म त्यु को प्राप्त हुए, किंतु तीसरे राजकुमार ने जिसने मुहम्मदशाह की उपाधि धारण की थी, सैय्यद बंधुओं के नियंत्रण से बाहर निकलने के लिए समुचित शक्ति का उपयोग किया।

निजाम–उल–मुल्क, चिनकिलच खान तथा उसके पिता के चचेरे भाई मुहम्मद अमीन खान के नेत त्व में एक शक्तिशाली समूह का संगठन हुआ तथा इन प्रभावशाली अमीरों ने अंततः सैय्यद बंधुओं को सत्ता से बाहर का रास्ता दिखाया (1720)। जिस समय मुहम्मद शाह (1719–1748) गद्दी पर बैठा, तब राजा तथा अमीरों के आपसी रिश्ते एकदम बदल चुके थे। अमीरों के व्यक्तिगत स्वार्थ की छाया राजनीति तथा शासन की गतिविधियों पर पड़नी प्रारंभ हो गई थी। सन 1720 में सैय्यद अब्दुल्ला खान के स्थान पर मुहम्मद अमीन खान वजीर बना। सन 1720 में अमीन खान की म त्यु के पश्चात थोड़े समय के लिए यह पद निजाम–उल–मुल्क की झोली में गया क्योंकि जुलाई 1724 ई. में अमीन खान के पुत्र कमर–उद–दीन ने वंशानुगत अधिकार का दावा कर वजीर पद पर कब्जा जमा लिया। अमीर खुद ही इन नियुक्तियों का निर्देश देते थे। इस समय तक

अमीरों के पास बहुत ज्यादा शक्तियां आ चुकी थीं। वे अपने स्वार्थ हेतु बादशाह के नाम का फरमान जारी करवाया करते थे। बादशाह की स्थिति मात्र कठपुतली की हो गई थी, जिसके पास शक्ति नहीं थी। असली शक्ति अमीरों के संघों के हाथों में थी। अमीर पूरे साम्राज्य की गतिविधियों को केन्द्र से नियंत्रित करते थे, यहां तक कि उन्हें उन राज्यों की स्थिरता की भी काफी फिक्र थी, जहां उनकी जागीरें थीं। बादशाह के नाम पर शासकों तथा फौजदारों तथा अन्य स्थानीय कार्यालयों को फरमान (कुछ अधिकार प्रदान करने का जनादेश या विशेषाधिकार) भेजे जाते थे। औरंगजेब के उत्तराधिकारियों की व्यक्तिगत असफलताओं ने शाही सत्ता/प्रतिष्ठा का भी क्षय किया। जहांदार शाह में बड़प्पन तथा शालीनता का अभाव था, फरुखसियार अस्थिर बुद्धि का था, मुहम्मदशाह छिछोरा था तथा आराम और विलासिता का शौकीन था। बादशाह से निकटता क्षेत्रीय स्तर पर भी नियुक्ति, पदोन्नति तथा निलंबन का कारण बनती थी।

15.2 क्षेत्रीय राजनीति तथा राज्यों का उदय

मुगल साम्राज्य के पतन के क्रम में तथा उसके बाद की शताब्दी (अनुमानतः 1700 से 1850 ई.) में भारत में उदय हुए राज्य, संसाधन, दीर्घकालिता तथा प्रधान लक्षणों के आधार पर भिन्न–भिन्न थे। इनमें से कुछ राज्य जैसे कि दक्षिण में हैदराबाद ऐसे क्षेत्र में स्थित था जिसने आरंभिक मुगल काल में स्वतत्रंता हासिल कर ली थी तथा राज्य निर्माण की एक स्थानीय तथा क्षेत्रीय परम्परा को चलाने वाला बना था। अन्य राज्य वे थे, जिनकी अपनी स्वाभाविक विशेषताएं थीं तथा जो सोलहवीं और सत्रहवीं शताब्दी में घटित बहुत ही विशिष्ट पद्धति से पैदा हुए थे। विशेष रूप से उत्तर मुगलकाल में ये राज्य जातीय तथा साम्प्रदायिक आधार पर आधारित थे, जैसे–मराठा, जाट और सिक्ख। फलस्वरूप इन क्षेत्रीय शक्तियों की सम्पन्नता ने स्थानीय भूमि तथा शक्तिधारियों को बाह्य अधिकारियों के विरुद्ध शस्त्र उठाने का साहस दिया। हालांकि परस्पर शत्रुता तथा सघर्षों ने इन विद्रोहों को अपने हितों को संगठित कर शासन के विरुद्ध प्रभावी चुनौती देने में बाधा उत्पन्न की। वे रिश्तेदारों, किसान, तथा अपनी जाति के छोटे जमींदारों के समर्थन पर ही निर्भर थे। हर स्थानीय समूह अपनी सम द्धि दूसरे की लागत पर बढ़ाना चाहता था। तत्कालीन राजनीति में शाही प्रतीकों को महत्त्व देने की आवश्यकता आनुवांशिक थी। हर मुकाबला करने वाला शक्ति के क्षेत्र में अपनी शक्ति आंकता था तथा अपने पड़ोसी राज्यों पर अपना वर्चस्व स्थापित करने के नए मौके तलाश करता था। इन राज्यों को एक प्रकार की वैधता की आवश्यकता थी, जो मुगल बादशाह की सर्वस्वीक त सत्ता में आसानी से उपलब्ध हुई। उन्हें मुगलों के प्रतीकात्मक आधिपत्य को स्वीकार करने में किसी भी प्रकार का भय नहीं था, जो उनकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा को कम न कर सका। केन्द्रीय सत्ता के धीमे–धीमे पतन ने नए प्रकार की क्षेत्रीय शक्तियों को जन्म किया। सक्षम तथा सम द्ध अमीरों ने अपने लिए राजनीतिक आधार बनाए। वजीर चिन क्लिच खां ने खुद यह मार्ग खोला। प्रशासन में सुधार करने में असफल रहने पर उसने 1723 में कार्यालय त्याग दिया तथा अक्तूबर 1724 में हैदराबाद की स्थापना हेतु दक्षिण की ओर रुख किया। मुगल दक्कन दरबारियों ने इस संबंध में चिंता जताते हुए क्षेत्रों से निश्चित राजस्व की प्राप्ति सुनिश्चित करने का प्रयत्न किया, जिससे शाही एकता का रूप कायम रह सके। साम्राज्य के विघटन को देखते हुए मराठों ने विस्तारवादी महत्त्वाकांक्षाओं को अमल में



लाते हुए उत्तर की ओर बढ़ना प्रारंभ किया तथा मालवा, गुजरात और बुंदेलखंड को जीत लिया। तब, 1738–39 में ईरान के शासक नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया।

पाठगत प्रश्न 15.1

1. 1707 ई. में औरंगजेब का उत्तराधिकारी कौन बना? उसने किस नीति का अनुसरण किया?

2. सैय्यद बंधु कौन थे? उनकी कुछ उपलब्धियों का उल्लेख करें।

3. हैदराबाद राज्य की स्थापना किसने की? मुगल दरबार में उसका क्या पद था?

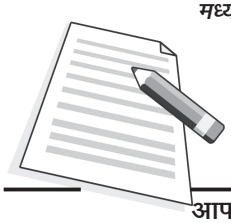
4. औरंगजेब की म त्यु के पश्चात अमीरों की शक्ति में व द्धि के दो कारणों का उल्लेख करें?

5. 1738 में किस देश के शासक ने भारत पर आक्रमण किया?

15.3 मराठा शक्ति

इसमें कोई शक नहीं कि मुगल वंश को लंबी अंतिम अवधि में जो एकल महत्त्वपूर्ण शक्ति उदित हुई, वह थी मराठा शक्ति। मराठा योद्धाओं में सर्वाधिक प्रमुख कुल था भोंसले। शिवाजी भोंसले दक्षिण राजनीति में महत्त्वपूर्ण शक्ति बनकर उभरे।

हालांकि शिवाजी जैसा सौभाग्य उनके पुत्र तथा भाइयों को प्राप्त न हो सका (क्रमशः संभा जी तथा उनके छोटे भाई राजाराम)। एक समय तो ऐसा प्रतीत होने लगा था कि मराठा शक्ति अपने पतन पर थी। किन्तु आरम्भिक 18वीं शताब्दी में कुछ परिवर्तन हुए तथा मराठा शक्ति में सुधार की स्थिति बनी। इस संदर्भ में सबसे मुख्य चरण साहू का शासन था, जो 1708 में राजाराम का उत्तराधिकारी बना। साहू ने 1749 ई० तक चार दशकों तक शासन किया। यह अवधि चित्पावन गोत्र के ब्राहमण मंत्रियों के वर्चस्व के लिए जानी जाती है, जो क्रमशः महाराष्ट्र की राजनीति पर छा गए। भोंसले शक्तिहीन हो गए। पेशवा की उपाधि धारण कर बाला जी विश्वनाथ पहली प्रमुख शख्सियत के रूप में मिलते हैं, जिन्होंने शक्ति के उदय में साहू की सहायता की। विश्वनाथ तथा उनके उत्तराधिकारी बाजीराव प्रथम (1720–1740 के मध्य पेशवा) ने आधिकारिक तौर से मराठा राज्य को अपने पूर्ववर्ती भोसलों से कही अच्छा प्रबंधन देने में सक्षम रहे। उन्होंने मुगल क्षेत्रों से शुल्क ग्रहण करने की प्रथा को व्यवस्थित किया तथा सरदेशमुखी और चौथ (दोनों शब्द शुल्क संग्रहण के अनुपात को बतलाते हैं) नाम दिया गया। प्रतीत होता है कि उन्होंने भू–राजस्व के मूल्यांकन तथा संग्रहण करने के उपायों को ज्यादा मजबूत किया जैसा



आपकी टिप्पणियाँ

कि अन्य मुगल किया करते थे। पेशवाओं तथा उनके अधीनस्थों की राजस्व संबंधी शब्दावली तथा अन्य कागजातों की भाषा फारसी भाषा से ली गई है। यह मुगल तथा मराठी राजस्व परम्परा की व्यापक निरंतरता को प्रदर्शित करती है।

मराठा राज्यसंघ

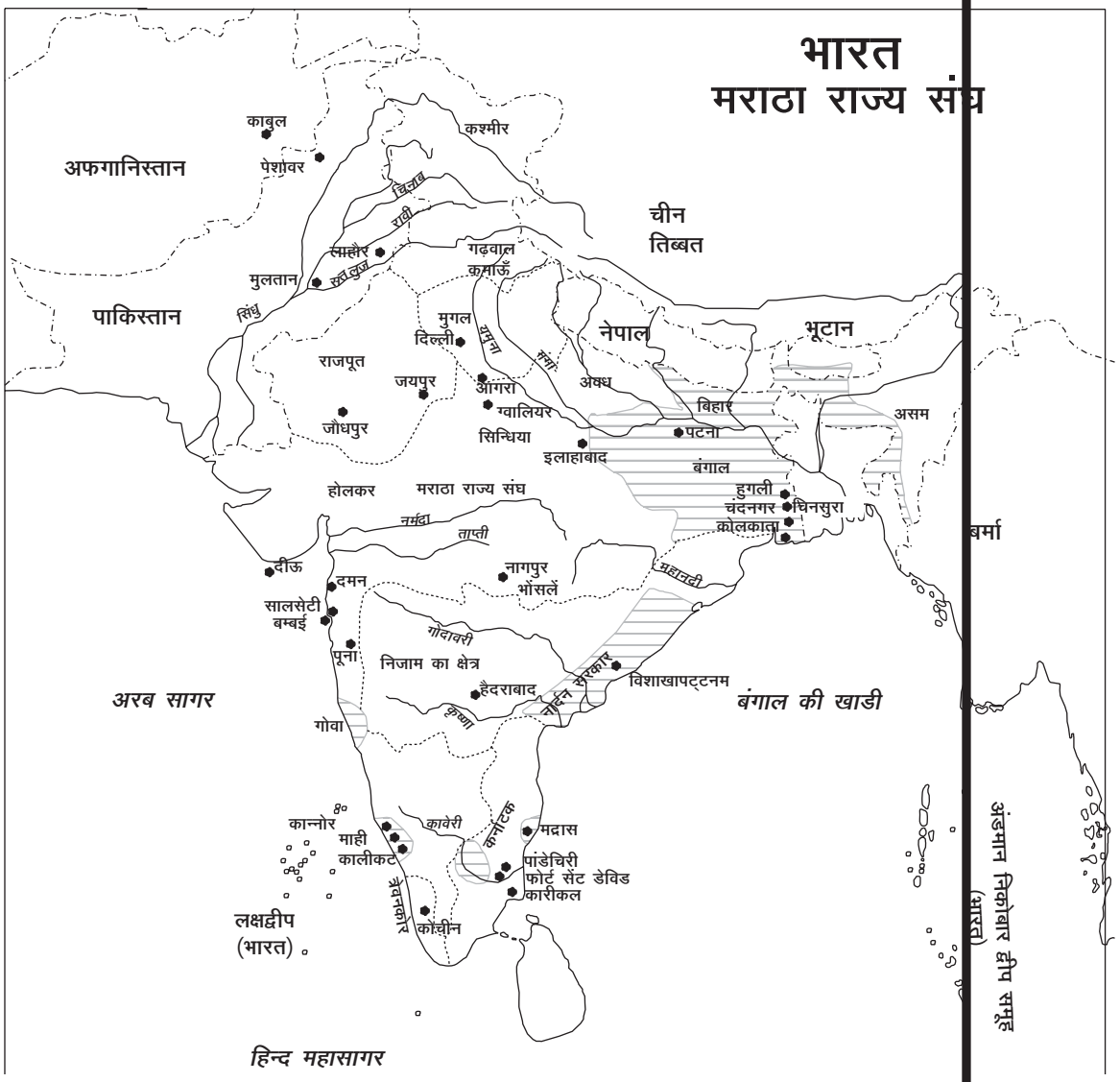
साहू के शासन के अन्त तक कुछ शक्तिशाली मराठा क्षेत्र उसके पूर्ण नियंत्रण में थे। इस काल में उनके नियंत्रण वाले क्षेत्रों में व्यापार, बैंक तथा वित्त के परिष्क त क्षेत्रों में विकास दिखाई दिया। पुणे आधारित बैंक घरानों की कई शाखाएं गुजरात, गंगा घाटी तथा दक्षिण में भी थीं। तटवर्ती कार्यों पर ध्यान दिया किया गया। बालाजी विश्वनाथ ने अंग्रिया कुल को परिष्क त करने में कुछ सावधानी बरती, जो कोलाबा तथा अन्य पश्चिमी तटों पर जहाजों को नियंत्रित करती थी। ये पोत न सिर्फ बम्बई में नवस्थापित अंग्रेजी व्यवस्था के लिए बल्कि गोवा, दमन तथा बेसन में पुर्तगालियों के लिए भी खतरा बन गए। दूसरी ओर मूल मराठा केंद्र से काफी दूर कई गतिविधियों का संचालन हुआ। इन सरदारों में सबसे महत्त्वपूर्ण थे गायकवाड़, सिंधिया तथा होल्कर। भोंसले परिवार की कुछ शाखाएं थी कोल्हापुर तथा नागपुर में फिर से स्थापित हुई जबकि मुख्य धारा दक्कन केंद्रस्थल, सतारा में ही रहीं। अब इनके प्रभावों का अध्ययन करते हैं।

नागपुर के भोंसले

कोल्हापुर के भोंसले तथा थंजावुर के व्यामकोजी के वंशजों, जो सतारा राजा के समान हैसियत का दावा कर रहे थे, के विपरीत नागपुर की वंशावली सतारा शासकों के स्पष्ट रूप से अधीनस्थ थी। इस वंशावली का सबसे प्रतापी शासक रघुजी भोंसले (1727–55 ई0) था, जो कि बंगाल तथा बिहार में मराठा साम्राज्य विस्तार का उत्तरदायी माना जाता है। उसके उत्तराधिकारियों जानोजी, साबाजी तथा मुधोजी के संबंध पेशवा तथा सतारा वंशावली के साथ घटते–बढ़ते रहे तथा इनके साथ गरमजोशी वाले रिश्तों के स्थान पर ढीली–ढाली संधि रही। अन्य अधीनस्थ शासक, जो सतारा शासकों की छत्रछाया में फले–फूले तथा पल्लवित हुए वे सतारा शासको तथा उनके पेशवाओं के प्रति अपनी राजनीति के उपयोग में कुछ हद तक अवसरवादी ही साबित हुए।

बड़ौदा के गायकवाड़

गायकवाड़ों ने अपनी उपस्थिति 1720 में दर्ज कराई। प्रारम्भ में वे न सिर्फ शक्तिशाली भोंसले परिवार के बल्कि दबाधे परिवार के भी अधीनस्थ थे। यह साहू की म त्यु थी, जिसने पेशवाओं की शक्ति को और बढ़ाया तथा गायकवाड़ों की स्थिति और भी बेहतर हुई। 1750 के पूर्वार्द्ध में गुजरात के राजस्व के बड़े हिस्से पर उनके अधिकार को पेशवा ने मान्यता दी। 1752 में गुजरात क्षेत्र से मुगल शासक के अहमदाबाद से निकाले जाने से इस प्रणाली पर अपनी मोहर लगा दी। गायकवाड़ों ने अपनी राजधानी बड़ौदा में बनाई जिससे उस क्षेत्र में व्यापार तथा उत्पादन के तंत्र का पुनःएकीकरण हुआ। बड़ौदा में दामाजी के शासनकाल (म त्यु 1768 ई0) के बाद कुछ हलचलों का युग आया। गायकवाड़ यद्यपि पुणे तथा पेशवाओं पर अर्द्धआश्रित थे, विशेषकर उत्तराधिकार संकट के मामले में। दामाजी के अंतिम उत्तराधिकारी फतेहसिंह (1771–89) अधिक समय तक पेशवाओं का सहयोगी नहीं बना तथा 1770 के उत्तरार्द्ध 1780 के पूर्वार्द्ध में उसने अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी से समझौता किया जिसने धीर – धीर सरकारी कामकाज में



मानचित्र 15.1 मराठा राज्य संघ

ब्रिटिश हस्तक्षेप में व द्धि की। सन 1800 तक पेशवाओं के बदले अंग्रेज ही उत्तराधिकार के मसले पर निर्णायक होते थे, जो 19वीं शताब्दी में उनके अधीनस्थ शासक बन गए थे।

इन्दौर के होल्कर

होल्करों की बात करें, तो उनका पद तथा सम द्धि उल्लेखनीय रही। आरम्भ में उनके पास बहुत ही कम राजनीतिक शक्ति थी। हालाँकि 1730 तक उनके सरदार मल्हार राव होल्कर ने अपनी स्थिति काफी सुद ढ़ कर ली थी। उन्हें चौथ संग्रहण का काफी बड़ा हिस्सा मालवा, पूर्वी गुजरात तथा खानदेश से प्रदान किया जाता था। मल्हार राव ने इन्दौर में स्वयं की सत्ता स्थापित की जहां उसके उत्तराधिकारी ने मुख्य व्यापारिक मार्गों तथा बुरहानपुर का प्रमुख व्यापारिक केंद्र पर नियंत्रण स्थापित किया था। उसके पश्चात

उसके साम्राज्य का नियंत्रण उसके पुत्र की विधवा के हाथों में चला गया। अहिल्याबाई जिनका शासन 1765 से 1794 तक चला तथा होल्कर को गौरव के शिखर तक पहुंचाया तथापि उसके उत्तराधिकारी अगले प्रधान सिंधिया–परिवार के उत्तराधिकारी के बराबर नहीं हो सके।

ग्वालियर के सिंधिया

सिंधिया वंश ने उत्तर भारत की राजनीति में अपना स्थान पानीपत के त तीय युद्ध (1761) के बाद के दशक में बनाया। होल्कर की ही भांति सिंधिया भी मुख्य रूप से मध्य भारत में ही केंद्रित थे। पहले उज्जैन तथा 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध के बाद ग्वालियर में महादजी सिंधिया के लंबे शासन काल (1761–1794) के दौरान यह वंश संगठित हुआ।

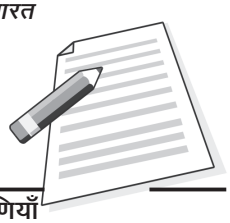
महादजी कुशल तथा नवपरिवर्तनकारी सैन्य प्रशासक सिद्ध हुए। उन्होंने अपनी सेवा में कई यूरोपीय सैनिकों को नियुक्त किया। 1770 के पश्चात उनकी शक्ति में अचानक व द्धि हुई। इस अवधि के दौरान वह उत्तर भारत में अपना साम्राज्य विस्तार करने में सफल रहे, जो अफगान हमलों के उपरान्त कमजोर हो गया था। शाह आलम द्वितीय के शासन काल में दरबार में उसने अपने हस्तक्षेप द्वारा प्रभाव स्थापित किया था। 1780 के मध्य में मुगल बादशाह ने उसे अपने कामकाज का 'उप–शासक' नियुक्त किया था। उसका प्रभाव हमें न सिर्फ दिल्ली और आगरा क्षेत्र में मिलता है, बल्कि वह राजस्थान तथा गुजरात तक विस्त त था, जो उसे उस युग का सबसे प्रभावी मराठा शासक सिद्ध करता है। ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी उससे बात करते समय काफी सजग रहते थे।

उसके संबंध पेशवा नाना फडनवीस (पुणे) के साथ तनावों से पूर्ण थे। दुर्भाग्य से उसके उत्तराधिकारी उसके जितने सक्षम नहीं हो पाए तथा दौलत राव सिंधिया (1794–1827) अंग्रेजों द्वारा पराजित हुआ तथा 1803 में उत्तर तथा दक्षिण के अपने क्षेत्र समर्पण करने को बाध्य हुआ।

इन प्रभावी नेताओं की अवधि, विशेषकर महादजी सिंधिया की, मुगल पतन के बावजूद मुगल प्रतीकों के प्रभाव को दर्शाती है। उदाहरण के लिए, ग्वालियर को अंग्रेजों से मुक्त कराने के पश्चात महादजी ने मुगल बादशाह द्वारा प्रदत्त क्षेत्रों पर नियंत्रण का पूर्ण ध्यान रखा। साथ ही उसने मुगलों द्वारा दिए विशेषाधिकार और अवधियां यथा 'अमीर–उर–अमारा' (अमीर–प्रमुख) तथा नायब वाकी–ए–मुत्लक (उपप्रतिशासक) धारण की। ऐसा करने वाला वह एकमात्र नहीं था। 18वीं शताब्दी में मुगल प्रभुत्व को पूर्णतः कराने वाले उदाहरण विरले ही है। मुगल पतन के बावजूद भी मुगल सम्मान तथा उपाधियां प्रदान करने का सिलसिला तथा मुगल प्रशासित शब्दावली तथा वित्तीय प्रणालियों का प्रचलन निरंतर होता रहा।

पाठगत प्रश्न 15.2

1. मुगल वंश के पतन के दौरान उभरी सबसे महत्त्वपूर्ण एकमात्र शक्ति के बारे में लिखें?



2. मराठा शासन के दौरान पेशवा कौन कहलाए? 1720–1740 के दौरान सत्तारुढ़ पेशवा का नाम लिखें?

3. मराठा संदर्भ में चौथ तथा सरदेशमुखी से आप क्या समझते हैं?

4. भारत के पश्चिमी तट पर प्रमुख पुर्तगाली व्यापार केंद्रों का नाम लिखें?

5. मराठा राज्यसंघ में हुई विभिन्न राजवंशों के विषय में लिखें? किस क्षेत्र में उन्होंने शासन किया?

6. अहिल्याबाई कौन थी? उसकी मुख्य उपलब्धियां क्या थीं?

15.4 बंगाल के नबाव

औरंगजेब के शासनकाल में दीवान के पद पर आसानी मुर्शीद कुली खान ने केंद्रीय सत्ता की कमजोरी का फायदा उठाकर खुद को स्वतंत्र घोषित कर दिया था। हालांकि वह मुगल दरबार में नियमित रूप से शुल्क भेजता रहा। अली वरदी खान ने मुर्शीद कुली खान के परिवार को सत्ताच्युत कर 1739 में खुद को नवाब घोषित कर दिया। इन नवाबों ने शांति तथा स्थिरता कायम की और क षि को प्रोत्साहित किया। हिन्दू तथा मुसलमान दोनों को ही समान अवसर प्रदान किए गए। किन्तु नवाब अंग्रेजी व्यापार कंपनियों की उपस्थिति के दीर्घकालीन प्रभावों को भांप न सके तथा सैन्य तैयारियों में ढिलाई बरत दी। सन 1756–1757 में अली वरदी खां के उत्तराधिकारी सिराज–उद–दौला ने व्यापारिक अधिकारों हेतु अंग्रेजों से युद्ध किया था। जून 1757 में पलासी के मैदान में हुई उसकी पराजय ने बंगाल तथा पूरे भारत में अंग्रेजों का मार्ग प्रशस्त किया।

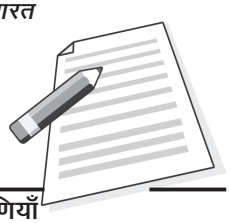
15.5 अवध के नबाव

अवध के मुगल सूबे ने कमजोर केंद्रीय नियंत्रण के रहते क्षेत्रीय शासक सादत–खान–बुरहान–उल–मुल्क की महत्त्वाकांक्षा को जाग त कर दिया। सादत खान ने स्थानीय जमींदारों को अनुशासित किया तथा उच्च चेतन, उच्च शस्त्र सज्जित तथा उच्च प्रशिक्षित सेना को आकार दिया। 1739 में अपनी म त्यु से पूर्व सादत खान ने क्षेत्रीय प्रमुख के पद को वंशानुगत बना दिया। उसके उत्तराधिकारियों सफदर जंग तथा असफ उद दौला ने न सिर्फ उत्तर भारत की राजनीति में अहम भूमिका निभाई, बल्कि अवध की नवाबी को भी प्रशासनिक स्थिरता प्रदान की। नवाबों के नेत त्व में पहले फैजाबाद तथा बाद में लखनऊ कला, साहित्य तथा शिल्प के क्षेत्र में दिल्ली का प्रति–स्पर्धी बना। इमामवाड़ा तथा अन्य भवनों से क्षेत्रीय स्थापत्य कला की झलक भी प्राप्त होती है। सांस्क तिक सामंजस्य के परिणामस्वरूप कत्थक न त्य शैली का उद्‌भव भी हमें देखने को मिलता है।

15.6 पंजाब के सिक्ख

मुगलों ने बंदा बहादुर के नेत त्व में सिक्खों का दमन किया था। किन्तु इससे मुगलों के प्रति सिक्ख विद्रोह समाप्त नहीं हुए थे। 1720 ई. से 1730 ई. के मध्य अम तसर सिक्ख गतिविधियों का एक मुख्य केंद्र बनकर उभरा, शायद तीर्थों का स्थान होने की वजह से अपनी महत्ता की वजह से। तत्कालीन सर्वाधिक प्रमुख सिक्ख शासक कपूर सिंह ने उसके आस–पास के क्षेत्र से संचालन किया। उसने राजस्व सैन्य प्रणाली की स्थापना की। कुछ सिक्ख शासकों ने स्वयं को राजनीतिक शक्ति के रूप में संगठित करना प्रारंभ कर दिया था। इन गतिविधियों ने लाहौर सूबे के मुगल शासकों को इस क्षेत्र को स्वतंत्र सत्ता का केंद्र बना देने के मंसूबों पर पानी फेर दिया। पहले अब्दुससमद खान तथा बाद में उसके पुत्र जकारिया खान ने नियंत्रण स्थापित करने के प्रयत्न किए। 1745 में ज़करिया खान की म त्यु के पश्चात सिक्ख योद्धा शासकों जैसे जस्सा सिंह अहलूवालिया सत्ता में आए। उन्होंने बाद में कपूरथाला राज्य की नींव डाली। सिक्ख सैन्य नेताओं के नेत त्व में सैन्य क्षेत्रों का विस्तार, पंजाब पर अहमद शाह अब्दाली के आक्रमण के परिप्रेक्ष्य में महत्त्वपूर्ण विशिष्टता थी। पूर्वी पंजाब तथा बारी दोआब में यह प्रक्रिया परिलक्षित होती है। हालांकि अब्दाली के अभियानों को विरोध का सामना पंजाब में 1750 तथा 1760 में सिक्खों ने ही किया तथा मराठाओं ने भी इस संघर्ष में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। अंततः 1760 के मध्य तक लाहौर में सिक्खों की सत्ता की स्थापना हो गई तथा अफगान अपनी शुरूआती विजयों को संगठित नहीं रख सके। अहमद शाह के उत्तराधिकारी तैमूर शाह (1772–93) ने सिक्खों द्वारा जीते गए कुछ क्षेत्रों (जैसे मुल्तान) को पुनः जीता तथा अहमद शाह के वंशज शताब्दी के अंत तक इस लक्ष्य के प्रति प्रयत्नशील रहे। किन्तु 1770 तक उन्होंने लगभग 60 सिक्ख सरदारों के साथ संधि कर ली थी, जिनमें से कुछ राज्य जैसे नाभा और पटियाला ब्रिटिश अधीनस्थ बन कर उभरे।

सिक्ख प्रशासकों ने मुगल बादशाहों द्वारा प्रयुक्त प्रशासनिक व त्तियों को ही जारी रखा। सरदारों के अधीनस्थों को जागीर दी जाती थी। मुगल नौकरशाही के ईरानी ढंग ने मुख्य रूप से अपनी पकड़ बनाए रखी। ऐसे ही सिक्ख शासक चढ़त सिंह सुकेरचकिया के पौत्र राजा रंजीत सिंह, जिन्होंने इन छोटे राज्यों को बड़े साम्राज्य में अल्प समय के लिए संगठित कर लिया। रंजीत सिंह का प्रभावी शासन 1799 से 1839 तक चला। इस काल में अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी की शक्ति भारत के हर प्रांत में बढ़ रही थी। रंजीत सिंह की म त्यु के 10 वर्ष उपरान्त ही अंग्रेजों ने पंजाब पर आधिपत्य स्थापित कर दिया। महाराजा रंजीत सिंह के सत्ता के प्रभाव का मुख्य कारण उत्क ष्ट सैन्य बल, किराए के यूरोपीय सैनिक तथा उन क्षेत्रों के सामरिक ठिकाने थे, जो उन्हें अपने पिता से विरासत में मिले थे। महाराजा रंजीत सिंह का शासन, सिक्खों द्वारा मुगलों के संग किए संघर्षों की पराकाष्ठा थी। यह एक राजतंत्र/शासनतंत्र के सिद्धांतों पर आधारित शासन था। उसने महान व्यावसायिक नगर लाहौर को अपनी राजधानी बनाया, जिसे उसने 1799 में जीता था। व्यापारिक मार्गों पर नियंत्रण स्थापित करने के उपरांत उसने राजस्व में व द्धि के लिए नमक, अनाज तथा कश्मीर से वस्त्रों के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित किया। इन आय स्रोतों का प्रयोग करके उसने 40,000 अश्वारोही तथा घुड़सवार सेना के बनाने में किया। सन 1809 तक वह अधिकतर पंजाब का निर्विवाद मालिक था।



15.7 जयपुर एवं अन्य राजपूताना राज्य

पूर्वी राजस्थान में जयपुर (पूर्व में आम्बेर), कछवाहा कुल द्वारा नियंत्रित राजपूत राज्य था। 18वीं शताब्दी के आरंभ में शासक जय सिंह सवाई ने अपनी शक्ति के चहुं ओर विस्तार के लिए कुछ कदम उठाए। ये थे– 1. अपने ग ह क्षेत्र के आसपास के क्षेत्र में अपनी जागीरों की व्यवस्था करना तथा 2. क षि के माध्यम से भू–राजस्व एकत्रित करना (भूमि कर के संग्रहण के लिए भूमि के वे खंड प्रयुक्त होते थे, जो राज्य द्वारा व्यक्ति को किराए पर मिलती थी), जो कि धीरे– धीरे स्थाई हो गया। सन 1743 में उसकी म त्यु के पश्चात राजा जय सिंह (जिसके ऊपर जयपुर नाम पड़ा) क्षेत्र का एकमात्र सर्व–शक्तिमान शासक बनकर उभरा। अधिकतर राजपूत राज्य छोटे झगड़ों तथा संघर्षों में आपस में ही उलझे रहते थे। मारवाड़ का अजीत सिंह अपने पुत्र द्वारा ही मारा गया था।

सन 1750 में भरतपुर के जाट शासक सूरजमल ने राजा जयसिंह की ही भांति मुगल राजस्व प्रशासन की परिवर्तित पद्धति अपने क्षेत्र में लागू की। हालांकि इस समय तक जयपुर राज्य के भविष्य पर प्रश्न चिह्न लग चुके थे। मराठों से बढ़ती चुनौतियों के चलते छोटी अवधि के राजस्व पाने के लिए साधन अपनाए गए। इसी समय 1750 तथा 60 के मध्य फसलों की नाकामी ने पहले से ही दुर्बल क षि को और भी बुरी तरह प्रभावित किया। 18वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध इस प्रकार आर्थिक मंदी तथा जयपुर की राजनीतिक शक्ति के पतन के लिए जाना जाता है। इस अवधि के दौरान जयपुर मराठों विशेषकर महादजी सिंधिया के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण लक्ष्य बन गया था।

ऊपर वर्णित सभी राज्य, सिवाय मराठों के, भूमि से जुडे हुए थे। इसका अर्थ यह नहीं कि इनके व्यवहार में व्यापार का कोई स्थान नहीं था, रंजीत सिंह का शासन मुख्यतः व्यापार पर ही निर्भर था। हालांकि समुद्र तक पहुंच के साधनों के अभाव ने राज्यों की पहुँचने की गति नहीं होने में व द्धि ही की। विशेषकर उस युग में जब ईस्ट इंडिया कंपनी, जो कि मुख्य शक्ति थी, खुद प्रारंभ में एक समुद्री व्यापारी थे।

15.8 दक्षिण भारत में राजनीति

जिन क्षेत्रों की अभी तक चर्चा की गई हैं, उनसे हट कर दक्षिण भारत के, विभिन्न राज्यों ने इस दौरान अपनी स्थिति को सुद ढ़ बनाने के लिए सागर तथा बंदरगाहों का उपयोग किया। इनमें से मुख्य थे त्रावणकोर (केरल) के मार्तण्ड वर्मा तथा राम वर्मा मैसूर के हैदर अली तथा टीपू सुल्तान।

इन राज्यों की उपस्थिति उत्क ष्ट रूप से हम 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में या लगभग 1740 के करीब पाते हैं। इससे पूर्व दक्षिण भारत पर मुस्लिम राजाओं का वर्चस्व था, 1680 तथा 1690 के दौरान या 1700 के पश्चात दूसरी लहर के फलस्वरूप क्षेत्र में कुछ राजा साथ आए। इनमें से बहुत से व्यक्तियों ने खुद को मुगल शासन के अधीन शुल्क अदा करने वाले सरदारों के रूप में स्थापित किया। इनमें से कुछ अपेक्षाक त नवाब थे, जैसे बालाघाट के नवाब या उत्तर कर्नाटक (जैसे सीरा का अब्दुल रसूल खान)। इनमें से कुछ तो राजनीतिक रूप से प्रभावशाली थे जैसे निजाम–उल–मुल्क तथा अर्कोट में सदुल्लाह खान। 1740 तक निजाम उल मुल्क ने हैदराबाद में अपनी स्थिति को संगठित कर लिया था, वही अर्कोट तीन दशक पहले उभर चुका था।

वंशानुगत उत्तराधिकार को स्थापित करते हुए भी इनमें से किसी भी शासक ने पूर्ण स्वायत्तता का दावा प्रस्तुत नहीं किया था। इस प्रकार वे स्वयं को मुगलों का प्रतिनिधि बताकर ही शासन करते रहे। 1720 में दक्षिण भारत की राजनीति तीन शक्तियों के बीच मोहरा बनकर उभरी, ये थे मराठा (तंजौर तथा अन्य क्षेत्रों के) निजाम तथा अर्कोट (कर्नाटक) के नवाब।

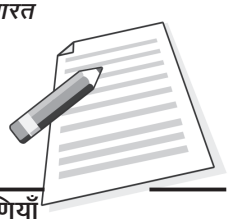
18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में इन तीनों शक्तियों की सत्ता का क्षय होने लगा था। 1740 तथा 1750 के प्रारंभ में अर्कोट के उत्तराधिकार विवाद ने इसके शासकों को निजी अंग्रेज व्यापारियों के साथ वित्तीय जोड़–तोड़ करने को बाध्य कर दिया, क्योंकि युद्ध के खर्चों के लिए उन्हें धन की आवश्यकता थी। 1750 में अपने संस्थापक निजाम–उल–मुल्क की म त्यु के पश्चात हैदराबाद भी पतन की राह पर चल पड़ा था। तटीय जिलों से शीघ्र ही नियंत्रण समाप्त हो गया तथा राज्य की जनसंख्या बहुत कम हो गई तथा भूमि से जुड़ी रह गई। इस संदर्भ में राज्य के पास एकमात्र विकल्प एक विस्त त तथा सुनियोजित सैन्य मशीनरी तथा खुला बाह्य समर्थन था। इस काल के राजतंत्र में व्यापार का नियंत्रण भी अत्यंत संवेदनशील हो चला था।

त्रावणकोर राज्य

मराठा शासक मार्तंड वर्मा (1729–58) ने वेनाद (त्रावणकोर) केरल राज्य के संचालन में तीन सैद्धांतिक पद्धतियों का उपयोग किया। राजा ने अपनी वैधता सुद ढ़ करने के लिए कुछ उपायों की शुरूआत की। ये थे– 1. उसके द्वारा 50,000 की शक्ति वाली वास्तविक सेना का गठन 2. नैय्यर अभिजात वर्ग की शक्ति को कम करना, जिस पर क्षेत्र सैन्य रूप से निर्भर था तथा 3. तथाकथित त्रावणकोर रेखा पर अपने राज्य की उत्तरी सीमा की किलेबंदी करना। इस शासक की एक नीति सीरियाई ईसाइयों को संरक्षण देने की भी थी, जो कि उस क्षेत्र की प्रभावी व्यापारिक शक्ति थी, जिससे कि व्यापार में यूरोपीय वर्चस्व कम हो सके। मुख्य वस्तु जो हालांकि काली मिर्च थी, किन्तु शाही एकाधिकार के अंतर्गत अन्य कई वस्तुएं आती थीं, जिनका व्यापार करने के लिए आज्ञापत्र की आवश्यकता होती थी। मार्तंड के उत्तराधिकारी राम वर्मा के शासनकाल (शासनकाल 1758–98) में भी ये नीतियां व्यापक स्तर पर चलती रहीं, जो कि अपने राज्य की नए उभरते प्रतिद्वंद्वी से रक्षा करने में सक्षम रहा तथा वह खतरनाक प्रतिद्वंद्वी था मैसूर राज्य।

मैसूर का उदय

वादियार वंश के शासकों यथा कांथीरवा नरसाराजा तथा चिक्का देवा राजा, के अंतर्गत मैसूर एक महत्त्वपूर्ण राज्य बनकर उभरा। हालांकि मैसूर एक भूमि से जुड़ा राज्य था इसलिए व्यापार पर भी निर्भर था क्योंकि उसकी सैन्य आपूर्ति भारत की पूर्वी बंदरगाहों के तट से आती थी। चूंकि ये सभी बंदरगाह अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के अधीन थे। अतः मैसूर की संवेदनशीलता बढ़ती गई। 1760 ई. से स्थिति में परिवर्तन के प्रयास किए गए। विस्थापित मूल के एक जुझारु योद्धा हैदर अली ने एक शक्तिशाली ताकत प्राप्त कर वदियार को शक्तिहीन कर तथा शक्तिशाली कलाले मंत्री परिवार को हटा कर सत्ता हासिल की। पहले हैदर तथा उसके बाद उसके पुत्र टीपू सुल्तान ने 1782 के बाद मैसूर को संगठित कर तथा भारतीय प्रायद्वीप के दोनों तटों तक पहुंच वाला राज्य बनाया।



कोडवों, उच्चभूमि कुर्ग राज्य के निवासी, की तुलना में वे अपेक्षाक त सफल थे। तटीय कर्नाटक तथा उत्तरी केरल उसकी तलवार के अधीन हो गए, इसने टीपू सुल्तान को अपनी शर्तों पर मध्य पूर्व के साथ कूटनीतिक तथा व्यावसायिक रिश्ते स्थापित करने में मदद की। अपने पिता की तुलना में टीपू की महत्त्वाकांक्षाएं ऊंची थी तथा उसने पहले से फैली मुगल सर्वोच्चता की छाया से बाहर निकलने का सफल प्रयत्न किया, जैसा कि पहले चर्चा कर चुके हैं। किन्तु हैदर अली व टीपू की समस्या आंतरिक सम्मति बनाने में असमर्थता रही। सैन्य तथा राजस्व संबंधी दक्षता के लिए विस्थापितों तथा किराए के सैनिकों पर उनकी निर्भरता बहुत अधिक थी तथा वे पोलीगार, स्थानीय चोरों से हमेशा टक्कर लेते रहे। 1770 तक मैसूर के सामने ईस्ट इंडिया कंपनी जैसे विकट सैन्य विरोध को सहना पड़ा। जिन्होंने उसे चैन नहीं लेने दिया। ये अंग्रेज ही थे, जिन्होंने मैसूर को उपजाऊ क्षेत्रों में नहीं पहुंचने दिया तथा भारत के पूर्वी बंदरगाह कोरोमंडल के मैदान से पहले रोक दिया। अंततः 1799 में अंग्रेजी सेना द्वारा टीपू का अंत हो गया।

पाठगत प्रश्न 15.3

1. किसके संरक्षण तथा किस क्षेत्र में न त्य की कत्थक शैली का विकास हुआ?

2. 1757 में हुआ प्लासी का युद्ध क्यों महत्त्वपूर्ण है?

3. मैसूर के उस सुल्तान का नाम लिखें जिसने अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी से लोहा लिया? अपने शासन के दौरान उसके समक्ष क्या कठिनाइयां आईं?

15.9 18वीं शताब्दी भारत में अर्थव्यवस्था

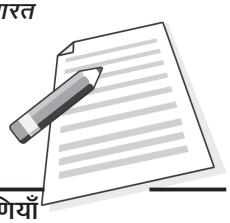
18वीं शताब्दी अतीत तथा भविष्य की अच्छी आर्थिक निरन्तरता की तुलना में कोई अच्छा प्रदर्शन नहीं कर सकी। यह काल भारत में अत्यधिक राजनीतिक खलबली का दौर था, जिसमें पहले तो राज्य का निर्माण होता था तथा अगले ही पल वह विघटित भी हो जाती थी। व्यवस्थता में अस्थिरता अपने चरम पर थी। यह भी निर्विवाद है कि सैन्य अभियानों से विस्थापन को बढ़ावा मिला। सिंचाई के जलाशयों का विध्वंस, पशुधन का जबरन सम्पत्ति हरण, जनता का बलात निष्कासन तथा उसके बाद के युद्धों में किसी से भी छिपा नहीं था। इन सबने आर्थिक स्थिरता पर हानिकारक प्रभाव डाला तथा प्रगति की राह में अनगिनत रोड़े अटकाए।

दिल्ली के नजरिए से देखें तो निश्चय ही 18वीं शताब्दी एक अंधेरा युग था। नादिर शाह, फिर अहमद शाह तथा अंततः रोहिल्ला 1761–1771 तक दिल्ली पर नियंत्रण स्थापित करने वाले के आक्रमणों ने दिल्ली को एक निरन्तर विध्वंस की ओर ढकेला। भारत के अन्य क्षेत्रों को शायद ही इस दौर से कभी गुजरना पड़ा हो, चाहे वह त्रिवेन्दरम, पुणे, पटना अथवा जयपुर हो। इस युग में राजनीतिक विकेन्द्रीकरण होने के कारण आर्थिक परिवर्तन का भी दौर चला, जिसके कारण दिल्ली तथा आगरा के अनुभव को इस संबंध में व्यापक रूप नहीं

दे सकते। हालांकि विभिन्न क्षेत्रों की परिस्थितियां एक–सी नहीं थी। कुछ क्षेत्रों में 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध ने विस्तार देखा, जैसे बंगाल, जयपुर और हैदराबाद। जबकि कुछ में यह देर से प्रस्फुटित हुआ जैसे त्रावणकोर, मैसूर और पंजाब। आर्थिक सम द्धि तथा पतन का कोई भी अकेला कालानुक्रम उस युग के भारत के हर क्षेत्र के लिए उचित नहीं हो सकता। हालांकि कुछ कमजोरियों तथा अंर्त–विरोधों के बावजूद 18वीं शताब्दी ने क षि के क्षेत्र में अच्छा प्रदर्शन किया। साथ ही अन्तर्देशीय व्यापार तथा शहरीकरण भी फले–फूले। हालांकि उत्तर भारत पंजाब के कुछ हिस्सों में अंतर्राज्यीय संघर्षों की वजह से क षि में पतन की स्थिति आई। भूमि तथा श्रम के अनुभव तथा प्रबंधन ने क षि तरीकों तथा तकनीकों की कमी को पूरा करने में कुछ हद तक सफलता पाई।

'तकसीम' के आंकड़ों का उपयोग कर आइन–ए–अकबरी से तुलना कर देखे तो यह सिद्ध होता है कि यह सिंचाई योग्य भूमि का अभाव नहीं, बल्कि शांति तथा श्रम का अभाव था, जिसके परिणामस्वरूप क षि के क्षेत्र में पतन हुआ तथा क षि मूल्यों में उतार–चढ़ाव के कारण अनिश्चितता आई। इसी समय मूल्य व द्धि ने किसानों को लाभ पहुंचाया, परन्तु यह लाभ समान रूप से नहीं हुआ क्योंकि क षक समाज बंटा हुआ था राज्यों ने क षि के उत्पादों से शुल्क लिए, जबकि गांव खर्चीले विनिमय के व्यापक तंत्र से जुड़े हुए थे।

यह भी उल्लेखनीय है कि 1702 से 1704 के मध्य दक्षिण भारत में संकट के बादल के बावजूद 18वीं शताब्दी के प्रथम सात दशकों में भारत भुखमरी जैसी आपदा से बचा रहा। सन 1770 के बंगाल का भयंकर अकाल, जिसमें लगभग आधी जनसंख्या को अपने प्राण गंवाने पड़े, औपनिवेशिक विजय के तुरंत बाद पड़ा था। इसके तुरंत बाद 1783 में उत्तर भारत ने अकाल की त्रासदी झेली। कुल मिलाकर एक अनुकूल भूमि–श्रम अनुपात ने किसानों को गतिशील बनाया तथा भूमि के नियंत्रकों के साथ जातीय श्रम को समुचित शर्तों पर कार्य दिलाया। किन्तु उत्तर भारत में राजस्व की बढ़ती मांग ने किसानों के पलायन को एक नियंत्रित प्रक्रिया बना दिया। एक तरफ कुछ गांवों के प्रधानों ने राजस्व क षि को अनुवांशिक संपदा बना दिया, वहीं अन्य शक्तिशाली क्षेत्रीय शासकों जैसे कि टीपू सुल्तान (मैसूर) ने अधिक से अधिक राजस्व इक्ट्ठा किया। 18वीं शताब्दी में जनसंख्या, उत्पादन, मूल्य तथा नियत मजदूरी, साधारण रूप से उन्नति पर थी। खंडित राजनीति ने अनाज, वस्त्र तथा पशुओं के सम द्ध अन्तर्देशीय व्यापार के विकास को हानि नहीं पहुंचाई। व्यावसायिक व्यापारिक संस्थाएं वस्तुओं के परिवहन तथा ऋण और बीमा सेवाओं के प्रावधानों के निरीक्षण में राजनीतिक मोर्चेबंदी से आगे निकल गई। पूर्व–औपनिवेशिक युग में कलाकार, मुख्यतः जुलाहों के पास मध्यस्थ सामाजिक समूहों तथा राज्य की ओर से अप्रभावित बढ़ती मांग के द्वारा अपना जीवनयापन करने के लिए अत्यधिक मौके थे। यहां तक कि घुसपैठ करने वाले राज्य जैसे कि 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मैसूर ने भी मध्यस्थों पर ही आक्रमण किए थे, श्रमिकों पर नहीं। बंगाल तथा मद्रास से प्राप्त सबूत इस ओर इशारा करते हैं, कि शहरी श्रमिकों की हालत आरंभिक औपनिवेशिक काल में पूर्व औपनिवेशिक की तुलना में बहुत खराब थे। जबकि अन्तर्देशीय व्यापार प्रगति पर था, वहीं यूरोपीयों के बढ़ते प्रभाव के चलते अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार करने वाले भारतीयों तथा पोतवाहकों को नुकसान हो रहा था। 1720 में महान गुजराती बन्दरगाह सूरत शहर ने अपनी महत्ता खो दी थी। 18वीं शताब्दी के अंत में पश्चिमी तथा दक्षिण पूर्वी एशिया दोनों



में ही भारतीय उत्पादों की भारी मांग उत्पन्न हुई, किन्तु इस समय तक अंग्रेज व्यापारी तथा पोतवाहक अपना वर्चस्व कायम कर चुके थे। अतः भारतीयों को व्यापारिक हानि के साथ अंग्रेजों को अत्यधिक लाभ पहुंचने लगा था।

एक तरफ पुराने व्यावसायिक केंद्रों, जैसे सूरत, मसूलीपट्टनम तथा ढाका नीचे की ओर अग्रसर हुए तो वही बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ते जैसे औपनिवेशक बंदरगाह वाले शहर चमक बिखेरने लगे। किन्तु उभरती हुई क्षेत्रीय राजधानियों, जैसे लखनऊ, हैदराबाद तथा विभिन्न मराठा शक्तियों के शहर और सेरिंगपट्टनम ने दिल्ली और आगरा के पतन के असर को समाप्त कर दिया था। 1800 में शहरीकरण का अनुपात पिछले एक सौ वर्षों में स्पष्ट रूप से बढ़ चला था। शहरी केंद्रों में शासन तथा व्यापारियों के मध्य संबंधित सत्ता का संतुलन बदल गया था। कुछ उदाहरणों में तो व्यावसायिक तथा वाणिज्यिक प्रभावशाली शक्तियां राज्य सत्ता का झूठा दावा कर रही थीं।

बहुत से कारणों से भी यह प्रतीत होता है कि 18वीं शताब्दी के मध्य में आर्थिक क्षेत्र में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए। उदाहरण के लिए, जब अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल सूबे के राजस्व पर अधिकार स्थापित किया तो धन का प्रवाह बहुत बुरी तरह प्रभावित हुआ। पहले बंगाल अपने निर्यात के बदले सोना तथा चांदी पाता था, किन्तु यह तरीका ज्यादा न चल सका। 18वीं शताब्दी के अंतिम हिस्से में किसान नकदी फसलों जैसे कि नील तथा अफीम की खेती करने को बाध्य हुए। इसने अन्न की फसल के उत्पादन का बुरा प्रभाव डाला, किन्तु 18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध को 1750 से पूर्व के काल से भिन्न बनाने वाला एक और कारण है, वह है युद्ध का बदलता स्वरूप। 1750 के बाद की अवधि में युद्ध में नागरिक जानमाल, क्षति तथा आर्थिक उत्पादन की क्षति पहले की तुलना में अधिक होने लगी थी तथा इसी समय युद्ध में नई तकनीकियों के उपयोग ने इसे और अधिक खर्चीला कार्य बना दिया था। व्यापक स्तर पर आग्नेय अस्त्रों का उपयोग, किराए के सैनिकों का उपयोग तथा स्थापित सेना का रख–रखाव, इन सभी के बहुत हानिकारक प्रभाव हुए।

15.10 सामाजिक संदर्भ

अठारहवीं शताब्दी में सामाजिक जीवन अपनी पुरानी परिपाटी की ही तरह कायम थी। सामाजिक सांस्क तिक एकता की कुछ विशेषताओं के अतिरिक्त पूरे भारत वर्ष में सामाजिक ढांचे में समानता नहीं थी। समाज, धर्म, क्षेत्र, जाति, भाषा, वर्ग तथा जनजातियों के आधार पर विभिन्न श्रेणियों में बंटा हुआ था। हिन्दू हजारों जातियों के आधार पर विभाजित थे। किसी भी व्यक्ति की जाति जन्म से उसके वंश के अनुसार निर्धारित होती थी। अन्तर्जातीय खान–पान तथा अर्न्तजातीय विवाह प्रतिबंधित थे। परंपरा के अनुसार जाति कर्म से निर्धारित होती थी, किन्तु 18वीं शताब्दी तक आते–आते कुछ हद तक सामाजिक तथा व्यावसायिक गतिशीलता का अनुसरण किया जाने लगा था। उदाहरण के लिए, ब्राह्मणों ने विभिन्न नए क्षेत्रों में पांव पसारना प्रारंभ कर दिया था तथा विभिन्न व्यवसायिक गतिविधियां भी प्रारंभ कर दीं थी।

मुस्लिम भी नस्ल, जाति, जनजाति तथा सामाजिक स्तर के मुद्दों से अछूते न रहे सके। शिया तथा सुन्नी में गंभीर धार्मिक मतभेद थे, जबकि ईरानी, अफगानी तथा

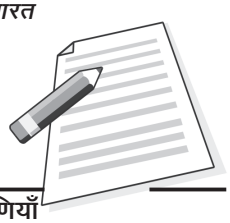
भारत में धर्मान्तरित मुस्लिमों में भी मतभेद थे, जो उन्हें एक–दूसरे से पथक खड़ा करते थे। इस्लाम में धर्मान्तरित हुए व्यक्ति इस्लाम में अपनी जाति के संग आए। समाज की आधार धुरी परिवार था, जो पितसत्तात्मक था सिवाय केरल के जहां मातसत्तात्मक प्रधान समाज था। महिलाओं से आदर्श पुत्री, पत्नी तथा मां बनने की अपेक्षा रखी जाती थी। उत्तर भारत में उच्च कुल की महिलाओं में पर्दे का चलन था। बाल विवाह प्रचलित थे तथा विवाह दो परिवारों के बीच सामाजिक बंधन माना जाता था। उच्च कुलों में बहुपत्नी प्रथा तथा दहेज का प्रचलन था, किन्तु अठारहवीं शताब्दी की सबसे घिनौनी रीति सती प्रथा तथा हिंदुओं के बीच विधवाओं की स्थिति थी।

समय के अनुसार शिक्षा पद्धति में अनुकूल परिवर्तन नहीं हो पाया था। पाठ्यक्रम में साहित्य, भाषा, विधि, धर्म, दर्शन तथा तर्क के विषय तो सम्मिलित थे, किन्तु भौतिकी तथा प्राक तिक विज्ञान, तकनीकी तथा भूगोल का अध्ययन शामिल नहीं था। अध्ययन के सैद्धांतिक तरीकों के वर्चस्व की वजह से प्रगतिशील विचारों का अभाव था। प्रारंभिक शिक्षा का विस्तार व्यापक था। उच्चतर शिक्षा का माध्यम संस्क त तथा फारसी भाषा थी। तथापि महिलाएं तथा जाति के कुलीन व्यक्तियों के लिए शिक्षा का प्रबंध नहीं था।

15.11 सांस्क तिक वातावरण

सामान्य तौर पर यह माना गया कि अठारहवीं शताब्दी में भौतिक जीवन में समान्य पतन हुआ तथा इस समय का सांस्क तिक जीवन भी छिन्न–भिन्न हो गया। हालांकि 18वीं शताब्दी के इस चित्रण के कुछ ही औचित्य हैं। दिल्ली, जिसकी आर्थिक अवस्था डांवाडोल हुई, में भी उस समय महान कवि, दार्शनिक तथा विचारक हुए, शाह वलीउल्लाह से लेकर मीर तकी मीर तक। ज्यों–ज्यों क्षेत्रीय राज दरबारों का महत्त्व बढ़ा, उन्होंने सम द्ध संस्क ति, चाहे वह संगीत, कला या साहित्य हो, को संरक्षण देने के प्रति अपनी रुचि जताई। यह हमें विभिन्न केंद्रों पर अलग–अलग शैली में प्राप्त होती है। अवध से बीकानेर तक तथा लाहौर से तंजौर तक कोई भी व्यक्ति संस्क ति के अस्तित्व को दरबारी परम्परा में देख सकता है। सांस्क तिक परंपराओं के संगम का सर्वाधिक उत्क ष्ट उदाहरण मराठा शासित तंजौर था, जहां तमिल, तेलुगू, संस्क त तथा मराठी भाषा में साहित्यिक रचनाएं हुई, जबकि कुछ मराठा शासकों ने प्रत्यक्ष भूमिका निभाई। इसी प्रकार 18वीं शताब्दी में ही तन्जौर में संगीत का विकास हुआ, जिसे आज भारतीय शास्त्रीय संगीत की कर्नाटक परंपरा बोलते हैं, जिसे त्यागराज, मुत्तूस्वामी दीक्षितर तथा श्याम शास्त्री जैसे महान व्यक्तियों ने क्वर लिपि लिखकर की थी। अंत में इस युग में तंजौर ने चित्रकला की भी कुछ विशिष्ट शैलियों का विकास किया, इनमें उत्तर के कपड़े रंगने की पुराने परंपरा के साथ मिश्रित किया।

यह सौंदर्य केवल शुद्ध रूप से श्रेष्ठ संस्क ति तक ही सीमीत नहीं रहा। यदि शुरूआत करे तो संगीत तथा रंगमंच की परंपराएं तथा इस काल के साहित्य की विभिन्न रूप विधाओं को लोक प्रभाव के साथ समन्वित किया गया। इसी समय लोकप्रिय हिन्दू तथा मुस्लिमों ने तीर्थयात्रा तथा त्यौहार से संबंधित कई सांस्क तिक कड़ियों की शुरूआत की। पहले की शताब्दियों में लंबी दूरी की तीर्थयात्राएं वाराणसी के मुख्य केंद्रों से रामेश्वरम तक बढ़ी। उत्तर मुगल काल में किराए के सैनिक ले जाना तथा लिपिक तथा अधिकारियों को दूसरे स्थान से लाना एक आम बात हो चली थी। उदाहरण के लिए, अठारहवीं शताब्दी में



हैदराबाद में उत्तर भारत से बड़ी संख्या में कायस्थ राजतंत्र में नियुक्त किए गए। मैसूर में 1720 में वित्तीय कार्यालय महाराष्ट्र के ब्राह्मणों को सौंपे गए। प्रतीत होता है कि संगीतज्ञों, लेखकों तथा कलाकारों की गतिशीलता भी प्रचलित थी। जब भी कोई नई राजनीतिक शक्ति उभरती थी, वह प्रतिभाओं को आकर्षित करती थीं। उदाहरण के लिए लाहौर के महाराजा रंजीत सिंह। उच्च श्रेणी का ईरानी साहित्य विकसित हुआ, किन्तु पंजाबी भाषा की कीमत पर नहीं। इसी समय स्थापत्य तथा चित्रकला में भी नए विकास दिखाई देते हैं। सुदूर उत्तर में कांगड़ा में चित्रकला की एक नई शैली का जन्म हुआ, जो मुख्यतः वैष्णव विषय वस्तु से जुड़ी थी। सांस्क तिक माहौल प्रभावों तथा आदर का ही परिणाम था। मुख्य धर्मों में मराठों ने अजमेर में शेख मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह को सँभाले रखा, वहीं तंजौर के राजा ने नागुर के शेख शाहुल हमीद की दरगाह को आर्थिक सहायता दी। मैसूर में टीपू सुल्तान ने श्रीगंरी मंदिर को वित्तीय मदद की तथा मुस्लिम बड़े प्रसन्नतापूर्वक हिन्दुओं के त्यौहार में भाग लेते थे। उसी प्रकार जिस प्रकार हिन्दू उत्साहपूर्वक मुहर्रम का हिस्सा बनते थे। वास्तव में आश्चर्य है कि आज जिसे भारत की परम्परावादी सभ्यता कहा जाता है, वह उसी काल की तथा उत्तरवर्ती शताब्दी की ही देन है।

15.12 अठारहवीं शताब्दी के भारत के इतिहास को समझने में मतभेद

अठारहवीं शताब्दी की प्रक ति के बारे में विभिन्न इतिहासकारों में मनभेद है चाहे वह मुगल इतिहासकार हो या औपनिवेशक अध्ययन में रुचि रखनेवाले हों। आरंभिक मुगल अध्ययन मुगल साम्राज्य के पतन के द ष्टिकोण से सभी परिवर्तनों को देखता है तथा इस युग को अंधायुग करार देता है। इस प्रकार मुगल राजनीतिक संकट को आर्थिक तथा सामाजिक विफलताओं के साथ देखा जाता है। हालांकि बाद के अध्ययनों ने अठारहवीं शताब्दी की अर्थव्यवस्था तथा समाज को क्षेत्रीय आधार पर अलग कर औपनिवेशिक काल की शुरूआत दिखलाई जिसे अठारहवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध कहा गया। इस प्रकार दो स्थितियां 'निरन्तरता बनाम परिवर्तन' के इर्द – गिर्द बहस करती हैं। सामान्यतः भारतीय इतिहासकार औपनिवेशिक विजय को भारतीय इतिहास का प्रस्थान बिन्दु मानते हैं, जो अठारहवीं शताब्दी के मध्य में प्रारंभ हुआ था। अतः अठारहवीं शताब्दी के परिप्रेक्ष्य में दो मुद्दे उभरकर आते हैं, प्रथम कि क्या मुगल साम्राज्य के पतन ने सामाजिक–आर्थिक ढांचे के टूटने की शुरूआत कर दी थी और दूसरा उपनिवेशवाद का आगमन परिस्थिति जन्य था या नहीं?

क्या अठारहवीं शताब्दी को काला युग माना जाए या यह आर्थिक उन्नति का समय था? क्या यह बड़ा अंतराल था या यह निरन्तरता तथा परिवर्तन का युग था? अंग्रेजी सत्ता भारत में किस प्रकार अठारहवीं शताब्दी में फैली? राजनीति, समाज, अर्थव्यवस्था, धर्म तथा संस्क ति की मूल प्रव त्ति से संबंधित ये प्रश्न अठारहवीं शताब्दी के इतिहास के अध्ययन में बहस पैदा करते हैं। पारम्परिक तौर पर इतिहासकार भारत की अठारहवीं शताब्दी को काला युग बतलाते हैं, क्योंकि यह युद्ध, राजनीतिक कोलाहल तथा आर्थिक पतन, स्थिर व सम द्ध मुगलों तथा अधिपत्य शासकों के मध्य फंस गया था। इस द ष्टिकोण को हालांकि नई पीढ़ी के भारतीय इतिहासकारों ने चुनौती दी, जिन्होंने आरंभिक मुगल शासकों तथा उत्तरवर्ती अंग्रेज राज्यों की निरन्तरता पर बल दिया तथा उन छोटे राज्यों

पर चिंता जतलाई, जो मुगल शक्ति के क्षीण होते ही उदय हो गए थे। पूरे भारत को प्रभावित करने वाली राजनीतिक उठापठक किसी को भी यह पूछने को बाध्य कर सकती है कि क्या मुगल साम्राज्य के पतन ने केंद्रीय राजनीतिक शक्ति में एक अंतराल उत्पन्न कर अस्थिरता के चरण को जन्म दिया, जिसमें पहले तो क्षेत्रीय शक्तियों का उदय हुआ तथा बाद में इसने अंग्रेजी औपनिवेशवाद के लिए मार्ग प्रशस्त किया। यहां यह महत्त्वपूर्ण है कि मुगल साम्राज्य के पतन को ही भारतीय समाज के पतन के लिए तथा शताब्दी के पूर्वार्द्ध में केंद्रीय सत्ता के पतन के फलस्वरूप रिक्त स्थान को भरने के लिए अवध तथा बंगाल के नबाव तथा हैदराबाद के निजाम जैसी क्षेत्रीय शक्तियों के उदय के लिए जिम्मेदार माना जाना चाहिए तथापि क्या अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी का आविर्भाव भारतीय समाज, अर्थव्यवस्था तथा राजतंत्र के लिए धक्का था? या अंग्रेजी औपनिवेशवाद के दो सौ वर्षों की भारत में यह शुरूआत थी?

पाठगत प्रश्न 15.4

1. सन 1770 के पश्चात आर्थिक अस्थिरता के कोई दो मुख्य कारण लिखें?

2. यूरोपवासियों की प्रगति के चलते भारतीय निर्यात व्यवसाय पतन को किस प्रकार अग्रसर हुआ?

3. ऐसे औपनिवेशिक शहरों के नाम बताइए, जिन्होंने परम्परागत व्यापारिक केन्द्रों का स्थान लिया?

4. 18वीं शताब्दी की सामाजिक व्यवस्था की कोई दो विशेषताएं लिखें?

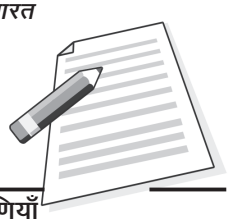
5. अठारहवीं शताब्दी की मुख्य सामाजिक कुरीतियों का उल्लेख करें?

6. अठारहवीं शताब्दी तक उच्च शिक्षा के माध्यम की भाषा कौन–सी थी?

7. भारतीय शास्त्रीय संगीत के कर्नाटक परम्परा के उदय के मुख्य केंद्र कौन से थे? इस परंपरा के मुख्य कर्ताधर्ता कौन थे?

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में अठारहवीं शताब्दी का चित्रण हैं। यह हमें बाद के मुगल शासकों के बारे में जानकारी देता है, उनकी दुर्बलताओं तथा कठिनाइयों को बतलाता है। यह मुगल सरदारों के उदय तथा अंततः मुगल सत्ता से उनके विद्रोह को भी दर्शाता है।



यह पाठ केंद्रीय सत्ता के विघटन के फलस्वरूप अवध तथा बंगाल के नबाव हैदराबाद के निजाम जैसी क्षेत्रीय शक्तियों के उदय को भी दर्शाता है। क्षेत्रीय शासकों का योगदान एवं उनके आपसी संघर्षों का ब्यौरा भी यह देता है।

मराठा राज्य संघ का आविर्भाव तथा अंततः मराठाओं का पांच वंशों में विघटन भोंसले, गायकवाड़, सिंधिया, होल्कर तथा सतारा में हो जाना इस युग का महत्त्वपूर्ण चरण है। पेशवा की शक्ति तथा अन्य महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक विशेषताएं भी दर्शाई गई हैं।

महाराजा रणजीत सिंह के नेतत्व में सिक्खों का संघटन, राजपूत राज्यों का उदय तथा इन राज्यों की भारतीय प्रशासन में राजनीति तथा संस्कति में इनकी देन की संक्षिप्त व्याख्या की गई है।

18वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में महत्त्वपूर्ण विकास दिखलाई पड़ते हैं। मैसूर में हैदर अली तथा टीपू सुल्तान का उदय उल्लेखनीय है। ईस्ट इंडिया कंपनी का आगमन तथा मैसूर एवं कंपनी के बीच संघर्ष भारतीय राजनीति में एक नए युग की शुरूआत है।

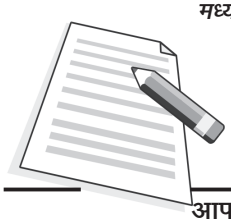
राजनीतिक विकास के अतिरिक्त इस अध्याय में भारतीय अर्थव्यवस्था की नई विशेषताएं, भारतीय क षि व निर्यात व्यापार के पतन के कारणों पर चर्चा की गई है जिसने औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था का रास्ता साफ कर दिया।

कई मामलों में जहां समाज पुरातनवादी रहा, वहीं 18वीं शताब्दी में भारत ने आर्थिक तथा सांस्क तिक क्षेत्र में नई प्रव त्तियों को जन्म दिया।

18वीं शताब्दी में भारत की राजनीति तथा अर्थव्यवस्था की जटिल प्रव त्ति के चलते इतिहासकारों में इन विकासों को लेकर विभिन्न मत हैं।

पाठान्त प्रश्न

1. औरंगजेब की म त्यु के उपरान्त मुगल वंश का पतन इतनी तेजी से क्यों हुआ?
2. क्षेत्रीय राजनीति तथा राज्यों के उदय की प्रक्रिया का परीक्षण कीजिए? इन शक्तियों की वैधता के लिए शाही प्रतीकों की आवश्यकता क्यों महसूस हुई?
3. मराठों ने 18वीं शताब्दी में किस प्रकार अपनी खोई हुए महत्ता को अर्जित किया?
4. महादजी सिंधिया कौन थे? उनकी मुख्य उपलब्धियों का वर्णन कीजिए?
5. बंगाल के नबावों द्वारा अपनी स्थिति सुद ढ़ करने के लिए किए गए प्रयत्नों का परीक्षण करें?
6. लाहौर में किसने और कब सिक्ख सत्ता की स्थापना की? इस संदर्भ में महाराजा रणजीत सिंह की भूमिका की व्याख्या कीजिए?
7. सवाई राजा जय सिंह द्वारा राजपूताना में शक्ति विस्तार के लिए उठाए गए कदमों की व्याख्या कीजिए?
8. 'दिल्ली के द ष्टिकोण से, 18वीं शताब्दी का युग अंधायुग था'। तर्क देकर इस वक्तव्य के औचित्य को सिद्ध कीजिए?



आपकी टिप्पणियाँ

9. 19वीं शताब्दी में क षि के पतन के कारणों का परीक्षण कीजिए?
10. 18वीं शताब्दी के भारत में आर्थिक क्षेत्र में हुए मुख्य परिवर्तन क्या थे? वर्णन करें?
11. 18वीं शताब्दी की प्रक ति को लेकर विवाद क्यों हैं?
12. किस आधार पर इतिहासकार 18वीं शताब्दी को अंधेरा युग कहते हैं?
13. 18वीं शताब्दी के इतिहास को समझने में मुख्य समस्याएं क्या हैं?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

15.1

1. बहादुर शाह प्रथम उर्फ शाह आलम। उसने समझौतों की नीति का अनुसरण किया।
2. अब्दुल्ला खान तथा हुसैन अली खान को सैय्यद बंधु के नाम से जाना जाता था। उपलब्धियां–

   क. उन्होंने क्रमशः वजीर और बक्शी की उपाधि धारण की।

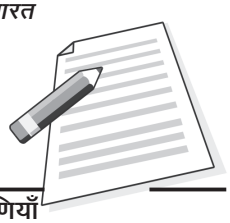
   ख. उन्होंने सिक्खों के विद्रोह को दबाया तथा राजपूतों के साथ संधि की।

   ग. उन्होंने जजिया जैसे पक्षपाती कर को हटाया।
3. हैदराबाद राज्य की नींव चिन कीलिच खान उर्फ निजाम–उल–मुल्क ने रखी थी। यह मुगलों के अधीन वजीर था।
4. क. उत्तरवर्ती मुगल शासक दुर्बल तथा अकुशल थे।

   ख. उनमें से अधिकतर अस्थिर बुद्धि के थे तथा विलासिता एवं अपव्यय में संलग्न थे।
5. सन 1738–39 में ईरान के शासक नादिर शाह ने भारत पर आक्रमण किया था।

15.2

1. मराठे
2. मराठा शासक साहू के शासनकाल में मुख्यमंत्री को पेशवा कहा जाता था। बाजी राव प्रथम एक शक्तिशाली पेशवा था, जिसने 1720–1740 तक शासन किया।
3. चौथ तथा सरदेशमुखी से तात्पर्य मराठों द्वारा संगहीत शुल्कों से है। ये शुल्क के अनुपात के अनुसार थे। चौथ जहां 1/4 मुगल कर का था वहीं सरदेशमुखी 1/10 हिस्सा था।
4. गोवा, बसीन, दमन
5. नागपुर के भोसलें, बड़ौदा के गायकवाड़, इन्दौर के हेल्कर, ग्वालियर के सिंधिया तथा सतारा में शिवाजी के उत्तराधिकारी ने सतारा पर शासन किया।
6. अहिल्या बाई इन्दौर के होल्कर शासक मल्हार राव की विधवा बहू थी। उसने 1765 से 1794 तक शासन किया। उसकी मुख्य उपलब्धि थी कि उसने शक्ति को संगठित कर होल्कर वंश की गरिमा में चार चांद लगाएं।



15.3

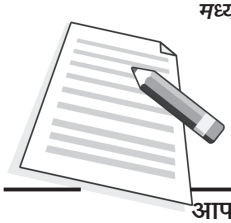
1. अवध के लखनऊ क्षेत्र में नवाबों के संरक्षण के अधीन न त्य की नई शैली कत्थक का उदय हुआ।
2. इस युद्ध में बंगाल का स्वतंत्र शासक सिराज–उद–दौला अंग्रेजों के हाथों पराजित होने के बाद मारा गया। इस विजय ने अंग्रेजों के लिए बंगाल तथा पूरे भारत में विदेशी शक्ति द्वारा सत्ता स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त हुआ।
3. टीपू सुल्तान अंग्रेजों की शत्रुता के साथ–साथ टीपू को हमेशा ही स्थानीय चोरों का भी सामना करना पड़ा।

15.4

1. राजनीतिक खलबली तथा सेनाओं की छापामारी आर्थिक अस्थिरता के दो मुख्य कारण थे।
2. भारतीय उत्पादों की अधिक मांग होने के बावजूद गुजरात के तटीय शहर सूरत ने अपनी महत्ता खो दी। अंग्रेजी व्यापारियों एवं पोतवाहकों ने भारतीयों को हटाकर निर्यात पर अपना अधिकार कर लिया था।
3. बम्बई, मद्रास तथा कलकत्ता जैसे औपनिवेशिक शहरों ने पूर्ववर्ती व्यापार केंद्रों का स्थान ले लिया था।
4. बहुत से क्षेत्रों में 18वीं शताब्दी का सामाजिक जीवन पुरानी परम्परा की ही निरन्तरता थी, जिसमें नाम मात्र के ही परिवर्तन थे। समाज जाति, जनजाति धर्म, भाषा, वर्ग आदि के आधार पर बंटा हुआ था।
5. उच्च वर्ग की महिलाओं के लिए परदा अनिवार्य था। बाल विवाह, बहुपत्नी प्रथा तथा दहेज प्रथा हालांकि समाज में प्रचलित थे, किन्तु सबसे क्रूर व भयंकर सामाजिक बुराई सती प्रथा थी।
6. 18वीं शताब्दी में उच्च शिक्षा का माध्यम संस्क त तथा फारसी था।
7. भारतीय शास्त्रीय संगीत की कर्नाटक शैली का तन्जौर के क्षेत्र में प्रादुर्भाव हुआ। इस परंपरा के मुख्य व्याख्याता थे–त्यागराज, मुत्तूस्वामी दिक्सितार एवं श्याम शास्त्री।

पाठान्त प्रश्नों के संकेत

1. देखें खंड 15.1
2. देखें खंड 15.2
3. देखें 15.3 खंड
4. देखें खंड 15.2, ग्वालियर के सिंधिया
5. देखें खंड 15.4
6. देखें खंड 15.6
7. देखें खंड 15.7



आपकी टिप्पणियाँ

8. देखें खंड 15.9
9. देखें खंड 15.9
10. देखें खंड 15.9
11. देखें खंड 15.12
12. देखें खंड 15.12
13. देखें खंड 15.12



5

जनपद से साम्राज्य की ओर

पिछले अध्याय में हमने पढ़ा कि उत्तर वैदिक काल के लोगों ने गंगा की घाटी में खेती करना शुरू किया और स्थायी रूप से गाँवों में बस गए। इस पाठ में हम सीखेंगे कि बढ़ते हुए कषि कार्यकलापों और स्थायी जीवन के परिणामस्वरूप छठी सदी ई.पू. काल में भारत के उत्तर में सोलह महाजनपदों (विशाल प्रादेशिक राज्य) का विकास हुआ। हम उन तत्वों पर भी विचार करेंगे, जिनके कारण इन प्रदेशों में से एक राज्य मगध बाद में मौर्यों के शासन के अधीन एक विशाल साम्राज्य के स्तर तक पहुंचा। मौर्य काल को आर्थिक और सांस्कतिक प्रगति के क्षेत्र में महान उन्नति का काल माना जाता है। परन्तु अशोक की मत्यु के पचास वर्षों के भीतर ही समाप्त (इसका पतन) हो गया था। हम इस पतन के कारणों का भी विश्लेषण करेंगे। इस काल में (छठी शताब्दी ई.पू.) कई नए धर्मों, जैसे बौद्ध धर्म और जैन धर्म का उद्भव भी हुआ। कई नए धर्मों के जन्म लेने के विभिन्न कारणों और उनके मुख्य सिद्धांतों के बारे में भी बताया जाएगा।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात् आप :

- छठीशताब्दी ई.पू. काल में, उन भौतिक और सामाजिक कारणों (जैसे कषि और नए सामाजिक वर्गों का विकास) की व्याख्या कर सकेंगे, जो महाजनपदों और नए धर्मों के उद्भव का आधार बने थे;
- बौद्ध धर्म और जैन धर्म के सिद्धांतों, संरक्षण, विस्तार और प्रभाव का विश्लेषण कर सकेंगे;
- भारतीय राज्यशाही में छोटे प्रदेशों से बड़े साम्राज्यों के विकास की जड़ें खोज सकेंगे और सोलह महाजनपदों की सूची बना सकेंगे;
- धम्म की नीति के ज़रिये साम्राज्यों को संगठित करने के लिए अशोक की भूमिका की परख कर सकेंगे;
- मौर्यशासन काल में प्रशासन, अर्थव्यवस्था, समाज की मुख्य विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे, और
- मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों को जान सकेगें।



5.1 नए धर्मों का उद्‌भव

इस काल में आर्थिक और राजनीतिक गतिविधियों का केंद्र हरियाणा और पश्चिमी उत्तर प्रदेश से पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में स्थानांतरित हो गया था, जहाँ पर ज्यादा वर्षा होती थी और अधिक उपजाऊ भूमि थी। क्योंकि इस समय तक बिहार में उपलब्ध लौह अयस्क के संसाधनों से लाभ उठाना आसान हो गया था और लोगों ने घने जंगलों की कटाई और इस क्षेत्र की कठोर मिट्‌टी को खोदने के लिए औज़ार और हल की फाल इत्यादि का प्रयोग शुरू कर दिया था।

इस काल के पुरातात्त्विक साक्ष्यों और साहित्यिक स्रोतों से ये प्रमाण मिले हैं कि कषि की पैदावार में वद्धि हुई थी। वास्तव में पश्चिमी उत्तर प्रदेश के एटा जिले में जखेड़ा नामक स्थान पर, 500 ई. पू. के आसपास एक हल की फाल मिली है। इस काम में लोहे का प्रयोग किए जाने के अनेक साक्ष्य राजघाट, कौशाम्बी, वैशाली और सोनपुर से भी मिले हैं। बौद्ध धर्म के ग्रंथों से हमें पता चलता है कि धान, गन्ना और सरसों की खेती के लिए कितनी सावधानी की जरूरत होती है और इसमें अनेक बार जुताई करनी पड़ती है। खेती–बाड़ी के विस्तार के फलस्वरूप खाद्यों की आपूर्ति में सुधार हुआ और शिल्पकारी के उत्पादों, व्यापार और शहरी केन्द्रों के विकास में भी सहायता मिली।

छठी शताब्दी ईसा पूर्व काल को भारतीय उप–महाद्वीप में 'द्वितीयृशहरीकरण' के चरण के रूप में जाना जाता है। हड़प्पाकालीन नागरिक केंद्रों के पतन के बाद एक हज़ार वर्षों के अन्तराल के बाद अब पुनः शहरों का विकास हुआ था। परन्तु इस बार शहरों का विकास मध्य गंगा की घाटी के क्षेत्र में हुआ, न कि सिंधु नदी के मैदानों में। कहा जाता है कि 600 और 300 ईसा पूर्व काल में पाटलिपुत्र, राजगढ़िया, श्रावस्ती, वाराणसी, वैशाली, चम्पा, कौशाम्बी और उज्जयिनी जैसे साठ शहरों का विकास हुआ था।

ये नगर शिल्पकला उत्पादों और व्यापार के केंद्र बन गए और यहाँ बहुत बड़ी संख्या में कारीगरों और व्यापारियों का निवास होने लगा था। कारीगरों द्वारा बनाई गई वस्तुएँ, जैसे कपड़े, रेशम, गहने, मिट्‌टी के बर्तन इत्यादि को यहाँ के व्यापारी अन्य शहरों में ले जाते थे। श्रावस्ती और कौशाम्बी से जुड़ा शहर वाराणसी व्यापार का मुख्य केंद्र था। श्रावस्ती भी कपिलवस्तु और कुशीनारा के ज़रिये आपस में जुड़े थे। जातक कथाओं से पता चलता है कि व्यापारी मथुरा और तक्षशिला के रास्ते मगध और कौशल से व्यापार के लिए जाते थे। उज्जैन और गुजरात के समुद्रतटीय क्षेत्रों की यात्रा के लिए मथुरा पारगमन का मुख्य केंद्र था।

साँचों में ढलाई करके बनाए गए हजारों मुद्रांकित सिक्कों (पंच मार्क्ड) सिक्के (पी.एम.सी) की खोज से विकसित व्यापार की झलक मिलती है। विभिन्न प्रकार के चिह्न, जैसे अर्धचन्द्राकार, मछली, पेड़, पहाड़ी इत्यादि के चिह्न इन सिक्कों पर पाए गए हैं, इसीलिए इन सिक्कों को पंच मार्क्ड सिक्के (सांचे की ढलाई में बने सिक्के कहते है।) मुद्राशास्त्रियों ने ऐसे लगभग 500 सिक्कों की पहचान की है, जो कि मुख्यतः चांदी और कहीं–कहीं तांबे से बने हैं। कषि में सुधार और व्यापारिक, आर्थिक और शहरीकरण के विकास का प्रभाव समाज पर भी पड़ा। बेशक, इन परिवर्तनों के कारण पारम्परिक समानता और भाईचारे में असमानता और सामाजिक संघर्ष होने लगे। हिंसा, अत्याचार, चोरी, नफरत और झूठ जैसी सामाजिक बुराइयों से लोग किसी प्रकार छुटकारा चाहते थे। इसलिए बौद्ध और जैन धर्मों ने जब शांति और सामाजिक समानता का प्रचार किया तो लोगों ने

इसका स्वागत किया। इन धर्मों ने इस बात पर ज़ोर दिया कि वास्तविक प्रसन्नता (सुख) किसी भौतिक समद्धि अथवा धार्मिक अनुष्ठान में नहीं है, बल्कि दान, मितव्ययिता, अहिंसा और अच्छे सामाजिक व्यवहार में है। उसके अतिरिक्त सामान्य आर्थिक प्रगति के कारण वैश्यों और अन्य व्यापारिक समूहों का उदय हो गया था, जो अब अपने लिए उस सामाजिक स्तर से बेहतर स्थान पाने की इच्छा रखते थे, जो ब्राह्मणों ने उनके लिए निध ार्रित किया था। इसलिए उन्होंने बौद्ध और जैन धर्म जैसे गैर–वैदिक धर्मों को संरक्षण दिया और उन्हें अत्यधिक दान दिया। केवल बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने ही ब्राह्मणों के वर्चस्व को चुनौती नहीं दी थी। बौद्ध धर्म के विविध स्रोतों से पता चलता है कि इस काल में 62 पंथों और दार्शनिक विचारधाराओं से भी अधिक विचारधाराएँ प्रचलित थीं। इनमें से एक का नाम था 'आजीविका', जिसकी नींव मक्खाली घोषाल ने रखी थी। तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व काल में आजीविकाएँ मगध में बहुत प्रचलित थीं और मौर्य शासकों ने 'आजीविका' के भिक्षुओं को अनेक गुफाएँ दान में दी थीं।

पाठगत प्रश्न 5.1

1. छठी शताब्दी ई.पू. के दौरान जिन स्थानों पर लोहे के औज़ारों के साक्ष्य मिले थे, उनके नाम लिखें।

   _____

2. इस काल के कुछ महत्त्वपूर्ण व्यापारिक मार्गों और व्यापार केंद्रों का विवरण दें।

   _____

3. प्राचीन सिक्कों को पंच मार्क्ड सिक्के (सांचे में ढले चिह्नित सिक्के) क्यों कहते थे?

   _____

4. आजीविका पंथ की नींव किसने रखी?

   _____

5.2 जैन धर्म और बौद्ध धर्म के सिद्धांत

जैन धर्म

वर्द्धमान महावीर को जैन धर्म का संस्थापक माना जाता है। उनका जन्म 599 ईसा पूर्व बिहार में वैशाली के निकट हुआ था। वे जैन धर्म के चौबीसवें और अंतिम 'तीर्थंकर' थे। जैन धर्म की आस्था थी कि मानव जीवन का मुख्य उद्देश्य है आत्मा की शुद्धि और निर्वाण प्राप्त करना, जिसका अर्थ है जन्म–मरण के आवागमन से मुक्ति। उनका कहना था कि इसे धार्मिक अनुष्ठानों और पशु–बलियों से प्राप्त नहीं किया जा सकता, बल्कि इसकी प्राप्ति 'त्रिरत्न' और 'पंचमहाव्रत' से होगी। 'त्रिरत्न' अथवा तीन स्वर्ण सिद्धांत हैं– उचित विश्वास, उचित ज्ञान और उचित व्यवहार जिन पर चलकर ही मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है। उचित व्यवहार का अभिप्राय है पांच नियमों पर चलने की शपथ लेना; 'अहिंसा' (किसी प्रकार की हिंसा न करें), 'सत्य वचन' (झूठ मत बोले), 'आस्तेय' (चोरी न करें), 'ब्रह्मचर्य' (भोग–विलास में लिप्त न हों), और 'अपरिग्रह' (संपत्ति का अधिग्रहण



न करें)। जैन मुनियों की तुलना में गहस्थ लोगों से इन 'अणुव्रत' (छोटे संकल्प) कहे जाने वाले सदगुणों के कठोर अनुपालन की आशा नहीं की जाती थी। अतः हम यह देख सकते हैं कि ब्राह्मण–धर्म धार्मिक–कर्मकांड पर बल देता था तो यह नया धर्म व्यवहार–आधारित था। जैन धर्म की सबसे प्रमुख विशेषता थी 'अनेकनतवदा' या कहें 'स्यादवदा'। इसका अर्थ है कि सत्य को अनेक अथवा विविध कोणों से परखा जा सकता है। जैन धर्म की एक और प्रमुख विशेषता थी कठोर प्रायश्चित, आडम्बरहीनता और कठोर अहिंसा धर्म का पालन। शायद कठोर अनुशासन के सिद्धांतों पर बल देने के कारण ही बहुत बड़ी संख्या में अनुयायी इस धर्म की ओर आकर्षित नहीं हो पाए। महावीर ने अपने सिद्धांतों (संदेशों) के प्रचार के लिए प्राकत भाषा का प्रयोग किया। तथापि अन्य धर्मों की तरह, जैन धर्म भी बहुत लंबी अवधि तक संगठित नहीं रह सका और 'दिगम्बर' (जो निर्वस्त्र रहते थे) और 'श्वेताम्बर' (जो सफेद वस्त्र पहनते थे) नामक दो वर्गों में बँट गया।

बौद्ध धर्म

बौद्ध धर्म के संस्थापक थे गौतम बुद्ध, जिनका जन्म कि 566 ईसा पूर्व नेपाल की पहाड़ी तराई में स्थित लुम्बिनी में हुआ। एक रात उन्होंने सत्य की खोज में अपने महल का त्याग कर दिया और अन्त में बोधगया में सत्य का ज्ञान प्राप्त किया। उसके बाद उन्हें 'बुद्ध' या 'प्रबुद्ध' कहा जाने लगा। उन्होंने अपना पहला प्रवचन वाराणसी के पास सारनाथ में दिया। इस घटना को धर्म–चक्र–प्रवर्तन (विधि के चक्र का परिवर्तन) का नाम दिया गया। यहाँ पे उन्होंने अपने 'संघ' की भी स्थापना की। उनकी मत्यु 80 वर्ष की आयु में पूर्वी उत्तर प्रदेश के गोरखपुर के पास कुशीनारा या कुशीनगर में 486 ईसा पूर्व में हुई थी।

बुद्ध ने अपने अनुयायियों को दो अतियों से बचने के लिए कहा– न तो सांसारिक सुखों में लिप्त हों और न ही कठोर ब्रह्मचर्य और सन्यासी बनो। 'मध्यम मार्ग' या 'मध्यम रास्ता' अपनाने के इस दर्शन की झलक बौद्ध धर्म से संबद्ध सभी विषयों में मिलती थी। बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों की संरचना का मूल आधार था। चार महान सत्य या 'आर्य सत्य' और 'अष्टांग मार्ग' या 'अष्टांगिका मार्ग'। प्रथम महान सत्य जिसकी शिक्षा बुद्ध ने दी वह था, यह संसार कष्टों (दुख) से भरा है और पीड़ाओं का महासागर है। दूसरा महान सत्य है 'दुख समुदय' अर्थात् प्रत्येक कष्ट का कोई न कोई कारण होता है। तीसरा महान सत्य है 'दुख निरोध' अर्थात दुख का निवारण किया जा सकता है और चौथा सत्य है 'दुख विरोध गामिनी प्रतिपदा' यानी दुख के निवारण का रास्ता है। यदि व्यक्ति दुखों से छुटकारा पाना चाहता है तो उसे अपनी इच्छाओं पर विजय प्राप्त करनी होगी। इच्छाओं से बचने के लिए उन्होंने अष्टांग मार्ग पर चलने की शिक्षा दी, ये मार्ग थे : उचित विश्वास, उचित विचार, उचित भाषा, उचित काम, उचित आजीविका, उचित प्रयास, उचित सोच, और उचित ध्यान।

बुद्ध ने अपनी शिक्षाओं के प्रचार के लिए सामान्य जनमानस द्वारा बोली जाने वाली भाषा 'पालि' का प्रयोग किया। बुद्ध ने निम्न वर्ण के लोगों और महिलाओं को भी 'संघ' में प्रवेश की अनुमति दी। विविध कालावधियों में आयोजित किए गए चार बौद्ध सम्मेलनों ने बौद्ध धर्म के प्रसार में बहुत बड़ी भूमिका निभाई। कनिष्क साम्राज्य के दौरान आयोजित चौथे सम्मेलन में बौद्ध धर्म दो बड़ीशाखाओं में बंट गया– जिन्हें हीनयान और महायान कहते थे। महायान ने संस्कत भाषा को अपनाया और बुद्ध की मूर्तिपूजा करनी शुरू कर दी, जबकि हीनयान अभी भी पालि भाषा में प्रचार करते है और बुद्ध को अपना मार्गदर्शक मानते है।

सातवींशताब्दी ईसा पश्चात बौद्ध धर्म कमज़ोर पड़ता गया परन्तु भारतीय इतिहास में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बौद्ध धर्म के प्रभाव को देखा जा सकता है। बौद्ध विद्वानों ने अनेक साहित्यिक ग्रन्थों की रचना की जैसे –'त्रिपिटिका,' 'मिलिन्दपानहो,' 'बुद्धचरित' इत्यादि। स्तूपों, चट्टानों को काटकर बनाई गई गुफाओं और चित्रकारी के रूप में बौद्ध धर्म, कला और वास्तुशिल्प की प्रगति के लिए प्रेरणा बना। सांची, भड़ौत, अमरावती, अजन्ता इत्यादि स्थानों पर इसे देखा जा सकता है। गंधार और मथुरा की कलात्मक धाराओं (स्कूल) को भी बौद्ध धर्म ने प्रेरित किया। सभी वर्ग के लोगों के लिए अपने धर्म के दरवाज़े खोलकर बौद्ध धर्म ने ब्राह्मणों की श्रेष्ठता को चुनौती दी और निचले वर्ग के लोगों को समाज में ऊँचा स्थान दिया।

पाठगत प्रश्न 5.2

1. जैन धर्म के सिद्धान्त में 'त्रिरत्न' नाम के कौन से तीन तत्त्व हैं?

2. जैन धर्म की कौन सी दो शाखाएँ हैं?

3. बुद्ध ने अपना पहला प्रवचन किस स्थान पर दिया था?

4. बौद्ध धर्म में कौन से चार महान सत्य और अष्टांग मार्ग हैं?

5. 'दुख' के संबंध में बुद्ध ने क्या शिक्षा दी?

6. बुद्ध ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार के लिए किस भाषा का प्रयोग किया?

7. महायान और हीनयान में क्या अन्तर है?

8. साहित्य और कला के क्षेत्र में बौद्ध धर्म ने क्या योगदान किया?

5.3 सोलह महाजन पद

छठी शताब्दी ईसा पूर्व का काल न सिर्फ सामाजिक–आर्थिक और धार्मिक विकास का काल था बल्कि इसमें नए राजनीतिक विकास भी देखने में आए। उत्तर वैदिक काल में, जैसा कि हमने पहले देखा है, लोगों ने खेती–बाड़ी करनी शुरू कर दी थी, जिसकी वजह से उन्हें एक स्थान पर बसना पड़ा। इस स्थायी आवास के फलस्वरूप एक शासक के नियंत्रण के अधीन जनपदों या प्रादेशिक राज्यों की नींव पड़ी। छठीशताब्दी ईसा पूर्व में राजनीतिक गतिविधियों का मुख्य केन्द्र धीरे–धीरे पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में स्थानांतरित हो गया था। अत्यधिक वर्षा के कारण और नदी प्रणालियों की वजह से यह क्षेत्र न सिर्फ उपजाऊ था बल्कि लोहा उत्पाद केन्द्रों के भी



नजदीक था। लोहे से बने बेहतर औज़ारों और शस्त्रों के प्रयोग से कुछ क्षेत्रीय राज्य बहुत विशाल प्रदेश बन गए जिन्हें 'महाजन पद' कहा जाता था। इनमें से ज़्यादातर महाजनपद विंध्य पर्वत श्रंखला के दक्षिण उत्तर में, पूर्व में उप–महाद्वीप के सुदूर उत्तर–पश्चिमी सीमांत से लेकर बिहार तक स्थित थे। इन सोलह महाजनपदों की सूची नीचे दी गई है।

तालिका 5.1 महाजनपद

क्रमसंख्या	महाजनपद	राजधानी	आधुनिक स्थान
1	अंग	चम्पा	मुंगेर और भागलपुर
2	मगध	गिरिव्रज/राजगीर	गया और पटना
3	काशी	काशी	बनारस
4	वत्स	कौशाम्बी	इलाहाबाद
5	कौशल	श्रावस्ती	पूर्वी उत्तर प्रदेश
6	शौरसेना	मथुरा	मथुरा
7	पांचाल	अहिछत्र और काम्पिल्य	पश्चिमी उत्तर प्रदेश
8	कुरू	इन्द्रप्रस्थ	मेरठ और दक्षिण पूर्व हरियाणा
9	मत्स्य	विराटनगर	जयपुर
10.	छेदी	सोठीवाटी/बांदा	बुंदेलखंड
11	अवन्ती	उज्जैन/महिष्मती	मध्य प्रदेश और मालवा
12	गंधार	तक्षशिला	रावलपिंडी
13	कम्बोज	पुंछ	राजौरी और हाजरा (कश्मीर)
14	अस्माका	प्रतिष्ठान/पैठान	गोदावरी के किनारे
15	वज्जी	वैशाली	वैशाली
16	मल्ल	कुशीनारा	देवरिया और उत्तर प्रदेश

इनमें से ज़्यादातर प्रदेश 'राज्यशाही' प्रकति के थे परन्तु कुछ प्रदेश 'गणसंघ' कहलाते थे जहां पर गणतंत्रात्मकृशासन था। इस शासन प्रणाली में राजश्शाही साम्राज्यों, जहाँ वंशगत राजा शासन करता था, से भिन्न तरीके से प्रशासकीय राज चलता था जिसमें एक चुना गया राजा, एक विशाल परिषद या सभाओं की सहायता से राज करता था जिसमें सभी महत्त्वपूर्ण कुलों और परिवारों के मुखिया शामिल होते थे। यह पद्धति राज्य तंत्र से अधिक जनतांत्रिक

आपकी टिप्पणियाँ

थी, यद्यपि आम आदमी की प्रशासन में कोई भूमिका नहीं होती थी। इन सभी प्रदेशों में से सबसे प्रसिद्ध राज्य था 'वज्जी' जिसकी राजधानी थी 'वैशाली' और यहाँ पर लिच्छवियों का शासन था। यह कुलीनतंत्र ज़्यादातर हिमालय पर्वत की तराई के क्षेत्रों में थे। कालांतर में मगध साम्राज्य द्वारा इन्हें हटाकर इन पर विजय प्राप्त कर ली थी।



मानचित्र 5.1 महाजनपद

पाठगत प्रश्न 5.3

1. छठीशताब्दी ईसा पूर्व काल के किन्ही चार 'महाजन पदों' का नाम लिखें।



2. 'गणसंघ' और राज्यश्तंत्र में क्या अंतर था?

3. छठीशताब्दी ई. पू. काल में सबसे महत्त्वपूर्ण गणसंघ कौन सा था?

5.4 मगध का उद्भव

इन महाजनपदों में आपस में संघर्ष के परिणामस्वरूप मगध एक अत्यंत शक्तिशाली राज्य के रूप में उभरा और एक विशाल साम्राज्य का केन्द्र बन गया। मगध का पहला महत्त्वपूर्णशासक था बिंबिसार जिसने 544 ई. पू. से 492 ई. पू. काल के दौरान 52 वर्षों तकशासन किया। इसने साम्राज्य के विस्तार के लिए तीन पक्षीय नीति अपनाई अर्थात् वैवाहिक संबंध बनाना, शक्तिशाली शासकों से मित्रता करना और कमज़ोर पड़ोसी राज्यों पर विजय प्राप्त करना। वैवाहिक संबंधों की नीति के अधीन बिंबिसार ने कौशल राज्य के राजा प्रसेनजीत की बहन से विवाह किया। वह दहेज में अपने साथ काशी प्रदेश को भी लाई जहां से 1,00,000 सिक्कों का लगान मिलता था। काशी पर नियंत्रण और प्रसेनजीत के साथ मित्रता से मगध को अन्य क्षेत्रों पर ध्यान केन्द्रित करने का मौका मिला। उसकी अन्य पत्नियाँ क्रमशः लिच्छवियों और मद्र (मध्य पंजाब) के प्रमुखों की बेटियां थीं। इसने अंगदेश के राजा ब्रह्मदत्त को हराकर इस पर विजय प्राप्त की। अंग, विशेष रूप से इसकी राजधानी चम्पा दोनों स्थान स्वदेशी और जलमार्ग से व्यापार करने के लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण थे। इस प्रकार काशी और अंग पर विजय पाना मगध साम्राज्य के विस्तार के प्रारंभिक स्थल बने। वे बुद्ध और महावीर, दोनों के समकालीन थे और दोनों को बराबर सम्मान देते थे। विश्वास किया जाता है कि या तो उनकी हत्या की गई थी अथवा उनके पुत्र अजातशत्रु द्वारा उन्हें आत्महत्या करने के लिए मजबूर किया गया होगा क्योंकि वह स्वयं राजगद्दी हथियाने के लिए बहुत उत्सुक था।

अजातशत्रु बहुत ही आक्रामक व्यक्ति था और सबसे पहले उसकी लड़ाई उसके मामा प्रसेनजीत से हुई, जो बिंबिसार के साथ दुर्व्यवहार की वजह से नाराज था। उसने अजातशत्रु से उसकी माँ के दहेज में मिले काशी प्रदेश को वापस लौटाने का आग्रह किया। अजातशत्रु ने इनकार कर दिया और एक घमासान लड़ाई के बाद ही प्रसेनजीत मगध सहित काशी को छोड़ने के लिए सहमत हुआ। इसी प्रकार अजातशत्रु ने वैशाली के शासक अपने नाना चेतक के साथ भी युद्ध किया और 16 वर्ष तक चली लंबी लड़ाई लड़ने के बाद वह वैशाली की ताकत को तोड़ने में कामयाब हो सका और इसके साथ ही उसने काशी को तो अपने पास रखा ही वैशाली को भी मगध में शामिल कर लिया।

अजातशत्रु के उत्तराधिकारी थे उदयन और उसका सबसे बड़ा योगदान था कि उसने गंगा नदी और सोन नदी के संगम स्थल पाटलिपुत्र या पटना में एक किले का निर्माण कराया। युद्ध नीति की दष्टि से एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण कदम था क्योंकि यह स्थान न सिर्फ केन्द्र में स्थित था बल्कि यहाँ पर व्यापारियों और सैनिकों का आना–जाना बहुत आसान था।

उदयन के बाद शिशुनाग राजवंश के उत्तराधिकारी बने। शिशुनाग की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी अवन्ती (मालका) को हराकर उसे मगध साम्राज्य का हिस्सा बनाना। शिशुनाग का उत्तराधिकारी बना उसका पुत्र कालअशोक। इसी के शासनकाल में दूसरा बौद्ध धर्म

सम्मेलन आयोजित हुआ था। शिशुनाग राजवंशियों के बाद नंद वंश के राजा उत्तराधिकारी बने। महापद्मनंद इसके प्रमुख शासक थे। ब्राह्मण ग्रन्थों के अनुसार यह निम्न जाति से या कहें गैर–क्षत्रिय जाति से संबंध रखते थे। इनके पास बहुत बड़ा सैन्यबल था और इन्होंने कलिंग को अपने साम्राज्य में शामिल किया। नंदवंश का अंतिम शासक था घनानंद। ऐसा माना जाता है कि वह बहुत ही लड़ाकू और दमनकारी राजा था और उसने साधारण जनता पर करों का भारी बोझ लाद दिया था। इस वजह से आम जनता में उसकी लोकप्रियता खत्म हो गई और अंत में चन्द्रगुप्त ने जनसाधारण की इस नाराज़गी का फायदा उठाया और उसने नंदवंश के साम्राज्य को उखाड़ फेंका और मौर्य साम्राज्य की नींव रखी।

अब प्रश्न यह है कि मगध उस काल के अन्य सभी प्रदेशों पर धीरे–धीरे अपना वर्चस्व स्थापित कर सकता था। बेशक मगध ने अनेक योग्य और महत्त्वाकांक्षी राजाओं का फायदा उठाया, लेकिन इनकी ताकत मूल रूप से वहाँ की कुछ भौगोलिक विशेषताओं पर आधारित थी। इनकी पुरानी राजधानी गिरिव्रज या राजगीर चारों ओर से पाँच पहाड़ियों से घिरी थी जिन्होंने प्राकतिक किले के रूप में इसकी रक्षा की। दूसरे, इस स्थान की नदी घाटी की उपजाऊ ज़मीन की वज़ह से यहाँ पर अतिरिक्त कषि उत्पाद पैदा होने के कारण ऐसी परिस्थितियाँ बनीं जिनके फलस्वरूप एक बड़ा सैन्य बल खड़ा किया जा सकता था। दक्षिणी क्षेत्रों से इमारती लकड़ी और हाथी मिले। इसके साथ ही मगध को इस स्थान का एक और लाभ मिला कि दक्षिण बिहार के पास मिली लोहे की खानों पर इसका नियंत्रण हो गया। मगध के साम्राज्य की लोहे तक पहुंच ने यहां के अस्त्र–शस्त्र को बहुत ही बेहतर और खेती–बाड़ी के औज़ार की वजह से अधिक उत्पादन के योग्य बना दिया। इसी भौतिक विकास की पष्ठभूमि ने मगध को अन्य महाजनपदों से अधिक शक्तिशाली बनाने में सहायता की।

पाठगत प्रश्न 5.4

1. बिंबिसार ने अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए किन नीतियों को अपनाया?

2. मगध के उत्थान में भौगोलिक तत्त्वों ने कैसे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई?

3. मगध की राजधानी का क्या नाम था?

4. दो शासकों के नाम बताएँ जिनके साथ अजातशत्रु ने युद्ध लड़े?

5. नंद राजवंश का सबसे प्रमुख शासक कौन था?

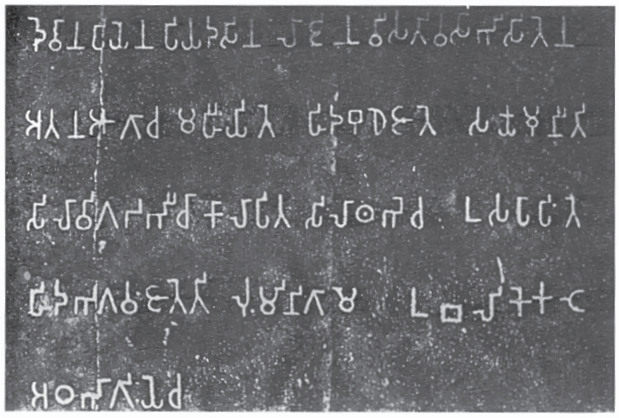
6. किसृशासक के काल में द्वितीय बौद्ध धर्म सम्मेलन का आयोजन हुआ?

5.5 मौर्य साम्राज्य का उदय

मौर्यकालीन स्रोत

321 ई. पू. में चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा मौर्य राजवंश की स्थापना को प्राचीन भारत के इतिहास में एक संक्रांतिकाल समझा जाता है। इस समय के दौरान पहली बार अनेक ऐसे स्रोत उपलब्ध हुए जिनसे अब इस काल के इतिहास पर बेहतर ढंग से प्रकाश डाला जा सकता है। अशोक द्वारा जारी किए गए अभिलेख सूचना के बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं और कम से कम 44 ऐसे अभिलेख मिले हैं जो चट्टानों और स्तम्भों पर उत्कीर्ण हैं। ये अभिलेख ज़्यादातर पालि भाषा में हैं और अधिकतर क्षेत्रों में ब्राह्मी लिपि में लिखे गए हैं। ये शिलालेख प्राचीन भारत में लेखन के प्रथम साक्ष्य भी हैं। जहाँ तक पुरातात्विक स्रोतों का संबंध है, पंच–मार्क्ड (ढलाई करके बनाए गए मुद्रित) सिक्के, कुम्हरार में स्थित अशोक महल के अवशेष और मूर्तियों के कुछ टुकड़े बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

सबसे महत्त्वपूर्ण साहित्यिक स्रोत हैं 'कौटिल्य का अर्थशास्त्र' और 'इंडिका ऑफ मैगास्थनीज'। 'अर्थशास्त्र' शासनकला पर लिखा गया ग्रन्थ है, जो राजाओं को यह परामर्श देता है कि अपने राज्य में शासन कैसे किया जाता है और अपने कर्त्तव्यों का पालन किस प्रकार किया जाता है। इंडिका, सैल्यूकस द्वारा भेजे गए यूनानी, मैगास्थनीज का यात्रा वत्तांत है जिसे चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में राजदूत के रूप में भेजा गया था। 'दीपवंश' और 'महावंश' दो श्रीलंकाई बौद्ध ग्रंथ हैं और विशाखादत्त द्वारा रचित नाटक 'मुद्राराक्षस' भी एक अन्य अमूल्य ग्रंथ हैं।

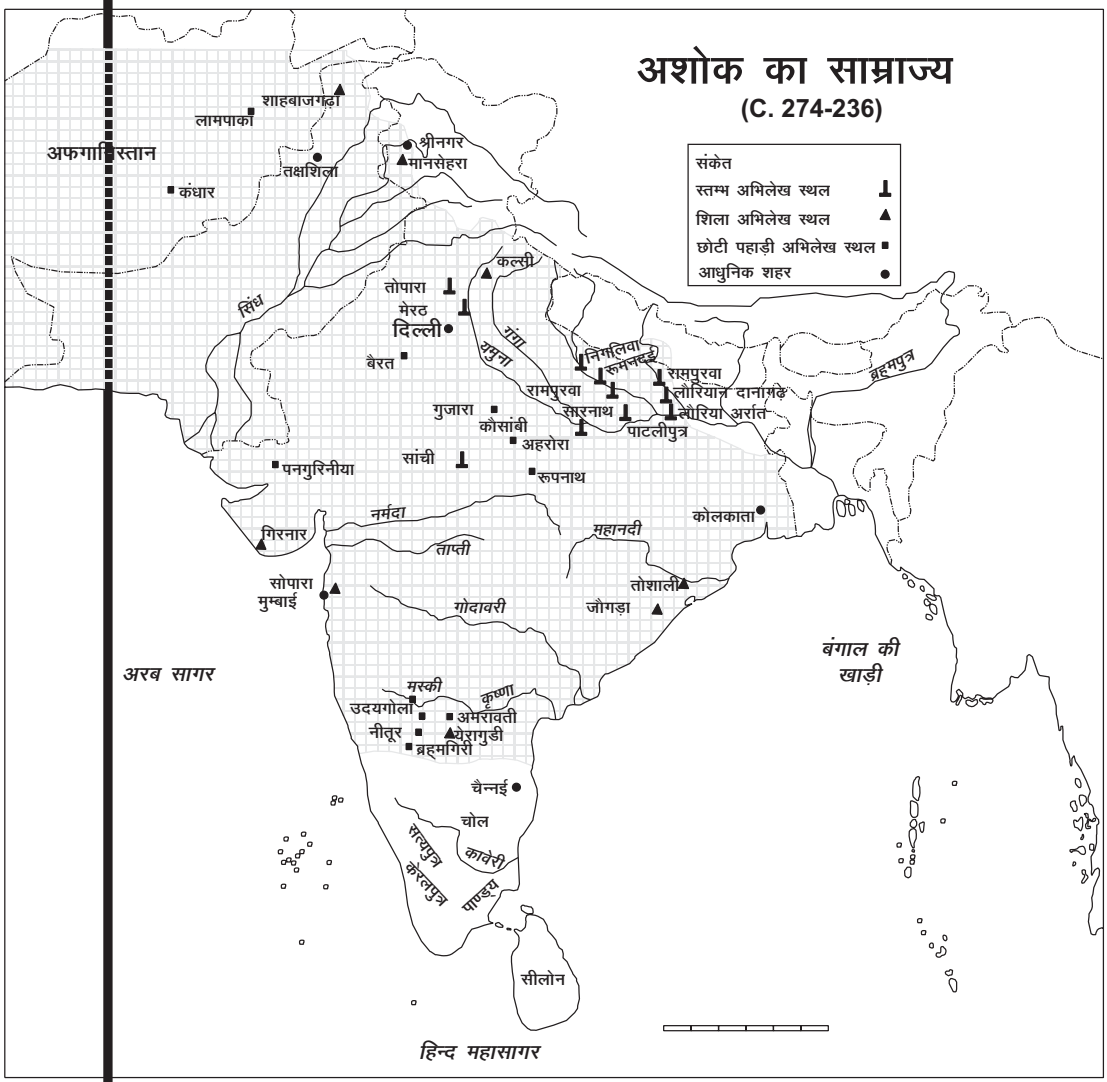


चित्र 5.1 रूम्मनदेई के शिलालेख

मौर्यकालीन राजवंश

मौर्य साम्राज्य के संस्थापक चन्द्रगुप्त मौर्य (321-297 ई. पू.) को नंद की बहुत विशाल सेना विरासत में मिली, जिसका उपयोग उसने लगभग सम्पूर्ण उत्तर भारत, उत्तर पश्चिम और भारत के काफी बड़े भाग को जीतने के लिए किया। उसका पुत्र बिन्दुसार (297-269 ई. पू. में) उसका उत्तराधिकारी बना। इसने यूनान के लोगों के साथ परस्पर व्यापार और सांस्कतिक आदान–प्रदान को बढ़ावा दिया, परन्तु इस संबंध में बहुत ज्यादा जानकारी उपलब्ध नहीं है। अशोक 269-232 ई. पू. में अपने पिता बिन्दुसार का

उत्तराधिकारी बना। बौद्ध परम्पराओं के अनुसार ऐसा कहा जाता है कि अशोक ने अपने 99 भाइयों की हत्या करके सिंहासन हासिल किया था परन्तु किसी अन्य स्रोत से इस तथ्य की पुष्टि न हो पाने के कारण इस पर विश्वास नहीं किया जा सकता। अशोक ने 261 ई. पू. के आसपास कलिंग के साथ एक बहुत बड़ा घमासान युद्ध किया जिसमें बहुत बड़ी संख्या में लोग मारे गये थे अथवा उन्हें बंदी बना लिया गया था। शायद इस रक्तपात ने उसके हृदय को करुणा से भर दिया और उसने सैनिक बल के आधार पर राज्य विस्तार की नीति को छोड़ने का निर्णय किया और घोषित किया कि भविष्य में वह 'भरीघोष' (युद्ध का नगाड़ा) से 'धम्मघोष' (धम्म के नगाड़े) को बेहतर समझेगा। अपना संपूर्ण शेष जीवन उसने 'धम्म' के सिद्धान्तों के प्रचार और प्रसार में व्यतीत किया। परन्तु उसका उत्तराधिकारी उसके साम्राज्य को संगठित रखने में असफल रहा और 187 ई. पू. के आसपास इनके अंतिम शासक राजा बहदरथ की उसके सेनापति पुष्यमित्र सुंग ने हत्या कर दी और फिर यह साम्राज्य पूरी तरह समाप्त हो गया।



मानचित्र 5.2 अशोक का साम्राज्य



पाठगत प्रश्न 5.5

1. मौर्यकालीन इतिहास लिखने के लिए कौन–कौन से मुख्य स्त्रोत हैं?

2. अशोक के अधिकांश शिलालेख किस भाषा और लिपि में लिखे गए हैं?

3. इंडिका का लेखक कौन है?

4. अंतिम मौर्य शासक कौन था?

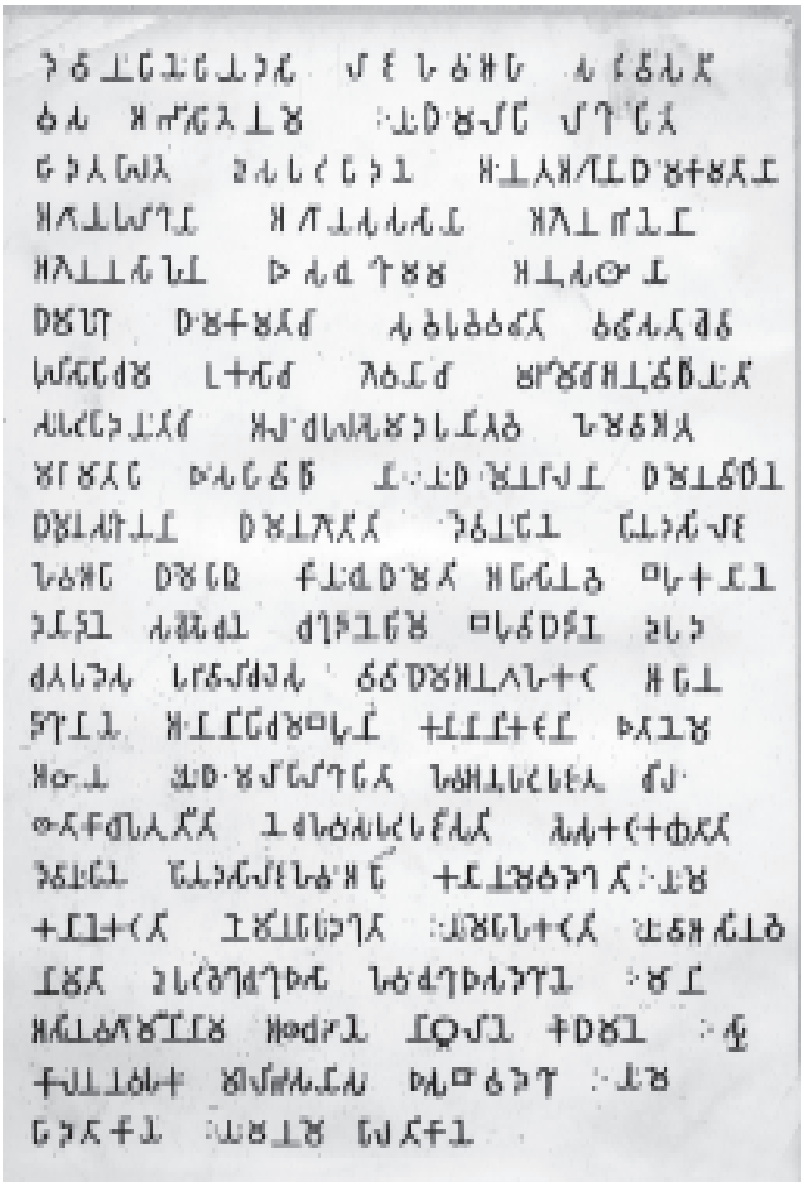
5.6 अशोक और उसका धम्म

अशोक को भारतीय इतिहास में एक महानतम शासक माना जाता है। उसकी प्रशंसा उसकी सैनिक गतिविधियों की तुलना में उसकी 'धम्म' से संबंधित नीतियों के लिए की जाती है। कुछ विद्वानों के मतानुसार अशोक बौद्ध धर्म का अनुयायी था और उसने धम्म के ज़रिये बौद्ध धर्म के सिद्धांतों के प्रचार का प्रयास किया। परन्तु इसमें कोई सच्चाई दिखाई नहीं देती, क्योंकि धम्म का बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार से कुछ लेना–देना नहीं था। यह तो एक आचार–संहिता या आदर्श सामाजिक व्यवहार था, जो विश्व के सभी धर्मों में सामान्य रूप से मिलता है, और जिसको अपनाने के लिए उसने अपनी प्रजा से अनुरोध किया। यद्यपि स्वयं अशोक बौद्ध धर्म का अनुयायी था, परन्तु उसने कभी भी किन्हीं अन्य मतों या धर्मों के विरुद्ध कोई भेदभाव नहीं किया।

अशोक कालीन शिलालेखों के गहन अध्ययन से पता चलता है कि धम्म की मूल विशेषताओं में शामिल थी करूणा (दया), दान–दक्षिणा (दान), सच्चाई, पवित्रता और अच्छा व्यवहार। स्तम्भों के शिलालेख–3 में लोगों से हिंसा पर नियंत्रण, अत्याचार, क्रोध और ईर्ष्या पर नियंत्रण पाने का अनुरोध किया गया है। चट्टानों पर खुदे शिलालेख–1 में लोगों को पशु वध पर पाबंदी और 'समाज' की तरह के सामाजिक सम्मेलनों पर रोक लगाई गई है। चट्टानों के शिलालेख–2 पर यह घोषित किया गया है कि अस्पताल, सड़कें, सरायों और कुओं के निर्माण और छायादार पेड़ लगाने के उपाय किए जाएं। चट्टानों पर खुदे तीसरे, चौथे और बारहवें अभिलेखों में लोगों से कहा गया है कि वे माता–पिता, संबंधियों, ब्राह्मणों और श्रमणों (भिक्षुओं) का सम्मान करें। उसने अपने राज्य में 'धम्म महाभाग' नामक विशिष्ट प्रकार के काम करने वालों को भी नियुक्त किया। उनका मुख्य काम था इसका निरीक्षण धम्म के सिद्धांतों का शांतिपूर्ण रूप से पालन हो रहा हैं। 12वें शिलालेख का अभिलेख विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इसमें कहा गया है कि 'राजा प्रियदर्शी, ईश्वर का प्रिय है, सभी सम्प्रदायों का सम्मान करता है। चाहे वे सन्यासी हैं या गहस्थ और उन्हें विविध प्रकार के उपहार और सम्मान देकर उनका आदर करता हैं और

चाहे वह किसी अन्य धर्म का अनुयायी हो, हर अवसर पर उसका भी सम्मान होना चाहिए। अशोक लोगों को बौद्ध धर्म का अनुयायी बनाने का प्रयास कर रहा था, परन्तु सोचने की बात है कि उसने इस नीति पर अत्यधिक बल क्यों दिया?

इतिहासकार यह मानते हैं कि अशोक के शासन का आधा समय बीतते–बीतते, साम्राज्य का विस्तार लगभग पूरा हो चुका था। यह ऐसा साम्राज्य था, जिसमें भिन्न–भिन्न सांस्कतिक, सामाजिक और धार्मिक समूह थे। इन मतभेदों (फूट) से पैदा हुए राजनीतिक तनाव से साम्राज्य को बचाने के लिए उसके हित में दो रास्ते हो सकते थे। एक तो यह कि वह इन संघर्षों के समाधान के लिए अपने सैनिक बल में वद्धि करता, जिसके लिए



चित्र 5.2 अशोक स्तम्भ का अभिलेख



संभवतः उसे करों में और वद्धि करनी पड़ती और इससे उसे और अधिक लोगों के विरोध का सामना करना पड़ता। दूसरा विकल्प था कि विभिन्न मतभेदों वाले समूहों में परस्पर सद्भाव और सहृदयता उत्पन्न करके एकता पैदा की जाए, जिससे उनकी आपसी लड़ाई खत्म करने का शांतिपूर्ण समाधान खोजा जाए। अशोक ने अपने साम्राज्य में सामंजस्य और शांति स्थापना के लिए दूसरे विकल्प का चुनाव किया। अतः भारतीय इतिहास में अशोक का बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थान है, क्योंकि वह पहला ऐसा शासक था, जिसने युद्ध और आक्रमण के स्थान पर शांति की नीतियों की शुरुआत की।

पाठगत प्रश्न 5.6

1. 'धम्म' के संबंध में अशोककालीन शिलालेख हमें क्या बताते हैं?

2. अन्य धर्मों के साथ अशोक का कैसा व्यवहार था?

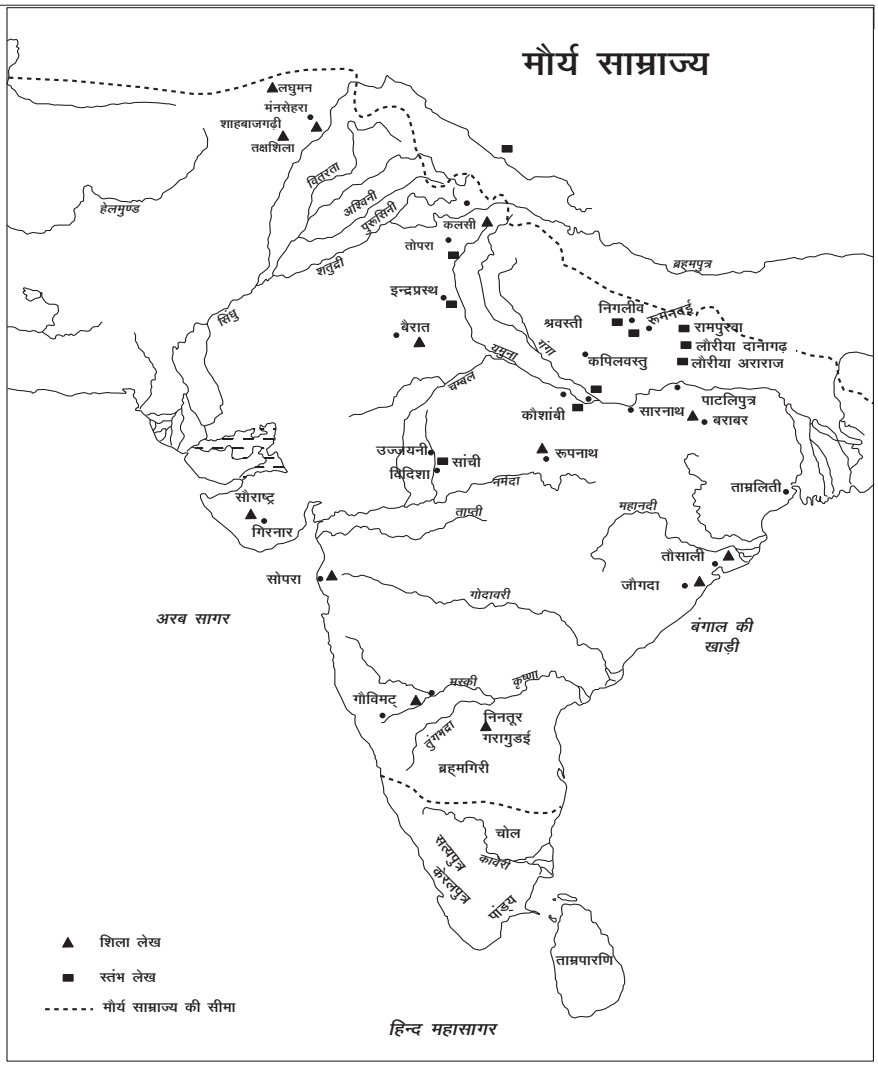
3. धम्ममहामात्रों के क्या कार्य थे?

5.7 मौर्यों का पतन

मौर्यों के पास एक विशाल सेना और एक बड़ा शासन तंत्र था और उन्होंने भारतीय उपमहाद्वीप के एक बहुत बड़े भू–भाग पर शासन किया। परन्तु अशोक की मत्यु के पश्चात शीघ्र ही साम्राज्य दो भागों मे विभाजित हो गया। पूर्वी भाग के साम्राज्य का नियंत्रण राजा दशरथ के हाथों में और पश्चिमी भाग सम्प्रति के अधीन था। इतने बड़े साम्राज्य का पतन इतनी जल्दी कैसे हुआ?

कुछ इतिहासकार यह मानते हैं कि बौद्ध धर्म के प्रभाव में आने के बाद अशोक शांतिप्रिय बन गया था और उसने अपनी सेना को दुर्बल बना दिया था। यह भी कहा जाता है कि अशोक की धार्मिक नीति ने ब्राह्मणों को उसका विरोधी बना दिया था, क्योंकि अशोक ने पशु–बलि पर रोक लगा दी थी, जिसके परिणामस्वरूप ब्राह्मणों की आर्थिक स्थिति और धार्मिक कार्यकलापों पर बुरा प्रभाव पड़ा था। इसीलिए, पुष्यमित्र जो ब्राह्मण सेनापति था, ने अंतिम मौर्य शासक की हत्या कर दी थी। परन्तु इसको सही नहीं माना जा सकता, क्योंकि अशोक कालीन शिलालेखों से पता चलता है कि अशोक ब्राह्मणों को पूरा सम्मान देता था। इसके अतिरिक्त यह सच है कि अशोक ने शांति और सामंजस्य की नीति को अपनाया, परन्तु अपने सैन्य बल को समाप्त नहीं किया था और किसी भी आक्रमण के मुकाबले के लिए हमेशा तत्पर रहा।

पतन का एक मुख्य कारण शायद यह हो सकता है कि मौर्य वंश का शासन दुर्बल उत्तराधिकारी राजाओं को मिल गया था। ये शासक दूर–दराज क्षेत्रों के उन अधिकारियों पर अपना नियंत्रण नहीं रख पाए जो अत्याचारी बन चुके थे और केंद्र के हितों के विरुद्ध काम कर रहे थे। यह भी संभव है कि मौर्य साम्राज्य को किसी प्रकार



मानचित्र 5.3 मौर्य साम्राज्य

के आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा होगा। उस काल के कुछ सिक्कों के मूल्य कम होने से इस बात का पता चलता है। यह संकट शायद अत्यधिक दान–दक्षिणा अथवा साम्राज्यिक प्रशासनिक प्रणाली पर अत्यधिक खर्च किए जाने से भी आने की संभावना हो सकती है। असल में, पतन का कारण था इतने विस्तत साम्राज्य के केंद्रीय ढांचे का वंश के आधार पर चला आने वाला रूप। अशोक के उत्तराधिकारी साम्राज्य के केंद्रीय और विभिन्न प्रदेश के राज्यों, सूबेदारों के बीच परस्पर संतुलन बनाए रखने में असफल रहे और पहला संभावित मौका मिलते ही उन्होंने खुद को केंद्र से पथक करने का प्रयास किया। फिर भी हम कह सकते हैं कि यद्यपि मौर्य साम्राज्य का पतन हो गया, परन्तु इस उपमहाद्वीप के विभिन्न भागों में कषि और लौह तकनीकी के प्रसार में इसका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। इसके परिणामस्वरूप मौर्य साम्राज्य के उपरान्त, अनेक क्षेत्रीय राज्यों को पनपने का अवसर मिला।



पाठगत प्रश्न 5.7

1. मौर्य साम्राज्य के पतन के मुख्य कारणों पर प्रकाश डालें?

2. अशोक की मत्यु के उपरांत किन दो शासकों ने दो भागों पर राज किया?

3. मौर्यकालीन शासन का, आगे चलकर भारतीय इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा?

5.8 मौर्य शासन के अधीन भारत

मौर्यों ने प्रशासन की बहुत ही बेहतर पद्धति स्थापित की, जिसमें राजा की मुख्य भूमिका थी। एक मंत्री परिषद उसकी सहायता करती थी, परन्तु प्रशासन से संबंधित सभी मामले जैसे लगान, कानून और व्यवस्था, युद्ध अथवा किसी भी संबंधित विषय में अंतिम निर्णय स्वयं राजा लेता था। उससे आशा की जाती थी कि वह बहुत कुशल हो और हर समय उसके प्रशासन अधिकारियों की पहुंच उस तक बनी रहे। अपने शिलालेखों के एक अभिलेख में उनके द्वारा यह घोषणा की गई है कि सामान्य जनता का कोई भी व्यक्ति किसी भी समय उससे मिल सकता है। उसने यह भी घोषित किया था कि उसकी संपूर्ण प्रजा उसकी संतान के समान है और वह उन सभी की सुख–समद्धि की कामना रखता है न सिर्फ इस संसार में बल्कि मत्यु के उपरान्त दूसरे लोक में भी।

राजा ने मंत्रियों की एक परिषद बनाई थी, जिसे मंत्री परिषद कहते थे और अन्य अनेक अधिकारी थे, जो उसे अपने कर्त्तव्य को निभाने में उसकी सहायता करते थे। इन अधिकारियों को अमात्य, महामात्र और अध्यक्ष कहकर बुलाते थे। अर्थशास्त्र में 27 ऐसे अध्यक्षों अथवा अधीक्षकों की सूची दी गई है, जिनका दायित्व था विभिन्न आर्थिक विभागों जैसे कषि, खनन (खानें), बुनकर और व्यापारिक विभागों के संचालन की देख–रेख करें। इन सभी कार्यकारी कर्मचारियों में से समाहर्त्ता का पद सबसे महत्वपूर्ण था। इसकी ज़िम्मेदारी थी, सभी प्रकार के स्रोतों से किए जाने वाले कर संग्रह की निगरानी करना। ऊपर उल्लिखित अधिकांश अधीक्षक उसके आदेशों पर कार्य करते थे। मौर्यों ने बहुत बड़ी संख्या मे सैनिकों को भी नियुक्त किया था।

मौर्यों के पास एक बहुत विशाल सेना थी और यूनानी लेखक जस्टिन के अनुसार चंद्रगुप्त की सेना में 6,00,000 पैदल सैनिक, 30,000 घुड़सवार, 9,000 हाथी और 8,000 रथ थे। यद्यपि ऐसा लगता है कि यह संख्या बहुत बढ़ा–चढ़ाकर लिखी गई है, परन्तु मौर्यों के पास एक विशाल सेना थी, इसमें कोई संदेह नहीं हैं। मैगास्थनीज ने लिखा है कि सेना की विभिन्न शाखाओं की प्रशासनिक कार्यों की पूर्ति प्रत्येक में पाँच सदस्यों की सदस्यता से गठित पाँच समितियों द्वारा की जाती थी। किलों की सीमाओं की सुरक्षा का दायित्व जिसे दिया गया था, उसे 'अन्तःपाल' कहते थे।

जहाँ तक न्यायिक प्रशासन का संबंध है, राजा सर्वोच्च प्राधिकारी था, परन्तु गाँवों और प्रदेशों के स्तर पर अनेक दीवानी और आपराधिक अदालतें काम करती थीं। ऐसा लगता है कि शायद अधिकांश मामलों का निपटारा गाँव के बुजुर्गों के स्तर पर ही हो जाता था।

मगध की राजधानी पाटलीपुत्र के अतिरिक्त संपूर्ण मौर्य साम्राज्य को चार अन्य प्रदेशों में बांटा गया था, जिनकी राजधानियां थीं तक्षशिला (उत्तर–पश्चिमी भारत), सुवर्णगिरी (दक्षिण भारत), तोसाली (पूर्वी भारत) और उज्जैन (पश्चिमी भारत)। इनका नियंत्रण शाही राजकुमारों के नियंत्रण में रखा गया था, जिन्हें 'कुमार' कहते थे। मेगास्थनीज के अनुसार, पाटलीपुत्र नगर के प्रशासन का संचालन पाँच–पाँच सदस्यों की छह समितियां करती थीं। प्रत्येक समिति को अलग–अलग विषयों का काम सौंपा गया था। जैसे उद्योग, विदेशी, जन्म और मत्यु पंजीकरण, व्यापार और बाज़ार की संचालन व्यवस्था और कर संग्रहण। फिर भी यह स्पष्ट संकेत नहीं मिलता कि संपूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप में इसी प्रकार का नगर प्रशासन चलता था या नहीं। ऐसा लगता है कि केंद्रीय प्रांत मगध का प्रशासन सीधे राजा की कड़ी निगरानी के अधीन संचालित होता था और अन्य दूर–दराज के क्षेत्रों पर अलग–अलग स्तर का प्रशासनिक नियंत्रण होता था।

अर्थव्यवस्था, समाज और कला

जैसा कि ऊपर बताया गया हैं, मौर्यों के पास बड़ी स्थायी सेना थी और बहुत बड़ी संख्या में सरकारी अधिकारियों की व्यवस्था की गई थी। इन सैनिकों और कर्मचारियों को नकद भुगतान किया जाता था, क्योंकि राज्य की सभी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सामान्य करों को पर्याप्त नहीं समझा जाता था, इसलिए ज्यादा से ज्यादा संसाधन पैदा करने के लिए अनेक प्रकार की आर्थिक गतिविधियाँ चलाई जाती थीं।

इस काल में अर्थव्यवस्था का मुख्य आधार था कषि। मौर्य शासकों ने परती (खाली) भूमि को खेती–बाड़ी के उपयोग में लाने के लिए नए कषि आधारित स्थलों का निर्माण कराया। खेतों में काम करने के लिए अत्यधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों से लोगों और युद्ध बंदियों को यहाँ लाकर बसाया गया। इन गाँवों का स्वामित्व राजा के पास था और जो भी कर्मचारी इनकी देखभाल करते थे उन्हें 'सीताध्यक्ष' अथवा 'कषि अधीक्षक' कहते थे। शासकीय कषि–क्षेत्रों (धर्मों) के अतिरिक्त निजी भू–स्वामी भी थे, जो राज्य को अनेक प्रकार के कर देते थे। सिंचाई के महत्व को सभी भली–भाँति जानते थे और सिंचित भूमि के लिए किसानों को अधिक कर देना पड़ता था। 'बलि' या 'भूमि–कर' लगान का मुख्य अंग था, जो कुल उत्पादन के छठे भाग के बराबर मात्रा की दर से देना होता था। किसानों को और भी अनेक करों का भुगतान करना पड़ता था जैसे 'पिंडकर' हिरण्य, भाग और भोग इत्यादि। इनकी सही प्रकति के संबंध में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। प्रमुख फ़सलों में विविध प्रकार की चीजें थीं, जैसे अनेक किस्म के चावल, जौ, जई, बाजरा, गेहूं, गन्ना और अनेक प्रकार की दालें, मटर, तिलहन (तेल देने वाली फ़सलें) जिन्हें हम आज इन्हीं रूपों में पहचानते हैं।

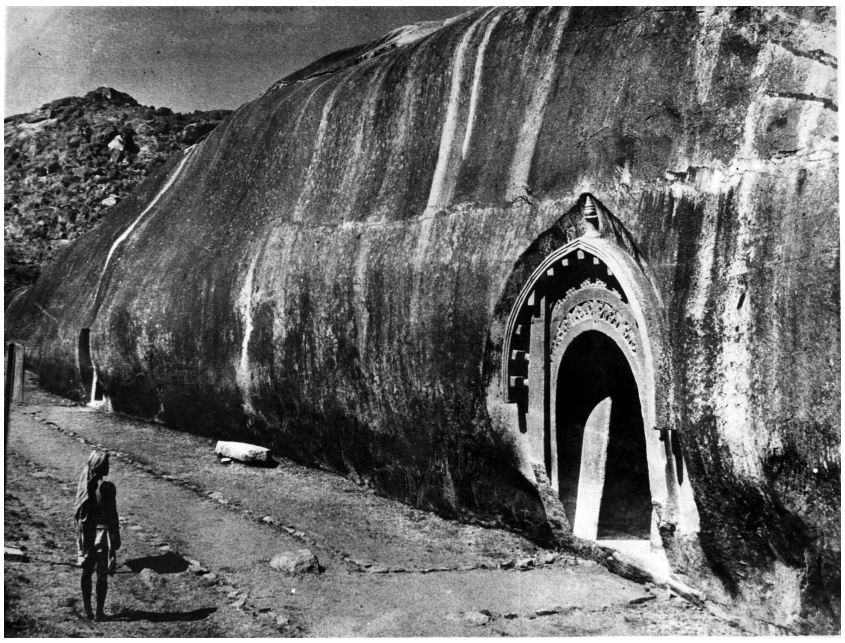
मौर्य शासन काल में व्यापार और अर्थव्यवस्था को बहुत बढ़ावा मिला और इसने साम्राज्य के लगभग सभी भागों पर अपना प्रभाव छोड़ा। वस्त्र उत्पादन के मुख्य केन्द्र थे वाराणसी, मथुरा, बंगाल, गंधार और उज्जैन। खनन और धातु–कर्म एक अन्य महत्त्वपूर्ण आर्थिक गतिविधि थी। व्यापार का संचालन भू–मार्गों और जलमार्ग दो तरह से होता था। पाटलीपुत्र, अनेक व्यापारिक मार्गों के जरिये इस उपमहाद्वीप के सभी भागों से जुड़ा हुआ था। उत्तर पश्चिम में सबसे बड़ा व्यापारिक केन्द्र था तक्षशिला, जो आगे मध्य एशिया के बाज़ारों से जुड़ा हुआ था। पूर्व में ताम्रलिप्ति (पश्चिम बंगाल में तामलुक) और पश्चिम में भड़ौच बहुत महत्त्वपूर्ण बंदरगाह थे।



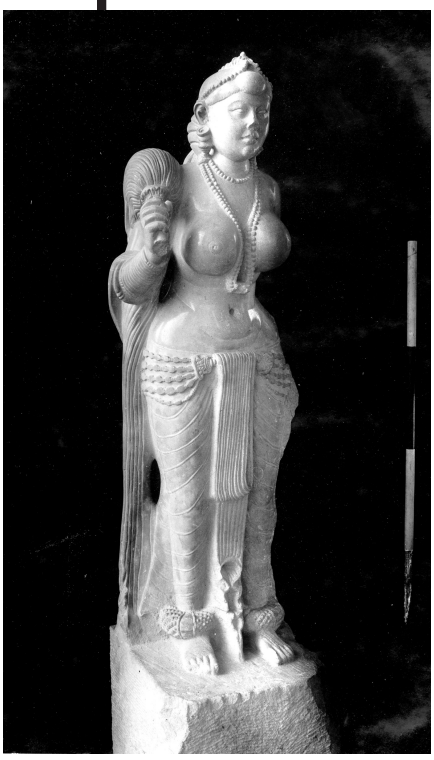
शिल्प कार्य भी शासन की आय के बहुत बड़े स्रोत थे। शहरों में रहने वाले कारीगरों को नगद राशि या अन्य किसी चीज़ से या राजा के लिए निःशुल्क कार्य करके कर चुकाना पड़ता था। व्यापारियों और कारीगरों को संगठनों के रूप में व्यवस्थित किया जाता था जिन्हें 'श्रेणियां', या 'गिल्ड' कहा जाता था। इस उपमहाद्वीप में बड़े पैमाने पर लोहे का प्रयोग शुरू करने का श्रेय मौर्यों को जाता है। लोहे के उत्पादन पर मौर्यों का एकछत्र अधिकार था



चित्र 5.3 सारनाथ स्तम्भ



चित्र 5.4 बारबरा की पहाड़ियों में बनी गुफा



चित्र 5.5 दीदारगंज यक्षिणी

क्योंकि सेना, व्यापार और खेती–बाड़ी के क्षेत्रों में लोहे की अत्यधिक मांग रहती थी। यह सारा कारोबार लौह अध्यक्ष नामक शाही कर्मचारी की निगरानी में होता था।

जहाँ तक समाज का संबंध है, बौद्ध धर्म और जैन धर्म द्वारा चुनौती दिए जाने के बावजूद वर्ण व्यवस्था अभी भी मौजूद थी और सामाजिक श्रेणी क्रम में ब्राह्मण और क्षत्रिय अभी भी सर्वोच्च स्थान पर थे। परन्तु अधिकाधिक व्यापार और वाणिज्य के परिणामस्वरूप वैश्यों या व्यापार करने वाली जातियों और शूद्रों के सामाजिक स्तर में भी सुधार हुआ था। शूद्रों को अब कषि और शिल्पकलाओं के कामों में शामिल किया जा सकता था। इस काल में अछूतों की संख्या में भी काफी वद्धि देखने में आई।

मौर्यकाल ने प्राचीन भारतीय कला और वास्तुशिल्प के प्राचीनतम नमूने भारत को उपलब्ध कराए हैं। मैगस्थनीज़ ने पाटलीपुत्र में बने महल की भव्यता का विस्तत विवरण किया है। पटना के पास कुम्हरार में इस महल के कुछ अवशेष मिले हैं। इस काल में विकसित हुई पत्थर की मूर्तियां बनाने की कला के बहुत ही श्रेष्ठ नमूने रामपुरवा, लौरीया, नंदनगढ़ और सारनाथ के अशोक स्तम्भों के रूप में प्राप्त हुए हैं। हमारा राष्ट्रीय चिह्न भी बनारस के पास स्थित सारनाथ के अशोक स्तम्भ से लिया गया है। ये सभी स्तम्भ गोलाकार और एक ही पत्थर को तराश कर बनाए गए हैं और रेतीले पत्थर से बने हैं और उत्तर प्रदेश में मिरज़ापुर के नज़दीक चुनार नामक स्थान पर मिले हैं। मौर्यकाल से संबद्ध कुछ चट्टानों में कटाई करके बनाए गए वास्तु शिल्प के नमूने, जैसे गया के पास बारबरा पहाड़ियों में बनी लोमस ऋषि गुफा, भी हमें मिले हैं। इस काल से संबंधित अनेक पत्थर और मिट्टी के बने मूर्ति शिल्प के नमूने, पॉलिश किए गए। पत्थरों की बनी दीदारगंज यक्षिणी के रूप में जानी जाने वाली एक पत्थर की नारी–मूर्ति, जो हाथ में चौरी रखे हुए है, बहुत ही प्रसिद्ध नमूना है।

पाठगत प्रश्न 5.8

1. करों के मूल्यांकन और संग्रहण के लिए मौर्य काल का कौन–सा अधिकारी ज़िम्मेदार था?

   _____

2. शाही मालिकाना की भूमि पर होने वाली खेती किस अधिकारी की निगरानी में होती थी?

   _____

3. गया के पास बारबरा पहाड़ियों में चट्टान काट कर बनाई गई गुफा का क्या नाम है?

   _____

आपने क्या सीखा

लोहे के औज़ारों और मध्य गंगा के मैदानों में पशु धन के उपयोग के परिणामस्वरूप छठी शताब्दी ईसा पूर्व काल में कषि उत्पादों और खाद्य आपूर्ति में बहुत वद्धि हुई। कषि के इस विकास से शहरों, व्यापार और धन संबंधी अर्थिक नीति में बहुत विकास हुआ। इसीलिए छठी शताब्दी ईसा पूर्व अवधि को 'द्वितीय नगरीकरण' का काल कहा जाता है। इस काल में गैर–वैदिक धर्म जैसे बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने नवीन सामाजिक वास्तविकताओं का प्रत्युत्तर



दिया और यह तर्क दिया कि पशुबलि, महाजनी (धन उधार देना) और शहरी जीवन पर प्रतिबंध लगाया जाना चाहिए। उन्होंने व्यापारिक सम्प्रदायों को उच्च सामाजिक स्तर दिए जाने का पक्ष लिया और इसके बदले में उन लोगों ने इन नए धर्मों को संरक्षण दिया। जैन धर्म की प्रमुख शिक्षाएँ हैं 'त्रिरत्न' और 'पंचमहाव्रत', जबकि गौतम बुद्ध ने लोगों को 'चार महान सत्यों' को अपनाने और अष्टमार्ग पर चलने की शिक्षा दी। पूर्व काल के जनपदों को संगठित किया गया, जिसके परिणामस्वरूप सोलह महाजनपदों का उद्‌भव हुआ। कुछ जनपदों में राजतंत्रीय शासकीय व्यवस्था लागू थी। अन्त में मगध के महत्त्वाकांक्षी शासकों द्वारा अनुकूल भौगोलिक परिस्थितियों का उपयोग करने के कारण एक विशाल साम्राज्य का उद्‌भव हुआ। बाद में मौर्यों ने नंद राजवंश को उखाड़ फेंका और अपना साम्राज्य स्थापित किया। उनके पास एक उच्च कोटि का व्यवस्थित अधिकारी–तंत्र (नौकरशाही) था जिसमें एक विशाल सैनिक बल शामिल था और उन्होंने इस उपमहाद्वीप के बहुत बड़े भू–भाग पर शासन किया। भारत के महानतम शासकों में से शासक अशोक ने 'धम्म' के सिद्धांतों को अपनाया, जिसका उद्‌देश्य था साम्राज्य का संगठन और आंतरिक मतभेदों को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाया जाए। अशोक की मत्यु के उपरान्त मौर्य साम्राज्य का पतन हो गया, जिसका कारण था उसके बाद के शासकों की अयोग्यता और साम्राज्य के केंद्र और सीमांत के प्रदेशों में संबंधों में अस्थिरता का पनपना।

पाठांत प्रश्न

1. वैश्यों ने बौद्ध धर्म और जैन धर्म का संरक्षण क्यों किया?
2. जैन और बौद्ध धर्म की प्रमुख शिक्षाएँ क्या हैं?
3. अशोक की धम्म–नीति की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?
4. अशोक ने धम्म की नीति का अनुपालन क्यों किया?
5. अत्यधिक कर एकत्रित करने के लिए मौर्यों ने कौन–कौन से प्रयास किए?
6. कला के क्षेत्र में मौर्यों के योगदान का विस्तत विवरण दें?

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

5.1

1. जखेड़ा, राजघाट, कौशाम्बी, वैशाली और सोनपुर
2. देखें अनुच्छेद 5.1 – 3
3. देखें अनुच्छेद 5.1 – 4
4. मखाली घोषाल

5.2

1. उचित विश्वास, उचित ज्ञान और उचित व्यवहार

2. दिगम्बर और श्वेताम्बर
3. सारनाथ
4. देखें अनुच्छेद 5.2 – 4
5. देखें अनुच्छेद 5.2 – 4
6. पालि
7. देखें अनुच्छेद 5.2 – 7
8. देखें अनुच्छेद 5.2 – 8

5.3

1. देखें अनुच्छेद 5.3 (तालिका 5.1)
2. देखें 5.3, अनुच्छेद 2
3. वैशाली

5.4

1. देखें अनुच्छेद 5.4 – 1
2. देखें अनुच्छेद 5.2 – 6
3. गिरिव्रज या राजगीर
4. प्रसेनजित और चेतक
5. महापद्मानंद
6. कालाशोक

5.5

1. देखें अनुच्छेद 5.5 – 1
2. प्राकत और ब्राह्मी
3. मैगस्थनीज़
4. बहद्रथ

5.6

1. देखें अनुच्छेद 1
2. देखें अनुच्छेद 2
3. ब्राहमणों और अन्य सभी प्रकार के भिक्षुओं की देखभाल

5.7

1. देखें अनुच्छेद 5.7



2. दशरथ और सम्प्रति
3. इससे लौह–तकनीकी और कषि का विस्तार हुआ, जिससे भारत में अनेक क्षेत्रीय राज्यों का उद्‌भव हुआ।

5.8

1. समाहर्त्ता
2. सीताध्यक्ष
3. गया के पास लोमासा ऋषि गुफा

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. देखें अनुच्छेद 5.1 – 5
2. देखें अनुच्छेद 5.2 – 1 और 4
3. देखें अनुच्छेद 5.6 – 1
4. शिलालेख। देखें अनुच्छेद 5.6 – 2
5. देखें अनुच्छेद 5.8 – 2 और 3 (अर्थव्यवस्था, समाज और कला)
6. देखें अनुच्छेद 5.8

शब्दावली

जातक - बुद्ध के पिछले जन्मों से संबद्ध बौद्ध कहानियों का संग्रह
तीर्थंकर - जैन धर्म में तीर्थकर की परंपरा; शाब्दिक अर्थ 'मोक्षदाता'
निर्वाण - मानव इच्छाओं से मुक्ति।
दिगम्बर - 'निर्वस्त्र', जैन धर्म की एक शाखा (सम्प्रदाय) जिसमें नग्न रहते हैं।
श्वेतांबर - जैन धर्म की एक शाखा (सम्प्रदाय) जिसके अनुयायी सफेद वस्त्र पहनते हैं।
महायान - बौद्ध धर्म की एक शाखा जिसमें बुद्ध की प्रतिमा की पूजा की जाती है।
हीनयान - बौद्ध धर्म की एक शाखा जिसमें बुद्ध की मूल शिक्षाओं को अपनाने पर बल दिया।
समाज - धार्मिक और आनंदित लोगो की सभा
धम्म महाआमात्य - अशोक द्वारा नियुक्त अधिकारी जिसका काम था समाज में धम्म के सिद्धांतों के अनुपालन पर निगरानी रखना।
चौरी - बालों से बना एक पंखा (चंवर) जिसे किसी राजा या धार्मिक वस्तु के ऊपर आगे–पीछे डुलाया जाता है।